ATISHAY KALIT

A U.G.C. Care Listed Referred International Bilingual Research Journal of Humanities, Social Science & Fine-Arts

LOTUS (July-December) Vol. 9, Pt. B, Sr. 16 Year 2022
ISSN 2277-419X
RNI-RAJBIL01578/2011-TC

Chief Editor :
Dr. Rita Pratap (M.A. Ph.D.)
Co-Editors :
Dr. Shashi Goel (M.A., Ph.D., Postdoc.), Dr. S.D. Mishra (M.A., Ph.D., Postdoc.)

Mailing Address :
Dr. Rita Pratap
ATISHAY KALIT
C-24, Hari Marg, Malviya Nagar, Jaipur-302017
Mobile : 9314631852, 8852075566
INDIA

सम्पादकीय

नवम्बर, 2022

प्रिय दोस्तों,

अतिशय कलित के इस वर्ष के दूसरे अंक 'लोटस' (जुलाई-दिसम्बर, 2022) को अध्येताओं एवं अकादमिक जगत को समर्पित करते हुए अतीव तोष का अनुभव हो रहा है।

अभी हाल ही में UGC ने शोध-पत्रिकाओं के लिए जो उच्च गुणवत्तापरक प्रतिमान स्थिर किए हैं, उनके अनुरूप शोध आलेखों की विषय विशेषज्ञों द्वारा समीक्षा, संपादन, तदुपरान्त नियत समय पर शोध पत्रिका का प्रकाशन एक चुनौतिपूर्ण कार्य है। अस्तु, हम सबके लिए यह आत्मतोष का विषय है कि 'अतिशय कलित' UGC CARE सूची में सम्मिलित है और नियत समय पर नियमित रूप से प्रकाशित भी हो रहा है।

इस अंक में साहित्यकार अज्ञेय पर भी एक शोध पत्र सम्मिलित है। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' की भूमिका में स्वयं को तथा तारसप्तक में सम्मिलित अन्य कवियों को 'नयी राहों का अन्वेषी' कहा था। अज्ञेय को संदर्भित करके कहें तो कह सकते हैं कि इस अंक में सम्मिलित हमारे साथी विद्वान भी अपने-अपने क्षेत्रों में 'राहों के अन्वेषी' हैं। आशा है कि उनके शोध पत्र अकादमिक जगत में नवीन संभावनाओं को प्रकट करेंगे। हिन्दी जगत जानता है कि अज्ञेय ने 'तार सप्तक' में युवा एवं अलक्षित कवियों को स्थान दिया था, उसी प्रकार अतिशय कलित भी नए शिक्षक साथियों, शोधार्थियों को अवसर देने के लिए संकल्पित है।

हमें याद रखना है कि परम्परा के परिमार्जन से ही परम्परा दीर्घजीवी होती है। अतिशय कलित में हमारा प्रयास है कि शोध आलेखों की गुणवत्ता उत्तरोत्तर बढ़ती रहे; संदर्भ एवं पाद-टिप्पणियाँ मानकीकृत रूप में हों। इस हेतु अतिशय कलित की वेबसाइट पर निर्देश उपलब्ध हैं।

—रीता प्रताप
सम्पादक
अतिशय कलित

विषय-सूची

	सम्पादकीय	डॉ. रीता प्रताप	2
1.	बंगाल शैली : राष्ट्रवादी पुनर्जागरण	डॉ. रमेश चन्द्र मीणा	457
2.	समकालीन राजनीति परिपेक्ष्य में डॉ. बी.आर. अंबेडकर के विचारों के स्रोत और स्वरूपों की समझ	राजीव रोशन कुमार	462
3.	गोदान उपन्यास में रायसाहब का दोहरा व्यक्तित्व	बगीता	466
4.	सिकन्दरपुर तहसील (बलिया जनपद) में जनसंख्या गत्यात्मकता : एक समग्र दृष्टि	रामजी राय	469
5.	सांभर की सांस्कृतिक धरोहर : बंजारा समाज के संदर्भ में प्रस्तुत शोधपत्र	मुकेश कुमारी डॉ. सुनीता कुमारी	474
6.	जरायम पेशा कानून और राजस्थान में लक्ष्मीनारायण झरवाल का इसमें योगदान	रजनी मीना	477
7.	विश्व साहित्य में प्रवासी हिन्दी साहित्य का योगदान	कृपा शंकर	483
8.	विकासखण्ड नवानगर, जनपद-बलिया (उ.प्र.) में जनसंख्या वृद्धि एवं उसका प्रभाव	रिम्पी राय	487
9.	बंजारा लोकगीतों में परिवर्तन के संकेत	डॉ. राठोड दिलीप किशन	491
10.	पहाड़ी चित्रशैली में अश्वांकन परम्परा	डॉ. मनीषा खींची	496
11.	कोरोना काल में कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर बढ़ते सामाजिक दबाव का अध्ययन	रजनी बाला सोनी डॉ. सीमा जैन	502
12.	पर्यटन को लुभाते शेखावाटी के भित्ति-चित्र	डॉ. ज्योति पाठक	507
13.	भारतीय कला में शिव की वैवाहिक प्रतिमाओं का सामाजिक महत्व	डॉ. संगीता कुमारी प्रो. जयवीर सिंह धनखड	511
14.	सूफी सन्तों के साथ सुल्तानों के संबंध	मनजीत	516
15.	मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में नारी-स्थिति का वर्णन	डॉ. रूबी चौधरी	523
16.	शिक्षा, सोशल मीडिया और छात्र : एक विश्लेषणात्मक चर्चा	गगनदीप सिंह	526
17.	भारत के परमाणु प्रतिरोध की संकल्पना	डॉ. गुरदीप सिंह	535
18.	वित्तीय बाजार में व्यक्तिगत निवेशकों के चुनिंदा निवेश मार्ग पर एक अध्ययन	डॉ. प्रवीण कुमार पाकड़	540
19.	महिला प्रतिनिधियों का शहरी शासन में सशक्तिकरण : राजस्थान में शहर स्थानीय निकायों का एक अध्ययन	अब्दुल्लाह कुरैशी डॉ. नागेंद्र सिंह भाटी	546
20.	भारत के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के निर्देशन और विकास पर 2012-13 से 2021-22 तक का अध्ययन	डॉ. विनोद कुमार सबलानिया बुद्धि प्रकाश बैरवा	556
21.	मुगल शैली में मानवाकृतियों का रूपांकन	डॉ. एकता दाधीच	564
22.	आयुर्वेद संहिता (चरक संहिता) में वर्णित रोगों में मंत्र चिकित्सा की उपयोगिता	डॉ. काना राम रैगर	568
23.	भारतीय राष्ट्र दर्शन एवं डॉ. भीमराव अम्बेडकर	गुंजेश गौतम	572
24.	जूठन : दलित साहित्य की एक महान आत्मकथा	डॉ. रीना देवी	580

25.	प्राचीन जैसलमेर राज्य से गुजरने वाले अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्राज्यीय व्यापारिक मार्ग : एक विवेचन	डॉ. दिलीप कुमार	584
26.	वर्तमान जीवन में हठयोग में वर्णित योगांगों का प्रभाव	वंदिता डॉ. शशिकांत त्रिपाठी	589
27.	तहसील सिकन्दरपुर (जनपद-बलिया) उत्तर प्रदेश का भौतिक स्वरूप : एक भौगोलिक अध्ययन	दुर्गेश राय	594
28.	नई शिक्षा नीति-2020 : संभावनाएं और चुनौतियाँ	रहीम खान मोहम्मद आमिर डॉ. निकोलस लाकड़ा	602
29.	सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के कारण और चयनित योगाभ्यासों की अवधारणा	ललित मोहन डॉ. अखिलेश कुमार सिंह	608
30.	जलालपुर तहसील जनपद अम्बेडकर नगर की व्यावसायिक संरचना : एक भौगोलिक अध्ययन	डॉ. रामजीत सिंह श्री अखिलेश कुमार यादव	617
31.	सनातन धर्म-संस्कृति : पर्यावरण शिक्षा की नींव	डॉ. (श्रीमती) सुमन शर्मा	623
32.	शाहगंज नगर की साक्षरता : एक भौगोलिक अध्ययन	डॉ. रामजीत सिंह साधना भारती	628
33.	राजस्थान की सचित्र पाण्डुलिपियों में रूपाकृति एवं वस्त्राभूषण में विविधता	डॉ. महेंद्र कुमार डेहरा	635
34.	जेण्डर संवेदी बजट के विभिन्न आयाम	डॉ. अनिल कुमार पारीक	642
35.	महात्मा गाँधी की ग्राम स्वराज्य की अवधारणा	डॉ. मनोज सिंह यादव	647
36.	भारत के संसदीय लोकतंत्र में चुनावी राजनीति एवं मतदान व्यवहार : एक अध्ययन	मेहर सिंह डॉ. मंजीत	651
37.	श्रीमद्भागवद्गीता में कर्मयोग का स्वरूप	सौदामिनी गुप्ता डॉ. शशिकांत मणि त्रिपाठी	655
38.	भारतीय सांस्कृतिक यात्रा पर अन्वेषी अज्ञेय	सुमित उपाध्याय	661
39.	ई-खरीद पोर्टल : कृषि डिजिटलीकरण के लिए हरियाणा सरकार की एक पहल	सुनील फौगाट दीपक कुमार	665
40.	गाँधीजी का सत्याग्रह : सिद्धान्त एवं व्यवहार	डॉ. कविता डॉ. वेद प्रकाश	670
41.	राजस्थानी लोक चितराम में लोक रामायण एवं कृष्णलीला चित्रण	डॉ. प्रीति गुप्ता	675
42.	आमेर-जयपुर का जयगढ़ दुर्ग : एक शोधपरक अध्ययन (कलात्मकता एवं मुगल प्रभाव के विशेष संदर्भ में)	तोसिफ अली डॉ. शिव कुमार मिश्रा	681
43.	सोनीपत जिले में लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का आकलन	प्रवीण कुमार खासा डॉ. सत्यवीर यादव	688
44.	सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में विधि	अमित पाण्डेय अँशुल पाण्डेय	694
45.	हरियाणा प्रदेश की चुनावी राजनीति के संदर्भ में मतदान व्यवहार का बदलता स्वरूप	राजीव वर्मा डॉ. तिलक राज आहुजा	699
46.	उर्दू एवं फारसी भाषा का राजस्थानी भाषा पर प्रभाव	डॉ. अनिल अनिकेत	703
47.	स्त्री विमर्श के आईने में रांगेय राघव	डॉ. दीपाली शर्मा	706

डॉ. रमेश चन्द्र मीणा
सहायक आचार्य चित्रकला
राजकीय कला महाविद्यालय
कोटा (राज.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

बंगाल शैली : राष्ट्रवादी पुनर्जागरण

शोध सारांश

भारतीय कला में बंगाल शैली सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में पाश्चात्य प्रभाविता के खिलाफ; एक महत्वपूर्ण कला आंदोलन था। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से राष्ट्रवाद के आलोक में बंगाल शैली का समीक्षात्मक मूल्यांकन व अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है। शोध पत्र में बंगाल शैली के प्रतिनिधि कलाकारों-कलाकृतियों का विश्लेषण किया गया हैं पुनर्जागरण कला आंदोलन को; जो तथ्य भारतीय '**राष्ट्रीय शैली**' से जोड़ते हैं यथा—माध्यम-तकनीक, विषय-विषयवस्तु इत्यादि का अनुसंधान, प्रस्तुत शोध पत्र के विमर्श का केन्द्र है। अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्ष के माध्यम से राष्ट्रवाद के धरातल पर बंगाल शैली की प्रासंगिकता सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय कला में पुन: भारतीयता का बीजारोपण करने का श्रेय बंगाल शैली के प्रवर्तक कलाकार अवनीन्द्रनाथ टैगोर (1871-1921 ई.) को दिया जाता है। कला में भारतीयता के महत्वांकन के इस आदर्श विचार का सैद्धांतिक रूप में सूत्रपात अर्नेस्ट बिनफील्ड हैवेल के भारतीय कला सम्बन्धी गूढ़ समीक्षात्मक आलेखों को जाता है। अत: अवनीन्द्रनाथ टैगोर व ई.बी. हैवेल दोनों को साझे रूप में बंगाल शैली के प्रवर्तन का श्रेय दिया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में बंगाल शैली में, अपनी कूची के माध्यम से भारतीय विषयों का, स्वदेशी माध्यम-तकनीक का चयन कर पुन: सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति के रंग भरने वाले प्रतिनिधि कलाकारों के कृतित्व पर चिंतन किया गया है। यथा— अवनीन्द्रनाथ टैगोर, गगनेन्द्रनाथ टैगोर, मास्टर मोशाय-नन्दलाल बसु, असित कुमार हाल्दार, शैलेन्द्रनाथ डे, क्षितीन्द्र नाथ मजूमदार, देवी प्रसाद राय चौधरी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, राष्ट्रीय कलाकार-यामिनी राय, इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। साथ ही; बंगाल शैली में विशेषत: जलरंग माध्यम में वास-टेम्परा व स्याह पद्धति में चित्रण कार्य सम्पादित हुआ। शांत रंग योजना के साथ; बंगाल शैली में रेखांकन के महत्व को पुन: प्रतिष्ठित किया गया। और बंगाल शैली के चित्रण में पाश्चात्य यथार्थवादी दृष्टिकोण की अपेक्षा भारतीय आदर्शवादी दृष्टिकोण को वरीयता दी गई। इत्यादि पक्षों पर अनुसंधान परक दृष्टि डाली गयी है और शोध निष्कर्ष प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

वस्तुत: बंगाल शैली भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक आदर्शों व कला मूल्यों की ओर पुन: लौटने का जीवट आग्रह था। जिससे सम्पृक्त हो भारतीय राष्ट्रीय चेतना पुन: पोषित हुई। यह बंगाल शैली के कलाकारों-चिंतकों की भारतीय कला, समाज-संस्कृति को अमूल्य देन रही। अत: बंगाल शैली को भारतीय कला की '**पुनर्जागरण/पुनरुत्थान शैली**' के साथ-साथ ही; भारतीय '**राष्ट्रीय शैली**' की भी संज्ञा दी जाती है।

प्रमुख शब्दावली: बंगाल शैली, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय कलाकार, राष्ट्रीय शैली, पुनर्जागरण, सांस्कृतिक चेतना, प्रवर्तक, वास पद्धति, टेम्परा पद्धति, जलरंग, मास्टर मोशाय, गुरुदेव, राष्ट्रीय कला इत्यादि।

भूमिका

भारतीय कला में बंगाल शैली सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में पाश्चात्य प्रभाविता के खिलाफ एक कला आंदोलन था। जो केवल और केवल राष्ट्रवाद की सकारात्मक चेतना का ही प्रतिफल था। परतंत्रता के दौर में भारतीय कला

को पुनः भारतीय सांस्कृति चेतना, कला सिद्धांतों व कला विषयों की ओर उन्मुख कर राष्ट्रवाद की चेतना के पुनर्जागरण का श्रेय बंगाल शैली के कलाकारों को दिया जाता है। भारतीय राजनैतिक व सांस्कृतिक अस्मिता-अंधकार के इस दौर में राष्ट्र प्रेम की भावना ने '**राष्ट्रीय कला आंदोलन**' का स्वरूप ग्रहण किया। जिसका अभ्युदय बंगाल से हुआ, जो भारतीय कला इतिहास में 'बंगाल शैली' के नाम से विख्यात है। जिसका एक मात्र हेतू था—''**परम्परागत भारतीयता की ओर पुनः लौटो।**''

ओ.सी. गांगुली का कथन है कि पुनर्जागरण शैली का जन्म बौद्धिक विचार एवं स्वदेश प्रेम का प्रतिफल है। भारतीय कला में पुनः भारतीयता का बीजारोपण करने का श्रेय बंगाल शैली के प्रवर्तक कलाकार अवनीन्द्रनाथ टैगोर (1871-1951 ई.) को दिया जाता है। कला में भारतीयता के महत्वांकन के इस आदर्श का सैद्धान्तिक रूप में सूत्रपात अर्नेस्ट बिनफील्ड हैवेल (1861-1934 ई.) के भारतीय कला सम्बन्धी गूढ़ समीक्षात्मक आलेखों (भारतीय कला के आदर्श, हैंडबुक ऑफ इंडियन आर्ट, भारतीय कला में हिमालय, भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला, पवित्रनगर बनारस, भारत में आर्यों का शासन इत्यादि) को जाता है। अतः अवनीन्द्र नाथ टैगोर व ई.बी. हैवेल दोनों को सांझे रूप में बंगाल शैली का प्रणेता कहा जाता है।

शोध उद्देश्य - प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से राष्ट्रवाद के आलोक में बंगाल शैली का समग्र मूल्यांकन व अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है। जिसमें बंगाल शैली के कृतित्व की विषयवस्तु को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान के संदर्भ में विश्लेषित कर; नूतन परिणाम प्राप्त किये जायेंगे। शोध पत्र में बंगाल शैली के प्रतिनिधि कलाकारों-कलाकृतियों का विश्लेषण होगा। पुनर्जागरण कला आंदोलन को जो तथ्य भारतीय राष्ट्रीय शैली से जोड़ते हैं, यथा—माध्यम-तकनीक, विषय-विषयवस्तु इत्यादि का अनुसंधान प्रस्तुत शोध पत्र के विमर्श का केन्द्र है। विविध कला मनीषियों के विचारों का बंगाल शैली के संदर्भ में विश्लेषण होगा। अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्ष; राष्ट्रवाद के धरातल पर बंगाल शैली की प्रासंगिकता सिद्ध करेंगे।

बंगाल शैली के प्रतिनिधि कलाकार

बंगाल शैली के कलाकारों ने परम्परागत भारतीय कथ्य के साथ; कला-शिल्प कौशल व प्रतिक-बिम्ब विधानों में भारतीयता के नये प्रतिमान स्थापित किये। साथ ही; मौलिक कल्पना एवं विवेचना शक्ति के माध्यम से भारतीय कला के गूढ़मर्म को आत्मसात कर; भारतीय कला समीक्षा को भी नूतन आयाम प्रदत किया। जिससे भारतीयता के आदर्श व मूल्यों के पोषण को स्वतः बल मिला।

बंगाल शैली में अपनी कूची के माध्यम से भारतीय विषयों का; स्वदेशी माध्यम-तकनीक का चयन कर पुनः सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति के रंग भरने वाले प्रतिनिधि कलाकार हैं—अवनीन्द्रनाथ टैगोर, गगनेन्द्रनाथ टैगोर, मास्टर मोशाय-नंदलाल बसु, असित कुमार हाल्दार, शैलेन्द्रनाथ डे, क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार, देवी प्रसाद राय चौधरी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, इत्यादि महत्वपूर्ण है।

डॉ. आनन्द कुमार स्वामी ने अवनीन्द्रनाथ टैगोर एवं उनके प्रमुख शिष्यों के तत्कालीन कला प्रयोगों की सराहना करते हुए यह स्वीकारा है कि इन कलाकारों ने भारतीय कलात्मकता को पुनर्जीवित किया है। साथ ही सभी चित्रकारों ने स्वयं की मौलिक शैली में सृजन करने का प्रयास किया है।

अवनीन्द्रनाथ ने 1907 ई. में भगिनी निवेदिता व सर जॉन वुडरॉफ के साथ मिलकर 'इंडियन सोसायटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट' की स्थापना की। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का मत है कि ''अवनी बाबू ने देश को आत्महीनता के पाप से बचाया है और उसे निराशा के गर्त से निकालकर वह सम्मानपूर्ण पद दिलाया है, जो अधिकारिक तौर पर अपना ही था।'' अवनीन्द्रनाथ ने **शिल्पायन**, **भारतीय षडंग** व **भारतीय शिल्प** विषयक पुस्तक लिखी।

गगनेन्द्रनाथ टैगोर (1867-1938 ई.) ने बंगाल शैली में व्यक्तिक ढंग से भारतीय पौराणिक दृश्य, छविचित्र, व्यंग्यचित्र, दृश्यचित्र व कुछ-कुछ धनवादी शैली में अपनी सृजनात्मक क्षमता को जीवंत किया। आपने अवनी बासू के साथ मिलकर भारत के कला आंदोलन को नई दिशा प्रदान की थी।

मास्टर मोशाय नंदलाल बसु (1882-1966 ई.) अवनी बाबू की शिष्य परम्परा के महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। आपका कथन है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि ''भारतीय कलाकारों को भी शरीर-रचना-विज्ञान की बनावट, आकृति और अनुपात का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। लेकिन यह ज्ञान यूरोपीय अकादमिक पद्धति का नहीं होना चाहिए।'' नंदलाल बोस की परिष्कृत शैली के अनिवार्य तत्व अजंता, बाघ, जोगिमारा, एलोरा व लघुचित्रों की कलात्मक परम्पराओं और चीनी व जापानी तकनीकों के संश्लेषण से बने थे। आपने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में भी प्रत्यक्ष भूमिका का निर्वहन किया। आप स्वयं चरखा चलाते व सूत कातते थे। साथ ही, असहयोग आंदोलन व नमक आंदोलन इत्यादि में प्रत्यक्ष भाग लिया।

शैलेन्द्रनाथ डे (1890-1971 ई.) ने अपने सृजन के माध्यम से बंगाल शैली की राष्ट्रवादी सोच जीवंत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया व 'भारतीय चित्रकला पद्धति' नामक पुस्तक का प्रतिपादन भी किया। आपकी कला भारतीय संस्कृति व कला संरक्षण के प्रति कठोर प्रयत्न का प्रतिफल रही है।

क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार (1891-1975 ई.) ने अपनी कला साधना को आध्यात्मिक चैतन्य के साथ संयोजित कर, रहस्यवादी शैली में सृजनात्मकता को प्रकट किया। जया अप्पास्वामी के अनुसार ''क्षितीन्द्रनाथ के रंग एवं रेखाओं में मध्यकालीन कवियों की कविता का आभास होता है।''

देवी प्रसाद राय चौधरी (1899-1975 ई.) चित्रकला व शिल्पकला दोनों माध्यमों में सिद्धहस्त कलाकार थे। आपने अपनी कला साधना से बंगाल शैली को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की। आपके कला कर्म में भारतीय शास्त्रीय परम्परा व प्रकृतवाद का समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861-1941 ई.) की कला साहित्यिक दृष्टि से उपज कर सृजनात्मकता के धरातल पर आधुनिक भाव-बोध के साथ जीवंत होती है। जिससे आप आधुनिक भारतीय कला के प्रणेता कलाकार सहज सिद्ध है। आपके जीवन का प्रभात साहित्य साधना में रत रहा तो संध्याकाल रंग-रेखाओं की लयात्मकता से आप्लावित रहा।

राष्ट्रीय कलाकार यामिनी राय (1887-1972 ई.) एक सच्चे भारतीय राष्ट्रीय कलाकार के रूप में अपनी पहचान पुख्ता करते हैं। आपने पूर्णतः भारतीय लोक-कलाओं से प्रभावित मौलिक सृजन किया। यामिनी राय ने पश्चिम शैली के अनुकरण पर बढ़ रही भारतीय कला को नया मोड़ दिया व माटी की गंध को अनुभव कर, देश के विशुद्ध बंगाल के लोक कला रूपों को अपने चित्रों का विषय बनाया। आपने कला में पश्चिमी प्रणालियों का अंधानुकरण न कर मौलिक कला तत्वों में भारतीय संस्कृति का समावेश किया और एक लोकोन्मुख कला शैली का विकास किया। जिसकी पहचान व ख्याति भारत में ही नहीं, वरन कालान्तर में सारे विश्व में फैली और स्थापित हुई।

बंगाल शैली के कृतित्व में राष्ट्रवाद

बंगाल शैली के मूल में राष्ट्रवाद की लहर थी। बंगाल शैली के कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों के माध्यम से राष्ट्रप्रेम व स्वाभिमान के भाव को जीवंत किया। और भारतीय राष्ट्रीय कला आंदोलन के साथ-साथ स्वाधीनता आंदोलन को भी दिशा प्रदान की। 1905 ई. में हुये बंगाल विभाजन के बाद कला में राष्ट्रवाद चरम पर था। अवनीन्द्र नाथ का '**भारत माता**' (1905 ई.) शीर्षक चित्र बंगाल शैली में राष्ट्रवाद का सशक्त उद्घोष था। यह चित्र बंगाल विभाजन आंदोलन से प्रभावित हो सृजित किया गया था। इस कृति में भगवा वस्त्र धारण किये चतुर्भुजी भारत माता प्रखर व्यक्तित्व के साथ चित्रित है। चित्र में सपाट धरातल व मुगल शैली के ढंग में हाशिये का सुन्दर अंकन है। 'शुक्ला भिसारे' विषयक चित्र यूरोपीय शैल से इतर पूर्णतः भारतीय शैली में बना अवनीन्द्र का प्रथम चित्र रहा है।

गगनेन्द्रनाथ का व्यंग्य चित्र 'पंजाब में शांति घोषित' 1921 ई. में हुये जलियाँवाला बाग हत्याकांड की घटना पर आधारित चित्र था। यह व्यंग्य चित्र अंग्रेजी हुकूमत की क्रूरता, बर्बरता व मानवता विरोधी कृत्य को बखूबी उजागर करता है। इस व्यंग्य चित्र ने अंग्रेजी शासन के प्रति भारतीयों की नफरत को प्रखरता से स्वर दिये। गगनेन्द्र के व्यंग्य चित्र तत्कालीन सामाजिक समस्याओं, राजनैतिक परिस्थितियों व सांस्कृतिक विद्रूपता को रेखांकित करते हैं। पौराणिक विषय व भारतीय भूदृश्य भी आपके चित्रण का विषय रहे हैं।

नन्दलाल बसु ने अपने सृजनात्मक कौशल के साथ भारतीय पौराणिक विषयों को चित्रित कर, भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने का सार्थक कार्य किया। सती, गांधारी, भीष्म प्रतिज्ञा, गंगा, जमुना, पार्थसारथी, शिव का विषपान, महिषासुर मर्दिनी, सरस्वती, वर्षा से धुला कोणार्क इत्यादि चित्रों में पौराणिक आख्यानों के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के पक्ष का अपने चित्रों के माध्यम से रहस्योद्घाटन किया है।

नन्दलाल बसु ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के विषय यथा—दांडी यात्रा व भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के चित्र चित्रित किये। आपने महात्मा गांधी से प्रभावित हो नमक आंदोलन व असहयोग आंदोलन में भी सक्रिय भूमिका का निर्वहन किया। आपने स्वाधीन भारत के संविधान को अपनी कला साधना से अलंकृत किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विविध अधिवेशनों ने में आपने चित्रण कार्य किया। जिनमें लखनऊ अधिवेशन, फैजपुर अधिवेशन, हरिपुरा अधिवेशन, पल्ली अधिवेशन इत्यादि महत्वपूर्ण है। आपने अपनी कला साधना के माध्यम से राष्ट्र को स्वाधीनता का संदेश देने का महती कार्य सम्पादित किया।

असित कुमार हाल्दार (1890-1964 ई.) ने तत्कालीन राष्ट्रीय कला आंदोलन की गतिविधियों को समझते हुए; सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर महात्मा गांधी तक अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण किया। साथ ही लोक व पौराणिक विषयों को अपनी कला में जीवंत किया। आपके महत्वपूर्ण चित्र है—संथाल लोक नृत्य, कच-देवयानी, मेघदूत, ऋतुसंहार, रासलीला, अशोक व पुत्र कुणाल, इत्यादि प्रमुख है। आपका कथन है कि भारतीय चित्रकला में प्राचीन परम्परा की सांस्कृतिक, पैतृक सम्पत्ति विद्यमान है, जो राष्ट्रीय सांस्कृतिक निधि की ठोस बुनियाद है। परम्परा ही हमारी कला की आधारशिला है।

शैलेन्द्रनाथ डे ने यक्ष पत्नी, बनवासी यक्ष, नृत्य भंगिमा, यशोदा व कृष्ण, मेघदूत, स्वर व संगीत विषयक चित्रों के माध्यम से भारतीय कला के राष्ट्रीय आंदोलन को सशक्त किया।

क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार के प्रमुख चित्रण विषय धार्मिक व पौराणिक आख्यान थे। जिसमें रामायण, महाभारत, कृष्णलीला, चैतन्य महाप्रभु, मीरा सरस्वती, भक्ति व वैराग्य इत्यादि महत्वपूर्ण है जो भारतीय संस्कृति के सहचर है; पोषित करते हैं।

देवी प्रसाद राय चौधरी ने चित्रों व मूर्ति शिल्पों के माध्यम से अपनी राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति अपने सृजन में की। 'श्रम की विजय' मूर्तिशिल्प आपकी कला साधना का आदर्श है। आपने अपने सृजन के माध्यम से आमजन जीवन व सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया। निम्नवर्ग का अंतहीन संघर्ष व दीन-हीन मजदूर आपकी कला की प्रेरणा रहे हैं। नारी सौन्दर्य में भारतीयता का आदर्श निहित है। आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं—आरती, मुसाफिर, स्नान का घाट, गांधी व रविन्द्रनाथ टैगोर का व्यक्ति चित्र, सड़क बनाने वाले (प्लास्टर में), श्रम की विजय (कांस्य माध्यम), शहीद स्मारक इत्यादि प्रमुख हैं।

देवी प्रसाद राय चौधरी के '**शहीद स्मारक**' विषयक मूर्तिशिल्प 1956 ई. में पटना सचिवालय भवन के बाहर स्थापित किया गया। कांस्य माध्यम में बने प्रस्तुत चित्र के संयोजन में सात देशभक्त युवक हैं जो भारत छोड़ो आंदोलन में 11 अगस्त, 1942 ई. में पटना सचिवालय पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने के संकल्प के साथ जुलुस का हिस्सा थे, और अंग्रेजों ने इस जुलुस में गोली बरसाकर सात देशभक्त छात्र—1. उमाकांत सिन्हा, 2. रामानंद सिंह, 3. देवीपदा चौधरी, 4. रामकोविन्द सिंह, 5. राजेन्द्र सिंह, 6. सतीश प्रसाद इत्यादि को शहीद कर दिया था। इस वीभत्स घटना को देवी प्रसाद राय चौधरी ने 'शहीद स्मारक' विषयक मूर्तिशिल्प में जीवंत किया।

इस संयोजन में नेतृत्व कर रहे प्रथम युवक को राष्ट्रीय ध्वज लिए आगे बढ़ते दिखाया है। तीन युवक घायल अवस्था में गिरते-पड़ते निढाल चित्रित हैं। एक युवक, दूसरे घायल युवक को सम्भालते हुए आगे बढ़ने की मुद्रा में है, शेष दो अन्य युवक सीना तानकर आगे बढ़ते दर्शाये गये हैं। सम्पूर्ण मूर्ति शिल्प देश भक्ति से पूर्णत: ओतप्रोत है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी मौलिक कला शैली में कला को सीमाओं से परे विश्व कला की भाषा होने पर जोर दिया। आपने अभिव्यंजनावादी शैली में आत्मनिरीक्षण, कूदता हीरण, मशीन मैन, चिड़िया, पक्षी युगल, आत्मचित्र, माँ-बच्चा, सफेद धागे, थके यात्री, कानाफूसी इत्यादि महत्वपूर्ण चित्र सृजित किये। रविन्द्रनाथ के चित्र परम्परावादी भारतीय, यूरोपीय रूप विधान व अभिव्यंजनावादी कला की सामान्य अभिव्यक्ति का सम्मिश्रण है।

राष्ट्रीय कलाकार यामिनी राय ने भारतीय लोक कलाओं से प्रेरणा प्राप्त कर अपनी कला को सीधे लोक जीवन से जोड़ दिया। गांधीजी ने यामिनी राय को राष्ट्रीय कलाकार की संज्ञा दी थी। आपके महत्वपूर्ण चित्र हैं—टैगोर व बापू, पुजारिने, माँ व

बच्चा, ढोलवादक, कृष्ण एवं बलराम, रथ यात्रा, संथाल स्त्रियाँ, एक मछली इत्यादि प्रमुख हैं। भावना में भारतीय रूप विधान में, भारतीय प्रेरणा में, हर मायने में वे एक सच्चे भारतीय कलाकार रहे हैं। यामिनी राय की कला सर्वथा राष्ट्रीय महत्व की है, विशेषत: उस परिप्रेक्ष्य में जब भारत पश्चिम की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गुलामी से खुद को मुक्त करने का प्रयास कर रहा था।

विषय, तकनीक माध्यम

बंगाल शैली की कलाकृतियों का विषय भारतीय धार्मिक-पौराणिक आख्यान, लोक जीवन, भू-दृश्य, व्यक्तिचित्र, अलंकरण-आलेखन, व्यंग्यचित्र, स्वाधीनता आंदोलन इत्यादि प्रमुख हैं।

बंगाल शैली में विशेषत: जलरंग माध्यम में वास-टेम्परा, स्याह पद्धति व रेखांकन माध्यम में सृजन कार्य हुआ है। शांत रंग योजना के साथ बंगाल शैली में रेखांकन के महत्व को पुन: प्रतिष्ठित किया गया। और बंगाल शैली के चित्रण में पाश्चात्य यथार्थवादी दृष्टिकोण की अपेक्षा भारतीय आदर्शवादी दृष्टिकोण को वरियता दी गई। कहिं-कहीं पाश्चात्य पद्धति व भारतीय पद्धति में समन्वय भी दृष्टिगत होता है।

उपसंहार

वस्तुत: बंगाल शैली भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक आदर्शों व कला मूल्यों की ओर पुन: लौटने का जीवट आग्रह था। जिससे समप्रक्त हो भारतीय राष्ट्रीय कला चेतना पुन: पोषित हुई। यह बंगाल शैली के कलाकारों-चिंतकों की भारतीय कला समाज-संस्कृति को अमूल्य देन रही। अत: बंगाल शैली को भारतीय कला की पुनर्जागरण/पुनरुत्थान शैली के साथ-साथ ही भारतीय 'राष्ट्रीय शैली' की भी संज्ञा दी जाती है।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से प्रेरणा पाकर राष्ट्रीय कला आंदोलन बंगाल शैली, शुरू हुआ था। इस कला आंदोलन के प्रेरक तत्वों स्वाधीनता आंदोलन व भारतीयता के प्रति विशेष आग्रह ने बंगाल शैली के कलात्मक महत्व को कमोवेश क्षीण ही किया। क्योंकि कला आंदोलन के बजाय, इसे राष्ट्रीय आंदोलन अधिक समझा गया राष्ट्रीयता के प्रखर भाव ने कहिं ना कहीं इसके कला पक्ष के महत्व को गौण कर दिया। यह तथ्य भी निष्कर्षत: स्पष्ट है। नवप्रवर्तक व मौलिकता के गुण; बंगाल शैली का वैशिष्टय रहा है। सांस्कृति पुनर्जागरण के अभाव में राजनैतिक स्वतंत्रता के लक्ष्य की सिद्धि कदाचित असंभव प्रतीत होती है।

संदर्भ

1. कांजीलाल, काजल, भारतीय कला का इतिहास (2009) : सरस्वती हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली।
2. गैरोलो, वाचस्पति, भारतीय चित्रकला (1963) : मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. गुप्त, शिवकुमार, भारतीय संस्कृति के मूलाधार (2002) : रा.हि.ग्र.अ., जयपुर।
4. चतुर्वेदी, ममता, समकालीन भारतीय कला (2008) : रा.हि.ग्र.अ., जयपुर।
5. जौहरी, ऋतु, भारतीय कला समीक्षा (2013) : रा.हि.ग्र.अ., जयपुर।
6. भारद्वाज, विनोद, समकालीन भारतीय कला : राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास (2004) : रा.हि.ग्र.अ., जयपुर।
8. मागो, प्राणनाथ, भारत की समकालीन कला एक परिप्रेक्ष्य (2011) : नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली।
9. मुखर्जी, राधाकमल, भारतीय कला का विकास (1964) : सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद।
10. मूर्ति, शिवराम, भारतीय चित्रकला (2008) : नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
11. राठौड़, मदन सिंह, भारतीय कला, भाग 2 (2017) : राजस्थान पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर।
12. हुसैन, आबिद, भारत की राष्ट्रीय संस्कृति (2008) : नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

❑❑

राजीव रोशन कुमार
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग
बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी
वाराणसी (यू.पी.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

समकालीन राजनीति परिपेक्ष्य में डॉ. बी.आर. अंबेडकर के विचारों के स्त्रोत और स्वरूपों की समझ

सारांश

डॉ. बी.आर. अंबेडकर को भारतीय संविधान के निर्माता के अलावा अन्य सभी क्षेत्रों में महामानव, महान सुधारक, दार्शनिक, राजनेता, विधिवेता, आधुनिक युग के मनु आदि रूपों में पहचाना जाता है। उनके नाम से अनेक संस्थान, अध्ययनपीठ, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, आदि खोले जा चुके हैं, तथा उनके महान कार्यों को आगे बढ़ाया जा रहा है। उन्हें भारत एवं हिंदू समाज का लिंकन, मार्टिन लूथर, नेपोलियन, आदि नामों से अलंकृत किया गया है, उनके बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठा एवं ज्ञान को देखकर उन्हें बोधिसत्व की उपाधि से विभूषित किया गया है। बाबा साहेब अम्बेडकर के तीन आदर्श पुरुष थे, गौतम बुद्ध, कबीर तथा ज्योतिबा फुले। महात्मा फुले से उन्होंने ब्राह्मवाद का विरोध, अछूत को संगठित करने, अत्याचार से लोहा लेने तथा शिक्षा की ओर प्रेरित करने का विचार ग्रहण किया, गौतम बुद्ध से उन्होंने करुणा, आध्यात्मिकता एवं अस्पृश्यता का विचार ग्रहण किया। वे पाश्चात्य संस्कृति विशेषत: जॉन डयूवी वाशिंगटन आदि से बहुत प्रभावित हुए। उनकी वेशभूषा, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विवेक, नैतिकता एवं उदारवाद की गहरी छाप थी। बाबा साहेब इस तरह विभिन्न स्रोतों एवं प्रभावों से शक्ति ग्रहण करते हुए और अछूतोद्धार तथा नए भारत के पुनर्निर्माण के महानतम योद्धा बन गये।[1]

समकालीन समय में सोचने की बात यह है कि बाबा साहेब आंबेडकर दलितों के मसीहा मृत्यु के इतने वर्ष बाद भी सियासत के केंद्र में है तो क्यों? कभी सिर्फ एक वर्ग विशेष के नेता माने जाने वाले बाबा साहेब को अपना नेता बनाने में आज ना तो सरकार पीछे हैं ना ही विपक्षी दल। सोचा जाए तो राजनीतिक दलों के लिए यह मुद्दा केवल एक वर्ग विशेष के वोट बैंक से जुड़ा है। बाबा साहेब के नाम का इस्तेमाल करने वाले राजनीतिक दलों की संख्या वर्तमान समय में सबसे ज्यादा है, ये सभी ऐसे लोग हैं जो बाबा साहेब के विचारों को ना सिर्फ दोहन किया बल्कि उन्हें एक वर्ग विशेष का मसीहा बनाकर भ्रम फैला दिया है। सियासत के खिलाड़ियों ने अपनी राजनीति के अनुसार उनके नामों का इस्तेमाल किया और उन पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश कर रही है, आज सभी राजनीतिक दल बाबा साहेब को अपने रंगों में रंगा देखना चाहती है—डॉ अंबेडकर की रचनाओं, लेखों एवं भाषणों को महाराष्ट्र सरकार ने ''**डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर - स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स**'' नाम से 11 खंडों में प्रकाशित किया है। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं—**शूद्र कौन थे? कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया है? पाकिस्तान और भारत का विभाजन, देशी रियासतें एवं अल्पसंख्यक, विषय राज्यों पर विचार, अछूतों का उद्धार, जाति का उन्मूलन** आदि।

मूल शब्द : अस्पृस्यता, उपनयन संस्कार, शूद्र, राष्ट्र-निर्माण, सामाजिक आर्थिक समानता।

मुख्य भाग—बाबा साहेब पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर हिंदू व्यवस्था के विरुद्ध सीधी करवाई के रूप में खुला विरोध किया, उन्होंने पहली बार दलित आंदोलन को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया और उन्होंने नारा दिया कि ''**दलित शिक्षित बनो, एकत्रित रहो, संघर्ष करो**'' उन्होंने अपनी रचना शूद्र कौन थे? में शुद्र की उत्पत्ति के बारे

में अपने विचार दिए कि शुद्र कोई पृथक वर्ण नहीं बल्कि क्षत्रिय वर्ण का ही भाग है, शुद्र क्षत्रिय थे, जिनका ब्राह्मणों ने उपनयन संस्कार बंद कर दिया।[2]

बाबा साहेब दलित वर्णों के सामाजिक व शैक्षणिक विकास हेतु वर्ष 1924 में **बहिष्कृत हितकारिणी सभा** का गठन किया तथा 1927 में सामाजिक भेदभाव से लड़ने के लिए दलितों के संगठन समता सैनिक दल का गठन किया और सत्याग्रह में 25 दिसंबर 1927 के दिन बाबासाहेब ने मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप से जलाया। दलित आंदोलन में अंबेडकर को पहली सफलता वर्ष 1930 के दूसरे **गोलमेज सम्मेलन** में मिली जब उनकें प्रयासों से दलितों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र का प्रावधान किया गया बाद में गांधी–अंबेडकर पूना पैक्ट, 1932 मे पृथक निर्वाचन व्यवस्था को समाप्त कर दलित वर्गों के लिए विधायका में स्थान आरक्षित किये गए। परेल बंबई में आम सभा के दौरान डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि ''**मुझे कांग्रेसी लोग देशद्रोही कहते हैं, क्योंकि मैंने गांधी का विरोध किया। मैं इस आरोप से कतई विचलित नहीं हूं, यह निराधार झूठा और विद्वेषपूर्ण है।**'' यह दुनिया के लिए बड़े आश्चर्य की बात है कि स्वयं गांधी ने अपनी दास्तां की जंजीरों को तोड़ने का तगड़ा विरोध किया, मुझे विश्वास है कि हिंदूओं के भावी पीढ़ियां जब गोलमेज परिषद के इतिहास का अध्ययन करेगी तो मेरी सेवाओं की प्रशंसा करेगी।[3]

उन्होंने वर्ष 1936 में **इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी** की स्थापना की और दलितों मजदूरों एवं किसानों की मांगों के लिए संघर्ष किया। इस पार्टी ने सन 1937 के चुनावों में अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित 15 में से 13 तथा 2 सामान्य वर्ग स्थान जीते। इसके बाद उन्होंने 1942 में **ऑल इंडिया शेड्यूल कास्ट फेडरेशन** की स्थापना की। बाबासाहेब ने गांव को उदासीनता का अड्डा तथा दलित वर्ग के सदस्यों को गांव छोड़ने का सुझाव दिया। डॉक्टर अंबेडकर का मानना था कि विदेशियों के द्वारा किसी देश की स्वतंत्रता एवं लोगों की स्वतंत्रता में अंतर है, जिसे नहीं समझा जाता है। अत: कांग्रेस की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही है लोगों की स्वतंत्रता के लिए नहीं। उनका कहना था कि ''**जब तक आप सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता नहीं हासिल कर लेते राजनीतिक और कानूनी स्वतंत्र का कोई मतलब नहीं है।**''[4]

संविधान के प्रारूप के तीसरे वचन के समय डॉ. अंबेडकर ने 25 नवंबर 1949 को संविधान सभा में कहा ''**संविधान सभा में, मैं क्यों आया ? केवल दलित वर्गों के हितों की रक्षा करने के लिए इससे अधिक और मेरी कोई आकांक्षा नहीं है थी, यहां आने पर मुझे इतनी बड़ी जिम्मेदारी सौंपी जाएगी इसकी मुझे कोई कल्पना तक नहीं थी, संविधान सभा ने जब मुझे प्रारूप समिति में नियुक्त किया तब मुझे आश्चर्य हुआ ही, परंतु जब प्रारूप समिति में मुझे अपना अध्यक्ष चुना तो मुझे आश्चर्य का धक्का सा लगा। संविधान सभा और प्रारूप समिति ने मुझ पर इतना विश्वास करके मुझसे यह काम संपन्न करवाया, उसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं।**''[5]

बाबा साहेब आंबेडकर का आधुनिक भारत के निर्माण में जितना योगदान रहा है, शायद ही उतना योगदान किसी अन्य राजनेता का रहा होगा। उन्होंने ऐसे संविधान की रचना की जो समानता, स्वतंत्रता, न्याय, बंधुत्व, व्यक्ति की गरिमा पर आधारित है, जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। उनके शब्दों में ''**मैं महसूस करता हूं कि संविधान चाहे कितना भी अच्छा क्यों ना हो, यदि वे लोग जिन्हें संविधान को अमल में लागू करने का कार्य सौंपा जाए, अगर वह खराब निकले तो निश्चित ही सविधान व्यर्थ सिद्ध होगा। दूसरी तरफ संविधान चाहे कितना भी खराब क्यों ना हो, यदि वे लोग जिन्हें संविधान को अमल में लाने का कार्य सौंपा जाए, अच्छे हो तो संविधान सही सिद्ध होगा।**'' ऑस्टिन ने बाबा साहेब द्वारा तैयार भारतीय संविधान को पहला और सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक दस्तावेज कहा। डॉ. बाबा साहेब ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 का विरोध किया था, जो जम्मू कश्मीर राज्य को स्पेशल स्टेटस प्रदान करता था। बालराज मोदक ने कहा था कि ''**जब बाबासाहेब ने तत्कालीन कश्मीर के नेता शेख अब्दुल्ला को स्पष्ट रूप से कहा कि क्या आप चाहते हैं कि हिंदुस्तान को आप की सीमाओं की रक्षा करनी चाहिए, उसे आपके क्षेत्र में आधारभूत संरचना का निर्माण करना चाहिए, उसे जीवन यापन के लिए अनाज की आपूर्ति करनी चाहिए, लेकिन भारत सरकार के पास सीमित शक्ति होनी चाहिए और हिंदुस्तानी को कश्मीर में कोई अधिकार नहीं होना चाहिए, इस प्रस्ताव को सहमति देने के लिए मैं भारत सरकार**

के कानून मंत्री के रूप में भारत के हितों के खिलाफ एक विश्वासघाती बात होगी यह हम कभी नहीं करेगें।'' बाबासाहेब ही थे जिन्होंने एक समान नागरिक संहिता को अपनाने की सिफारिश करके भारतीय समाज में सुधार के इच्छा प्रकट की थी। वर्तमान समय में केवल गोवा ही एकमात्र राज्य है जिन्होंने एक समान नागरिक संहिता को लागू किया है 1951 में संसद में हिंदू कोड बिल के मसौदे को रोके जाने के बाद अंबेडकर ने मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया था।[6]

बाबा साहेब अंबेडकर की ही रचना **''प्रॉब्लम ऑफ द रुपीज इट्स ओरिजन एंड इट्स सॉल्यूशन''** और **''भारतीय चलन व बैंकिंग का इतिहास''** का आधार बनाकर **''हिल्टन यंग कमीशन''** ने 1935 में केंद्रीय बैंक की स्थापना की जिसे हम आरबीआई के नाम से जानते हैं, वित्त आयोग की स्थापना भी उनके दूसरे शोध **''ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास''** को आधार बनाकर ही किया गया, जिसे राष्ट्रपति प्रत्येक 5 वर्षो पर इसका गठन करता है। भारत में निष्पक्ष चुनाव हो इसके लिए एक स्वतन्त्र निर्वाचन आयोग की स्थापना का विचार भी बाबा साहेब की ही देन माना जाता है। 1954 में उन्होंने देश के लिए जल नीति और औद्योगिकरण की आर्थिक नीतियां जैसे राष्ट्रीय जलमार्ग, केंद्रीय जल और विद्युत प्राधिकरण बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। जिसके परिणाम स्वरूप भारत में दामोदर घाटी बांध, हीराकुंड बांध, सोन नदी घाटी परियोजना स्थापित हो सका, भारत में पानी और बिजली के ग्रेड सिस्टम के स्थापना में भी बाबा साहेब के अहम योगदान माना जाता है। बाबा साहेब के प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने विदेश से अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि ग्रहण की। उन्होंने कहा था कि भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि औद्योगिकरण और कृषि से ही संभव है, उन्होंने भारत में प्राइमरी उद्योग के रूप में कृषि पर निवेश करने पर बल दिया।[7] राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष माननीय शरद पवार का भी कहना है कि बाबा साहेब का दर्शन ने भारत सरकार को अपने खाद्य सुरक्षा हासिल करने में मदद की। एंप्लॉयमेंट एक्सचेंज की स्थापना भारत में अंबेडकर के ही विचार से हुई है।

बाबा साहेब आंबेडकर के विरासत का आधुनिक भारत का पर गहरा असर हुआ है, जो आजाद भारत में उन्हें सामाजिक, राजनीतिक विचारों को पूरे राजनीतिक स्पेक्ट्रम में सम्मानित किया जाता है। अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय ने अपनी स्थापना के 200 वर्षों के उपलक्ष में 2004 को अपने विश्वविद्यालय में पढ़ चुके टॉप 100 बुद्धिमान विद्यार्थियों की **''कोलंबियन अहेड्स ऑफ देअर टाइम्स''** नामक सूची बनाया जिसमें पहला नाम बाबा साहेब का ही था और उनका उल्लेख आधुनिक भारत का निर्माता के रूप में किया गया। अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने 2010 में भारतीय संसद को संबोधित करते हुए बाबा साहेब को महान और सम्मानित मानवाधिकार के चैंपियन एवं भारतीय संविधान के मुख्य लेखक के रूप में संबोधित किया। पंडित नेहरू जी ने कहा था कि अंबेडकर हिंदू समाज के सभी दमनकारी प्रथाओं के खिलाफ विद्रोह के प्रतीक थे। प्रसिद्ध इतिहासकार रामचंद्र गुहा उन्हें **''गरीबों का मसीहा''** कहते हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में सोचने की बात यह है कि बाबा साहेब आंबेडकर दलितों के मसीहा मृत्यु के इतने वर्ष बाद सियासत के केंद्र में है तो क्यों? सिर्फ एक वर्ग विशेष के नेता माने जाने वाले बाबा साहेब को अपना नेता बताने में आज ना तो सरकार पीछे है और ना ही विपक्षी दल, सोचा जाए तो राजनीतिक दलों के लिए मुद्दा केवल एक वर्ग विशेष के वोट बैंक से जुड़ा है, लेकिन अपने जीवन काल में बाबा साहब ने जो दिया वह दलितों और आधुनिक भारत के राष्ट्र निर्माण में भगवान या मसीहा से कम नहीं थे। वे सच्चे भारत रत्न थे, जिन्हें 1990 में भारत रत्न से सम्मानित किया गया जो विचार योग्य है। बाबा साहेब के नाम का इस्तेमाल करने वाले राजनीतिक दल की संख्या वर्तमान समय में सबसे ज्यादा है। ये सभी ऐसे लोग हैं जो बाबा साहेब के विचारों का ना सिर्फ दोहन किया है बल्कि उन्हें एक वर्ग विशेष का मसीहा बना कर भ्रम फैला दिया है। सियासत के खिलाड़ियों ने अपने राजनीति के अनुसार उनके नामों का इस्तेमाल किया और उन पर अपना अधिकार जमाने की कोशिश कर रही है, उनके साथ इतिहासकार ने भी न्याय नही किया है, इसी भ्रम को तोड़ना ही बाबा साहेब की सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

उपरोक्त बाबा साहेब के योगदान के आजादी के बाद सरकार ने हमेशा ही अनदेखा की है, यानि योजनाएं एवं विचार बाबा साहेब आंबेडकर की थी, पर इसका श्रेय दूसरे नेताओं ने लूटा। इन सच्चाइयों का जानना और समझना वर्तमान भारत

के लिए जरूरी है। आज सभी राजनीतिक दल बाबा साहेब को अपने रंग में रंगा देखना चाहती है, बाबा साहेब अंबेडकर को एक वर्ग विशेष जाति के सीमा में बांधना और उन्हें सिर्फ दलितों का मसीहा के तौर पर पेश किया जाना उनके साथ बहुत बड़ा अन्याय है।

सन्दर्भ

1. जाटव, डी. आर., (1993), डॉ. अंबेडकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, समता साहित्य सदन, जयपुर
2. अंबेडकर, बी. आर., (1947), हु वाज द शुद्र ? थैंकर एंड कंपनी, मुंबई
3. अंबेडकर, बी. आर., (1946), व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव डन टू द अनटचेबिलिटी, थैंकर एंड कंपनी, मुंबई
4. अंबेडकर, बी. आर., (1944), एनीहिलेशन ऑफ कास्ट, अंबेडकर स्कूल ऑफ थॉट, अमृतसर
5. सरस्वती, सी. एस. (1990), भारतीय राजनीतिक चिंतन, मीनाक्षी पब्लिकेशन, मेरठ
6. कीर, धनजय, (1990), डॉक्टर अंबेडकर : लाइफ एंड मिशन, पॉपुलर पब्लिकेशन प्रकाशन, मुम्बई
7. बर्मा, वी. पी., (2017), मॉडर्न इंडियन पॉलीटिकल थॉट, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल एजुकेशनल पब्लिशर्स, आगरा

❑❑

बगीता
शोधार्थी
बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी
वाराणसी (यू.पी.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

गोदान उपन्यास में रायसाहब का दोहरा व्यक्तित्व

शोध-सार

मुंशी प्रेमचंद हिन्दी साहित्य में एक महान उपन्यासकार, कहानीकार के रूप में प्रख्यात हैं। इनके द्वारा रचित उपन्यास 'गोदान' (1936 ई.) किसान जीवन और ऋण की समस्या को उजागर करने वाला एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसमें प्रेमचंद जी ने एक तरफ शहरी जीवन को और दूसरी तरफ ग्रामीण जीवन को चित्रित किया है। शहरी जीवन से संबंध रखने वाले जमीदार रायसाहब, मिल मालिक, खन्ना, मालती और मेहता की दुनिया है वहीं दूसरी तरफ होरी, धनिया, गोबर, शोभा, हीरा आदि की दुनिया है। यहां शहरी जीवन से संबंध रखने वाले दोहरे व्यक्तित्व के धनी रायसाहब किसानों का शोषण करने के लिए अनेक दाँव-पेंच खेलते हैं, और सत्याग्रह संग्राम में उन्होंने बहुत यश कमाया है, यहाँ तक कि वे कौंसिल की मेम्बरी छोड़ करके जेल भी चले जाते हैं, यही कारण है कि उनके इलाके के असामी उन पर घोर श्रद्धा करने लगे थे। उनका दोहरा व्यक्तित्व इस प्रकार भी सामने आता है जब वे होरी से अपने मन की बात कहते है कि हमारा दान और धर्म कोरा अंहकार है, हम अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए ही दान करते है। लेकिन जैसे ही उनका एक चपरासी आकर कहता है कि सरकार बेगारों ने काम करने से मना कर दिया है तो उनके माथे पर बल पड़ जाता है और कहते है कि चलों इन दुष्टों को मैं ठीक करता हूं। होरी सोचता है कि अब तो यह किस प्रकार नीति धर्म की बातें कर रहे थे और एकदम से कितने गरम हो गए है। इस प्रकार हम देखते है कि रायसाहब दोहरे व्यक्तित्व के साथ पूरे उपन्यास पर छाए हुए हैं।

मुख्य शब्द : अंहकार, बेगार, व्यवहार अचेतन, शोषण, प्रख्यात, संग्राम, असामी, दुष्ट।

विश्लेषण

गोदान उपन्यास में रायसाहब किसानों का शोषण करते हैं लेकिन उनका शोषण करने का ढंग अलग है। वे एक हिंसक पशु की तरह गरजकर या किसानों के सामने अपने बड़े होने का अधिकार नहीं जमाते बल्कि मीठा बोलकर उन्हें अपने जाल में फँसाते हैं, होरी जैसे किसान को वे अपनी मीठी बातों से बहला लेते हैं जिससे होरी उन्हें अपना देवता ही समझता हैं। इस प्रकार रायसाहब को एक जंगली पशु की तरह हिंसा ना करके मीठा बोलकर मनचाहा शिकार घर ही मिल जाता हैं।

''राय साहब उन हिंसक पशुओं में से हैं, जो गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोलना सीख गए हैं। शिकार तो अपनी जान से हाथ धोता ही है लेकिन मीठी बोली सुनता हुआ, अपाहिज होकर, गरजने और गुर्राने से सावधान होकर उस जंगली पशु से लड़ता हुआ नहीं।''[1]

सत्याग्रह संग्राम में यश कमाने के बाद रायसाहब अपने असामियों की नजरों में और भी महान बन जाते है। रायसाहब राष्ट्रवादी हैं लेकिन फिर भी हुक्कामों से मेल-जोल बनाए रखते हैं। यह ऐसा राष्ट्रवाद था जो किसानों से पैसे भी वसूलता था और अपने ऊपर बदनामी भी न आने देता था।

''रायसाहब ने एक दूसरी चादर ओढ रखी थी, जो भक्तों पर और ज्यादा असर डालती थी। यह चादर देशभक्ति की थी।''2

रायसाहब अमरपाल सिंह होरी के सामने इस ढंग से बात करते हैं अपनी परिस्थिति का ऐसा बखान करते हैं कि होरी जैसा सीधा-साधा अनपढ़ आदमी उनकी चाल में फँस जाता है। उसे क्या पता यह चतुराई किसानों से दण्ड प्राप्ति हेतु चली है। रायसाहब यह जानते हैं कि होरी का अपने ग्रामीण भाइयों पर अच्छा प्रभाव है, होरी को वे माली का पार्ट देते हैं ताकि वह शगुन के रुपये दे, और होरी से कहते हैं कि अपने ग्रामीण भाइयों से कहना कि सब-के-सब शगुन करने आए।

''रायसाहब होरी से क्यों घुल-मिलकर बातें करते हैं, क्यों उसे रामलीला में माली का पार्ट देते हैं, यह रहस्य रुपये इकट्ठे करने की बात से समझ में आ जाता है। लेकिन उन्होनें ''अपना दुखड़ा'' रोने के लिए होरी को ही चुना इसका भी कारण है, वह चरित्र के पारखी हैं और होरी की कमजोर नस को पहचानते हैं।''[3] रायसाहब जो भोग-विलास का जीवन जीते हैं उसकी होरी के सामने निंदा करते हैं, और कहते हैं कि हम परिस्थितियों का शिकार बने हुए हैं। और दूसरी तरफ जब गोबर झुनिया को भगाकर लाता है तो होरी से दण्ड स्वरूप 100 रु. नकद और तीस मन अनाज डाँड लगाया जाता है डाँड गाँव के मुखिया नोखेराम, दातादीन, झिंगुरीसिंह लेते हैं। लेकिन जैसे ही रायसाहब को पता चलता है तो वे नोखेराम से कहते हैं कि तुमने होरी से डाँड क्यों लिया है लाओ डाँड के पैसे हमें दो, वे पैसे अपने लिए मांगते है न कि होरी को वापस देने के लिए।

''रायसाहब ने बार-बार उस वातावरण को दोषी ठहराया है, जिसमें वे पले हैं। वे होरी के दंड के रुपये नोखेराम से अपने लिए मांगते हैं, यह नहीं कि होरी को वापिस दिलादे।''[4]

रायसाहब संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता, अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज और एक शिक्षित जमींदार का प्रतिनिधित्व करते हैं, एक तरफ वे राष्ट्रवादी होने का नाटक करते हैं, जिससे वे अपने असामियों और ओंकारनाथ जैसे सम्पादक पर अपना नेतृत्व जमाने में सफल होते हैं, वहीं दूसरी तरफ वे अपने हुक्कामों से मेल-जोल बनाए रखते हैं, और उन्हें रिश्वत देते हैं, ताकि उन पर कोई कुर्की न आए।

''रायसाहब शिक्षित जमींदारों के प्रतिनिधि है। वे दोनो रकाबों में एक साथ पैर रखते थे, राष्ट्रवादी भी थे और जी हुजूर भी।''[5]

रायसाहब दोहरे व्यक्तित्व के धनी हैं, अपने असामियों के सामने अच्छा बोलकर अपना प्रभाव उन पर डालते हैं, किसानों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं, लेकिन फिर भी उनसे बेगार लेते हैं। रायसाहब बेगार लेने के साथ-साथ बेगार देते भी हैं वे भी इस व्यवस्था के गुलाम हैं। वे बिजली पत्र के सम्पादक ओंकारनाथ को अपने अच्छे होने का बखान करने के लिए रिश्वत देते भी हैं।

''रायसाहब किसानों के प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट करके अपने समाजवादी होने का प्रमाण देते है। इतना होने पर भी वे चमगीदड़ हैं। गरीब जनता से बेगार लेते हैं और पत्र सम्पादक को इसलिए रिश्वत देते हैं कि वह उनके क्रुर व्यवहार के समाचारों को दबा दे।''[6]

रायसाहब विचारों से महान प्रतीत होते हैं। जब वे होरी से कहते हैं कि मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ। जब हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाएगी, ईश्वर वह दिन जल्द लाए। वह हमारे उद्धार का दिन होगा, लेकिन दूसरी तरफ वे अपने ससुराल की जमीन छीनने के लिए मुकदमा लड़ते हैं, और जीत भी जाते है। इस प्रकार उनकी लालची प्रवृत्ति सामने आती है इस प्रकार रायसाहब की कथनी और करनी में जमीन आसमान का फर्क है।

''लेखक कहता हैं कि वे समाजवादी विचारधारा को मानने वाले हैं। ये परिश्रम के महत्व को समझते हैं और गरीबों के शोषण की निंदा करते हैं, लेकिन उनकी करनी और कथनी में जमीन आसमान का फर्क है।''[7]

रायसाहब वीर एवं साहसी व्यक्ति भी हैं। जब धनुषयज्ञ के समय रायसाहब अपनी मित्रमण्डली के साथ वार्तालाप में मग्न थे तो मेहता साहब पठान के वेश में उपस्थित होते हैं, और कहते हैं कि रायसाहब के आदमियों ने उसके आदमियों को लूट लिया है, या तो रायसाहब एक हजार रुपये दे या वे सबको अपनी बंदूक से मार डालेंगे और मिस मालती को उठाकर भी ले जायेंगे, तब रायसाहब की वीरता का परिचय मिलता है वे कहते हैं कि अगर इन्होंने देवी जी को हाथ लगाया तो वे उनसे भिड़ जायेंगे। इस प्रकार रायसाहब वीर साहसी और अत्यंत चतुर व्यक्ति भी है।

''रायसाहब ने गरम होकर कहा—अगर इसने देवी जी को हाथ लगाया, तो चाहे मेरी लाश तड़पने लगे, मैं उससे भिड़ जाऊंगा। आखिर वह भी आदमी ही तो है।''[8]

रायसाहब अपने वर्ग की कठिनाइयों को बताते हुए कहते हैं कि हम जौ-जौ और अंगुल-अंगुल और पोर-पोर भस्म हो रहे हैं, उस हाहाकार से बचने के लिए हम पुलिस की हुक्काम की, अदालत की वकीलों की शरण लेते हैं और रूपवती स्त्री की भांति सभी के हाथों का खिलौना बनते हैं, और दूसरी तरफ उससे चिपके हुए भी है, किसानों का शोषण करते है और उनसे बेगार लेते है। आज भी हमारे समाज में जमींदारी प्रथा ज्यों-की-त्यों विद्यमान है।

''रायसाहब अमरपाल सिंह 20वीं शती के जमींदार हैं जो अपने वर्ग की समस्त दुर्बलताओं से परिचित हैं, उसके चरित्र में जबरदस्त विरोधाभास है, एक और वह अपने वर्ग और जमींदारी पद्धति की भरपूर आलोचना करता हैं और दूसरी और उससे पूरी तरह चिपका हुआ है।''[9]

''रायसाहब किसानों का शोषण करते हैं, लेकिन जब यह खबर अखबार में छपती है कि रायसाहब ने 80 रु. जुर्माने के तौर पर इकट्ठे किये है तो वे आग बबूला हो जाते हैं और ओंकारनाथ को यह खबर दबाने के लिए रिश्वत देने पहुँच जाते है, और ओंकारनाथ से कहते है कि मैं आपके पत्र को पंचगुना चंदा क्यों देता हूँ? केवल इसलिए कि वह मेरा गुलाम बना रहे। ''क्या यह सच है कि रायसाहब ने अपने इलाके के एक आदमी से अस्सी रु. तावान इसलिए वसूल किए कि उसके पुत्र ने एक विधवा को घर में रख लिया था?''[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोदान उपन्यास में रायसाहब का दोहरा व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है, हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और। वे अंदर से धन लूटने वाली शोषण-प्रवृत्ति वाले तथा कठोर हैं तथा ऊपर से बातें करते हैं दान और बलिदान की, जिससे उनकी असलियत को कोई पहचान न सके।

संदर्भ

1. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1952, पृष्ठ, 119
2. वही, पृष्ठ, 119
3. वही, पृष्ठ-120
4. विश्वम्भर मानव, हमारे प्रतिनिधि लेखक, द्वितीय संस्करण 1947, पृष्ठ 116
5. वही, पृष्ठ, 115
6. इन्द्रनाथ मदान, 'प्रेमचंद एक विवेचना', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 117
7. वही, पृष्ठ 111
8. मुंशी प्रेमचंद, 'गोदान', राजपाल एंड सन्स, 1936, पृष्ठ 64
9. कृष्णदेव बाहरी, 'प्रेमचंद और उनका गोदान', पृष्ठ 177
10. मुंशी प्रेमचंद, 'गोदान', राजपाल एंड सन्स, 1936, पृष्ठ 154

❑❑

रामजी राय
शोध छात्र, भूगोल विभाग
बयालसी पी.जी. कॉलेज
जलालपुर, जौनपुर (उ.प्र.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

सिकन्दरपुर तहसील (बलिया जनपद) में जनसंख्या गत्यात्मकता : एक समग्र दृष्टि

सारांश

जनसंख्या गत्यात्कता एक आधारभूत भौगोलिक अवधारणा है जिसमें जनसंख्या में होने वाले विविध परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है जिसके आधार पर उस क्षेत्र के विकास हेतु एक समग्र योजना बनायी जा सके। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में जनसंख्या की गतिशीलता में व्यापक परिवर्तन हुआ है जिसके कारण विविध प्रकार की समस्याओं का समना करना पड़ रहा है एवं क्षेत्र का विकास भी बाधित हो रहा है। जनसंख्या की अवस्थिति, आकार, प्रकार, वृद्धि, घनत्व, लिंगानुपात, आयु, लिंग संरचना आदि का अध्ययन आवश्यक हो जाता है जिसके आधार पर क्षेत्र के विकास हेतु एक समग्र कार्ययोजना प्रस्तुत की जा सके।

शब्द संक्षेप : जनसंख्या गतिशीलता, जनसंख्या वृद्धि, जनसंख्या घनत्व, आयु लिंग, संरचना, जन्मदर, मृत्युदर, लिंगानुपात, भौतिक घटक, सामाजिक घटक।

प्रस्तावना

जनसंख्या गत्यातमकता भौगोलिक अध्ययन का एक ऐसा पक्ष है जिसके आधार पर किसी क्षेत्र के विकास हेतु व्यापक कार्य योजना प्रस्तुत की जा सकती है इस अध्ययन के आधार पर जनसंख्या में बने वाल विविध परिवर्तनों के आधार पर बनाया जाता है। परन्तु प्रस्तुत अध्ययन हेतु जनसंख्या वृद्धि को ही अधार बनाया गया है जिसके आधार पर अध्ययन क्षेत्र के विविध तथ्यों का आंकलन किया जा सके। जनसंख्या गत्यात्मकता किसी एक कारक से प्रभावित न होकर विविध सामाजिक, आर्थिक कारकों से प्रभावित होत है जिसका अध्ययन भी आवश्यक होता है।

आदर्श जनसंख्या की स्थिति किसी भी राष्ट्र के विकास हेतु एक आवश्यक कारक है। यदि संसाधनों की तुलना में जनसंख्या कम है या जनसंख्या अधिक है तो उस राष्ट्र का विकास बाधित हो सकता है। वर्तमान के परिदृश्य में कौशल विकासयुक्त जनसंख्या किसी भी राष्ट्र के विकास हेतु आवश्यक है।

अध्ययन क्षेत्र उ.प्र. की सुदूरवर्ती तहसील है जो घाघरा नदी का निम्नवर्ती भू-भाग है। प्राकृतिक आपदा जैसे बाढ़, सूखा आदि के कारण यहां जन-धन की व्यापक हानि होती है। जनसंख्या वृद्धि भी अपनी तीव्र स्थित में विद्यमान है जिस कारण होने वाले विकास कार्यों का लाभ यहां निवास करने वाली जनसंख्या को नहीं मिल पा रहा है। इन्हीं विषमताओं को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्ता द्वारा अध्ययन क्षेत्र तहसील सिकन्दरपुर का चयन किया गया है जिसके आधार पर तहसील के विकास हेतु एक निश्चित रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य सिकन्दरपुर तहसील में जनसंख्या गत्यात्मकता का अध्ययन करना है जिसके आधार पर क्षेत्र के विकास हेतु आयोजना प्रस्तुत की जा सके।

विविध तन्त्र

प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक विधि तन्त्रों का प्रयोग करते हुए निष्कर्ष को प्राप्त किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र का अक्षांशीय विस्तार 25° 55″ उत्तरी से 26° 8″ उत्तरी अक्षांशों के मध्य एवं देशान्तरीय विस्तार 83° 55′ पूर्वी से 84° 7′ पूर्वी के मध्य है। इस तहसील के अन्तर्गत नवानगर विकासखण्ड (क्षेत्रफल 17518 है.), पन्दह विकासखण्ड एवं मनियर विकासखण्ड का आंशिक भाग आते हैं। इसकी पूर्वी सीमा बॉसडीह, तहसील की बड़सरी जागीर एवं मनियर द्वारा बनता है। अध्ययन क्षेत्र के पश्चिम में रसड़ा तहसील, उत्तर में घाघरा नही का प्रवाह क्षेत्र है एवं दक्षिण में बॉसडीह तहसील स्थित है।

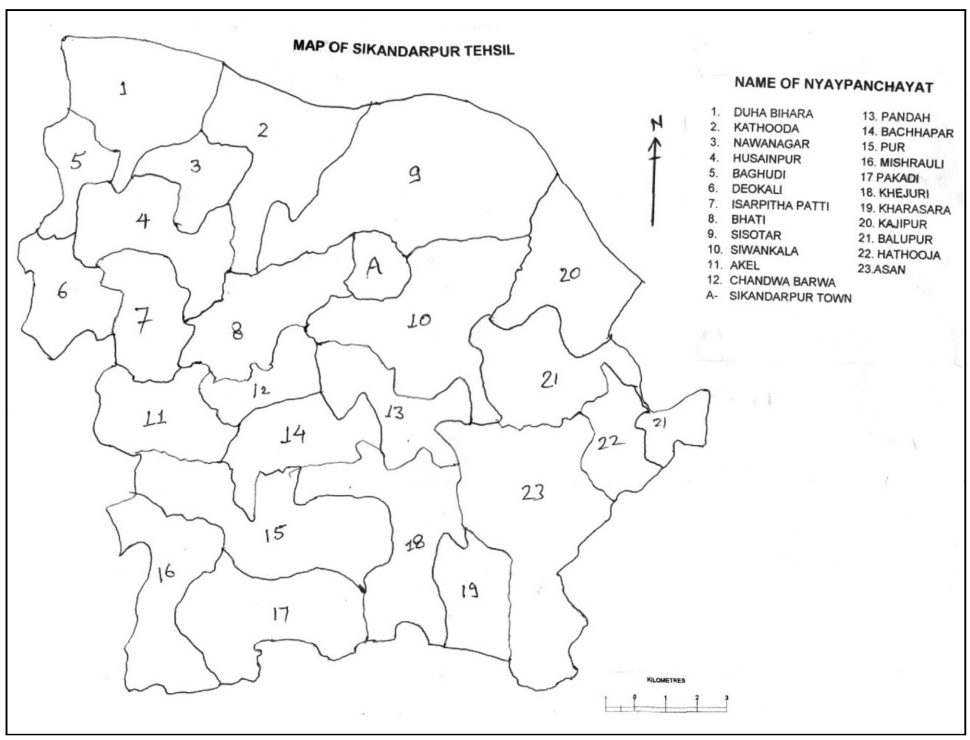

सारणी संख्या 2.1 के माध्यम से अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या दृष्टि का विश्लेषण किया गया है।

सारणी 1.1

तहसील सिकन्दरपुर : जनसंख्या वृद्धि

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या	प्रतिशत वृद्धि
1951	153532	---
1961	180023	17.25
1971	212730	18.16
1981	256369	20.51

1991	312574	21.92
2001	375526	20.13
2011	392801	4.60

स्रोत : जनगणना हस्त पुस्तिका-2011

सारणी 1.2 के माध्यम से अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि का निर्धारण 1951 से 2011 के मध्य किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के जनसंख्या वृद्धि में क्रमिक ह्रास हो रहा है जो साक्षरता आदि का प्रतिफल है।

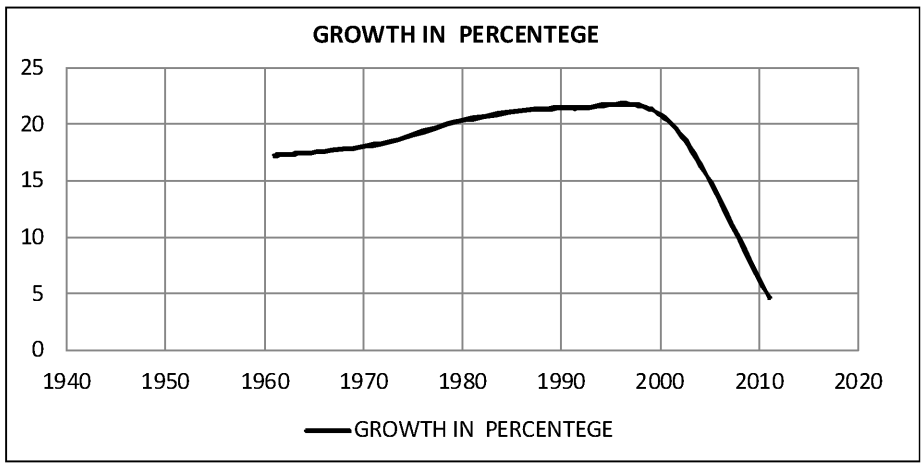

सारिणी 1.2

तहसील सिकन्दरपुर : न्याय पंचायतवार जनसंख्या वृद्धि

न्याय पंचायत	जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत में)	न्याय पंचायत	जनसंख्या वृद्धि (प्रतिशत में)
1. ईसारपीथापट्टी	16.35	13. खेजुरी	24.15
2. बघुड़ी	17.12	14. पकड़ी	24.24
3. कठौड़ा	23.25	15. बाछापार	23.15
4. सिवानकला	29.26	16. पन्दह	20.26
5. हुसेनपुर	19.24	17. चड़वा-बरवा	17.25
6. भॉटी	24.25	18. पूर	18.70
7. सीसोटार	22.35	19. उकछी	21.15
8. डूहाबिहरा	20.19	20. हथौज	22.96
9. देवकली	18.32	21. बालूपुर	20.32
10. नवानगर	19.27	22. बड़ागांव	22.25
11. एकइल	18.12	23. काजीपुर	18.32
12. खड़सरा	22.26	24. असना	20.15

स्रोत : जनगणना हस्तपुस्तिका-2011

सारिणी 1.2 से स्पष्ट है कि भॉटी न्यायपंचायत का जनसंख्या वृद्धि दर सर्वाधिक है। जबकि चड़वा-बरवा न्यायपंचायत का वृद्धि प्रतिशत न्यूनतम (17.25) है। जो जनसंख्या गत्यात्मकता की तीव्रतम स्थिति का परिचायक है।

जनसंख्या गत्यात्मकता के कारण विविध सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो अग्रांकित है—

1. **जोताकार का छोटा होना**—जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप जोत के आकार छोटे होते जा रहे हैं जिससे उत्पादकता में ह्रास हो जा रहा है जिससे उत्पादकता में कमी आ रही है।
2. **शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार के साधानों के प्रसार में बाधक**—जनसंख्या की गत्यात्मकता शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार आदि के प्रसार में बाधक है जिससे इस पर रोक लगाना अनिवार्य है।
3. **आदर्श जनसंख्या की अवधारणा के विरुद्ध**—किसी स्थान का विकास में वहां की आदर्श जनसंख्या के कारण ही सम्भव हो पाता है। जनसंख्या वृद्धि की अनियंत्रित स्थिति इस अवधारणा के विरूद्ध है जो विकास में बाधक भी है।

इसके अतिरिक्त अन्य बहुत सारे कारक हैं जो तीव्र जनसंख्या वृद्धि हेतु उत्तरदायी है।

उपसंहार

अत: आवश्यकता इस बात की है कि अध्ययन क्षेत्र जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित किया जाय एवं आदर्श जनसंख्या की अवधारणा को बल प्रदान किया जाय जिससे कि अध्ययन क्षेत्र के विकास को सुनिश्चित किय जा सके क्योंकि क्षेत्र के विकास हेतु कौशल विकास युक्त जनसंख्या का होना आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब यहॉ आदर्श जनसंख्या की स्थिति को प्राप्त किया जाय।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तहसील सिकन्दरपुर में जनसंख्या वृद्धि की तीव्र स्थिति विद्यमान है जिसके कारण अध्ययन क्षेत्र का विकास बाधित हो रहा है। बेरोजगारी, अशिक्षा, मनोरंजन के साधनों का अभाव आदि ऐसे कारक हैं जिसके कारण जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति को बल मिल रहा है। इसलिए शिक्षा का प्रसार, सामाजिक चेतना, आदर्श जनसंख्या की स्थिति को जनमानस को समझाना एवं उनसे होने वाले लाभों के बारे में लोगों को बताना अत्यन्त आवश्यक है। जिनके अभाव में जनसंख्या वृद्धि को रोका नहीं जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण संसाधनों पर दबाव तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा है जो भविष्य हेतु एक खतरनाक संकेत है।

अत: संसाधनों पर बढ़ते दबाव को रोकने के लिए भी जनसंख्या वृद्धि का स्थायी समाधान आवश्यक है। बिना इसके प्राकृतिक एवं मानव निर्मित संसाधनों पर बढ़ते दबाव को रोका नहीं जा सकता है। यह भविष्य के लिए एक खतरे का संकेत है। आगे आने वाली पीढ़ी हेतु संसाधनों का संरक्षण एवं प्रबन्धन अति आवश्यक है। उसके लिए भी तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकना होगा एवं संसाधनों को संरक्षित करना होगा। इसी को आधार बनाकर विकसित राष्ट्र की संकल्पना को मूर्तरूप दिया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. चान्दना, आर.सी. (2011) : जनसंख्या भूगोल (पुन:मुद्रित), पेज 40-83, 251।
2. तिवारी, आर. सी. (2017) : जनसंख्या भूगोल (पुन:मुद्रित), प्रवालिका पब्लिकेशन, इलाहाबाद, पेज 52-54, 278
3. तिवारी, आर.सी. (2011) : भारत का भूगोल (संशोधित संस्करण), प्रयाग पुस्तक भवन
4. अपराजिता (2013) धर्मापुर विकासखण्ड (जौनपुर जनपद) में जनसंख्या गत्यात्मकता का एक भौगोलिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, वी.ब.सि. पूर्वांचल वि.वि. जौनपुर, उ.प्र., पृ. 5, 43
5. Bongaart, John (1978) A Framework for Analysis the Proximete Detcrminants of Fertility, Population and Development Review, Vol. 4, No.3, pp. 105-132

6. Clarke, John I. (1972) : Population Geography, Program Press, London, p. 165
7. Cloude, Preston (1970) : Resource Population and Quality of life, in is there an optimum lavel of population, edited by S. Fred Singer, A Population Councile Book, McGraw Hill Book Company, New York, p. 118
8. Chandna, R.C. (1980) Introduction to Population Geography, Kalyani Publisher, New Delhi.
9. Chatterji, S.P. (1962): Regional Pattern of the Density and Distribution of Population in India, Geographcal Revenue of India.
10. Ghosh, Santweena (1973): Population of Bihar : A Geographical Analysis Unpublished, Ph.D Thesis, B.H.U.
11. Goverment of Inida (180-85): Draft Sixth Five Year Plan, Planning Commission of India, New Delhi.
12. Harvey, D. (1977) : Population Resources and The Idology of science in Redical Geography Edited by Richard Peet, Methuen & Co. Ltd. London.
13. Mabogunje, A.L. (1970): A Typology of Population Pressure on Resources in west Africa, in Geography and Crowding world edited by wilbur Zalinsky and other, Oxford University Press, New York, p. 118.
14. Merrick, T.W. (1994): Population Dynamic in Developing Countries, In population and Development ed by Cassan, Thansaction.
15. Thomson, W.S. & Lewis, D.T. (1976) : Population Problem , Tata Mcgraw Hill Publishing Co. New Delhi.

❑❑

मुकेश कुमारी (शोधार्थी, इतिहास विभाग)
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
डॉ. सुनीता कुमारी (शोध निर्देशिका)
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

सांभर की सांस्कृतिक धरोहर : बंजारा समाज के संदर्भ में प्रस्तुत शोधपत्र

सांभर अपनी सांस्कृतिक धरोहर के कारण प्राचीनकाल से राजस्थान ही नहीं, संपूर्ण भारत मे अपनी अलग पहचान बनने मे सफल रहा है। इसका उल्लेख महाभारत महाकाव्य मे भी मिलता है। इस महाकाव्य के अनुसार सांभर का क्षेत्र असुरराज वृषपर्व के साम्राज्य के अंतर्गत आता था, जहाँ पर असुरों के कुलगुरु शुक्राचार्य निवास करते थे। इसी स्थान पर शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का विवाह, भारतवर्ष के राजा ययाति के साथ सम्पन्न होने का उल्लेख है।[1] यहाँ देवयानी को समर्पित लगभग 5000 ई. पूर्व प्राचीन मंदिर एवं देवयानी कुंड है। भागवत पुराण के नवें भाग में अध्याय 18 एवं 19 में भी देवयानी की कहानी का वर्णन मिलता है जो की इस स्थान की प्राचीनता एवम ऐतिहासिकता का द्योतक है।[2]

एक अन्य हिंदू मान्यता के अनुसार शाकम्भरी जो की चौहान राजपूतों की रक्षक व कुलदेवी है, ने यहां के लोगो की भक्ति से प्रसन्न होकर संपूर्ण वन सम्पदा को बहुमूल्य धातुओं जैसे चांदी में परिवर्तित कर दिया था परंतु कालांतर में इस सम्पदा को लेकर लोगो में होने वाले झगड़ों से चिंतित होकर शाकम्भरी माता ने यह वरदान वापस ले लिया तथा सम्पूर्ण चांदी को नमक में परिवर्तित कर दिया।[3] सांभर स्थित शाकम्भरी देवी का मंदिर यहां के लोगो की आस्था एवं विश्वास का प्रतीक है। जहाँ पर प्रतिवर्ष नवरात्रों के अवसर पर भव्य मेले का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर देवी का 9 दिनों तक शृंगार किया जाता है तथा आरती का आयोजन होता है।[4] इस मेले में श्रद्धालुओं द्वारा भक्ति भाग से ओत-प्रोत होकर माता की आराधना में लोक गीतों का आयोजन किया जाता है। इस समय गया जाने वाला प्रसिद्ध लोक गीत इस प्रकार है—

''*बजरिया मंदिर बाजा, आजा म्हारी शकमभर आजा*''[5]

दयाराम साहनी ने अपनी पुस्तक 'आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकवेशन्स एट सांभर' में, सांभर के नजदीक स्थित नलियासर पुरातात्विक स्थल की खुदाई से प्राप्त विभिन्न उपयुक्त मूर्तियों एवं उपकरणों के अध्ययन द्वारा इस स्थान के पुरातात्विक महत्व की व्याख्या की है। उन्होंने यहाँ ईंटों से बने घरों वाली सभ्यता होने का अनुमान लगाया। यहाँ से प्राप्त स्तूप जैसी टेराकोटा की मूर्ति से बौद्ध धर्म का साक्ष्य प्राप्त होता है। क्षेत्रीय इतिहासकारों यथा हरबिलास शारदा एवं डॉ. दशरथ शर्मा द्वारा सांभर एवं अजमेर के आसपास के क्षेत्र को सपादलक्ष के रूप मे चौहनों की प्रमुख कर्मस्थली बताया गया है। राष्ट्रीय इतिहासकारों मुख्यत एस.सी. अग्रवाल व रोमेश दत्त ने भारतीय अर्थव्यवस्था से संबंधित उद्योगों मे प्रमुख नमक उद्योग, नमक व्यापार, नमक संधियों एवं नमक उत्पादन के परंपरागत तरीकों का वर्णन किया है। इसी क्रम मे ब्रिटिशकालीन इतिहासकारों द्वारा रेलवे, डाक-तार विभाग, बैंकिंग आदि के विकास द्वारा सांभर साल्ट लेक की तत्कालीन प्रासंगिकता को दर्शाया गया है। मार्क्सवादी इतिहासकार रजनी पामदत्त एवं सी.ए. बैली ने सांभर के नमक की महत्ता एवं उसके शाही परिवारों द्वारा प्रयोग किए जाने का उल्लेख किया है। सबाल्टर्न इतिहासकारों रंजीत गुहा एवं सुमित सरकार ने नमक कार्यों मे लगे मजदूरों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

सांभर तत्कालीन जोधपुर व जयपुर राज्यों की सीमाओं के मिलने के स्थान पर स्थित होने के कारण सांभर शामलात कहलाया। सांभर शामलात पर जयपुर व जोधपुर दोनो राज्यों द्वारा प्रशासनिक कार्य संपादित किया जाता था। उल्लेख मिलता है कि यहाँ पर दो अलग अलग नाजिम द्वारा प्रशासनिक आधिपत्य कायम रहा। यह आधिपत्य जब तक बना रहा तब तक की ब्रिटिश सरकार द्वारा विभिन्न संधियों के तहत इस पर सर्वोच्च सत्ता कायम ना की गई।[6]

सांभर स्थित झील नमक उत्पादन मे राजस्थान की सबसे बड़ी झील है। वर्तमान मे यह झील यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची मे शामिल है। मुगल बादशाह अकबर और राजा भारमल की पुत्री जोधा के निकाह का साक्षी रहा सांभर, अकबर के साम्राज्य अजमेर सूबे का हिस्सा रहा। अकबर के समय सांभर से लगभग 2.5 लाख राजस्व प्रतिवर्ष प्राप्त होने का प्रमाण मिलता है, जोकि धीरे-धीरे औरंगजेब के काल तक 15 लाख तक पहुँच गया।[7] सांभर में प्राचीनकाल से ही नमक व्यवसाय महाजनों और सेठ साहूकारों के हाथों में रहा है, जिससे यहाँ के जनसमुदाय को यहाँ की आर्थिक संपन्नता से प्रायः वंचित ही रहना पड़ा। नमक जनसाधारण की वस्तु एवं प्रत्येक व्यक्ति की रसोई तक पहुँच रखने के कारण नमक बनाने का कार्य परंपरागत तरीके से यहाँ के निम्नवर्ग के लोगों द्वारा ही किया जाता रहा है। इस कार्य मे लगे समुदाय मुख्यतया ग्वारिया, बंजारा, खटीक एवं कायमखानी मुसलमान अपना मूल स्थान सांभर एवं आसपास वाले गांवों जैसे कोर्सिना, हवासपुरा आदि को बताते हैं।[8] सामाजिक अस्पर्शयता तथा ऊंच-नीच के चलते इन जातियों द्वारा मुगलकाल में इस्लाम स्वीकार करने का उल्लेख मिलता है। कायमखानी मुसलमान अपना मूल राजपूतों से मानते हैं, जोकि इस्लाम धर्म अपनाने के बाद कायमखानी कहलाए। बंजारा समाज भी हिंदू बंजारा व मुस्लिम बंजारा में विभक्त हो गया। जीविकोपार्जन एवं समाज में अपने आपकी पहचान बनाने हेतु बहुत सारी जनजातियों व खानाबदोश लोग इस्लाम की तरफ आकर्षित हुए। समानता की श्रेणी में आकर इन जनसमुदायों द्वारा नमक उत्पादन एवं वितरण कार्य में लगे रहने का उल्लेख मिलता है।[9] नमक उत्पादन कार्य मे लगे बंजारों द्वारा नमक के क्यार बनाने का कार्य फावड़ों द्वारा आज भी परंपरागत तरीके से किया जा रहा है। इस नमक को फेरी क्वीन नमक रेल द्वारा सांभर साल्ट लिमिटेड के मुख्य गोदाम तक पहुँचाया जाता है। प्राचीनकाल मे बंजारों द्वारा नमक अपने बैलों की पीठ पर लादकर दूर-दराज के स्थानों तक विनिमय के आधार पर विक्रय किया जाता था। बंजारों की छतरियाँ एवं स्मारक उनके वैभवशाली व शान-शौकतपूर्ण जीवनशैली के प्रतीक हैं। बंजारों की उत्पत्ति एक बहुचर्चित विषय है। बंजारों को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे गोर, लमन, लग्बाडी। बंजारा एक खानाबदोश जनजाति है जो महाराष्ट्र, राजस्थान उत्तरी भारत के मारवाड़ क्षेत्र, आंध्रप्रदेश व तेलंगाना के दक्षिण में पायी जाती है। मत है कि बंजारे राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र से हैं जबकि इतिहासकार जे.जे. राय, बर्मन एवं मोतिरास राठौड़ बंजारों की उत्पत्ति अफगानिस्तान से मानते हैं। बंजारे प्राचीनकाल से ही देश के अधिकांश भागों मे परिवहन, वितरण, वाणिज्य, पशुपालन और दस्तकारी से अपना जीवनयापन करते थे। इसके लिए वे अपने मवेशी बकरी, ऊँट, बैल एवं गधों का प्रयोग करते थे। ये लोग समूह मे यात्रा करते थे ताकि वस्तुओं को सुरक्षित गंतव्य स्थान तक पहुँचा सके। इस समूह का मुखिया मुकद्दम, नायक या नाईक कहलाता था। बंजारों द्वारा तेल, गन्ना, अफीम, फूल एवं जंगली उत्पाद जैसे—गोंद, चिरोंजी, महोवा, शहद तथा नमक, मुल्तानी आदि का परिवहन वितरण किया जाता था। 19वीं शताब्दी के ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों द्वारा 1871 के आपराधिक जनजाति अधिनियम के दायरे मे बंजारा समाज को भी लाया गया, जिससे इस समुदाय ने अपने पारंपरिक व्यवसायों को छोड़कर पहाड़ी क्षेत्र को अपना आसरा बनाया तथा कुछ लोग जंगलों में चले गये। नमक उत्पादन कार्य में 90% मजदूर अनुसूचित जाति वर्ग जैसे—रैगर, खटीक से है तथा 10% कायमखानी मुसलमान, बंजारा समाज के लोगों द्वारा नमक कार्य किया जाता है।[10]

ब्रिटिशकालीन सुधारों के अंतर्गत रेलवे का विकास परिवहन हेतु एक महत्वपूर्ण प्रयास सिद्ध हुआ परंतु इस विकास का लाभ केवल उच्चवर्ग तक ही सीमित रहा एवं निम्नवर्ग अभी भी साहूकारों एवं ठेकेदारों के चंगुल में ही फँसा रहा। इन सभी के चलते ये जनजातियाँ यहाँ पर अपनी अलग पहचान बनाने तथा अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों को अक्षुण्ण बनाने में कामयाब रही।[11] कायमखानी मुसलमानों की दरगाह 'जिगर-शोखता' आज भी विद्यमान है, जहाँ उर्स का आयोजन किया जाता है। सांभर का बड़ा बाजार एवं छोटा बाजार वहाँ की महाजनी व्यवस्था एवं वैभवशाली जीवन के साक्षी है तथा सांभर साल्ट लिमिटेड में बने मजदूर आवास वहाँ के मजदूरों की दयनीय दशा का उल्लेख करते हैं।[12]

मजदूर वर्ग मुख्यतया आसपास नागौर की सीमा से लगे गांवों से विस्थापित परिवार हैं, जिनमें से कुछ इस्लामिक संस्कृति को अपनाकर मुसलमान बन गये तथा कुछ हिंदू संस्कृति में ही बने रहे।[13] शिवरात्रि के अवसर पर आयोजित होने वाला नंदकेश्वर बाबा का मेला पूरे विश्व में ख्याति बनाए हुए है। नंदकेश्वर बाबा की सवारी बड़े बाजार से छोटे बाजार तक लोकगीतों के साथ निकली जाती है।[14] ये लोकगीत वहाँ के बंजारा जनजाति के लोगों द्वारा गाए जाते है। ढोल-नगाड़ों एवं लोकगीतों के साथ आयोजित यह सवारी होली महोत्सव के नाम से जानी जाती है।

सामाजिक भेदभाव व ऊंच-नीच के दंश को झेलते हुए कुछ समुदाय दादूपंथ की तरफ आकर्षित हुए तथा दादूदयाल जी द्वारा नरैना, दूदू में दिए उपदेशों से प्रभावित होकर वे दादूपंथी विचारधारा को अपनाने लगे। दादूदयाल जी ने अपनी कर्मस्थली सांभर को बनाया।[15] भैराना पहाड़ी आज भी दादूपंथियों का प्रमुख तीर्थ स्थान है जहां लोग दादू जी की वाणी का अनुसरण करने जाते हैं। इस प्रकार बंजारा, गवारिया, खटीक, रैगर, कायमखानी समुदायों ने न केवल अपनी पहचान अक्षुण्ण बनाए रखी बल्कि अपनी एक सामाजिक व्यवस्था स्थापित कर सांस्कृतिक धरोवर को बनाए रखा। यह सांस्कृतिक धरोहर व सामाजिक ताना-बाना इतिहास के अध्याय के रूप में विकसित हुआ।[16]

संदर्भ

1. के.सी. जैन, एनिसियंट सिटीज एंड टाउन्स ऑफ राजस्थान, 1972, दिल्ली
2. कविराजा श्यामलदास, वीर विनोद, वोल्यूम-II, 1956, अजमेर
3. विंध्यराज चौहान, चौहान राजवंश के उदभन का वृहद इतिहास, 2001, जोधपुर
4. राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, नागौर, के. के. सहगल, जयपुर, 1975
5. साहब सिंह श्रीवास्तव, फाक कल्चर एंड ओरल ट्रेडिशन (ए कैंप्रेटिव स्टडी ऑफ रीजन इन राजस्थान एंड ईस्टर्न यू पी) 1974, दिल्ली
6. ए.सी. बनर्जी, द राजपूत स्टेट्स एंड ब्रिटिश पैरामाउंटेसी, 1980, दिल्ली
7. सी. ए. बैली, रूलर्स टाउन्स एंड बाजार, 1983, दिल्ली
8. राममनोहर लोहिया, राजस्थान की जातियां, पृ. 37
9. अनिल पुरोहित, राजस्थान में व्यापार - वाणिज्य, 2013, जयपुर
10. राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, जयपुर - सावित्री गुप्ता, 1987
11. बसंत जोशी, 19वीं सदी का राजस्थान, 1988, जयपुर
12. राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, जिल्द 1, प्लेसेस ऑफ इंटरेस्ट, जयपुर, 1996
13. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, 1989, जयपुर
14. कर्नल जेम्स टाड, एनाल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द 1, पृ. 283
15. परंपरा, नरायण सिंह भाटी, वनस्थली विद्यापीठ, चौहान विगतराज का लेख, अजमेर
16. रामबल्लभ सोमानी, पृथ्वीराज चौहान एंड हिज टाइम्स, 1981, दिल्ली

❑❑

रजनी मीना
शोधार्थी
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, निवाई

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

जरायम पेशा कानून और राजस्थान में लक्ष्मीनारायण झरवाल का इसमें योगदान

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र के द्वारा मीणा जनजाति पर लगे 'जरायम पेशा कानून' व राजस्थान के लक्ष्मीनारायण झरवाल का इसमें दिये गये योगदान को पेश किया गया है। ब्रिटिश सरकार ने अनुसूचित जनजातियों की स्वतन्त्रता की भावना को कुचलने के लिए 1857 ई. के बाद से ही प्रयास प्रारम्भ कर दिये। 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जिन जन-जातियों ने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ विद्रोह किया तथा ब्रिटिश सरकार ने इन आदिम जन-जनजातियों पर नियंत्रण लगाने व प्रतिशोधात्मक नीति के फलस्वरूप 1871 ई. को 'क्रमिनल्स ट्राइब्स एक्ट' (CTA) (जरायम पेशा कानून) पारित कर दिया। जरायम पेशा कानून में 12 वर्ष कानून से ऊपर के सभी स्त्री-पुरुषों को शामिल किया गया, इस कानून के अन्तर्गत सभी वयस्क लोगों को थाने में प्रतिदिन हाजिरी देनी होती थी। फलस्वरूप देशी रियासत ने भी इस प्रकार के कानून बनाकर स्वतंत्रता प्रिय जनजातियों की भावना को दबाना शुरू कर दिया। राजस्थान के जयपुर रियासत में मीणा समाज के महान् स्वतंत्रता सैनानी लक्ष्मीनारायण झरवाल ने जयपुर में इस कानून को समाप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस कानून को कड़े संघर्ष के फलस्वरूप 31 अगस्त, 1952 भारत सरकार द्वारा समाप्त कर दिया गया तथा आदिम जनजातियों को नागरिक अधिकार प्रदान कर दिया। इस शोध-पत्र द्वारा स्वतन्त्र विचरण करने वाली मीणा जनजाति पर लगे 'जरायम पेशा कानून' से वर्तमान पीढ़ी को अवगत कराने का प्रयास किया गया।

परिचय

मीणा जनजाति मुख्यतया भारत के राजपूताना राज्यों में निवास करने वाली एक जनजाति है शकुन्तला मीणा ने अपनी पुस्तक ''मीणा जाति के उत्कर्ष'' में बताया कि मीणा जाति भारत में निवास करने वाली प्राचीन जन-जातियों में से एक है वेद पुराणों के अनुसार मीणा जाति मत्स्य (मीन) भगवान की वंशज है। मीणा जनजाति के लोग राजपूताना के कई राज्यों में शासक रहे जैसे—आंबेर, बुंदी, अलवर, मारवाड़ आदि। राजस्थान के इतिहास में मीणा जाती का विशेष योगदान रहा है। मीणा जनजाति के लोग अपने आप को क्षत्रिय मानते थे। मीणा जनजाति की 51.20 प्रतिशत जनसंख्या राज्य के 5 जिलों—जयपुर, करौली, दौसा, उदयपुर, सवाई माधोपुर में पाई जती है। भारत की कुल मीणा जनजाति का राजस्थान में 8.7 प्रतिशत पाया जाता है। राजस्थान की कुल जनसंख्या में 13.5 प्रतिशत मीणा जनजाति का प्रतिशत है तथा 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में मीणा जनजाति की जनसंख्या 43.46 लाख है। मीणा जनजाति कुल जनजाति आबादी का लगभग 47 प्रतिशत है। ब्रिटिश शासन में अनुसूचित जनजातियों की स्वतन्त्रता की भावना को कुचलने के लिए 1857 ई. की क्रान्ति के बाद से ही प्रयास प्रारम्भ कर दिया। अत: तत्कालीन केन्द्र सरकार ने 1871 में 'जरायम पेशा कानून' ब्रिटिश क्षेत्र में लागू कर दिय। इस आदेश के माध्यम से देशी रियासतों ने भी इस प्रकार के कानून बनाकर स्वतन्त्रता प्रिय जन-जातियों की भावना को दबाने के लिए अपनी-अपनी रियासतों में कानून बनाकर इन आदिम जन-जातियों की भावनाओं का हनन किया। पं. 'हनुमान प्रसाद

शर्मा' ने अपने ग्रन्थ ''नाथावतों का इतिहास'' में लिखा है। कि मीणा जाति प्रजा व सरकारी संपत्ति की असली रक्षक रहे हैं। ये पहरायत या चौकायत के रूप में रह कर धन की रक्षा करते थे।[1] मीणा जाति अपनी वीरता और स्वतंत्र जीवन जीने के लिए प्रसिद्ध है इस जनजाति के निवास क्षेत्र रोमांचक गाथओं का विपुल भण्डार पूर्ण है। इस आदिम मीणा जनजातिय समुदाय में लगातार छापामार युद्ध नीति और अपनी बहादुरी व स्वाभिमान से असाधारण कार्य करने की प्रवृत्ती पाई जाती थी। ब्रिटिश राज ने स्थानीय शासकों के साथ मिलकर इन आदिम जन-जातियों का शोषण किया को शोषण किया, और इनका शोषण 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता के बाद दिन-प्रतिदिन और बढ़ गया।[2]

सबाल्टर्न इतिहासकार रणजीत गुहा, सुमित सरकार आदि के अनुसार औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश राज्य सरकार द्वारा आदिम जनजातियों व उपाश्रित वर्ग की अवहेलना की गई। 1857 ई. के स्वन्त्रता संग्राम के पश्चात् अंग्रेजी सरकार की इन उपाश्रित वर्गों पर प्रतिबन्धात्मक व दमनात्मक नीति अपनाई। 'जरायम पेशा' कानून के माध्यम से सीमान्त वर्गों पर (किसानों, आदिवासियों, अनुसूचित जातियों) पर नागरिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये, फलस्वरूप जगह-जगह विद्रोह का जन्म हुआ।

''अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद'' में बताया है कि भारत में क्रांतिकारी समाजवाद समानता के सिद्धान्त पर आधारित है तथा इनके अनुसार ''वातावरण को बदलने के लिए संघर्ष जरूरी है।'' ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने आदिम खाना बदोस जन-जातियों पर 1871 ई. का 'क्रिमिनल ट्राईब्ल एक्ट' (CTA) लगाकर उनके अधिकारों का शोषण किया।

क्षेत्रीय इतिहासकार 'गौरीशंकर हीराचन्द औझा' के ग्रन्थ 'उदयपुर राज्य का इतिहास' में लिखा है कि 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम में आदिम जन-जातियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध जगह-जगह विद्रोह किया व देश की आजादी के लिए संघर्ष किया।

साम्राज्यवादी इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार 'आदिम जन-जातियाँ, स्वतंत्र विचरण करने वाली स्थानीय जातियाँ हैं, इन जातियों को गुलामी व प्रतिबन्ध अस्वीकार है तथा यह स्वाभिमान से जीवन यापन करती हैं। 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् औपनिवेशिक सरकार ने इन आदिम जातियों पर गहरे प्रतिबन्ध लगा दिये।

1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में आदिम जन-जातियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध जगह-जगह विद्रोह किया व देश की आजादी के लिए संघर्ष किया।[3]

आदिम जन-जातियों पर हो रहे शोषण व नागरिक अधिकारों के हनन से मीणा जाती व अन्य जन-जातियों के पढ़े-लिखे लोगों ने आवाज उठाई और अपने हक के लिए संघर्ष किया। राजपूताना की इन जन-जातियों ने अंग्रेजी राज के खिलाफ विद्रोह करना शुरू कर दिया।[4]

मीणा समुदाय के व्यक्ति जन साधारण के लिए हमदर्दी, समाजसेवी देश हितेशी व स्वतंत्र जीवन जीने वाले लोग थे। राजस्थान के इतिहास में इन आदिम जन-जातियों में ऐसे बहुत से स्वतंत्रता सैनानी हुए है जिन्होंने आम जनता के लिए संघर्ष किया और उनके लिए नागरिक अधिकारों की तत्कालीन राज्य सरकार से मांग की। ऐसे ही स्वतंत्रता सैनानियों में राजस्थान के लक्ष्मीनारायण झरवाल है जिनका राजस्थान की मीणा जनजाति के लिए अद्वितीय योगदान रहा। इन महान स्वतंत्रता सैनानी का जन्म 2 नव. 1914 ई. को जयपुर के मोती डुंगरी नामक स्थान पर हुआ। लक्ष्मीनारायण झरवाल बचपन से ही मानव सेवा, देशभक्ति, व स्वतंत्र विचार रखने वाले थे। लक्ष्मीनारायण झरवाल ने बचपन से ही अंग्रेजों के शोषण व अत्याचार व प्रतिबन्धता को देखा तथा उनकी शिक्षा अंग्रेजी अराजकता के कारण कड़े संघर्ष से पूर्ण हुई। उस समय व जरायय कानून के तहत दमनकारी प्रतिबन्ध थे। अत: इस जाति की शिक्षा का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। पिता के देहान्त के बाद सरकारी कर्मचारी के रूप में रामनिवास बाग में कार्य किया पर उनका मन अंग्रेजी शोषण को लेकर खिन्न रहने लगा। वे देश उत्थान व सामाजिक बुराइयों को दूर करना व नागरिक अधिकारों की रक्षा करना अपना प्रथम लक्ष्य समझने लगे।

राजस्थान के लक्ष्मीनारायण झरवाल ने 1919 के 'जलियांवाला बाग हत्या कांड' में भाग लिया व बाएँ हाथ पर गोली खाई। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान लक्ष्मीनारायण ने असहयोग आंदोलन 1920, सविनिय अवज्ञा आंदोलन 1930, में भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया तथा नागरिक स्वतंत्रता के अधिकारों के लिए आवाज उठाई।[5]

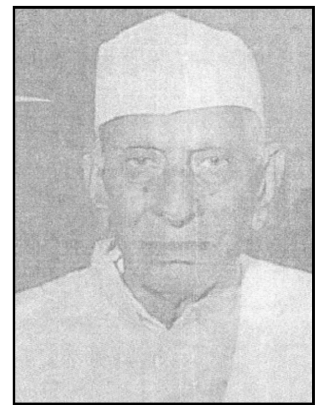

1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान आदिम जन-जातियों ने भील, मीणा, अहोम, संथाल, मुण्डा, हो, आदी ने अंग्रेजों के खिलाफ जगह-जगह विद्रोह किया व आमजन के साथ मिलकर प्राकृतिक अधिकरों व नागरिक स्वतंत्रता की आवाज उठाई।

1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में जिन जन-जातियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाकर संघर्ष किया व सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुँचाया था, फलस्वरूप इस संघर्ष में विद्रोहियों की हार होने पर विजेता अंग्रेजी सरकार ने इसमें शामिल रही जन-जातियों पर प्रतिशोध स्वरूप दंडात्मक कार्यवाही करते हुए जातिय जनगणना के आधार पर इन जन-जातियों की तमाम गतिविधियों को प्रतिबन्धित करने के लिए Crimnal Tribes Act 1871, CTA (जरायम पेशा) कानून पारित कर इसे लागू कर दिया। इस कानून के प्रावधानों के अनुसार इसमें (सूचित) जातियों के 12 वर्ष से ऊपर के समस्त स्त्री-पुरुषों को थाने में प्रतिदिन दिन में ''तीन बार' हाजिरी देनी होती थी तथा किसी भी व्यक्ति को गृह जिले से दूसरे जिले में प्रवेश, यात्रा, सम्मेलन, आयोजनों आदि में जाने पर शक्त प्रतिबिन्धित लगा दिया गया व इस संबंध में प्रशासन से अनुमती लेनी होती थी तथा घर में जन्में नवजात बालक को भी इस काले कानून के तहत रजिस्टर किया जाता था।[6]

समाज शास्त्री 'मीना राधाकृष्ण' लिखती है कि ''इस अधिनियम के पीछे ब्रिटिश राज की मशां आदिवासियों को जन सामान्य कि गतिविधियों से दूर रखना था ताकि पुन: आदिम विद्रोह ना पनपे''। ''आपराधिक जाति अधिनियम'', ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा पारित काले कानूनों में से एक था जो भारतीयों पर उनके धर्म और जाति की पहचान के आधार पर लागू होता था। इस कानून के पीछे औपनिवेशिक औचित्य यह रहा - जैसे ब्रिटिश अधिकारी 'टी.पी. स्टीफेंस' के अनुसार जिन्होंने 1871 में यह कानूनी प्रस्ताव पेश किया—''की जब हम पेशेवर अपराधियों की बात करते है तो एक जनजाति जिसके पूर्वज अनादि काल से ही अपराधी है तथा इस जाति में होना उनकी किस्मत का अपराध है।'' इस कानून के माध्यम से औपनिवेशिक सरकार ने ''आपराधिक प्रवृत्ति'' के लिए ''आपराधिक जनजाति'' के रूप में सूचीबद्ध कर दिया।[7]

1857 ई. की क्रांति में ब्रिटानिया सल्तनत के विरुद्ध पहली बार एक व्यापक जन विद्रोह हुआ। आदिवासी और घुमंतू जनजाति के लोगों ने इसमें बड़े पैमाने पर हिस्सा लिया। इसके तुरंत बाद अंग्रेजी पुलिस ने समाज में अलग-अलग तबकों को ''आपराधिक'' घोषित करना शुरू कर औपनिवेशिक सरकार ने ''अपराधी जातियों'' की एक सूची तैयार की और जाति-जनगणना द्वारा इन जन-जातियों को ''आपराधिक पंजीकृत'' कर दिया गया।8

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भारी मात्रा में जन समुदाय ने औपनिवेशिक सरकार के विरूद्ध आवाज उठाई। आदिम जन-जातियों खानाबदोस, घुमन्तु परिवारों पर ब्रिटिश राज ने, जनता का सहयोग करने के कारण शोषण करना व नागरिक अधिकारों को प्रतिबन्ध करना शुरू कर दिया।[9]

जरायम-पेशा कानून का अर्थ है—''जो अनेक अपराधों के जरिए अपनी जीविका चलाता हो'', जो अपराधशील हो! राज्य में होने वाली चोरी-डकैती के लिए अक्सर आदिम जन-जातियों को ही जिम्मेदार ठहराया जाने लगा जिनमें भील, मीणा आदि प्रमुख थे। किसी के पास चोरी का माल बरामद न होने की स्थिति में भी 'कानून दादरसी' के अंतर्गत मीणाओं से माल की कीमत वसुली जाने लगी। इससे जन जातियों में आक्रोश व असंतोष फैल गया और कुछ लोग अपने ऊपर डाले गये इस दण्ड की क्षतिपूर्ति चोरी-डकैती से करने लगे।[10]

राज्य के कई जागीरदार भी मीणा जनजाति के लोगों का उपयोग 'आपराधिक' कार्यों के लिए करने लगे।[11] जयपुर रियासती सरकार ने भारत सरकार द्वारा पारित किये गये 'क्रिमिनल ट्राइबल्स एक्ट' 1871 (CTA) का लाभ उठाते हुए राज्य की मीणा जनजाति पर 'जरायम कानून' लागू कर दिया।[12] 1871 ई. के काले कानून को जयपुर, अलवर व भरतपुर राज्य सरकार ने 1930 ई. में संशोधित करके मीणा जनजाति पर लागू कर दिया व नागरिक अधिकारों को प्रतिबंध कर दिया। मीणा जनजाति अंग्रेजों और उनकी कठपुतली बन चुकी रियासतों को खतरा लगने लगी इसीलिए उनकी गतिविधियों को निगरानी करने के लिए मीणाओं पर 'जरायम कानून' 1871 (CTA) लागू कर दिया व उन्हें ''आपराधिक श्रेणी'' से सुचीबद्ध कर दिया।[13]

मीणाओं पर जरायम पेशा कानून लगने से उनका शोषण होना शुरू हो गया तथा दैनिक जीवन कार्यों में बाधा आने लगी तथा देश की स्वतंत्रता के के लिए किए जा रहे आंदोलनों का प्रभाव पढ़े-लिखें मीणा जाति के लोगों पर पड़ा तथा ''जरायम पेशा कानून'' के विरुद्ध आवाज उठाना शुरू कर दिया फलत: मीणा जनजातीय आंदोलनों का सुत्रपात हुआ। समाजसेवी मीणा जनजाति के लोगों ने 'मीणा जाति के अधिकारों' को प्राप्त करने के लिए सामाजिक संगठन बनाने का निश्चय किया। जिसके अग्रणीय नेता लक्ष्मीनारायण झरवाल थे। 1928 ई. मीणा जाति के लोगों ने 'मीणा सुधार' समिति बनाई किंतु यह संस्था भी असफल रही। 1933 में 'मीणा क्षत्रिय महासभा' की स्थापना की गई जिसमें निम्न क्षेत्रीय लोगों ने भाग लिया—दौसा, बसवां, बांदीकुई, मालपुरा, फुलेरा, रींगस, नीम का थाना, कोटपुतली, चौमूँ-चंदवाजी, सामोद आदि के मीणा सरदारों ने भाग लिया और जरायम कानून को समाप्त करने की मांग सरकार से रखी, परंतु सरकार इसके विपरीत कठोरता व दमनात्मक नीति से इस सभा को भंग कर दिया।[14]

लक्ष्मीनारायण झरवाल ने सन् 1930 के 'आर्य समाज मंदिर' के प्रजामण्डल अधिवेशन से राजनीति में नियमित रूप से भाग लेना प्रारंभ कर दिया। इस अधिवेशन में मानवाधिकारों के हनन के विरुद्ध जयपुर प्रजामण्डल संस्थापक हीरालाल शास्त्री व विजय शंकर शास्त्री से चर्चा की व प्रजामण्डल में रूचि ली तथा खादी पहनना, सामाजिक बुराइयों को दूर करना, राष्ट्रपिता गांधी जी के सत्य व अहिंसा पर आधारित रचनात्मक कार्य, छुआछूत, अंधविश्वास, जागीदारी, बेठ-बेगार, देश की अखण्डता, जन-जागरण में गहरी रूचि ली देश सेवा निजी स्वतंत्रता के लिए कड़ा संघर्ष जारी किया। 1939 ई. के जयपुर अकाल के समय जनता की सेवा की व ब्रिटिश विरोधी धारणा के कारण कई बड़े नेताओं के साथ गिरफ्तार किए गये। सन् 1933 ई. में शाहजहांपुरा में विराट 'मीणा जनजाति' सम्मेलन हुआ। व नागरिक अधिकारों के बारे में चर्चा की गई और इस सम्मेलन में संपूर्ण मीणा जनजाति पर 'मुनि' 'मगनसागर महाराज' ने 'मीन पुराण' लिखा, जिसमें मीणा जनजाति का इतिहास है।[15]

1941-45 ई. के मध्य के आंदोलनों के दौरान लक्ष्मीनारायण झरवाल को कई बार बन्दी बनाया गया। उन्हें जेल में शारीरिक और मानसिक यातनाएँ दी गई। उनसे जबरन हाथ की अंगुली से काली स्याही से प्रिंट लिया व एक आदेश जारी किया की उन्हें संबंधित थाने में प्रतिदिन 'तीन' बार में हाजिरी देनी होगी।

उस समय गौरवशाली व स्वतंत्र विचरण करने वाली मीणा जनजाति पर 'जरायम पेशा कानून' एवं 'कानून दादरसी' के अन्तर्गत 'दफा 28' से अनेक अत्याचार हो रहे थे जिससे मीणा समुदाय के समाज सेवी लोगों ने एक संगठित होकर विरोध करना शुरू किया जिनमें निम्न नेता थे। गणपत राम बगरानियां (नरहड), कालूराम मीणा (बामनवास), कप्तान छुटनलाल (सवाई माधोपुर), बाबूलाल पनगड़िया (जयपुर), प्रहलाद सिंह जी (दौसा), प्रभुदयाल हाटवाल (चौमूँ), रामकिशोर बागडी (सामोद) आदि।[16] (डायरी)

सन् 1944-66 तक लक्ष्मीनारायण झरवाल के नेतृत्व में कई सम्मेलन हुए तथा 'जरायम कानून' के खिलाफ सभा व संगठन होते रहे फिर भी परिणाम शून्य ही रहा व अंग्रेजी सरकार ने इन्हें अनदेखा कर दिया। इस जरायम कानून के खिलाफ निम्न जगहों पर सम्मेलन किए गये—निवाई मीणा सम्मेलन खेजरोली मीणा सम्मेलन, पावटा मीणा सम्मेलन, नीम का थाना मीणा सम्मेलन, बागावास मीणा सम्मेलन, कोटपुतली मीणा सम्मेलन आदि हुये पर अभी सरकार से मांग करी जा रही है कि ''हमें स्वतन्त्रता दो।''

1945 ई. लक्ष्मीनारायण झरवाल ने पं. जवाहरलाल नहेरू से भेंट की व नागरिक अधिकारों को प्रदान करने की मांग रखी।[17] 31 दिस. 1945 को 'उदयपुर' में 'देशी राज्य लोक परिषद' का आयोजन हुआ जयपुर प्रजामण्डल की तरफ से लक्ष्मीनारायण झरवाल ने प्रतिनिधि के रूप से भाग लिया तथा सम्मेलन में 'जरामय कानून' को रद्द करने संबंधी प्रस्ताव पेश किया।

बागावास 1946 ई. सम्मेलन में पं. हीरालाल शास्त्री ने विधिवत रूप से घोषणा कर दी कि आज से सभी मीणा जनजाति के लोग स्वतंत्र नागरिक है इस काले कानून को सरकार ने निर्दोष मीणा जनजाति पर से समाप्त कर दिया है और इस सम्मेलन को मीणा जनजाति के 'विजय दिवस' के रूप में मनाया गया। ब्रिटिश सरकार ने भारी जन आक्रोश को तथा लक्ष्मीनारायण झरवाल तथा अन्य समाज सेवी लोगों के मीणा जनजाति के लिए संघर्ष को देखते हुए 4 मई 1946 ई. 'जरामय कानून' से बच्चों व महिलाओं का आजाद कर दिया।[18] रींगस में जनरल कौंसिल की बैठक 1947 'धारा 28' के विरोध में हुई व लक्ष्मीनारायण ने इसकी अध्यक्षता की इस सम्मेलन में जगहों-जगहों से मीणा समुदाय के समाज सेवी लोगों ने भाग लिया व 'जरामय पेशा कानून' को समापत करने की मांग उठाई।[19]

मीणा युद्ध संचालन समिति के माध्यम से 5 जून 1947 को जयपुर में एक प्रभात फेरी व विशाल जुलूस का आयोजन किया गया। इस जुलूस में 'जरामय पेशा' को मुर्दा मानव मानकर ताबुत में उसकी आकृति बनाई व दूसरी ओर भुक्त जीवन मानव का एक विशाल चित्र बनाया जिसमें दासता, गुलामी बेगार तथा नागरिक अधिकारों के हनन के विरोध नारे अंकित थे।

भारी मात्रा में मीणा जनजाति के साथ आम जनता के लोगों ने भी भाग लिया और ''दफा 28' को दफना दो काले कानून को समाप्त करों'' के नारे लगाये गये। इस सम्मेलन का नेतृत्व लक्ष्मीनारायण झरवाल के साथ-साथ विभिन्न जगहों के मीणा जनजाति के सरदार व समाज सेवी नेता कर रहे थे। लोगों ने भाषण दिया कि ''जरायम कानून'' बर्दास्त नहीं होगा, हमें नागरिक स्वतंत्रता चाहिए। जी लक्ष्मीनारायण झरवाल का ओजस्वी भाषण हुआ तथा उन्होंने बताया की 10 अगस्त 1946 को समस्त मीणा जनजाति पर लगे प्रतिबन्ध हटाने के आदेश दे दिये थे। इस प्रकार वर्षों से चले आ रहे इस काले-कानून को सरकार ने समाप्त करने का निर्णय लिया। और लोगों को उनके प्राकृतिक अधिकार प्रदान करते हुये विधिवत रूप से आजाद भारत के प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने वर्षों से चले आ रहे इस 'जरायम पेशा' कानून को कानूनी रूप 31 अगस्त 1952 को समाप्त कर दिया। लक्ष्मीनारायण झरवाल के कडे संघर्ष व समाज सेवी नेताओं के अथक प्रयास से गौरवशाली व स्वतंत्र विचरण करने वाली इस मीणा जनजाति के लोगों को नागरिक अधिकार प्रदान किये गये।[20]

निष्कर्ष

राजस्थान में मीणा जनजाति का इतिहास बहुत पुराना है। राजस्थान के इतिहास में मीणा जनजाति का बहुत बड़ा योगदान रहा है। ब्रिटिश सरकार द्वारा इस जाति को जरायम पेशा कानून के दायरे में लाया गया। इस कानून के द्वारा सरकार ने दलित जनजातियों को दबानें का प्रयास किया। इन में वे सभी जातियाँ शामिल थी जो 1857 के विद्रोह में शामिल थी। यह कानून एक प्रकार से इन जातियों की स्वतंत्रता पर लगाम लगाना था। इस कानून ने समाज के युवा वर्ग के पैरों में बेड़ियाँ डाल दी थी। कानून लगने के बाद मीणा जाति का शोषण शुरु हो गया था। लक्ष्मीनारायण झरवाल जैसे नायकों के कडे संघर्ष व अथक प्रयास से गौरवशाली व स्वतंत्र विचरण करने वाली इस मीणा जनजाति के लोगों को नागरिक अधिकार प्रदान किये गये। यदि जरायम पेशा कानून समाप्त नहीं होता तो आज इस जनजाति का विकास की मुख्य धारा से जुड़ पाना संभव नहीं हो पाता।

संदर्भ

1. पण्डित हनुमान प्रसाद शर्मा 'नाथावतों का इतिहास', 1937 ई., राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 179.
2. कर्नल जैम्स टॉड 'एनाल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' 1889 ई., बम्बई, जिल्द 1, पृ. 283.

3. गौरी शंकर हीरा चन्द्र औसा 'उदयपुर राज्य का इतिहास' 1938 ई., अजमेर, जिल्द 2दक पृ. 543
4. बी. एल. पनगडिया 'राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम', 1995, जयपुर, पृ. 88.
5. लक्ष्मीनारायण झरवाल, 'मीणा जाति का इतिहास', जयपुर, 2015, पृ. 105, 113.
6. रावत सारान्वत, 'मीणा जाति का इतिहास', राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर 2018, पृ. 56, 82.
7. बी. के. शर्मा, टॉयब्लस रिवोल्युट, जयपुर, 1996, पृ. 21, 40.
8. राजपूताना गजेटियर वॉल्यू. 2 (a) पार्ट 4, 1829, दिल्ली, पृ. 227.
9. कविराज श्यामलदास - वीर विनोद, 1886 ई. उदयपुर, वॉल्यू. 2 (इ) पृ. 124.
10. अरावली उद्घोष, बी. पी. शर्मा, 1995, उदयपुर
11. ए. पी. माथुर, 'टाऊब्ल रिवोल्टस इन इण्डिया अण्डर द ब्रिटिश राज.' (उदयपुर) 1988, पृ. 178-179
12. फतेह सिंह मीणा 'मीणा भारती-बोराज', पृ. 188, 189
13. 'जगदीश सिंह गहलोत' जयपुर व अलवर राज्य का इतिहास, मध्यप्रदेश पृ. 227, 229
14. 'मगन मुनि सागर' मीण पुराण, 1933 ई., टोंक, पृ. 25-27
15. वही, पृ. 5, 11
16. लक्ष्मीनारायण जी झरवाल 'मीणा जाति का परिचय' जयपुर, पृ. 180, 190
17. वही, पृ. 122, 145
18. अमरसिंह राठौड़, 'राजस्थान स्वतंत्रता आन्दोलन : सुजस पत्रिका' उदयपुर, जुलाई 1995
19. 'लक्ष्मीनारायण जी की डायरी', पृ. 33, 45
20. वही, पृ. 18, 38

❑❑

कृपा शंकर
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय
जबलपुर, (उ.प्र.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

विश्व साहित्य में प्रवासी हिन्दी साहित्य का योगदान

हिन्दी प्रवासी कथा साहित्य शीर्षक के अंतर्गत मैं अपने देश मॉरीशस की बात करना अपने लिए सुविधा मान रहा हूँ। यह तो सर्वविदित है भारतेत्तर हिन्दी देशों में मॉरीशस का नाम सर्वोच्च रहा है और इसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं हैं। मॉरीशस मेरी मातृभूमि होने से मैं अपने लिए गर्व मानता हूँ यहाँ हिन्दी का इतना बोलबाला है। परंतु मैं अपनी ही बात का इस रूप में खंडन भी करता हूँ मॉरीशस में हिन्दी का बोलबाला होने का मतलब यह नहीं है यहाँ हिन्दी की धाक जमी हुई है। यहाँ फ्रेंच का प्रचार प्रबलता से होता है और हिन्दू मानस ने नौकरी की विवशता के कारण इसे स्वीकार कर लिया है। अंग्रेजी राज भाषा होकर भी दूसरे स्थान पर है। अब ऐसा नहीं लगता हिन्दी इन दोनों भाषाओं से आगे निकल पाने में सक्षम हो पाएगी। मैंने लिखा हुआ पढ़ा है भारत में हिन्दी को अंग्रेजी से खतरा है। ''हिन्दी की नाल जिस देश में गड़ी हुई है यदि वहाँ हिन्दी को अंग्रेजी से खतरा है तो मैं समझता हूँ मॉरीशस क्षम्य हो सकता है। परंतु मैं अपने देश की दिलेरी मानता हूँ भारतीयता को अपनाये रखने की प्रक्रिया में यहाँ हिन्दी को साथ में ले कर चलने का प्रचलन बरकरार है। मैंने पिछले दिनों भोपाल में हिन्दी भवन के महानिदेशक कैलाशचंद्र पंत जी से बातचीत के अंतर्गत कहा था मॉरीशस में हिन्दी महज भाषा नहीं है, बल्कि वह संस्कृति भी है। उन्होंने मेरी इस बात को गहराई से लिया था। वे मंच से बोलने के लिए खड़े हुए थे तो अपना भाषण इसी से शुरू किया था। उन्होंने ज्योंही कहा था रामदेव धुरंधर से उन्हें यह बात सुनने को मिली तालियों की गड़गड़ाहट शुरू हो गई थी।''[1]

मैं स्वयं जब अपने बचपन में हिन्दी से जुड़ा था तब हिन्दी हमारे घर में संस्कृति हुआ करती थी। आज भी मेरे मन में वह सुवास अक्षुण्ण है। आज मेरे देश में हिन्दी एक भाषा के रूप में आबाद है तो निस्सन्देह संस्कृति से ही इसका सींचन होता आया है। इस वक्त मुझे इस तरह से कहना अभीष्ट जान पड़ रहा है हिन्दी यहाँ जितनी भी है, जैसी भी है उसी को केन्द्र बना कर हम अपने वर्तमान को जी रहे हैं और आसार तो यह कहता है भविष्य में भी यह गति बनी रहेगी।

''भारत से 1834 में जहाज द्वारा प्रथम भारतीय मजदूरों का मॉरीशस आगमन हुआ था तब देश लगभग वीरान था। यहाँ फ्रांसीसी मूल के कुछ गोरे थे, अफ्रीकी नस्ल के थोड़े क्रुओल और देश पर शासन करने वाले अंग्रेज। मतलब यहाँ हिन्दी नहीं थी। यहाँ थी क्रुओल भाषा, फ्रेंच और अंग्रेजी भारतीय अपनी भाषा के साथ आए और स्पष्ट था दास जैसा होने से उन पर यहाँ के आकाओं का स्वामित्व होता। रोटी के जिसे लाले पड़े हों वह भाषा के लिए अपनी जान कहाँ तक खपा पाता। पर ऐसा भी था मॉरीशस की मिट्टी को स्वीकार था भारतीय संस्कृति यहाँ फले-फूले तो हिन्दी इस की संवाहक हो। प्रथम भारतीयों ने हिन्दी से ही अपनी लड़ाई को आगे बढ़ाया था और यह अस्मिता की लड़ाई बनकर पूरे देश में छतनार बनता गया था। भारत से लोगों के साथ रामायण और हनुमान चालीसा की प्रतियाँ आई थीं। ये पावन ग्रंथ मॉरीशस में गाये जाते थे। फ्रांसीसी मूल के गोरों ने इसमें अपने लिए खतरा मान कर इसे जब्त किया, लेकिन हवा के झोंके पूरे देश में मानो इस भारतीय धरोहर को गूंजित कर देते थे। हवा इसी बात पर सबल होती है। कोई किसी की साँसों पर अपना घेरा डाल ले, लेकिन हवा होगी कि एक कण ले कर उड़ जाएगी और कहीं न कहीं उसे रोप कर स्वयं उसका सींचन करेगी और एक दिन देखा जाएगा वहाँ तो एक अजीब सा वट वृक्ष लहलहा रहा है। यही इतिहास की थाती होती है। मॉरीशस के इतिहास को मैं इसी रूप में आँकता हूँ।''[2]

भारतीयों के साथ काव्य पुस्तकें आई और वहीं से यहाँ काव्य के प्रति समझ की भावना मुखर हुई। काव्य अर्थात् पद्य का सिला यहाँ लगभग एक शती चला। तोता मैना की कहानी, सीत बसंत, आल्हा उदल और इस तरह की अनेकानेक मौखिक कहानियों से मॉरीशस की धरती पर भारतीय मन और संस्कार को धार मिलती गई, लेकिन कहानी-लेखन की प्राण प्रतिष्ठा बहुत बाद में हुई। आर्य समाज की स्थापना से यहाँ व्याकरण सम्मत हिन्दी की एक पहचान बनी और इसी बीच प्रेमचंद की रचनाओं से यहाँ के लोग हिन्दी कहानी की परिभाषा से अवगत होने लगे। इसका श्रेय लोंग माऊँटेन में स्थित हिन्दी प्रचारिणी सभा को जाता है। मैंने शुरुआती हिन्दी की पढ़ाई वहीं से की थी। जितने लोग इस देश में हिन्दी के रचानाकार हुए और वर्तमान में जो लोग जीवित हैं कमोबेश हम सब के हिन्दी लेखन के ज्ञान का वही एक जगमगाता मंदिर है। वहाँ हिन्दी का एक विशाल पुस्तकालय हुआ करता था। मैंने गोदान वहीं से ले कर पढ़ा था। मैं मानता हूँ गोदान की छाप मुझ में सदा के लिए रह गई। आज मैं यदि प्रेमचंद को अपने लेखन के गुरु के रूप में स्वीकार करता हूँ तो यह उनके प्रति मेरे हृदय का सच्चा उद्‌गार है।

''यहाँ लोगों ने प्रेमचंद और दूसरे भारतीय कथा मनीषियों को 1940 के आसपास पढ़ना शुरू कर दिया था। लोगों ने देखा-देखी कहानियाँ लिखने का प्रयत्न तो किया, लेकिन तब कोई खास कहानी साहित्य बन न पाया था। हमारा देश 1968 में स्वतंत्र हुआ था और सच में यहाँ से कहानी-लेखन की एक विशेष नींव पड़नी शुरू हुई। मॉरीशस की स्वतंत्रता में हिन्दी का बहुत बड़ा योगदान था, लेकिन मैं अभी इस का खुलासा करने की स्थिति में नहीं हूँ। मुझे इस देश के कहानी साहित्य को परिभाषित करना है और मैं उसी पर केन्द्रित रहना चाहता हूँ। मॉरीशस की भारतीयता और हिन्दी के लिए यह एक वरदान जैसा था हमें राष्ट्रपिता शिवसागर रामगुलाम मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री, मिले थे जिनकी पढ़ाई इंग्लैंड में हुई थी, लेकिन उनका मन भारतीयता में बसता था। उन्हीं की उदार दृष्टि का सपरिणाम रहा स्वातंत्रयोत्तर मॉरीशस में भारत के हिन्दी लेखक पत्रकार आदि आने लगे। यह भूमिका मैं इसलिए बांध रहा हूँ क्योंकि मुझे इस लेख के लिए दो लेखकों के नाम लेना अत्यावश्यक लग रहा है। वे थे श्रद्धेय धर्मवीर भारती और कमलेश्वर। इन्हीं का सौजन्य रहा मॉरीशस में सारिका और धर्मयुग दोनों पत्रिकाएँ आती थीं। ये पत्रिकाएँ पाक्षिक हवाई जहाज से आती थीं और दोनों का दाम सवा रुपये था। मैं दस साल तक इनका नियमित पाठक रहा। हमारे देश के हिन्दी लेखक अभिमन्यु ने इन्हीं पत्रिकाओं से अपना तारतम्य बनाया था और भारत में उनकी पहचान बनती चली गई थी। धर्मवीर भारती और कमलेश्वर अनेकों बार मॉरीशस आए। इन्होंने यहाँ बिना पैसा लिये लेखन की कार्यशाला चलायी। जो लोग इनसे ग्रहण कर सके निश्चित ही ग्रहण किया। अभिमन्यु मुझ से आठ साल बड़े हैं। जाहिर है उन्होंने पगडंडी से शुरू हो कर राजमार्ग बनाना शुरू किया था। मैं जब कुछ बाद में पीछे-पीछे आने लगा तो मेरा भी थोड़ा नाम होता चला गया। मैं यह लिख रहा हूँ, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अपने को अधिक प्रकाशमान बनाने का लोभ कर रहा हूँ। बल्कि मेरे देश का कोई भी लिखे उसे इस सत्य पर केन्द्रित होना पड़ेगा। अब तो मॉरीशस में ऐसा भी अभियान चला लिया जाता है अभिमन्यु अनत का लेखन वास्तविक न हो कर ख्याली है। ऐसे लोगों का यह हठ तथा ईर्ष्या के अलावा और कुछ नहीं है। जब कि खास लिखा तो अभिमन्यु अनत ने ही। सारिका और धर्मयुग में अनत की कहानियाँ नित आती रहती थीं। उनका चेहरा देख कर उन्हें छापा जाता हो ऐसा तो कतई नहीं था। अभिमन्यु मुझ से कहते थे अकसर उनकी कहानियाँ लौटा दी जाती थीं। मैं भी इस दौर से गुजर चुका हूँ। इन दोनों पत्रिकाओं में मेरी दस तक कहानियाँ आईं। पर साथ ही इतनी कहानियाँ लौटी भी थीं। मैं हिम्मत की बात सामने रख रहा हूँ। मेरी हिम्मत पस्त पड़ गई होती तो मैंने कहानी का गलियारा ही छोड़ दिया देता।''[3]

''आजकल के बारे में कहना भी मेरे लिए यहाँ समीचीन हो रहा है। इस पत्रिका ने भी मॉरीशस के हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध करने में अपनी ओर से महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। मुझे याद आता है 1970 के आसपास केशवगोपाल निगम नाम के एक विद्वान के संपादकत्व में यह पत्रिका प्रकाशित होती थी। इन्होंने जब भी मेरी कहानी छापी उसके साथ अपनी ओर से कुछ लिखा। अभिमन्यु को तो वे उन दिनों भारत के दस कहानीकारों में बताते थे। आजकल का स्वर्ण जयंती अंक सन् 1995, में निकाला गया था जो इस पत्रिका के पचास साल का सफरनामा था। मैथिलीशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा इस तरह से पचास सालों के बीच जो लेखक उसमें छपे थे उनकी रचनाओं को इस अंक में संकलित किया गया था।''[4]

पाँच साल पहले आजकल में उधर का रास्ता शीर्षक से मेरी एक कहानी छपी थी। मेरा सौभाग्य था आजकल के स्वर्ण जयंती अंक में उसे स्थान दिया गया था। मैं संस्मरण के तौर पर इस बात को यहाँ उकेर रहा हूँ। जहाँ मैथिलीशरण गुप्त थे, महादेवी थीं, अपनी एक हल्की सी कहानी से मैं उनके आशीर्वाद से अपने को धन्य पा रहा था

अभिमन्यु अनत ने कहानी के बाद उपन्यास में अपने को आजमाया था। उनके प्रथम उपन्यास का शीर्षक था और नदी बहती रही। यह मॉरीशस के ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यास था। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन सन् 1976, मॉरीशस में आयोजित हुआ था। राजकमल प्रकाशन की निदेशिका शीला संधु जी उस अवसर पर मॉरीशस आई थीं। उन्होंने हम दो तीन लोगों के बीच शैर नदी बहती रही उपन्यास के बारे में कहा था इसकी सादगी भरी कहानी और सहज प्रवाहमयी भाषा ने उन्हें बहुत प्रभावित किया और वे इसे प्रकाशित करने के लिए तत्पर हो गईं। कालांतर में इसी प्रकाशन गृह से अनत का लाल पसीना प्रकाशित हुआ था। पर तब तक अनत स्वयं सादगी भरी कहानी और सहज प्रवाहमयी भाषा का अतिक्रमण करने में लग गए थे। यह ऐसा था अनत एक गंभीर लेखक के रूप में अपनी पहचान बनाने की होड़ में लगना चाहते थे। उन्हें इसमें सफलता मिली है। तब तो उनके शुरुआती और बाद के लेखन के अंतर को समझने के लिए उनका स्वयं का यह सीमा अतिक्रमण अपने आप में एक दस्तावेज है। अनत ने लाल पसीना के बाद फिर मुड़ कर पीछे नहीं देखा। वे धाराप्रवाह लिखते रहे और उसी अनुपात से उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती गईं।

''आज की तारीख में जब यह लेख लिख रहा हूँ अनत मुझे बहुत याद आ रहे हैं। हम ने महात्मा गांधी संस्थान में पच्चीस साल साथ काम किया। हम हिन्दी प्रकाशन का विभाग संभालते थे। प्रौढ़ों के लिए वसंत और बच्चों के लिए रिमझिम दो पत्रिकाएँ हमारी ओर से हिन्दी जगत में पहुँचती थीं। मैंने ऊपर में कहा अनत मुझ से उम्र में बड़े थे। संस्थान में उनका पद भी मुझ से बड़ा था। पर उन्होंने हम दोनों के बीच के इस अंतर को हमेशा अनदेखा किया और मुझ से मित्रवत व्यवहार करते रहे। हमारे बीच रोज मॉरीशस के हिन्दी लेखन के बारे में संवाद चलता था। तकरारें भी होती थीं। अनत के प्रिय लेखक शरतचंद थे और मैं प्रेमचंद को अपना मसीहा मानता था। यह तो हमारी आपसी मुठभेड़ की बात हुई। पर हम अपने देश के हिन्दी लेखन के प्रति एक ही मन और एक ही निष्ठा रखते थे। हम यथासंभव चाहते थे हमारे लोग लिखें और हमें अपनी रचनाएँ भेजें। अब तो अभिमन्यु अनत के संस्थान से अवकाश ग्रहण के बीस साल और मेरे बारह साल हुए। जहाँ तक मुझे याद है उन दिनों कहानी लेखन में कुछ लोग बहुत ही सक्रिय रहते थे। पुष्पा बम्मा, भानुमती नागदान ये दो महिलाएँ हुईं जिन्होंने अच्छा लिखा। अब नागदान रही नहीं और पुष्पा बम्मा हमेशा के लिए इंग्लैंड जा बसीं। पुरुषों में सूर्यदेव सिबरत, धनराज शंभु, राज हीरामन, इन्द्रदेव भोला आदि के नाम लेना मैं उपयुक्त मान रहा हूँ। इनकी रचनाओं में और प्रौढ़ता आए तो हमारे देश का एक अच्छा कथा साहित्य आकार में आ सकता है। मेरे देश के इन रचनाकारों ने कविता और कहानी दोनों विधाओं में लिखा है।''[5]

मेरे लिए कहना मुश्किल है कविता में ये लोग अव्वल हैं या कहानी लेखन में। मैं मॉरीशस की हिन्दी कहानी विधा के संदर्भ में जिन्हें प्रेमपूर्वक स्मरण में रख कर यहाँ उनके नाम उद्धृत कर रहा हूँ इनमें से किसी ने अब तक उपन्यास लेखन से अपना नाम रोशन नहीं किया है। हो सकता है इनमें से किसी किसी ने उपन्यास लिखे हों। यदि ऐसा हो तो इनके प्रकाशित उपन्यासों की हमें अवश्य प्रतीक्षा है।

''हमारे देश में हिन्दी साहित्य सर्जक के रूप में अपनी पहचान बनाने वाले अभिमन्यु अनत पचास साल से भी अधिक कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं की साधना में तनमय, समर्पित और तटस्थ रहे। दुर्भाग्य, आज स्वास्थ्य उनका साथ नहीं देता, फलत: वे लिखने की स्थिति में रह नहीं पाए हैं। ईश्वर ने मुझे थोड़ा बख्श रखा है और मेरी सक्रियता बनी हुई है। अभिमन्यु के बाद उपन्यास-लेखन की जिजीविषा शायद मुझ में ही अधिक मुखर रही और मैं कहानी के साथ उपन्यास को भी साधता चला आ रहा हूँ। यह एक संयोग रहा कि अभिमन्यु को उपन्यास विधा में प्राणवान बनाने वाली राजकमल प्रकाशन की शीला संधु ने मेरा भी उसी तरह से उत्साहवर्धन किया था। 1983 में मेरा पहला उपन्यास छोटी मछली बड़ी मछली राजकमल से ही प्रकाशित हुआ था। इसके बाद ज्ञैनेन्द्र कुमार के सुपुत्र प्रदीप कुमार ने अपने पूर्वोदय प्रकाशन गृह से मेरा दूसरा उपन्यास प्रकाशित किया था।''[6]

सभी समुदायों ने अपनी संस्कृति के कुछ अवयवों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षण किया है। इन संरक्षित उपकरणों में हैं धर्म, खाना और मनस्पटल पर अंकित कुछ संस्कार। परंतु भाषा का उपकरण वे हर जगह नहीं बचा पाए भाषा कुछ ही समुदायों में बची है—श्रीलंका के तमिल भाषी प्रवासियों में, जिप्सी लोगों में, नेपाल में, और यू.ए.ई. में जहां नहीं बची वे देश हैं—गयाना, त्रिनिदाद और मॉरिशस और जहां भाषा आज हासोन्मुख है वे देश है—फ़ीजी और सूरिनाम। जहां तक पश्चिमी सभ्यता वाले देश हैं, जैसे अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया, वहां पहली पीढ़ी में भारतीय मूल की भाषाओं का और विशेषकर हिंदी का प्रयोग निश्चित रूप से प्रचुर है, परंतु दूसरी और तीसरी पोड़ियों में विरासती भाषाएँ उत्तरोत्तर ह्रास की ओर बढ़ती हुई धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं।

सन्दर्भ

1. गवली कल्पना, हिन्दी प्रवासी कथा साहित्य-भाग 2, माया प्रकाशन-कानपुर, संस्करण-2018, पृ. 52
2. गौतम रामकुमारी, भारतीय भाषा मीडिया तथा जापानी भाषा मीडिया का तुलनात्मक अध्ययन, विकास प्रकाशन-कानपुर, संस्करण-2018, पृ. 21
3. गंभीर सुरेन्द्र, प्रवासी भारतीयों में हिन्दी की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ-नयी दिल्ली, संस्करण-2017, पृ. 61
4. गौतम रामकुमारी, भारतीय भाषा मीडिया तथा जापानी भाषा मीडिया का तुलनात्मक अध्ययन, विकास प्रकाशन-कानपुर, संस्करण-2018, पृ. 35
5. गौतम रामकुमारी, भारतीय भाषा मीडिया तथा जापानी भाषा मीडिया का तुलनात्मक अध्ययन, विकास प्रकाशन-कानपुर, संस्करण-2018, पृ. 45
6. गवली कल्पना, हिन्दी प्रवासी कथा साहित्य-भाग 1, माया प्रकाशन-कानपुर, संस्करण-2018, पृ. 23

❑❑

रिम्पी राय
शोध छात्रा, भूगोल विभाग
तिलकधारी महाविद्यालय
जौनपुर (उ.प्र.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

विकासखण्ड नवानगर, जनपद-बलिया (उ.प्र.) में जनसंख्या वृद्धि एवं उसका प्रभाव

सारांश

भूगोल में जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन एक महत्वपूण घटक है जिसकी सहायता से किसी क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि/ह्रास कारकों का अध्ययन किया जाता है एवं उसके आधार पर उस क्षेत्र के विकास हेतु आयोजन प्रस्तुत की जाती है। भारत जैसे देश में इस प्रकार के अध्ययन का महत्व तब और अधिक बढ़ जाता है जब यहाँ की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है एवं इस वृद्धि का प्रभाव यहां के संसाधनों पर पड़ रहा है जिसके कारण यहाँ व्यापक सामाजिक, आर्थिक अन्तराल दृष्टिगोचर हो रहा है। इसलिए वर्तमान भौगोलिक परिदृश्य में किसी क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि एवं उसके सामाजिक आर्थिक प्रभाव का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक एवं समाचिन है।

शब्द संक्षेप : जनसंख्या वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि प्रक्षेपण, जनसंख्या स्थानान्तरण, जन्मदर, मृत्युदर, जैविक घटक, अजैविक घटक, सामाजिक घटक, सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य।

प्रस्तावना

जनसंख्या वृद्धि का अर्थ किसी निश्चित क्षेत्र में निवास करने वाली संख्या में वृद्धि से है। जनसंख्या वृद्धि के वर्तमान में अनेक कारण विद्यमान है। आर्थिक बेरोजगारी जनसंख्या बल में वृद्धि, धर्मांधता आदि ऐसे कारण जिनसे की जनसंख्या बढ़ रही है जिसके कारण बहुत सारे सामाजिक, आर्थिक पक्ष प्रभावित हो रहे है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य नवानगर विकासखण्ड की जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन करना है एवं इस वृद्धि के परिणामस्वरूप होने वाले सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों का भी अध्ययन करना है।

आंकड़ा संग्रह एवं अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। इन आंकड़ों का संग्रह जनपद सांख्यिकी पुस्तिका एवं जनपद जनगणना हस्तपुस्तिका से संग्रहीत किया गया है तथा शोध पत्र पूर्ण करने हेतु उल्लेखित पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का अध्ययन किया गया है। ये आंकड़े वर्ष 1991 से 2011 के दशक में जनसंख्या वृद्धि के स्थानिक-कालिक अध्ययन पर आधारित है। उपर्युक्त आंकड़ों को सांख्यिकी व गणितीय विधि का प्रयोग कर विश्लेषित व संश्लेषित किया गया है तथा MS-Excel-2007 की सहायता से चार्ट बनाया गया है। जनसंख्या वृद्धि दर ज्ञात करने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया गया है।

$$\text{जनसंख्या वृद्धि दर} = \frac{(\text{वर्तमान जनसंख्या} - \text{पूर्व की जनसंख्या}) \times 100}{\text{पूर्व की जनसंख्या}}$$

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र नवानगर विकासखण्ड उत्तर प्रदेश के पूर्वी छोर पर आजमगढ़ मण्डल के बलिया जनपद के सिकन्दरपुर तहसील का एक भाग है। नवानगर विकासखण्ड का अक्षांशीय विस्तार 26° 4′27″ उत्तर से 26° 8′18″ उत्तर तथा देशान्तरीय विस्तार 83° 53′31″ पूरब से 84° 7′32″ पूर्व के मध्य है। विकासखण्ड की उत्तरी सीमा का निर्धारण घाघरा नदी द्वारा दक्षिण सीमा का निर्धारण पन्दह विकासखण्ड द्वारा होता है। पूर्वी सीमा का निर्धारण मनियर विकासखण्ड द्वारा होता है। अध्ययन क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 180.83 वर्ग किमी. एवं वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार यहां की कुल जनसंख्या 158024 है। यहां की कुल न्याय पंचायतों की संख्या 10 है यहां निवास करने वाली जनसंख्या का मुख्य व्यवसाय कृषि ही है।

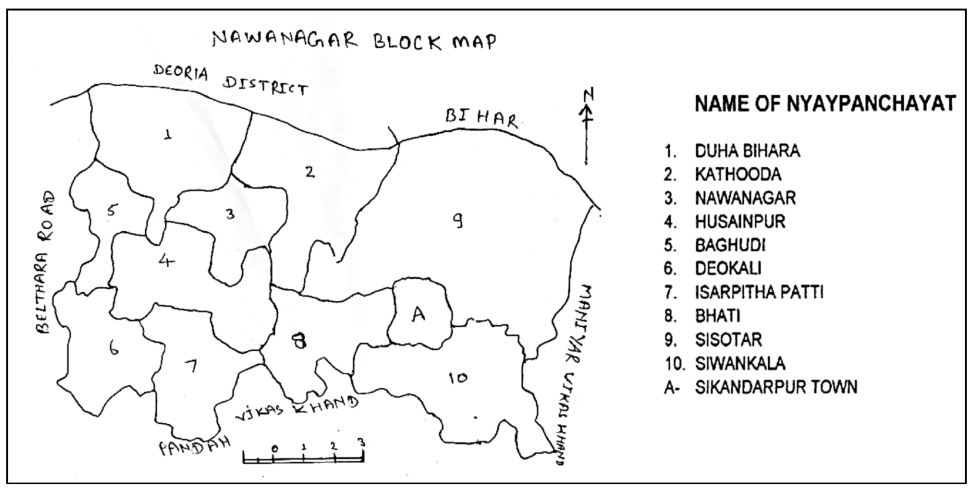

विश्लेषण एवं व्याख्या

विकासखण्ड नवानगर में जनसंख्या वृद्धि के अध्ययन हेतु दशकीय जनसंख्या वृद्धि एवं न्याय पंचायतवार जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन किया गया है।

सारणी संख्या 1.1 में वर्ष 1951 से 2011 तक की जनसंख्या वृद्धि का आंकड़ा प्रतिशत में दिया गया है। आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या वृद्धि दर में काफी उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है। हम

सारणी 1.1

विकासखण्ड नवानगर : दशकीय जनसंख्या वृद्धि

वर्ष	जनसंख्या वृद्धि प्रतिशत में
1951	13.17
1961	15.26
1971	17.35
1981	18.96
1991	19.35
2001	18.36
2011	16.35

स्रोत : सेन्सस हैण्ड बुक ऑफ इण्डिया 2011

देखते हैं कि 1951 एवं 1991 तक जनसंख्या में लगातार वृद्धि हुआ है तत्पश्चात 1991 के बाद जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आयी है जो एक शुभ संकेत की ओर इशारा करती है। जो सामाजिक, आर्थिक जागरूकता का ही परिणाम है अन्यथा रूढ़िवादी भारतीय समाज में बच्चों को ईश्वरीय देन माना जाता है जिससे कि जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होती है जिससे समाज पर इसका दुरगामी प्रभाव गोचर हो रहा है। इसके विविध सामाजिक आर्थिक परिणाम भी सामने आ रहे हैं।

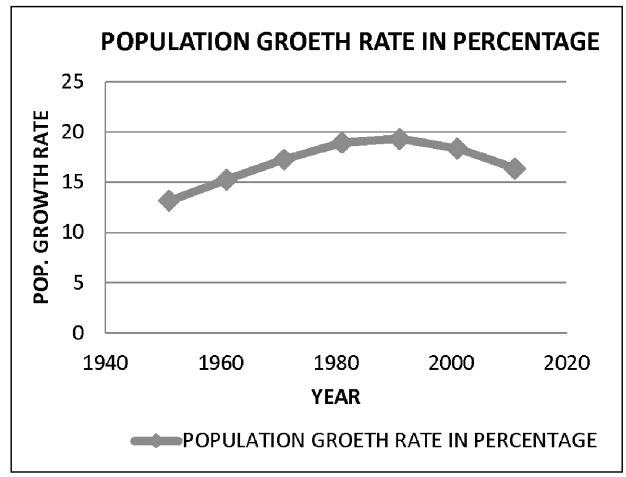

सारणी 1.2

विकासखण्ड नवानगर : न्याय पंचायतवार जनसंख्या वृद्धि वर्ष 2001 एवं 2011

न्याय पंचायत	जनसंख्या वृद्धि 2001	जनसंख्या वृद्धि 2011
1. डूहा बिहरा	16.35	15.67
2. कठौड़ा	15.96	15.12
3. सीसोटार	17.15	17.12
4. बघुड़ी	14.26	13.95
5. नवानगर	14.96	13.94
6. भाटी	14.35	15.03
7. हुसेनपुर	16.26	15.95
8. देवकली	14.15	13.93
9. सिवानकला	14.69	13.90
10. इसारपीथा पट्टी	15.32	14.87
11. सिकन्दरपुर कस्बा	14.61	27.67

स्रोत : जनगणना हस्तपुस्तिका वर्ष 2001 एवं 2011

सारणी 1.2 में न्याय पंचायतवार वर्ष 2001 एवं 2011 की दशकीय जनसंख्या वृद्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्ष 2001 की तुलना में 2011 में जनसंख्या वृद्धि के प्रतिशत में कमी आयी है परन्तु यह ह्रास अत्यल्प है जिससे कि अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या एक समस्या बनी हुई है। इसका मुख्य कारण अत्यधिक आश्रित जनसंख्या का होना, जनसंख्या में कौशल का अभाव, अध्ययन क्षेत्र में मूलभूत रोजगार के स्रोतों का अभाव एवं जनसंख्या नियंत्रण के साधनों के बारे जागरूकता का अभाव है।

जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव

अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि के बहुत सारे परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इनमें प्रमुख निम्नवत् है—

1. **जोतों का आकार छोटा होना**—जनसंख्या वृद्धि के कारण जोतों का आकार छोटा होता जा रहा है जिससे कि कृषि उत्पादकता प्रभावित हो रही है एवं इसका लाभ किसानों को नहीं मिल पा रहा है।

2. **खाद्य पदार्थों की कमी**—कृषि योग्य भूमि सिमटी जा रही है एवं जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है जिससे कि जनसंख्या हेतु भोजन की आपूर्ति नहीं हो पा रही है।
3. **आवास की कमी**—बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए आवास उपलब्ध कराना एक बड़ी समस्या है। आवास अनुपलब्ध होने के कारण एक बढ़ी आबादी आसमान के नीचे रहने हेतु मजबूर है।
4. **बेरोजगारी में वृद्धि**—बढ़ती हुई जनसंख्या हेतु रोजगार उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती है। रोजगार के अभाव में अपराधों में वृद्धि हो रही है जो चिन्ता का विषय है।
5. **यातायात एवं परिवहन के साधनों पर अत्यधिक दबाव**—परिवहन के साधनों पर दबाव दिनोंदिन बढ़ रहा है जिससे कि लगातार दुर्घटनाएँ हो रही है।
6. **शिक्षा, चिकित्सा आदि की अनुपलब्धता**—तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या हेतु शिक्षा, चिकित्सा आदि संसाधनों को उपलब्ध नहीं कराया जा पा रहा है जिससे कि विविध समस्याएँ उत्पन्न हो रही है।
7. **अपराध में वृद्धि**—रोजगार आदि की उपलब्धता के अभाव में विभिन्न प्रकार के अपराधों में वृद्धि हो रही है जो चिन्ता का विषय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समस्यायें अध्ययन क्षेत्र में दृष्टिगत हो रही है जो अध्ययन क्षेत्र के विकास में बाधक है।

उपसंहार

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि नवानगर विकासखण्ड की जनसंख्या वृद्धि दर में उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है। हालांकि नवानगर विकासखण्ड की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर (2011) भारत की जनसंख्या के दशकीय वृद्धि दर (2011) से कम है। परन्तु जनसंख्या में कौशल विकास की कमी, क्षेत्र में मूलभूत रोजगार के साधनों का अभाव से जनसंख्या एक समस्या बनी हुई है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या में कमी करने हेतु छोटे परिवार की उपयोगिता के प्रति लोगों को जागरूक किया जाय एवं संसाधनों का विस्तार किया जाय जिससे कि एक सभ्य समाज की कल्पना की जा सके।

सन्दर्भ

1. तिवारी, बृजेश 2002 जनसंख्या पर्यावरण एवं विकास : जनपद मऊ (उ.प्र.) का एक भौगोलिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.
2. पाठक, गणेश कुमार 1993 बलिया जनपद उ.प्र. में सेवा केन्द्र एवं ग्रामीण विकास में उनका योगदान, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद
3. जर्नल ऑफ इन्टीग्रेटेड डवलपमेंट एण्ड रिसर्च, समग्र विकास एवं शोध संस्थान, श्रीराम बिहार कालोनी, बलिया
4. चौबे भगवान जी 2004, सिकन्दरपुर तहसील (बलिया, उ.प्र.) में भूमि उपयोग प्रारूप में परिवर्तन एवं नियोजन, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र.

❑❑

डॉ. राठोड दिलीप किशन
शोध छात्र, पीएच.डी. हिन्दी
पु.अ.हो. सोलापुर विश्वविद्यालय
सोलापुर, महाराष्ट्र

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

बंजारा लोकगीतों में परिवर्तन के संकेत

सारांश

बंजारा कवियों का दृष्टिकोण सुधार का रहा हैं। अपने गीतों के माध्यम से शराबी के वास्तविक जीवन का रेखाचित्र खींचकर जनों के समुख प्रस्तुत करते हैं। शराबी अपनी बुरी आदतों के कारण घर की होली कर देता हैं। बार बार पुलिस थाने के दर्शन करने के बाद भी अपना मार्ग त्यागते नहीं हैं। इसलिए बंजारा भक्तजन अपने प्रवचन के मार्ग से समझाने का प्रयास करता हैं। बंजारा समुदाय के संतोने भी यह कुमार्ग त्यागने के लिए संदेश देते रहे है और सरकार के द्वारा भी प्रयत्न किया गया। और आज लोकगीत के माध्यम से बंजारा समुदाय में परिवर्तन हुआ दिखाई देता हैं।

बंजारा समुदाय में सत्संग के माध्यम से यही कहा गया कि हे बंजारा भाईयो, इस अज्ञान से जाग जाओ। अज्ञान को हराने के लिए विद्या को प्राप्त करो जो वहुमूल्य हैं। ज्ञान ही हमारी रक्षा करता हैं। जिसे कोई चोर नहीं ले जाता हैं। न टूट फुटता हैं। बल्कि उसमें दिन से दिन वृद्धि होती हैं। इसलिए भाईयों थोडा गंभीरता से सोचो और अपने बाल कच्चों को शिक्षा देकर परिवार का कल्याण कर सकते हैं। इस तरह शिक्षा प्रसार हेतु तांडों में उपदेश देकर परिवर्तन का संकेत दिया गया। आज शिक्षा गृहन करके समुदाय में परिवर्तन हुआ हैं।

आज नगर की सभ्यता के प्रभाव से शिक्षित परिवारों में सामान्य वेशभूषा को अपनाया जा रहा हैं। बंजारा समुदाय के तांडो में भी नई पीढ़ी की लड़कियाँ पारंपारिक वेशभूषा का त्याग कर रही हैं। और आज बंजारा समुदाय में वेशभूषा परिवर्तन बदलते परिवेश के साथ-साथ हो रहा हैं।

चोरी जैसा अनैतिक मार्ग छोड़कर एक अच्छी जिन्दगी व्यतीत कर सकते हैं। चोरी जैसा बुरा कर्म करने के कारण हमारे अराध्य दैवत सेवाभाया की बदनामी हो जाती है। इसलिए बुरा कर्म त्यागकर सेवाभाया की अराधना करने से आपका जीवन धन्य हो सकता हैं। आज बंजारा समुदाय में लोकगीतों के माध्यम से चोरी जैसा अनैतिक मार्ग छोड़कर सभ्यता का जीवन सफल होता आज परिवर्तन के साथ दिखाई देता हैं।

बंजारा समुदाय में लोकगीतों के माध्यम से धीरे-धीरे परिवर्तन की धारा बहने लगी तांडो-तांडों में भजन मंडलियाँ स्थापित हुई। सामान्यत: यही देखा जा रहा था कि अब बंजारा समुदाय पशुवृत्ति को त्यागने के लिए मानसिक दृष्टि से तैयार हो रहे थे। शिक्षा संबंधी, मद्यपान संबंधी एवं विविध बुरी आदतों को त्यागने संबंधी उपदेश दिये इस वजह से आज बंजारा समुदाय में परिवर्तन होता दिखाई देता हैं।

प्रस्तावना

बंजारा समुदाय के लोग सामान्यत: उत्तरी पश्चिम सीमा से समूचे भारतवर्ष में फैल गये। धुमन्तू अवस्था में पशुओं के लिए चारा एवं उपजीविका की उन्हें तलाश थी। इस समुदाय का अन्य क्षेत्र से शनै:-शनै: परिचय बढता गया और एक आदिम समुदाय की तरह जंगल, पहाडों, नारियों के आसपास भ्रमण करते रहें। अत: यह घुमल्तू अवस्था कई वर्षो तक चलती रही।

कोई भी स्थिरता पाने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि इस समुदाय में एक प्रकार की हिचकिचाहट एवं संकोच की भावना से ग्रस्त रहने के कारण अपने आपको प्रथक मानकर जंगलों और दुर्गम स्थानों मे भटकते रहे जिससे व्यवस्थित समुदाय के लोगों से उनका सीधा सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका। यह घुमन्तू का सिलसिला कई वर्षोंतक चला वैसे बंजारा समुदाय की भाषा, वेशभूषा, संस्कृती आदि की प्रथकता रहने कारण भी गांव से दूर रहे फिर भी आगे चलकर शनैः-शनैः सांस्कृतिक अदान-प्रदान का समन्वय होता रहा।

मनुष्य के जीवन में एक दिन ठहराव आता है। एक आदिम समुदाय सामानों को पीठपर लादकर कब तक सफर करेगा। कब तक भटकता रहेगा। इसीतरह कुछ वर्षों के बाद आजादी का संघर्ष थम गया और बंजारा समुदाय को लगने लगा कि कब तक सफर करेंगे सफर करते-करते मानों वे थक से गये थे इसलिए कुछ लोगों ने गांव से थोड़ी दुरी पर बसने का निर्णय कर लिया और कुछ भटकते रहे। कुछ दिनों के पश्चात सभी बंजारा समुदाय ने गाव से थोडे अंतर पर तांडे बसाकर स्थिरता की राहत महसूस की। इस समुदाय की विशेष बात यह रही की गांव से दूर पहाड़ों, जंगलों में रहकर अपनी विशेष संस्कृती को आज तक सुरक्षित बनाये हुए हैं। सभी बंजारा समुदाय पहाड़ों में अत्याधिक संख्या में तांडे के रूप में बस चुके हैं। पहले-पहले पशु-पालन से अपनी उपजीविका करनेवाला यह समुदाय धीरे-धीरे जमिंनदारों की खेती में परिश्रम करने लगा। इस प्रकार से कुछ बंजारे किसान खेत मजदूर, पशुपालन और कुछ अधिक संख्या में कारखानों पर गन्ना तोड़ने के लिए जाने लगे। इसतरह के कर्म करते हुए बंजारा समुदाय स्थिर हो गया। लेकिन शिक्षा के अभाव के कारण, अंधश्रद्धा, रूढीपरंपरा के कारण समुदाय में अज्ञान वर्षोंतक कायम था। शिक्षा के प्रति कोई आस्था नहीं थी और शिक्षा की व्यवस्था भी तांडों में न रहने के कारण विकास न हो सका। बंजारा समुदाय के सुधार के लिए मार्गदर्शन करनेवाले न के बराबर थे। आगे चलकर परिवर्तन की, अनिवार्थता महसूस होने लगी इसलिए भजन, सत्संग के माध्यम से बंजारा समुदाय के लिए तांडों में जागरण की सुप्रथा शुरू हो गई थी। अतः उक्त पद्धति से जागृति का द्वार खुल गया था जो परिवर्तन के लिए सहायक रहा।

लोकगीत और परिवर्तन

लोकगीत ही परिवर्तन का माध्यम रहा हैं। आदिम समुदाय को सही मार्ग केवल लोकगीतों के माध्यम से ही दिया जाता हैं। और यही एक प्रभावशाली पध्दति रही हैं। क्योंकि अन्य माध्यम से इन समुदाय को सम्बोधन करना असंभव हैं। बंजारा समुदाय अपने सुधार संबंध में पूर्ण अनभिज्ञ, अज्ञानी रहा हैं। इसलिए उन्हें जगाकर एक सही रास्ता दिखाना आवश्यक था। जनजाग्रति के सत्संग कर्यक्रम तांडो-तांडों में चलते रहें। दिनभर परिश्रम करना और रात्री के भोजन के पश्चात तांडे के मध्य में आकर स्त्री-पुरूष के सामने भजन के माध्यम से उपदेश करना। यह प्रक्रिया चलती रही। इसका मुख्य उद्देश्य जनहित के लिए जाग्रति ही था।

बंजारा भक्तजन सत्संग के माध्यम से यही कहते रहे कि, हमने आज तक जानवरों के समान जीवन व्यथीत किया हैं। अतः अब परिवार के विषय में, संतानों के भविष्य के संबंध में सोचविचार करना जरूरी हैं। नही तो हमारे समान ही उनका जीवन पशुसमान बन जायेगा। हे बंजारों, अब अपने-अपने बच्चों को पढाओं, शराब को त्यागना होगा, चोरी से दुर रहना पडेगा, इन बुरी आदतों से जब तक हमारा छुटकारा नहीं होगा उस वक्त तक परिवार का होई विकास नहीं होगा। इसतरह के उपदेश भजन के माध्यम से करने लगे। इन्सान चाहे कितना क्यों न अज्ञानी रहें उसे संगीत अपने वश में कर लेता हैं। इसलिए परिवर्तन के बीज बोने के लिए सत्संग जैसा माध्यम ही क्रांतीकारी सिध्द होता हैं।

परिवर्तन संबंधी जागृति गीत

बंजारा समुदाय में धीरे-धीरे परिवर्तन की धारा बहने लगी तांडो-तांडों में भजन मंडलियाँ स्थापित हुई। सामान्यतः यही देखा जा रहा था कि अब बंजारे पशुवृत्ति को त्यागने के लिए मानसिक दृष्टि से तैयार हो रहे थे। शिक्षा संबंधी, मद्यपान संबंधी, एवं विविध बुरी आदतों को त्यागने संबंधी उपदेश दिये जाने लगे थे और इस संदर्भ में बंजारे सोचविचार कर रहे थे। यही प्रारंभिक सफलता थी।

1. मध्यपान संबंधी परिवर्तन

एक प्रसिद्ध तरल मादक पदार्थ को मद्य या मदिरा कहते हैं। सामान्य स्तरपर उसे शराब कहते हैं। जो गूड जैसी चीजों को सड़ाकर बनाई जाती हैं। जो व्यक्ति अधिक शराब पीता हैं। उसे लोग शराबी कहते हैं। और तांडे में उसे दारूड्या कहते हैं। जिसकी ओर निन्दनीय दृष्टि से देखा जाता हैं। ऐसे व्यक्ति केा समाज के कोई स्थान नहीं रहता। संसार में लाखों व्यक्ति ऐंसे हैं। जो शराब के आदि बनकर घर को दरिद्रता की खाई में ढकेल चुके हैं। परिवार की, दुर्दशा न हो इसलिए कुछ भक्तजन भजन के माध्यम से उपदेश देते रहे।

पिलेताळी डुलगो, आचो बला भुलगो
अम्रत विषेन गलगो।
चढजाय नशा तो व्हिय दुर्दशा
घडीरों तो बाशा, बंळो पीढ़ी रो नाशा।
दाडेदोपेर डूबगो, अंधारों पडगो

प्रस्तुत परिवर्तन गीत का भाव यही हैं। कि मद्य का सेवन करके अच्छा इन्सान अच्छा बुरा भूलकर अपने शरीर की दुर्दशा कर लेता हैं। वह शराब में धूत स्वयं को दो घड़ी का बादशाह समझ बैठता हैं। लेकिन नशा उतरने के पश्चात मुंह सुख जाता हैं। और घर को अंधेरे की खाई में डूबकर सर्वनाश कर देता हैं। इसलिए इस कुमार्ग से हठने के लिए लोकगीतों के माध्यम से बार-बार विनय याचना करते रहे।

2. शिक्षा संबंधी परिवर्तन

बंजारा समुदाय में शिक्षा का अभाव यह एक भयंकर समस्या हैं। किसी भी समुदाय के लिए शिक्षा अनिवार्य हैं। क्योंकि शिक्षा ही क्रांति का बीज कहलाता हैं। आजतक जिस किसी समुदाय ने शिक्षा को जीवनदायिनी के रूप में महत्व दिया हैं। उस समाज में विकास की वृद्धि हुई हैं। इसमें कोई संदेह नहीं हैं। बंजारा समुदाय जंगलों एवं पहाड़ों में भेड बकरियों के साथ भटकता रहा और आज भी कुछ लोगों को छोडकर भटक ही रहा हैं। शिक्षा से ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता हैं, अपने विचार को व्यक्त कर सकता हैं। आपने परिवार का विकास कर सकता है। और अपने समुदाय एवं जनजाति को एक नया रास्ता दे सकता हैं। लेकिन बंजारा समुदाय में इतनी जागृती न होने के कारण वे आज भी पूर्णत: ईश्वर में विश्वास रखते हैं। कि प्रभु ही हमारा कल्याण कर सकता हैं। सत्संग के द्वारा इन सभी समस्याओं को लेकर अवगत कराया गया हैं।

देव तारों रं न्याय खोटो छं, खोटों छरं
सारी दन काम करं, बाटी छेनी पेटभरन रं
जसो राबरोच ढोरं, वस्त्र छेनी डीले परं
न्यायीन तारों तराजू फररों गरगर,

प्रस्तुत गीत के माध्यम से यही कहा गया हैं। कि हे प्रभु तेरा न्याय मिथ्या एवं झूठा हैं। यह पीडित लोग सारा दिन जानवर की तरह श्रम करने के पश्चात भी तन ढकने के लिए वस्त्र तक नहीं मिलता। यह तुम्हारा ऐसा कैसा न्याय हैं। प्रभु तुम्हारा तराजू तो गति से घुम रहा हैं। इसप्रकार अज्ञानी अंधश्रद्धालु समुदाय रहने के कारण अभाव का दोष परमात्मा को देता हैं। ज्ञानी व्यक्ति अपने कर्म में विश्वास करता हैं। और दृढ संकल्प से अपने जीवन को उज्ज्वल बना देता हैं। लेकिन बंजारा समुदाय अत्याधिक श्रद्धालु रहने के कारण प्रभु में विश्वास करते हैं। कि वहीं उनका उद्धार करेगा। इसलिए विविध प्रकार के वृत, मनोकामना करते हुए प्रभु को प्रसन्न करने की कोशिश करते हैं। लेकिन बंजारा कवियोंद्वारा यही उपदेश दिया गया कि शिक्षा के माध्यम से ही घर मे उजाला निर्माण हो सकता हैं।

3. वेशभूषा संबंधी परिवर्तन

वेशभूषा के संदर्भ में बंजारा संतो में काफी दिनों से विवाद चलता रहा। वस्त्र परिवर्तन के संबंध में दो मत प्रस्तुत हुए।

एक मत रामराव महाराज का इस प्रकार रहा कि बंजारों का मूल वस्त्र ही अच्छा हैं। वे कहते थे कि साडी पहनेवालों को भगवान सेवाभाया अच्छा नहीं समझते और यह कार्य सेवाभाया को पसन्द नहीं। बंजारा समुदाय सेवाभाया को अपना आराध्य दैवत मानते हैं। इसलिए अत्याधिक लोग वस्त्र परिवर्तन के पक्ष में नहीं थे। दूसरा मत संत ईश्वर सिंग बाबा का हैं। जिन्हें बंजारा समुदाय आदर से देखता हैं। वे कहते रहे कि अपना पारंपारिक वस्त्र त्यागकर साडी पहनकर परिवर्तन के मार्गपर चलो। संत ईश्वर सिंग बाबा ने वेशभूषा परिवर्तन के लिए तांडो में उपदेश देते रहें।

सामळो मारी बाई याडी
डाई साळी बूढी ढाडी
रंग दनियारों देखों
बलान दूर फेको।
काडी बकियारों टेकों
खारी तम घळो धोको।
टाढ़ी बार फुंदा जोड़ो
कसेबार घुंडी जोडो।
काठी ये काचे कोडी
छोडो अब जुनी रूढी।

इस उपदेश गीत के माध्यम से यही कहा गया हैं। कि हे बहनों, काकिओं एवं माताओं हमारी बात मान भी जावों की अब दुनिया बदल गई हैं। इसलिए इस पुराने लिबास का अब त्याग करो, और नयी दुनिया की ओर देखकर साडी पहनना सिखों क्योंकि पुरानी वेशभूषा, केशविन्यास यह सारी बातें बडी समस्याजनक हैं। इसलिए कविजन नये धारण करने के लिए प्रेरित करते रहे।

4. चोरी संबंधी परिवर्तन

बंजारा समुदाय का जीवन जंगलों, पहाडों एवं पर्वतों में व्यतीत होता रहा। स्थिरता के बाद पशुपालन एवं खेती का व्यवसाय करने लगे लेकिन कुछ पशुपालन एवं खेती का व्यवसाय करने लगे लेकिन कुछ लोग जो न खेती करने में रूचि थी न पशुपालन में ऐसे प्रवृत्ति के लोग अपनी उपजीविका के लिए चोरी करने लगे जो धार्मिक दृष्टि से अनैतिक कार्य हैं। जब जाति ही अज्ञानी एवं जंगली हैं। तो वहाँ पर नैतिकता एवं अनैतिकता की सभी बातें गौण हो जाती हैं।

तांडे के कुछ लोग इस तरह का कुमार्ग अपनाकर समूची जनजाति को बदनाम कर रहे थे। उसका परिणाम भी ऐसा गंभीर हुआ कि व्यवस्था भी इस जनजाति की ओर एक अपराधी के रूप में देखने लगी जिसका परिणाम पूर्णत: जातिपर हुआ। यह मार्ग त्यागने के संदर्भ में बंजारा संत सेवाभाया कहते रहे...

करीये चोरी
खाय कोरी
घरे मुंडियान एकच मोरी
डोरी-डोरी हिंडिये राम।

अपराधी वृत्ति के लोगों को बार-बार सजा दी जाती हैं। हाथों में बेड़ियाँ पहनाकर सड़क-सड़क घुमाया जाता हैं, फिर भी उन्हें पश्चाताप नहीं होता। ऐसें कुमार्गपर न जाने के लिए बंजारा सत्संग के माध्यम से सुमार्ग का पथ दिखाया गया हैं।

निष्कर्ष

बंजारा समुदाय के लोगो का जीवन पहाडों एवं जंगलो में व्यतीत रहा है। बंजारा लोक अनी उपजीविका के लिए चोरी करने लगे। ऐसे अपराधी लोगों को बार-बार सजा दी जाती थी। ऐसे कुमार्ग से बचाने के लिए बंजारा लोक सत्संग के माध्यम

से सुमार्ग का पथ दिखाया गया है। बंजारा समुदाय में परिवर्तन का बीज बोने के लिए सत्संग जैसा माध्यम ही क्रांतिकारी सिद्ध होता है। वर्तमान काल में जैसे जैसे शिक्षा का प्रचार-प्रसार समुदाय में हुआ वैसे-वैसे स्वयं वेशभूषा में परिवर्तन करते दिखाई देता है।

बंजारा समुदाय में आज धीरे धीरे शिक्षा के प्रति जागरुकता निर्माण हो रही है। हर किसी तांडे मे आज चार-पाँच नौकरी करनेवाले बुद्धिवाद जन दिखाई दे रहे है। उनकी ओर देखकर शेष जनो को प्रेरना मिल रही है। कि अपना भी बच्चा एक दिन पढ लिखकर साहब बनेगा। अब लोगो को विश्वास होने लगा है। कि शिक्षा के बिना परिवर्तन नही है। बंजारा लोकगीतो के माध्यम से बंजारा समुदाय में परिवर्तन करणे के लिए संकेत दिया है।

संदर्भ

1. डॉ. गणपत राठोड : बंजारा लोकगीतो का सांस्कृतिक अध्ययन, चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर, 2002, पृ.सं. 148-157
2. डॉ. के.के. जाधव : बंजारा लोकसंस्कृति, ए.आर. पब्लिशिंग कंपनी दिल्ली, 2016, पृ.सं. 20-21.
3. डॉ. यशवंत जाधव : बंजारा जाति, समाज और संस्कृति, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1994, पृ.सं. 25-26
4. आत्माराम कनीराम राठोड : गोर बंजारा इतिहास व लोकजीवन, ऋचा प्रकाशन नागपुर, 2018, पृ.सं. 07-16.

❑❑

डॉ. मनीषा खींची
सहायक प्रोफेसर
कानोड़िया पी.जी. महिला महाविद्यालय
जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

पहाड़ी चित्रशैली में अश्वांकन परम्परा

सारांश

भारत में लघु चित्रकला की एक शाखा को 20वीं शताब्दी के आरम्भ में उत्तर में हिमालय की मनोरम घाटियों में पल्लवित होती एक उन्नतिशील कला शैली के रूप में पाते हैं। जिसने कला जगत की विचारधारा और अलंकरण की विधि पर परिवर्तनकारी प्रभाव डाला जिसे **पहाड़ी चित्रशैली** के नाम से पुकारा गया। पहाड़ी चित्रशैली राजपूत कला एवं मुगल कला से सर्वथा भिन्न व भावपूर्ण थी। इस शैली के चित्रों में पहाड़ी आत्मा का सौंदर्य, सौकुमार्य, वैभव और यौवन मुखरित होता है। पहाड़ी शैली के कलाकारों ने अपने चित्रों में हिमालय की सुरम्य प्राकृतिक पृष्ठभूमि में उन्मुक्त क्रीड़ा करती हुई अपनी आत्मा को चित्रित किया है।

मुख्य शब्द : पहाड़ी चित्रकला, कांगड़ा चित्र, गढ़वाल चित्र, अश्व, घोड़ा, अश्वांकन, अश्व आकृति, अश्वाकृति, अश्व अलंकृतियां, पशु-पक्षियों का शृंगारिक आलेखन।

प्रस्तावना

पहाड़ी चित्रकला भारत के प्राचीन कश्मीर, उत्तराखण्ड, तथा पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों में पल्लवित हुई, जिनमें कांगड़ा, गढ़वाल, चम्बा, बसोहली, नूरपुर, सुखेन, विलासपुर, मंडी, कुल्लु आदि अनेक छोटे-छोटे प्रान्त आते हैं। इन क्षेत्रों की सामूहिक कलाओं को **पहाड़ी चित्रकला** का नाम प्रदान किया गया है। पर्याप्त समय तक पहाड़ी कला के अलग अस्तित्व पर प्रकाश नहीं पड़ा था। 'मेटकोफ' सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 19वीं शताब्दी के आरंभ में कांगड़ा में पहाड़ी चित्रकला की खोजबीन की। बाद में डॉ. आनंद कुमार स्वामी इस ओर आकृष्ठ हुए। सन् 1608-10 के दौरान उन्होंने पहाड़ी चित्रकला पर अनेक भाषण दिए एवं लेख प्रकाशित किए। 1910 ई. में इलाहाबाद में उन्होंने कांगड़ा शैली के कुछ चित्र प्रदर्शित भी किए एवं ''**हिन्दू पेंटिंग ऑफ पंजाब हिमालयाज**'' नामक पुस्तक प्रकाशित की जहाँ से इस चित्रशैली के विशिष्टता का ज्ञान संसार को होता है।[1]

पहाड़ी चित्रकला के मूल में कृष्ण भक्ति एवं कृष्णलीलाओं का जीवन चित्रण रहा है, परन्तु इसके साथ-साथ ही कलाकारों ने यहाँ अपने चित्र विषयों हेतु 'रामायण', 'महाभारत', 'भागवत', 'देवी महामात्य', 'रसिकप्रिया', गीत-गोविन्द, भागवत एवं शिवपुराण के कथाओं पर आधारित चित्र, कृष्ण की विभिन्न लीलाओं में माखनचोर चित्र आदि ग्रंथों का आश्रय लिया। जिनमें उन्होनें कृष्ण भक्ति एवं कृष्णलीलाओं के साथ-साथ भारतीय पौराणिक ग्रन्थों, कथाओं, रीतिकालीन साहित्य, बारहमासा, राग-रागिनी का शृंगारिक अंकन, प्रभावी व्यक्तियों, राजा-महाराजाओं एवं उनके परिवारजनों के व्यक्ति चित्रों के अतिरिक्त प्रकृति, पशु-पक्षी एवं आलेखनों का भी श्रेष्ठ अंकन किया है।[2] प्राकृतिक अंकन में चित्रकारों द्वारा वृक्षों, लताओं, कमल सरोवरों, वक्राकार बादल, मोर, हंस, बतख, हाथी, अश्व, आदि विभिन्न प्राणियों का सुंदर चित्रांकन किया है।[3]

अश्व चित्रांकन यहाँ दरबारियों एवं महाराजाओं के अश्वारोही व्यक्ति चित्रों के अतिरिक्त अन्य अनेकों अवसरों पर होता दिखाई देता है जो इस क्षेत्र की प्राकृतिक परिवेश के अनुरूप किया गया है। क्योंकि यहाँ भागवत, रामायण तथा अन्य साहित्यिक

रचनाओं का अंकन अधिक हुआ है इसलिए यहाँ अश्व चित्रांकन उन विशेष घटनाओं के एक सहायक भाग के रूप में अधिक दिखता है। पहाड़ी चित्रशैली के चित्रकारों ने अष्व चित्रांकन में राजपूत तथा मुगल कला के जैसी अतिश्योक्ति नहीं दर्शाई है अपितु उन्हें बहुत ही साधारण तथा सामान्य रुप में ही अंकित किया गया है, जो कि इस प्रदेश की शान्त तथा सौम्य भावनाओं के अनुकूल है। कहीं वह आनन्दित उल्लासित है तो कहीं विषादपूर्ण तथा कहीं-कहीं क्रोधी। यहाँ अश्वों की आंगिक संरचना एवं स्थिति आदि में सूक्ष्मता परिलक्षित होती है। पहाड़ी चित्रशैली में अष्वचित्रों का रेखांकन एवं उसका काव्यात्मक रूप से चित्रण एक मुख्य विशेषता रही है जिसमे पूर्ण गति एवं लयात्मकता दिखाई देती है।

चित्र-1 : बाज बहादुर और रूपमती रात्रि में शिकार करते हुए, बसोहली कलम, पहाड़ी चित्रशैली, 1730 ई., 29 × 19 से.मी.

बसोहली कला शैली का 1730 ई. में निर्मित चित्र 'बाज बहादुर और रूपमती रात्रि में शिकार करते हुए', डब्ल्यू जी, आर्चर संग्रहण, लंदन में संगृहित है।[4] प्रस्तुत चित्र में मध्य भारत के सुप्रसिद्ध प्रेमी युगल बाज बहादुर तथा रूपमती को दर्शाया गया है। उनकी अश्वारोहण करते हुए रात्रि में घूमने की आदत थी। पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों के जागीरदारों तथा सभ्रांत सामंतों के मध्य इस प्रकार के काव्यात्मक संवेदनाओं से युक्त तथा इनके अनुपूरक विषयों के चित्रांकन का अत्यधिक प्रचलन था। चित्र की काले रंग की पृष्ठभूमि में दो अश्वारोही मुख्य आकृतियों के साथ एक बंदूकधारी व्यक्ति तथा एक शिकारी श्वान का चित्रण किया गया है। यह रात्रि के समय का दृश्य है। बाज बहादुर सफेद रंग के अश्व पर आसीन अग्रभाग में अंकित है, वहीं रूपमती को भूरे रंग के अश्व पर पृष्ठ में चित्रित दर्शाया है। दोनों ने ही अपने हाथ में बाज पक्षियों को बैठाया हुआ है।

अश्व यहाँ गोलाकृत तथा लोककला शैली में गतिमान अवस्था में अंकित किये गए हैं। साधारण परन्तु मोटी-मोटी रेखाओं के द्वारा अश्वों का अंकन किया गया है। बाज बहादुर के अश्व को यहाँ पुरुषोचित गुणों के जैसे गर्विली एवं मजबूत कद-काठी, भारी मुख-मुद्रा, बड़ी एवं गोल आँखें आदि के साथ चित्रित किया गया है। वहीं रूपमती के अश्व को स्त्रियोचित गुणों जैसे पतला मुख, पतली झुकी हुई गर्दन, अधखुली आँखें, पतली टागें एवं खूर, गले में सुन्दर घंटियों की माला आदि के साथ निर्मित किया गया है। प्रकृति चित्रण के अनुरूप भी यह चित्र महत्त्वपूर्ण है। मुख्य आकृति की पृष्ठभूमि में ऊपर की तरफ चित्रकार ने गहरे हरे रंग की वनस्पतियों के मध्य सुन्दर पक्षियों का अंकन किया है।

इसचित्र मोटी एवं गोल रेखाओं द्वारा लोककला शैली में निर्मित है। इस चित्र को पीले रंग के सपाट हाशियों द्वारा पूर्ण किया गया है जिसमें आकृतियों का कुछ भाग भी पहुँचता हुआ दिखाई देता है। यहाँ निर्मित खूंखार एवं उग्र आँखें अवश्य ही बसोहली चित्रकला की व्युत्पत्ति थी, परन्तु गोल अश्व, शिकारी कुत्ता, उन्मुक्त बंदुकधारी व्यक्ति यह सभी तत्व यहाँ आये नवीन परिवेश की विशेषताओं को दर्शाते हैं।

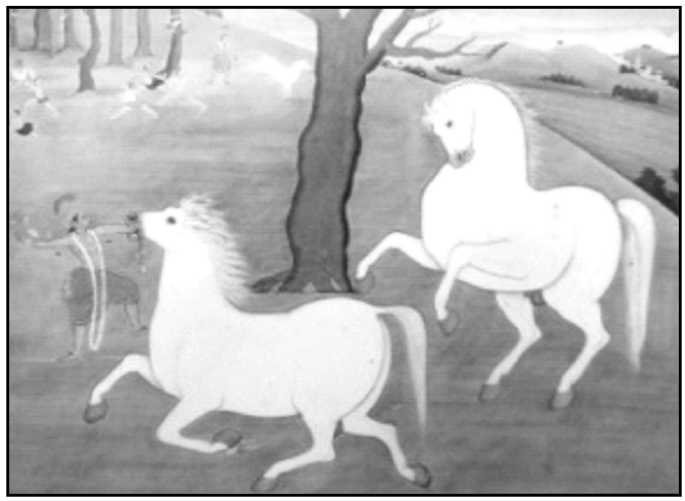

चित्र-2 : कृष्ण एवं दैत्य अश्व 'केशी', भागवत पुराण, कांगड़ा, पहाड़ी चित्रशैली, 1780 ई., 27.0 × 36.0 से.मी. पंजी. सं. P2/6, बड़ौदा संग्रहालय

कांगड़ा चित्रशैली में निर्मित यह चित्र 'कृष्ण एवं दैत्य-अश्व केशी' 1780 ई. में निर्मित है तथा भागवत गीता पुराण पाण्डलिपी से लिया गया है।[5] इस विषय के चित्र राजस्थानी तथा पहाड़ी क्षेत्रों की चित्रकला में प्रमुखता के साथ चित्रित किये गए हैं। चित्र के ऊपरी बायें भाग में कुछ चरवाहे अश्व से डरकर भाग रहे हैं तथा कुछ पेड़ों पर चढ़कर स्वयं की रक्षा करते हुए चित्रित किया गया है। अग्रभूमि में कृष्ण, दो विशाल अश्वों से लड़ते हुए दर्शाये गए हैं। प्रस्तुत चित्र में कुछ तीन शक्तिशाली श्वेत अश्वों का अंकन किया गया है। अग्रभूमि के प्रथम अश्व का मुख छोटा परन्तु भारी है, आँख बड़ी एवं भय से फैली हुई, नथूने गोलाई लिये हुए तथा मुख एवं दाँत छाया प्रकाश में निर्मित है। अश्व के पीछे की ओर मुड़े हुए कान, लहराती हुई अयाल, गर्दन, छाती, सीना-अधिक परिभाषित रूप से फैले हुए हैं।

अश्व के सामने के पैर घुटने से हवा में उठे हुए हैं, वहीं पीछे के पैर आगे-पीछे की स्थिति में है। यहाँ पूँछ को पतली, नुकीली तथा अंतिम छोर पर थोड़ा फैला हुआ बनाया गया है। द्वितीय अश्व मुख्य अश्व के पीछे गर्जना करने की अवस्था में चित्रित है। उसके भी आगे के दोनों पैर ऊपर हवा में है, आँख तथा चेहरे का जबड़ा काफी मजबूत है, वहीं नथूने चक्राकार रूप में निर्मित दर्शाये गए हैं। अश्व की गर्दन, पीठ तथा पीछे के भाग को धनुषाकार रूप में घुमावदार निर्मित किया गया है। अश्व के माथे पर अयाल पतली रेखाओं के रूप में लहरा रही है वहीं गर्दन की अयाल पीछे हवा में फैली हुई दर्शायी गई है। अश्व की छाती, शरीर का मध्य भाग और पीछे के पैरों की जांघे मांसलता लिए हुए निर्मित है। अश्व के शरीर का सम्पूर्ण भार पिछले पैरों पर दर्शाते हुए खुर्रों को मजबूत चित्रित किया गया है। तीसरा अश्व ऊपरी बाएं भाग में निर्मित है जो बहुत ही छोटी आकृति में है। अश्वों को श्वेत सपाट रंग तथा हल्के भूरे रंग में छाया प्रकाश द्वारा चित्रित किया गया है। मुख, नथूने तथा खुर्रों को भूरे सलेटी रंग में दर्शाया गया है। चित्र के पृष्ठभाग में हरे रंग की विभिन्न तानों में यमुना नदी के तट को मैदानी ढलानों के साथ दर्शाया गया है। इस उत्कृष्ठ चित्र में परिष्कृत एवं धारा प्रवाह तूलिका द्वारा खुलेपन तथा परिप्रेक्ष्य का सुंदर समायोजन दिखाई देता है।

प्रस्तुत चित्र कांगडा शैली में निर्मित किया गया एक है। वर्तमान में यह चित्र द फ्रिज विलियम संग्रहालय, इग्लैण्ड में संगृहित है।[6] चित्र के मध्य में श्रीराम एक विशाल अश्व पर पीले वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, श्याम वर्ण मे दर्शाए गए हैं। उनके चारों तरफ लंका विजय के उनके सहयोगी, अनुयायी तथा सेवक दल चल रहे हैं, जिनमें वानर, मनुष्य तथा भालू आदि मानवाकृतियों के रुप में है, उनमें से एक उन्हें चंवर से हवा कर रहा है, दूसरे ने छत्र पकड़ रखा है, हनुमानजी आगे गदा लेकर चल रहे हैं तथा अन्य सभी अनुयायी श्रीराम के चरणों के पास करबद्ध चल रहे हैं। पृष्ठभाग में हरा मैदान तथा एक ऊँचा टिला है, जिसके पीछे परिपेक्ष्य में श्रीराम की सम्पूर्ण सेना दल बल के साथ है। चित्र के बायीं और मध्य में तीन पुरुष, दो

श्वानों के साथ बाज की एक जोडी को अपने हाथ में पकड़े हुए हैं।

मध्य भाग में एक विशाल अश्व को अन्य आकृतियों से अधिक ऊँचा तथा केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया है। अश्व का मुख, जबड़ा मजबूत है। सिर का भाग सपाट रेखा में है तथा आँखें बड़ी गोल गुलाबी रंग लिए हुए है। नथूने केरी के समान घुमावदार छाया प्रकाश में निर्मित है तथा मुख खुला हुआ हैं उसकी अयाले उसके माथे पर सुन्दरता के साथ लहरा रही है। कान खड़े तथा सामान्य आकार के हैं। गर्दन पर अयालों को साधारण रूप से गोल-गोल लहर के समान चित्रित किया गया है। यहाँ अश्व का शारीरिक अंकन शक्तिशाली एवं विशाल दर्शाया गया है। अश्व साधारण चाल चलते हुए निर्मित है, वहीं पैरों का भाग अन्य आकृतियों के मध्य छुप गया है।

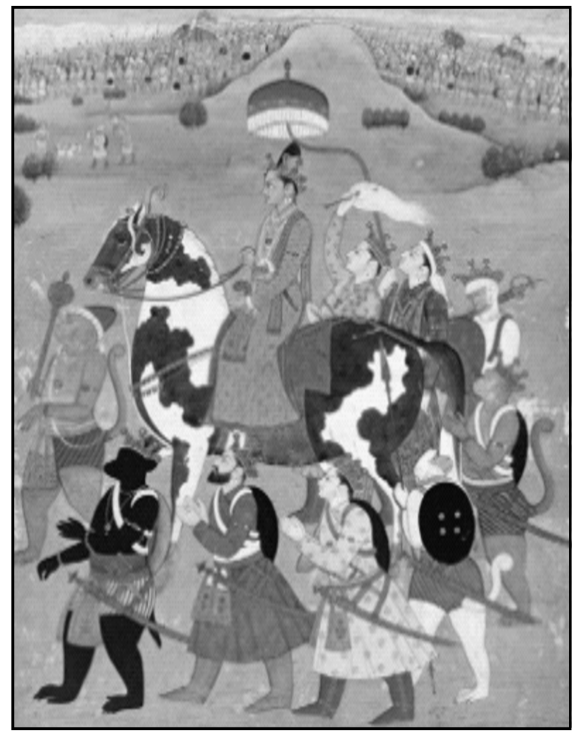

चित्र-3 : श्रीराम विजय होकर अयौध्या लौटते हुए, कांगड़ा, पहाड़ी चित्रशैली, 1790 ई., द फ्रिज विलियम संग्रहालय

अश्व यहाँ काले तथा सफेद रंग के बादलनुमा आकृतियों के मिश्रित संयोजन में निर्मित है। सुन्दर राजसी आभूषणों से सजाये गए अश्व की काठी पर नारंगी रंग का कीमती वस्त्र डाला गया है, वहीं पेट के निचले हिस्से को बैगनी रंग के पट्टे से बांधा गया है। अश्व के सिर पर पंखदार सिंहस्त्राण तथा गले में कीमती मणि-मोतियों की माला पहने हुए चित्रित किया गया है। चित्र के पृष्ठभाग में दर्शायी गयी सेना में निर्मित अश्व भी विभिन्न रंगों में चित्रित है, परंतु वह बहुत ही साधारण तथा सपाट रूप से दर्शाए गए हैं। मुख्य अश्व को महत्त्व देते हुए सुस्पष्ट रेखाओं द्वारा यथार्थपूर्ण चित्रित किया गया है। सम्पूर्ण चित्र बहुत बारीक रेखाओं तथा उत्कृष्ठ रंग संयोजन के द्वारा पूर्ण किया गया है।

कुल्लु तथा मंडी क्षेत्र की शाखाओं पर मुख्यत: बसोहली कला का ही प्रभाव रहा है परन्तु कालांतर में यह स्थानीय प्रभाव के परिणामस्वरूप अपनी निजी विशेषताओं के साथ प्रस्फुटित होती है। अश्व चित्रण में यहाँ बसोहली जैसी ही कलात्मकता दृश्यवत होती है। मंडी कलम का चित्र 'सीता को बचाने हेतु रावण का रास्ता रोकते हुए जटायु' नामक प्राप्त होता है।[7] जो कि वर्तमान में राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में संगृहित है। इन क्षेत्रों के कलाकारों ने अश्वांकन में क्षेत्रीय लाक्षणिका युक्त देहाती कला का प्रयोग किया है।

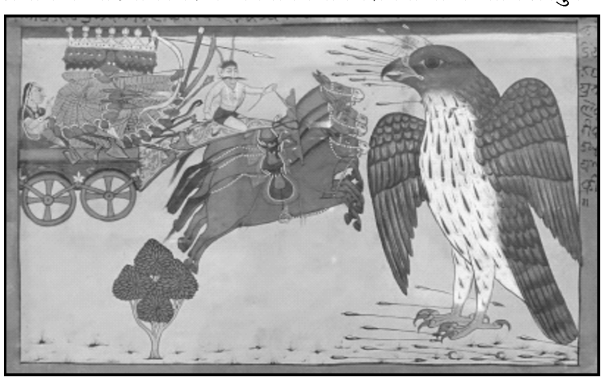

चित्र-4 : सीता को बचाने हेतु रावण का रास्ता रोकते हुए जटायु, मण्डी कलम, पहाड़ी चित्रशैली, 1740-50 ई., कागज 21 × 32 से.मी., पंजी. सं. 62.2508, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

अश्वों का मुख, आँखें, अन्य आंगिक भाग, गोलाकृत रुप में अंकित है। अश्वाकृतियों का कद छोटा तथा नाटा बनाया गया है, जिसके कारण वह 'खच्चर' तथा 'टट्टू' के अधिक साम्य प्रतीत होते हैं। रंग सयोजन में भड़कीलापन तथा सरलता दिखाई देती है। अश्वों को यहाँ स्थानीय वस्त्राभूषणों जैसे घूँघरू, माला, मणके आदि के साथ अलंकृत किया गया है। मोटी-मोटी रेखाओं के प्रयोग द्वारा आकृतियों को चलायमान अवस्था में अंकित किया गया है।

साहित्यक अवलोकन

- वेद एवं हाडा (1969) ने उत्तरी भारत के पहाड़ी क्षेत्रों की विभिन्न रियासतों में विकसित हुई मध्यकालीन लघु चित्रशैली के विषय में विस्तृत विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है, जिसके तहत उन्होंने इस लघु चित्रकला की विभिन्न कला शैलियों की सुक्ष्मातिसुक्ष्म विशेषताओं का वर्णन किया है।
- उपाध्याय (1993) भारतीय कला विद्या की शैलियों का परिचय देते हुए भारतीय चित्रकला की समृद्ध कला परंपरा का श्रेष्ठ व्याख्या करते है।
- गैरोला (2001) अपने अध्ययन में भारतीय चित्रकला का विस्तृत एवं सूक्ष्म संग्रहण करते हैं। जिसमें उन्होंने भारतीय कला परंपरा की उत्पत्ति से लेकर आधुनिक काल तक के विकासात्मक क्रम की सटीक व्याख्या दर्शायी है।
- विलकिंग्सन और अर्नाल्ड (2008) ने अपने अध्ययन में पाया कि भारतीय चित्रकला मुख्यत: दो प्रकार में विभाजित की जा सकती है एक भित्ति चित्रण तथा दूसरी लघु चित्र। दूसरे प्रकार की चित्रकला का आरंभ ताड़ पत्रों पर चित्रण से प्रारंभ होते हुए मध्यकालीन समय तक कागज तक पहुंच जाता है और इस समय श्रेष्ठ चित्रण की अनेकों कला परंपरा दिखाई देने लग जाती है, जिसमें मानव से लेकर प्रकृति एवं पशु पक्षियों आदि की अति श्रेष्ठ तथा सुंदर रूप आकृतियां दिखाई देने लगती है।
- दोषी (1995) ने बड़ौदा संग्रहालय के चित्र विधि में संग्रहित मध्यकालीन लघु चित्रकला (14वीं से 18वीं शताब्दी तक) के श्रेष्ठ नमूनों का संग्रह करते हुए उनका संक्षिप्त एवं तथ्यपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, जिसमें चित्रों के काल, प्रभाव, विषय एवं तकनीकी पक्ष की उत्तम व्याख्या की गई है।
- वहीं राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली की कला विधि में संग्रहित पहाड़ी चित्रों में अश्व चित्रण के कुछ नमूने ज्ञात होते हैं जिनमें अश्वों का चित्रण अपनी श्रेष्ठ उपादेयता संजोये हुए हैं।
- सरोज (2012) ने पहाड़ी चित्रकला में प्रकृति, पशु-पक्षी तथा कलागत तकनीकी पक्षों की दृष्टि से चित्रण के पीछे के महत्वपूर्ण कारणों की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।

मुख्य शब्दों के अर्थ

अश्व—घोड़ा

अश्वन चित्रण, अश्वाकृति, अश्वांकन, अश्व आकृति—घोड़े का चित्र

अश्वालंकरण, अश्व अलंकरण—घोड़े को आभूषणों एवं बेल-बूटियों से सजाना

अश्वारूढ़, अश्वारोही—घोड़े पर सवार

पशु-पक्षियों का श्रृंगारिक आलेखन—पशु-पक्षियों को आभूषणों एवं बेल-बूटियों से सजा हुआ चित्रित करना

कांगड़ा चित्र, गढ़वाल चित्र—पहाड़ी प्रदेश के क्षेत्रीय प्रदेश की चित्रकला

पहाड़ी लघु चित्रकला—भारत के उत्तरी पहाड़ी प्रदेश की क्षेत्रीय चित्रशैली

शोध में प्रयुक्त विधि

तथ्य संकलन, विश्लेषणात्मक वर्णन, ऐतिहासिक अनुसंधान, प्राथमिक एवं द्वितीय मूल्यांकन।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य पहाड़ी चित्रकलामें चित्रित किए गये अश्वों के सम्बन्ध में कलात्मक, सौदर्यात्मक, भावनात्मक एवं विश्लेष्णात्मक दृष्टि से अध्ययन करते हुए, इन में तात्कालिक सामाजिक एवं धार्मिक विचारों के परिपेक्ष्य के आधार पर कलाकारों की मन:स्थिति, आदर्शवादिता, कलात्मकता आदि गुणों के जानना है।

निष्कर्ष

पहाड़ी चित्रकला में चित्रित अश्व मुख्यत: राजस्थानी तथा हिमालय की स्थानीय संस्कृति के अनुरूप चित्रित किए गए हैं। यहाँ अश्वों का अंकन क्षेत्र विशेष में पाये जाने वाले प्रजाति के अनुरूप हुआ है। स्वस्थ व गोल शरीर, छोटी गर्दन, बड़ा सिर आदि[8] विशेषताएँ यहाँ निर्मित अश्वांकन में पूर्णत: दिखाई देती हैं। यहाँ एक चश्म अश्वाकृतियों की रचना की गई है जिन्हें बड़े ही साधारण तथा सहज वस्त्रालंकरणों के द्वारा शृंगारित चित्रित किया गया है जिनमें शैलीगत प्रभाविता दृश्यवत होती है। कांगड़ा के कुछ अश्व चित्रों में अवश्य कुछ हद तक सजीवता दिखाई देती हैं। पहाड़ी चित्रकला की प्रमुख चारों भागों में अश्व के अंतिम खुर्रों को क्षैतिज रूप से थोड़े से मुड़े हुए चित्रित किया करते थे। यह मुख्यत: गुलेर के प्रमुख चित्रकार नैनसुख के अश्वारोही व्यक्ति चित्रों की विशेषताएँ थी।[9] यहां अश्वों का सामान्यत: द्विआयामी एवं सरल अंकन ही किया गया हैएवं सपाट (विशेषकर श्वेत रंग में) रंगों में चित्रित किया गया है। सम्पूर्ण चित्रों में हरे, लाल, नारंगी, सफेद, नीले रंगों की सम्मिश्रित अवस्था दृश्यवत होती है तोवहीं कुछ चित्रों की पृष्ठभूमि में सेवक तथा हरियाली से आच्छादित पहाड़ियों को दर्शाया गया है एवं चित्र संयोजन को भी सरल रखा गया है। इस प्रकार पहाड़ी चित्रकला में अश्व चित्रण श्रेष्ठ प्रभाविता तथा कलात्मकता लिए हुये हुआ है, जो कि एक श्रेष्ठ स्थिति कही जा सकती है।

संदर्भ

1. किशोरीलाल वैध, ओम चन्द हाण्डा : पहाड़ी चित्रकला, दिल्ली, 1969, पृ.सं. 14-16
2. विद्यासागर उपाध्याय : भारतीय कला की कहानी, जयपुर, 1993, पृ.सं. 39
3. वाचस्पति गैरोला : भारतीय चित्रकला, दिल्ली, 2001, पृ.सं. 208-209
4. Arnold, Thomas W. & Wilkinson, JVS: Indian Miniature, New Delhi, 2008, Plate No. 70.
5. Doshi, Sanju :Indian Art, The Royal Bequest, Art Treasures of the Baroda Museum and Picture Gallery, 1995, Bombay, Page No. 99.
6. https://www.hindustantimes.com/world-news/cambridge-reveals-rare-indian-treasures-in-two-exhibitions/story-oGBcPNPsgRnhsK7CCPW V1L.htm\
7. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संगृहीत, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली. पंजी. सं. 62.2508
8. रानी, सरोज : पहाड़ी चित्रकला का अनुशीलन, वाराणसी, 2012, पृ. 90.
9. Usha Bhatia Amarnath Khanna, Vijay Sharma: The Diverse World of Indian Painting, New Delhi, 2009, Page 61.

❑❑

रजनी बाला सोनी (पीएच.डी. शोधार्थी)
समाज कार्य विभाग,
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़
डॉ. सीमा जैन (सहायक आचार्य, शोध निर्देशक)
समाजशास्त्र विभाग
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

कोरोना काल में कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर बढ़ते सामाजिक दबाव का अध्ययन

शोध सारांश

स्त्री, नारी, रमणी, कामिनी, कान्ता, वनिता जाने कितने नामों में अपनी पहचान लिए धरती पर आती हैं। अगर किस्मत अच्छी हैं तो सबला वरना अपने नाम के अनुसार अबला बन जाती हैं। यहां भी वह अपनी पहचान छोड़ जाती हैं एक सृष्टि निर्माता बन कर। आज बदलते परिदृश्य में स्त्री के स्वरूप की बात करे तों सबसे पहले परिदृश्य को समझे तो इसका अर्थ हैं ''चारों ओर दिखने वाला दृश्य''। दृश्य की बात करें तो समय चाहे कैसा भी रहा हो हमेशा पुरुषों का अस्तित्व ही दिखाई देता हैं। पुरुषप्रधान समाज में प्राचीन काल सें ही नारी कई रूढ़िवादी परम्पराओं की बेड़ियों में बंधी हुई हैं। ये आज कम जरूर हुई परन्तु खत्म नहीं हुई, जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण अभी संकट (कोरोना-काल) के दौरान देखने को मिला। प्रस्तुत शोध पत्र में हनुमानगढ़ जिलें के अन्तर्गत आने वाली 7 तहसीलों को चुना गया। जिसमें कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर बढ़ते सामाजिक दबाव को दिखाने का प्रयास किया गया हैं। जिसमें शोध के न्यादर्श का चुनाव यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया हैं। न्यादर्श के रूप में 60 महिलाओं का चयन किया गया हैं। आँकड़ों के एकत्रीकरण के लिए शोधार्थी द्वारा स्वयं महिलाओं को लेकर एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए टी-परीक्षण का प्रयोग कर यह जानने का प्रयास किया गया हैं कि समाज में महिलाओं की क्या स्थिति हैं? इसके विभिन्न उद्देश्यों के पश्चात् परिकल्पनाओं के आधार पर यह शोधकार्य आगे बढ़ाया गया हैं।

शब्द कुंजी : कोरोना काल, समाज, नारी।

प्रस्तावना

बात साहित्य की हो या समाज की जब नारी की चर्चा होती हैं तो पूरे मानव सभ्यता में इसका फलक व्यापक होना चाहिए। क्योंकि सभ्यता स्त्री की कोख से जन्म लेती हैं। जब-जब समय बदला स्त्री की स्थिति में सदैव परिवर्तन आया हैं। यह परिवर्तन स्त्री की सामाजिक व आर्थिक समानता में देखा गया न कि उसकी शारीरिक विशिष्टता और श्रेष्ठता में जो प्रकृति ने केवल स्त्री को ही प्रदान की हैं। और यही विशिष्टता स्त्री को पुरुषों से श्रेष्ठ बनाती हैं। नारी में असंतोष और उसकी स्थिति में विचलन दोनों ही एक-दूसरे पर आश्रित हैं। प्राचीन सभ्यताओं में महिलाओं की स्थिति पुरुषों से श्रेष्ठ थी क्योंकि स्त्री की सामाजिक भागीदारी थी। जैसे-जैसे समय बदलता गया उसकी गरिमा में और कमी आने लगी। वह केवल एक वस्तु बन कर रह गयी। उसकी प्रतिष्ठा को बार-बार नकारा जाने लगा। वह केवल घर की चारदीवारी में ही सिमट कर रह गईं। समय का

पहिया फिर घूमा कुछ समाजसेवी संस्थाओं ने नारी शिक्षा के लिए प्रयास प्रारम्भ किये जिससे स्त्री स्थिति में जागरुकता आने लगी। भारत को स्वतंत्रता मिलने के साथ ही महिलाओं व उनके अधिकारों के लिए कानून बनाये गये। समय-समय पर महिलाओं के हित के लिये योजनायें बनाई जाने लगी। जिससे स्त्री में जागरुकता लाने का प्रयास किया गया जिससे उसने स्वयं के विषय में सोचना शुरू किया। जिसका परिणाम यह निकला की आज मेहनतकश नारी किसी परिचय की मोहताज नहीं। आज बात करे स्त्री की कामयाबी की तो समाज वही देखता हैं जो वह देखना चाहता हैं। स्त्री की कामयाबी के लिए हर उस पुरुष प्रधान को धन्यवाद दिया गया जो कहीं न कहीं और किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ था। इन सब में हम यह भूल गये कि एक स्त्री ने क्या खोया क्या पाया। सदियां बीत गई लेकिन स्त्री की दशा में सुधार केवल नाममात्र का हुआ और जो हुआ भी तो इस संकट की घड़ी ने उसे समय से और पीछे धकेल दिया फलस्वरूप वही **ढाक के तीन पात**। स्त्री अपनी सभी जिम्मेदारियों को बखुबी निभा कर भी वह स्थान प्राप्त नहीं कर पाती हैं जो उसको मिलना चाहिये। इस दोहरी जिंदगी से समझौता कर प्रत्येक कदम पर पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर उसके सुख-दु:ख की सांझी बनती हैं। लेकिन हमेशा अधूरी रहती हैं वहीं हम बात अगर पुरुषों की करे तो क्या वह स्त्री के इस त्याग को कभी समझ पायेगा। क्या कभी भी उसकी भावनाओं कि कदर कर अपनी जीवनसंगिनी होने के सही मायने अपने परिवार अपने बच्चों के सामने रख पायेगा? क्या वह उसका सच्चा हमसफर कभी बन पायेगा? हमारा समाज आज आधुनिकता की उस मोड़ पर हैं जहाँ पुरुष व नारी के मध्य भेदभाव न करने का दम भरता हैं तथा उसके सम्मान व सुरक्षा के खोखले दावे किए जाते हैं। अपनी मर्यादा को भूल कर वही पुरुष उसी नारी को अपनी सोच से उसी परिवार के सामने नंगा कर देता हैं जिस परिवार के लिए उसने कदम-कदम पर खुद को भूल कर हर फर्ज को निभाया। उसी परिवार द्वारा हर बार उसे दुत्कारा गया गालियाँ निकाली गयी। जब यही पुरुष मूकदर्शक बन एक स्त्री को लुटता हुआ देखता हैं तो वहीं खत्म हो जाता हैं एक नारी का अभिमान, अगर पीछे रह जाता हैं तो वह है केवल एक बार फिर समाज के द्वारा परिवार के नाम पर बिखरी हुई खुद को कभी ना समेट पाने वाली नारी हैं—

नारी शब्द में सारा जहाँ समाया हैं, खुद को खो कर तुमने क्या पाया हैं।
डरती हैं आज भी फैसलें लेने पर तू, क्यूंकि आज भी हक तुझ पर पुरुष ने ही जताया हैं।।

अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के कारण हमारी सोच में काफी बदलाव आया जिस कारण आज नारी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी हैं। बदलाव का मुख्य कारण पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव हैं। लेकिन 24 मार्च 2020 ने जैसे सब कुछ रोक दिया। भारत में कोरोना वायरस लाकॅडाउन की सबसे बड़ी विडंबना यह रही कि महिलाओं के बोझ को दोगुना कर दिया चाहे वो कामकाजी हो या गैरकामकाजी। इस समय ने महिलाओं की स्थिति में गिरावट ला दी। प्रत्येक दिन घरेलू हिंसा, आपसी कलह, नौकरी न रहने का डर आदि सब बातों ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया महिलाओं को। यूनिवर्सिटी ऑफ मैनचेस्टर के ग्लोबल डेवलपमेंट इंस्टीटयूट की प्रोफेसर बीना अग्रवाल ने शोध के माध्यम से पाया कि महिलाओं को कोविड लॉकडाउन के दौरान पुरुषों की तुलना में नौकरियों का अधिक नुकसान हुआ हैं, वे अपनी छोटी सी बचत और संपत्ति के दोहरे कार्य बोझ, डिजिटल असमानता और प्रतिबंधात्मक मानदंडों के कारण आर्थिक असुरक्षा का सामना करती हैं। इसके अलावा, कोविड के दौरान घरों में भीड़ बढ़ने से घरेलू हिंसा में भी तेजी आई जिससे रिश्तों में अलगाव बढ़ गया। नारी की इसी सामाजिक स्थिति को समाज के सामने लाने व उसके महत्व की तरफ ध्यान दिलवाने के लिए शोधार्थी ने निम्नांकित प्रकरण पर शोध करने की आवश्यकता को समझा और ''कोरोना काल में कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर बढ़ते सामाजिक दबाव का अध्ययन'' विषय पर शोध पत्र लिखने का निश्चय किया।

समस्या कथन

कोरोना काल में कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर बढ़ते सामाजिक दबाव का अध्ययन

शब्दावली

कोरोना काल

कोविड-19 यानी 21वीं सदी की सबसे भयानक त्रासदी। जिसे WHO ने 11 मार्च 2020 को वैश्विक महामारी घोषित कर दिया था। जिसने लोगों के दैनिक जीवन को पूरी तरह रोक कर उसे प्रभावित किया।

सामाजिक दबाव

सामाजिक दबाव की बात करे तो ये वे संयुक्त दबाव हैं जो दैनिक जीवन के दौरान आपके आस-पास होते हैं जैसे कि सहकर्मी दबाव, शैक्षणिक दबाव, सामाजिक दबाव, आर्थिक दबाव और इन सब से उपजा मानसिक दबाव। सामाजिक दबाव चिंता या विफलता का डर पैदा करता हैं।

उद्देश्य

1. कोरोना काल में कामकाजी महिलाओं पर बढ़ते सामाजिक दबाव का अध्ययन करना।
2. कोरोना काल में गैरकामकाजी महिलाओं पर बढ़ते सामाजिक दबाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर सामाजिक दबाव के प्रभाव में ज्यादा अधिक अन्तर नही हैं।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोधपत्र के न्यादर्श का चुनाव यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया। न्यादर्श के रूप में 60 महिलाओं को ही चुना गया हैं।

अध्ययन का क्षेत्र

प्रस्तुत शोध पत्र में हनुमानगढ़ जिलें के अन्तर्गत आने वाली 7 तहसील (नोहर, भादरा, संगरिया, पीलीबंगा, रावतसर, टिब्बी, हनुमानगढ) को चुना गया—

1. महिला पुलिस थाना, जिला मुख्यालय।
2. महात्मा गांधी राजकीय चिकित्सालय।
3. सखी सेन्टर।
4. आंगनबाड़ी।

कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर सामाजिक दबाव के प्रभाव का अध्ययन

कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर सामाजिक दबाव के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए शोधार्थी द्वारा स्वयं निर्मित परिपत्र दिये गये। यह परीक्षण प्रत्येक उस क्षेत्र में किया गया जो शोध पत्र के द्वौरान लिए गये हैं। सर्वे से प्राप्त अंकों का मध्यमान व मानक विचलन सारणी में दिया गया हैं व t-मूल्य द्वारा इस अन्तर को देखा गया हैं।

सारणी 1

कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर सामाजिक दबाव के प्रभाव का अध्ययन

महिलायें	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या	टी-मूल्य
कामकाजी	120.60	23.91	30	1.41
गैरकामकाजी	113.13	16.27	30	

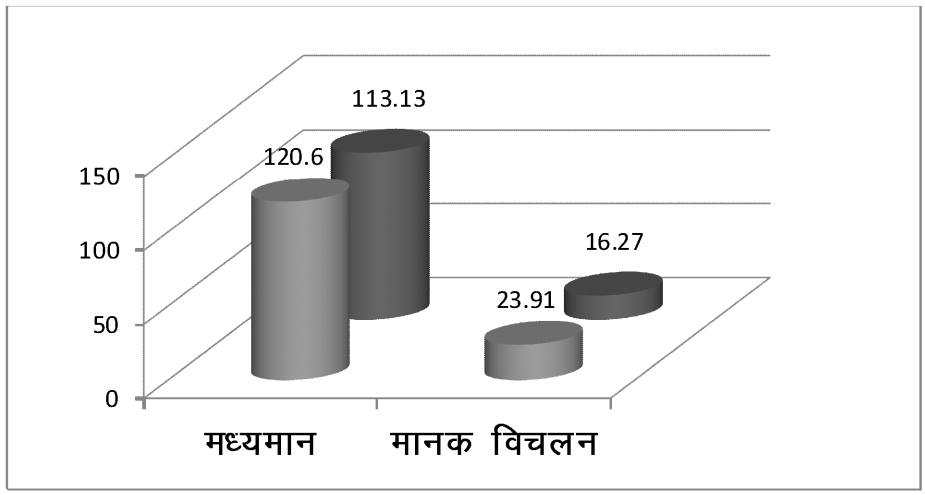

आरेख : कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं की चित्रमयी प्रस्तुती

सारणी में कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर सामाजिक दबाव के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए परीक्षण लिया गया हैं। इसमें t–मूल्य द्वारा प्राप्त मान 1.410 हैं जो 58 df पर .05 स्तर के सारणी मान 2.00 से भी कम हैं अत: यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर समाज का दबाव एक जैसा प्रभाव डालते हैं जिससे इनकी मानसिक स्थिति में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।

व्याख्या

प्रस्तुत शोध पत्र में यह देखा गया कि वर्तमान में कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं पर सामाजिक दबाव के प्रभाव की क्या स्थिति हैं? इसके विभिन्न उद्देष्यों तदुपरान्त परिकल्पना के आधार पर यह शोध कार्य आगे बढ़ाया गया। आँकड़ों को इकट्ठा करने तथा विश्लेषण करने के दौरान शोधार्थी के समक्ष कई बातें आयी, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि समाज में, परिवार में कार्यालयों में यहाँ तक जिस क्षेत्र में भी नारी ने अपने कर्तव्यों का निर्वाह ईमानदारी से निभाने का प्रयास किया तब–तब रीति–रिवाजों व पुरुष प्रधानता के नाम पर उस पर ही मानसिक व शारीरिक रूप से अत्याचार हुये। कामकाजी होने या न होने से उसके व्यक्तित्व पर ज्यादा अन्तर नहीं आया। इस अन्तर को देखने के लिए स्वनिर्मित प्रपत्र परीक्षण के रूप में दिया गया।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र में संकलित आँकड़ों के सांख्यिकी विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष निम्नलिखित हैं—

1. कामकाजी व गैरकामकाजी महिलाओं के स्तर में सार्थक अंतर पाया गया।
2. कामकाजी महिलाओं में गैरकामकाजी महिलाओं से जीवन को जीने के प्रति अधिक सार्थकता पायी गयी।
3. गैरकामकाजी महिलाओं में कामकाजी महिलाओं की अपेक्षा मानसिक स्थिति में सार्थक ठहराव पाया गया।
4. कामकाजी महिला गैरकामकाजी महिला की अपेक्षा आर्थिक रुप से मजबूत होने के कारण इस काल के समय मानसिक रुप से सुदृढ़ रही।

सुझाव

1. सरकार द्वारा समय–समय पर चलाये जा रहे कार्यक्रमों को प्रत्येक वर्ग की महिलाओं के लिए उपलब्ध करवाये जाने चाहिए।

2. जागृति-बैक टू वर्क योजना 2021 का लाभ प्रत्येक महिला तक पहुचें।
3. सखी वन स्टॉप सेंटर जिलें के प्रत्येक ब्लॉक में खोलें जाये जिनसे प्रताड़ित महिलाओं को सही दिशा का ज्ञान हो और वो अपने हक के लिए लड़ सके।
4. आई एम शक्ति उडान योजना एवं जागृति जैसे कार्यक्रमों को जन तक पहुँचाने के लिए सरकार द्वारा चेतना आयोजन किया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. नेहा रेड्डी, कोरोना साइड इफेक्ट : घरेलू हिंसा के बढ़ते मामलों ने किया देश भर को चितिंत,
2. डॉ नीलम गोयल, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी लेखिकाओं के उपन्यासों में अलगाव (एलियनेशन), गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर, प्र. सं. 1987
3. नीना शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर महिला कथाकारों के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज (शोध प्रंबध) कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, वर्ष 1999
4. दयानिधि, कोरोना काल में भारतीय महिलाओं को हो रही हैं सबसे अधिक परेशानी : रिपोर्ट (down to earth.orj.in)
5. लॉकडाउन में बढ़ती घरेलू हिंसा : आपदा के समय महिलाओं के लिए और इम्तिहान, thewirehindi.com
6. डॉ. अमित दुबे, शोध आलेख, पत्रिका इलाहाबाद।

❑❑

डॉ. ज्योति पाठक
असिस्टेंट प्रोफेसर
श्री सत्य साई पी.जी. महाविद्यालय
जवाहर नगर, जयपुर (राजस्थान)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

पर्यटन को लुभाते शेखावाटी के भित्ति-चित्र

सारांश

किसी देश, प्रदेश की अर्थव्यवस्था के विकासकारी तत्वों में कला व सांस्कृतिक तत्वों की भूमिका उल्लेखनीय होती है। इसीलिए आदिकाल से ही मानव चारों ओर की प्रकृति, परिवेश और समाज को नये-नये अर्थों से मण्डित करता रहा है। मानव की भाव सम्प्रदा के विस्तार एवं विकास को युग बोध, इतिहास बोध एवं अर्थ बोध ने नई दिशाएं प्रदान की। प्रारम्भ से कला की सार स्मृतियों में सौन्दर्य बोध जाग्रत हुआ और समाज के विकास के साथ-साथ कला सम्प्रदा का आश्चर्यजनक प्रसार हुआ, जो आज हमारी सांस्कृतिक विरासत है। राजस्थान में भित्ति चित्रांकन परम्परा इसी पृष्ठभूमि में विकसित व पल्लवित हुई, जो एक और समाज की सन्देशवाहक, पर्यटकों को रसानुभूति कराने वाली रही है वहीं दूसरी और आध्यात्मिकता का मार्ग प्रशस्त करते हुए आर्थिक पक्ष से प्रभावित रही है।

मूल शब्द : विरासत, आर्थिक पक्ष भित्ति चित्रांकन, सांस्कृतिक परिवेश चित्रण विधान, अद्‌भुत, विस्मयकारी, औद्योगिक, रेस्ट्रोरेशन, धरोहर।

प्रस्तावना

राजस्थान की चित्रकला में पुरा साक्ष्यों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि प्राचीन समय से ही यहाँ चित्रण परम्परा रही है। राजस्थान में भित्ति चित्रांकन परम्परा का अपना एक सांस्कृतिक परिवेश व इतिहास रहा है। जो समय के साथ पल्लवित होते हुए 19वीं शताब्दी तक फली-फूली। राजस्थान में भित्ति चित्रों की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि में शिला कुटीरों की भूमिका मुख्य रही है। जिनमें अनेक प्रकार के रेखांकन व चित्रांकन विस्तार से उपलब्ध है।[1]

12वीं शताब्दी में सोमेश्वर द्वारा रचित अभिलाषितार्थ चिन्तामणि में नाट्य मण्डप की सज्जा में भित्ति चित्रण का उल्लेख मिलता है। उस युग में नाट्य मण्डप मनोरंजन व आय सृजन के स्रोत थे। इसलिये नाट्य स्थलों व मण्डपों की दीवारों को चित्रों द्वारा सुसज्जित करना आर्थिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता था। नाट्य मण्डलियों का परिगमन एवं दूर-दूर से दर्शकों का आगमन पर्यटन की प्रवृत्ति सूचक रहा है। चौहान काल में मूर्ति के आसपास भित्ति चित्रण होता था। जिसका उदाहरण हर्ष गिरी के उत्कीर्ण मूर्ति शिल्पों के पास की भित्ति एवं मण्डपों की सज्जा में इसी चित्रण-विधान का प्रयोग था।[2] जिससे धार्मिक आस्था से प्रेरित लोग उन चित्रों को देखने आने लगे और धार्मिक पर्यटन का सिलसिला शुरू हुआ।

राजस्थान की भित्ति चित्रकला परम्परा में शेखावटी का अनूठा स्थान है। सम्पूर्ण शेखावटी में राज्याश्रय व सेठ-साहूकारों के सहयोग से गढ़, किलों, हवेलियों, मन्दिरों, बावड़ियों कुओं एवं छतरियों आदि पर लोक साहित्य के विविध आयामों से सन्दर्भित भित्ति चित्रण अद्‌भुत व विस्मयकारी है। भित्ति चित्रों की बाहुल्यता के कारण शेखावाटी क्षेत्र पर्यटन की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर ही नही बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपना वर्चस्व स्थापित कर रहा है।

परिवेश की परिस्थितयां एवं कलाकार की मन:स्थितियां शेखावाटी भित्ति चित्रों के विकास की घटक हैं। परिस्थितियां और मन:स्थितियां दोनों ही इतिहास के बाहरी और भीतरी आयामों के द्वारा युग में संचित संस्कार कलाकार के मन के अन्त: प्रदेशों में जीवित रहते है, जो समय के साथ ऊर्जा पाकर अपने लक्ष्य ओर गन्तव्य को निर्धारण मूल्य बोध के साथ अभिव्यक्त करते हैं।

15वीं शतीं में कछावा वंश में बालाजी के पौत्र और मोकलजी के पुत्र शेखाजी एक वीर न्याय परायण व्यक्ति हुए जिन्होंने अपने बाहुबल से एक स्वतंत्र एवं विस्तृत राज्य की स्थापना की, जो आगे चलकर शेखावाटी के नाम से प्रचलित हुआ। शेखावाटी जयपुर राज्य ढूंढार राज्य था जो बसवा, आमेर, और दौसा केवल इन्ही तीनों की सीमा के अन्दर फैला हुआ था। अरावली पहाड़ का एक सिलसिला सांभर झील से सिंघाना तक फैला हुआ है। अरावली के इस सिलसिले से उत्तर पश्चिम की तरफ भी जयपुर राज्य का थोड़ा सा भाग गया है जिसे शेखावाटी कहते है।[3]

शेखावाटी के इतिहास में सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से सामाजिक एवं धार्मिक जागृति का प्रभाव यहां के गांव, कस्बे एवं नगर में प्रत्येक स्थापत्य (गढ़, महल, हवेली, मन्दिर, मठ, मस्जिद, कुऐं, जोहड़ें, तालाब, मकबरे तथा छतरियां आदि) एवं उनकी भित्तियों पर बने चित्रों में देखा जा सकता है। जड़ एवं स्थिर होते हुए भी इन स्थापत्यों की भित्तियों के चित्र सामाजिक व धार्मिक जागृति को मौन रूप से आज भी व्यक्त कर रहे है।

शेखावाटी के भित्ति चित्रों में सामाजिक सन्दर्भ

समाज में अनेक धाराओं ने मिलकर उसमें स्वरूप का निर्माण किया। जिसका प्रभाव कालान्तर में समस्त राजस्थान पर पड़ा। इस दृष्टि से शेखावाटी क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। राव शेखा की वीर भूमि शेखावाटी में शेखावतों की सत्ता स्थापित होने से पूर्व यहां कायमखानिओं का शासन था। शेखावतों की सत्ता सम्भालने के बाद भित्ति चित्रों की परम्परां ने एक नया मोड़ लिया। इन भित्ति चित्रों के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक जागृति इस क्षेत्र की विरासत के रूप में उभरी। जिसका श्रेय किसी एक विशेष जाति को नहीं जाकर वरन् समाज के हर तबके ने यथा सम्भव सहयोग दिया, को जाता है। शेखावाटी में अनेक जातियों का निवास था।[4]

आज हवेलियों में अनेक ऐसे चित्र हैं जो यहां की सामाजिक जाग्रति एवं समन्वयकारी नीति के ही परिणाम है। शेखावत राजपूतों की इस रूचि एवं सामर्थ्य शक्ति ने इस क्षेत्र की परिभाषा ही बदल दिया। जिन्होंने न केवल मिले, गढ़, आदि को मण्डित करवाया वरन् युग के उन क्षणो को भी प्रत्यक्ष रूप से जागृत किया जो आज काल के गर्त में समा चुके हैं। प्रत्येक दीवार कुछ गाथा सी कहती हुई दिखाई देती है।

सीकर में विक्टोरिया जुबली हाल में तो ऐसा लगता है कि जैसे समस्त दिल्ली का मुगल दरबार, जयपुर की शाही शान तथा राजस्थान के ठिकानेदारों के प्रमुख भित्ति चित्र एक ही दरबार में उपस्थित हो गये हों। विक्टोरिया जुबली हॉल के प्रमुख चार कक्षों में से प्रथम तृतीय तथा चतुर्थ कक्ष ऐतिहासिक व्यक्तियों के भित्ति से पूर्ण हैं तथा द्वितीय कक्ष में केवल धार्मिक चित्र ही बने हैं।[5] परसरामपुरा की शार्दुलसिंह की छतरी, सीकर में देवीसिंह की छतरी, झुन्झुनू का बिहारी मन्दिर आदि शेखावाटी की ऐतिहासिक दृष्टि एवं शेखावत राजपूतों की त्वरित क्रियाओं पर प्रकाश डालने वाले साक्ष्य चित्र बने हैं जिनमें शार्दुल सिंह का ''पंचपाना'' चित्र महत्वपूर्ण है।[6]

शेखावाटी की समस्त हवेलियां भी सेठों के नामों को प्रतिध्वनित करती है। सामाजिक एवं धार्मिक जागृति में कला एक महत्वपूर्ण माध्यम थी। जिसके कारण यह जागृति विस्तृत रूप लेती गई है। लक्ष्मणगढ़ में झुन्झुनू वालों की हवेली, मुकुन्दगढ़ में नागांलियों की हवेली, झुंझुंनु में टीबडे वालों की हवेली, ईसरदास मोदी की हवेली, चूड़ी-अजीतगढ़ में नेमाणियों की हवेली, चुरू में कोठारी की हवेली, बागलों की हवेली आदि सभी हवेलियां सेठों के नाम से ही हैं। शेखावाटी में ने केवल शेखावत राजपूत तथा महाजन आदि जातियों ने इसमें रूचि दिखाई वरन् चेजारे-चित्रकारों ने भी अपने अथक प्रयत्नों से सांस्कृतिक जागृति में योगदान दिया।

शेखावाटी के भित्ति चित्रों में सामाजिक पक्ष का सुन्दर चित्रण हुआ है। नट-नटी, चारण, ढादी, मालण, भाट, पण्डत (पण्डित), पुरोत (पुरोहित), पिनारा, तेली आदि अनेक जातियाँ शेखावाटी समाज का एक अंग थे, जिनमें भित्ति चित्र भी बने है।

शेखावाटी के भित्ति चित्रों में धार्मिक सन्दर्भ

मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक जागृति का प्रभाव अनेक क्षेत्रों पर पड़ा। शेखावाटी का क्षेत्र भी इससे अछूता न था।

शेखावतों के शासन काल में बने यहां के अनेक मन्दिर शेखावत राजपूतों की कृष्ण भक्ति के परिचायक हैं। शेखावतों में आराध्य देव भी 'गोपीनाथ' ही थे।

शेखावतों की सत्ता के पश्चात् मूर्तिकला की सतत् प्रक्रिया चित्रकला के रूप में परिवर्तित हुई स्थापत्य ओर चित्रकला ने शेखावाटी भित्ति चित्रांकन परम्परा को और अधिक समृद्ध बनाया।

वैष्णव परम्परा का प्रभाव शेखावाटी पर अधिक रहा। विष्णु एवं उसके अवतारिक स्वरूपों को यहां के भित्ति चित्रों में चित्रित किया जाने लगा। रामायण तथा महाभारत के मुख्य प्रसंगों को चित्रित कर कलाकार अपने आपको धन्य समझने लगे। जिन्हें समाज का सामान्य व्यक्ति देखकर धीरे-धीरे धार्मिक क्रिया में लीन होता रहा। रामायण से सम्बन्धित चित्रों में राम का अभिषेक, वनगमन, राम-रावण का युद्ध, अशोक वन में सीता, लंका में रावण, दशरथ पुत्रों का स्वयंवर, पीनाऊ प्रसंग आदि अनेक विषयों को यहां के भित्ति चित्रों में स्थान मिला। अलौकिक लीला एवं लौकिक लीला के विषयों की अभिव्यक्ति का विशेष प्रभाव इन भित्ति चित्रों पर रहा। मुकुन्दगढ़ में गजानन्द गनेडीवाल की हवेली, चुरू के टकणैतों छतरी, रामगढ़ के पोद्दारों की छतरी आदि में ऐसे अनेक चित्र हैं जिनमें रास लीलाओं के चित्रों को दर्शाया है। कबीर पंथ, दादू पंथ एवं नाथ पंथ का भी शेखावाटी की भित्ति चित्रकला पर प्रभाव रहा है।[7] उपरोक्त समस्त साक्ष्य शेखावाटी की भित्ति चित्रकला के विभिन्न परिदृश्य को प्रस्तुत करते है जिनसे जनसामान्य रूबरू होता रहा। शेखावाटी में समस्त भित्ति चित्रों से ने केवल सामान्य जनता ही प्रभावित हुई वरन् समस्त जन सांस्कृतिक समृद्धि के अनुकुल होता गया।

शेखावाटी क्षेत्र में चित्रकला का प्रादुर्भाव हवेलियों के निर्माण से ही माना जाना चाहिए। शेखावाटी 19वीं शती के पूर्वार्द्ध से ही व्यापारिक केन्द्रों में शामिल हो गया तथा वर्णितों के बाहर जाकर व्यापार करने के कारण यह प्रदेश लक्ष्मी का निवास-स्थल हो गया। इस तरह पिलानी में बिड़ला, नवलगढ़ के पोद्दार, मुकुन्दगढ़ के कानोड़िया, बगड़ के बाँगड़, फतहपुर के गोइनका रामगढ़ के रूइया तथा डालमियां, बजाज, जयपुरियां आदि बड़े औद्योगिक घरानों ने भारतीय अर्थनीति में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। उन्होंने अपने-अपने नगरों में बड़ी-बड़ी हवेलियां तथा मंदिर और छतरियां बनवाई तथा उन्हें चितारों से चित्रित करवाया। हवेलियों की रंगशालायें तथा आन्तरिक और बाह्य परिवेश चित्रकला से सुसज्जित हैं।

चूँकि हवेली चित्रकला 19वीं शती की देन है, अत: इसमें लोककला के साथ-साथ कंपनी शैली का पूर्ण प्रभाव है। सेठों की ये हवेलियां वृहदाकार में भारतीय वास्तुशास्त्र के आधार पर बनी हुई हैं, नवलगढ़, लक्ष्मणगढ़, मुकुन्दगढ़, चुरू, सरदारशहर, रामगढ़, फतेहपुर आदि कस्बों की हवेलियों का वास्तुशास्त्र की दृष्टि से और कला की दृष्टि से अध्ययन होने की गुंजाइश है। ये हवेलियां लकड़ी के बड़े-बड़े कलात्मक कपाटों से सुसज्जित हैं तथा गवाक्ष, दरवाजे तथा सामने की दीवारें राजपूत शैली और कम्पनी शैली से प्रभावित चित्रों से मंडित है। कुछ हवेलियों में चित्रशालायें बनी हुई हैं जिनमें शीशों की जड़ाई एवं सोने की हील का बहुलता से प्रयोग हुआ है।[8] प्रमुख द्वार को अत्यधिक खूबसूरती से सजाया गया है।

भित्ति चित्रों का जमाना अब नहीं रहा। श्रम एवं धन साध्य इस कला की और लोगों का रूझान कम होता जा रहा है। जो कुछ प्राप्त हैं उनका परिरक्षण भी कठिन होता जा रहा है। आज हजारों विदेशी पर्यटक इस कला संसार को निहारने शेखावाटी प्रदेश में निरन्तर आ रहे हैं। इनके कारण इस कला सम्पदा की ओर लोगों को ध्यान आकर्षित हुआ है।

राजस्थान पर्यटन विभाग ने इनकी देखरेख के दृष्टिकोण से होटलों का स्वरूप दिया है जिससें इनके पुनरुद्धार का कार्य भी किया जा रहा है। ''रेस्टोरेशन'' का कार्य तेजी से चल रहा है। समय के इन दस्तावेजों पर जमी विस्मृति की धूल की परतें

अब हटने लगी हैं, फिर निखरने लगी हैं सूनी दीवारें और इन पर चित्रित यहां ललित श्रृंगार का सम्मोहनी जादू जो दूर-दूर से पर्यटकों को यहाँ पहुँचने के लिए बारम्बार विवश कर रहा है। राजस्थान पर्यटन विभाग शेखावाटी में व्याप्त समृद्ध धरोहर को विश्वभर में उजागर करने में तत्पर है।

संदर्भ

1. गिरीराज कुमार : पेण्टेड रॉक शैल्टर फ्रॉम राजस्थान, विजय शंकर श्रीवास्तव : कल्चरल कन्टूर्स आफ इण्डिया पृ.सं. 279
2. डॉ. पुष्पा दुल्चर : लोक साहित्य पर आधारित शेखावाटी चित्राकंन परम्परा, पृ.सं. 185
3. वहीं पृष्ठ 18 राजपूताने का भूगोल भाग पहला पं. रामदीन, पृ.सं. 44
4. प्रमुख जातियों में जाट, माली, सुनार, शेख, पठान, सैयद, पीरजादे और कायमखानी आदि थे। अन्य जातियों में सारण, भाट, भोपा, डूम, नट, ढाढी, जोगी, लंघा, मांगणियार आदि थी। ये सभी यहां की संस्कृति की जागरूक पहरेदार थी। व्यवसायों पर आश्रित जातियां जैसे रेबारी, तेली, माली, सिकलीगर, खाती, कुम्हार, चमार तथा चेजारा आदि मुख्य थी।
5. सीकर के विक्टोरिया जुबली हॉल के बाहर प्राप्त लेख के आधार पर बादशाजादी के 60 वर्ष तक राज करते हुये पूरे होने की याद में महाराज राजा जी साहब श्री माधव सिंह जी बहादुर रियासत सीकर ता. 20 जून सन् 1897 ई. में बनाया गया।
6. श्री शार्दुल सिंह के पाँच पुत्रों में जोरावर सिंह, किशन सिंह, अखे सिंह, नवल सिंह तथा केसरी सिंह थे।
7. शोध यात्रा के दौरान रामगढ के चित्र के लेख के आधार पर कबीर पन्थ मुकुन्दगढ व फतेहपुर के भित्ति चित्रों के आधार पर दादू पन्थ तथा मुकुन्दगढ, बिसाऊ, रामगढ तथा चुरू के भित्ति चित्रों के आधार पर नाथ पंथ का प्रभाव देखा जा सकता है।
8. सिटी पैलेस म्यूजियम, जयपुर में दृष्टव्य।

❑❑

डॉ. संगीता कुमारी (शोधार्थी, पोस्ट डॉक्टोरल फैलो)
इतिहास और पुरातत्व विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रो. जयवीर सिंह धनखड (शोध निर्देशक)
इतिहास और पुरातत्व विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

भारतीय कला में शिव की वैवाहिक प्रतिमाओं का सामाजिक महत्व

भारतीय संस्कृति में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय समाज में गृहस्थ जीवन का प्रारंभ ही विवाह से माना गया है। विवाह मनुष्य के जीवन में एक धार्मिक संस्कार के स्वीकार किया गया है। इसके बिना मनुष्य का जीवन वास्तव में अधूरा ही समझा जाता है जिसकी महत्ता आज भी हमारे समाज में विद्यमान हैं। विवाह भारतीय संस्कृति में मानव समाज के संबंधों की आधारशीला है। विवाह से परिवार एवं समुदाय तथा राष्ट्र निर्मित होते हैं। प्राचीनकाल से ही विवाह को पवित्र बंधन के रूप में समाज द्वारा स्वीकृत माना गया है। जिसका उद्देश्य अत्यंत पवित्र और गौरवशाली रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में विवाह सुनियोजित और सुव्यवस्थित जीवन का प्रतीक रहा है। विवाह के माध्यम से ही व्यक्ति समस्त सामाजिक, आध्यात्मिक और धार्मिक कर्तव्यों का पालन और उत्तरदायित्वों का निर्वाह करता है। तैतिरीय संहिता[1] में वर्णित है कि धर्म के अनुपालन याज्ञिक कार्य, संतानोत्पत्ति, वंशोत्थान, गाहस्र्थ तथा पितरों के लिए पिंडदान आदि के निर्मित विवाह को आवश्यक रूप में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में वैवाहिक प्रथा का वर्णन ही नहीं मिलता बल्कि इसमें विवाह का अत्यंत उच्च आदर्श के रूप में भी चित्रित किया गया है। ऋग्वेद में सूक्त है जो ''विवाह सूक्त'' के नाम से उल्लिखित है जहाँ सोम तथा सूर्या के विवाह का प्रसंग बड़ी रोचक भाषा में उल्लेख किया गया है।[2]

ऋग्वेद में वर्णित है कि विवाह ही व्यक्ति को गृहस्थ बनाता तथा देवताओं के निर्मित यज्ञ करने की योग्यता प्रदान करता है।[3]

तैत्तिरिय संहिता में वर्णित है कि पत्नी के बिना व्यक्ति यज्ञ करने का अधिकारी नहीं है।[4] 'वधूयु' शब्द का प्रयोग वर के लिए ऋग्वेद में प्रसंग मिलता है। जिसका अर्थ है 'वधू' की कामना करने वाला। ऋग्वेद के मंडलों की रचना के समय से ही पत्नी को गृहस्वामिनी के रूप में माना जाता था।[5] शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि पत्नी पति के आधे भाग की पूरक मानी जाती है।

ध्यातव्य है कि तारकासुर का संहार शिवपुत्र द्वारा ही संभव था अतएव शिव पुत्र कार्तिकेय की उत्पत्ति के लिए शिव पार्वती विवाह भी आवश्यक था। कुमारसंभव में वर्णित है कि सती ने अपने पिता से नाराज होकर अपने शरीर का त्याग करने के पश्चात हिमवान के घर पार्वती के रूप में जन्म लिया। पार्वती इस जन्म में भी शिव को वर के रूप में पाने के लिए कठोर तपस्या की।[6] जबकि इसी समय भगवान शिव समाधि में लीन थे तथा दूसरी और तारकासुर के उपद्रव से समस्त देवगण एवं ऋषिगण त्रस्त थे। क्योंकि तारकासुर को ब्रह्मा द्वारा वरदान मिला था कि शिवपुत्र द्वारा ही तारकासुर का संहार हो सकेगा। इसलिए शिव पार्वती विवाह के लिए शिव की समाधि भंग करने के लिए सभी देवताओं ने कामदेव से मदद ली। इसके उपरांत ही कामदेव के द्वारा अपने फूलों के धनुष से शिव की समाधि भंग करना एवं शिव द्वारा कामदेव को भष्म करने की कथा भी महत्वपूर्ण है।[7]

शिव पार्वती विवाह का प्रसंग साहित्यिक ग्रंथो के साथ ही शिल्प कला में भी उनकी मूतियाँ देखने को मिलती है। भारतीय मूर्ति शिल्प में विविध क्षेत्रों से प्राप्त शिव की वैवाहित प्रतिमाए विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई है। साहित्यिक ग्रंथों में शिव पार्वती विवाह के विविध रस्मों का उल्लेख मिलते है। वराह पुराण में वर्णित है कि हिमालय ब्रह्मा से सहमति लेते हैं कि वह अपनी पुत्री का विवाह शिव के साथ करने जा रहे हैं।[15] भारतीय कला शिल्प में भी शिव पार्वती विवाह की वार्ता करते हुए हिमालय एवं ब्रह्मा का अंकन भी मिलता है। (चित्र संख्या 1) प्रस्तुत मूर्ति एलोरा की गुफा नंबर 21 के एक फलक पर त्रिमुख ब्रह्मा एवं हिमालय के मध्य शिव पार्वती परिणय के संदर्भ में चर्चा करते हुए आमंत्रित किए गए हैं।

लगभग सभी ग्रंथों एवं पुराणों में शिव बारात लाने का वर्णन मिलता है। कालिदास द्वारा रचित ग्रंथ कुमारसंभव में शिव बारात लाने का प्रसंग मिलता है। जहाँ भगवान शिव विविध आभूषणों से सुसज्जित होकर शिव नन्दी के पीठ पर आरूढ होकर हिमालय के घर के तरफ प्रस्थान करने वर्णन मिलता है।[8]

साहित्य ग्रंथों के साथ ही कला में भी शिव बारात लाने के दृश्यों का अकंन मिला है। उदाहरण के लिए एटा से प्राप्त शिव पार्वती परिणय की इस मूर्ति में सबसे ऊपरी पंक्ति में शिव द्वारा बारात लाने का दृश्य दिखाये गए हैं। शिव पार्वती विवाह की यह मूर्ति भारत कला भवन में संग्रहित है (चित्र संख्या 2)[9] जहाँ विवाह के इस प्रसंग का बहुत ही

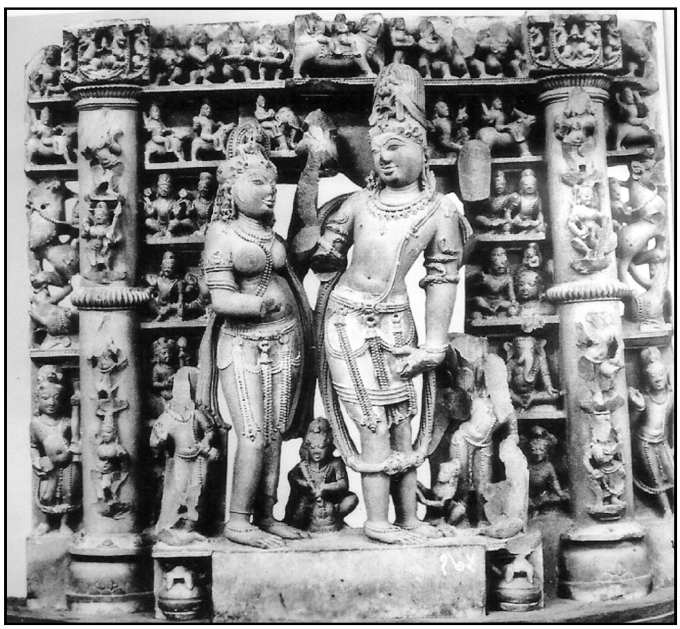

चित्र संख्या 2 : शिव पार्वती परिणय मूर्ति, एटा उत्तर प्रदेश, 10वीं सदी ईसवी

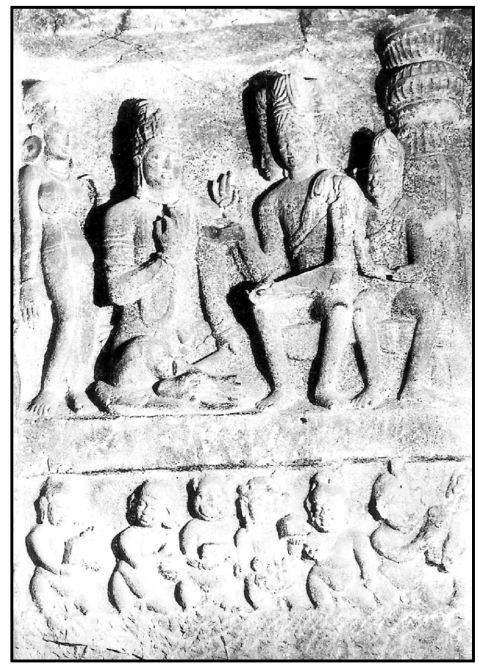

चित्र संख्या 1 : हिमालय एवं ब्रह्मा द्वारा शिव विवाह वार्तालाप करते हुए, गुफा नंबर 21, रामेश्वर एलोरा, छठी सदी ई.

मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया गया। प्रतिहार कालीन इस मूर्ति शिल्प में शिव पार्वती परिणय के दो प्रसंगों का अंकन मिलता है। जहाँ शिव बारात लाने तथा दूसरा सप्तपदी के क्षण को शिल्पी ने पंचरथीय पीठिका पर आकारित किया है। प्रस्तुत मूर्ति के सबसे ऊपरी पंक्ति में शिव बारात लाते दिखाई गये हैं। शिव को मध्य में अपने वाहन नंदी पर आरूढ़ प्रदर्शित किया गया है उनके साथ वाद्यवादन करते हुए शिव गण का यह अंकन बारात के दृश्य को और भी जीवंत प्रदान कर रहा है। इसी प्रकार शिव बारात यात्रा का दृश्य भुवनेश्वर के शत्रुघ्नेश्वर मंदिर पर भी मिलता है (चित्र संख्या 3)[10] आगम तथा पुराणों में शिव बारात यात्रा का विशद वर्णन देखने को मिलता है। इस मूर्ति में वर रूप में शिव वृषभारूढ़ पर अंकित है। चन्द्रांकित व मुण्डमाला से सुशोभित द्विभुज शिव बाघाम्बर पहने सुशोभित है। वर रूप शिव के हाथों में त्रिशूल तथा डमरु लिए प्रदर्शित है। वामन पुराण में भी अप्सराओं द्वारा नृत्य किए जाने का भी प्रसंग मिलता है।[11]

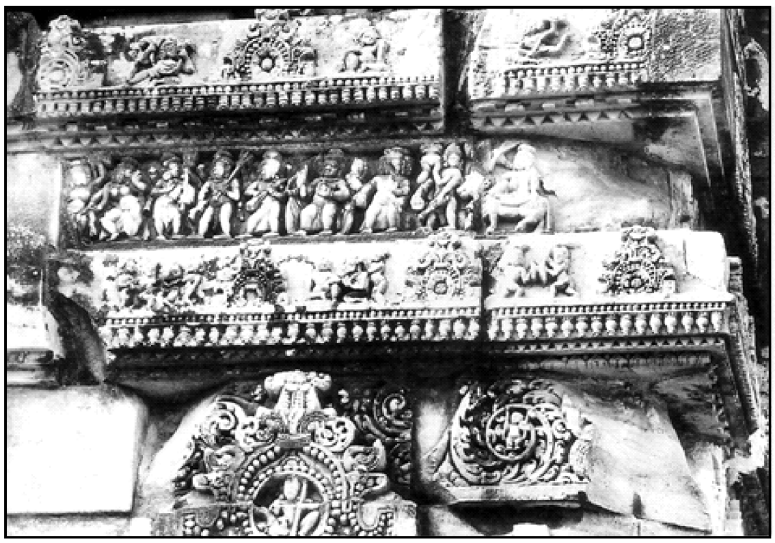

चित्र संख्या 3 : शिव बारात यात्रा दृश्य उत्तरी कंठी शत्रुघ्नेश्वर मंदिर, भुवनेश्वर सातवीं सदी ईसवी

विवाह के लिए वर पक्ष द्वारा वधू के घर पर बारात लाने के पश्चात वधू के पिता द्वारा वर को मधुपर्क देकर उनका सम्मान कर मधुपर्क एवं समीक्षण की रस्म निभाई जाने की परंपरा मध्यकालीन समाज में विद्यमान रही है। शिव पार्वती विवाह में मधुपर्क रस्म का वर्णन कुमारसंभव[12] एवं वामन पुराण[13] में वर्णित मिलता है जहां हिमालय ने शिव की नए वस्त्र एवं रत्न व आभूषण तथा मधुपर्क के साथ शिव को देखें। मधुपर्क विधि में कन्या का पिता गन्ध माला अलंकरण तथा यज्ञोपति देकर वर का पूजन करता था। इसके पश्चात ही कन्या मंडप में लाई जाती थी जहाँ वर और वधू को एक दूसरे के समक्ष लाकर दर्शन कराया जाता था इसे परस्पर समीक्षण भी कहते थे। यह समीक्षण प्रेम व स्नेह का प्रतीक समझा जाता था।

शिव पार्वती विवाह के विविध रस्मों को शिल्पांकन ने कलश, बंदनवार से सुसज्जित मंडप के मध्य विवाह के सभी रस्मों सम्पन्न किया है। शिव पुराण में उल्लेखित है कि हिमालय ने अपनी पुत्री पार्वती के विवाह अवसर पर एक सुंदर मंडप का निर्माण विश्वकर्मा द्वारा मंडप को बनवाया था। मंडप को केले के पौधे के खंभों, आम के पल्लव एवं बंदनवारों से सुसज्जित सजाया गया।[14] ध्यातत्य है कि विवाह संस्कार के सभी रस्मों को एक सुसज्जित मंडप में संपन्न किया जाता है। वर्तमान समय में भी मंडप को केले के पौधे, कलशः, फूल से सजाया जाता है। विभिन्न कला केंद्रों से जैसे—एटा, नागरी, खजुराहो, कामाँ आदि मूर्तियों को शिल्पी ने दो अर्दस्म्भों के मध्य शिव पार्वती परिणय दृश्य को आमूर्तित किया है जहाँ पूर्णमंगल घट, केले के पेड़ तथा आम के पल्लव से मंडप को सजाया गया है। बंदनवार विवाह मंगल का सूचक माना जाता है। जबकि साहित्य ग्रंथों में भी मंडप को सुसज्जित करने का संदर्भ मिलता है।

शिव पार्वती विवाह मूर्तियों में अग्नि एवं त्रिमुख ब्रह्मा क्रमशः हविकुंड एवं पुरोहित की भूमिका निभाते दिखाई गए हैं। शिव पार्वती विवाह मूर्तियों की दृष्टि से मध्यकालीन कला केंद्रों में भुवनेश्वर के शत्रुहनेश्वर मंदिर (चित्र नंबर 4) विशेष उल्लेखनीय है। प्रस्तुत मूर्ति में ब्रह्मा के आगे अक्षमाला तथा घटधारी अग्नि का अंकन है जिनके शरीर से अग्नि का शिखाएं निकल रहा जिनका साहित्यिक संदर्भो में

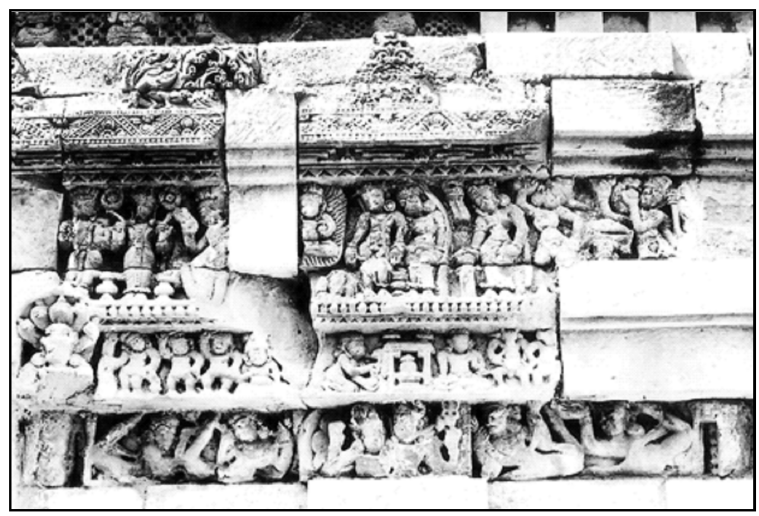

चित्र संख्या 4 : शिव विवाह मूर्ति उत्तरी भित्ति स्वर्णजालेश्वर मंदिर, भुवनेश्वर, सातवीं सदी ईसवी

भी वर्णन मिलता है। प्रस्तुत मूर्तियों में अग्नि के समक्ष शिव पार्वती पाणिग्रहण या सप्तपदी करते हुये आमूर्तित है। कुमारसंभव में उल्लेख मिलता है कि शिव पार्वती विवाह में पुरोहित द्वारा विवाह कराने का वर्णन मिलता है।

वामन पुराण[15] में प्रसंग मिलता है कि हिमालय द्वारा अपनी पुत्री पार्वती का कन्यादान देने का कथानक विस्तार से मिलता है।

वर्तमान समय में भी माता-पिता द्वारा कन्यादान की रस्म संपन्न किया जाता है। जो लगभग सभी माता-पिता की लालसा रहती है कि वह अपनी पुत्री का कन्यादान करें। आज की विवाह, संस्कार में माता-पिता कलश से जल गिराते हुए अपनी कन्यादान करने का वर्णन प्राय: सभी ग्रंथों में पार्वती के पिता हिमालय द्वारा शिव को अपनी कन्यादान देने का सुंदर प्रसंग मिलता है कि हिमालय ने मंत्रों का उच्चारण करते हुए अपनी पुत्री पार्वती का हाथ शिव के हाथों में दिये तथा हिमवान पुत्री का कन्यादान करके मानों कृतार्थ हो गये।[16]

विवाह संस्कार को पाणिग्रहण संस्कार भी कहते हैं। अत: पाणिग्रहण विवाह का पर्यायवाची हुआ। यह संस्कार विवाह के स्थायित्व एवं सुदृढ़ीकरण का द्योतक है। पाणिग्रहण का अर्थ है वधू के हाथ को स्वीकार करना। इस रस्म में वर-वधू एक दूसरे का हाथ पकड़ते हुए जीवन भर एक दूसरे के साथ रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। शिव पार्वती परिणय मूर्तियों में कहीं सप्तपदी तथा कहीं पाणिग्रहण करते हुए मूर्तियाँ आमूर्तित की गयी हैं।

उदाहरणार्थ—कन्नौज, एलोरा, कुमाऊँ, खजुराहों हिंगलाजगढ़ आदि से स्थलों से प्राप्त मूर्तियों में पाणिग्रहण मुद्रा में शिव पार्वती को प्रदर्शित किया गया है। पाणिग्रहण संस्कार में कन्या के माता-पिता अपनी पुत्री के हाथों के माध्यम से वर के हाथों में जल डालते हैं जो इस बात का सूचक है कि गंगा में यमुना विलीन होकर एक बड़ी गंगा बन रही है।

पाणिग्रहण संस्कार संपन्न होने के उपरांत ही लावापरछन या लाजाहोम की रस्म की जाती है। जिसमें वधू का भाई या उसके अभाव में उसी समकक्ष का कोई सम्बन्धी वधू की अंजलि में धान की खिले गिराता है और वह मौन रूप से अग्नि को साक्षी मानकर उसकी आहुति अग्नि को दे दी जाती है। लाजाहोम के बाद विवाह के अत्यंत महत्वपूर्ण सप्तपदी रस्म प्रारंभ होती है। इस रस्म में वर वधू को पूर्व की ओर सात पग चलने के लिए प्रार्थना करता है तथा साथ ही यह मंत्र कहता जाता है—''एक पद अन्न के लिए, दूसरा पक्ष शक्ति के लिए, तीसरा पद धन की वृद्धि के लिए, चार पद सुख के लिए, पांच पद पशु के लिए, छह पद ऋतु के लिए तथा मित्र। सात पद मेरे साथ एक हृदय होने के लिए चलो। वर-वधू को गृहस्थ धर्म के नियमों का स्मरण कराना ही सप्तपदी कहलाता है। साथ ही अग्नि को साक्षी मानकर वर-वधू अग्नि की चारों तरफ परिक्रमा करते हैं साथ ही वर-वधू सप्तपदी के माध्यम से इन भावनाओं को आत्मसात करते हैं कि वह विवाह की सभी रस्मों में भाग लेते हुए सभी प्रतिज्ञाएं पवित्र हृदय और आत्मा से कर रहे हैं। कानूनी दृष्टि से भी यह रस्म अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इस विधि के समापन के बाद ही विवाह पूरी तरह से वैद्य समझा जाता है।

सप्तपदी के पश्चात ही जूते छिपाने की रस्म होती है जो वधू की बहने एवं सखियां द्वारा वर के जूते चुरा लेती है तथा अपने जीजा से मनोवांछित नेग पाने पर ही जूते वापस करती है। ध्यातव्य है कि समसामयिक समाज में प्रचलित विवाह संस्कार की जीवंत परंपरा के निर्वाह संकेत हैं। यद्यपि समाज के बदलते परिवेश के बावजूद भी समाज में वैवाहिक पंरम्पराएं उसी प्रकार जीवंत हैं। कला शिल्प में भी लगभग समस्त वधू की सखियों द्वारा नेग याचना का अंकन मिलता है। लगभग समस्त उत्तर भारतीय कला स्थलों से प्राप्त शिव पार्वती परिणय मूर्तियों में शिव के चरण स्पर्श करते हुए पार्वती की सखी मालिनी का अंकन किया गया है। उदाहरण एटा, कन्नौज, कामाँ, मथुरा आदि कला केंद्रों से प्राप्त मूर्तियों में देखा जा सकता है। इस प्रसंग का सुंदर वर्णन वामन पुराण में विस्तृत रूप से उल्लेख मिलता है।

भारतीय परम्परा में शिव पार्वती परिणय की यह मूर्ति भारतीय सामज की हजारों वर्षों से चली आ रही वैवाहिक परम्परा की जीवन्त अभिव्यक्ति का प्रमाण है जिसके साहित्यिक संदर्भ इसे पूर्णता प्रदान करते हैं। वर्तमान समाज में प्रचलित बंह्म विवाह के विविध रस्में को इसमें देखा जा सकता है।

इसीलिये तो शिव पार्वती की यह विशेष मूर्ति का आमूर्तन न होकर सम्पूर्ण समाज का आदर्श रूप प्रस्तुत करती हैं। जहाँ सदियों से ही नैतिक मूल्यों की स्थापना एवं पुत्र प्राप्ति की आवश्यकता को देखते हुए विवाह को एक आवश्यक रूप में स्वीकार किया गया है। जहाँ वर-वधु के परस्पर आलंबन एवं साहचर्य का द्योतक है तो वहीं सामाजिक स्तर पर पुत्री के प्रति माता-पिता दायित्व की पूर्णता को अभिव्यक्ति है जिसे समाज द्वारा उसे पूर्ण सम्मानजन रूप में देखा जाता है। यही नहीं यहाँ कन्यादान, लाजाहोम, सप्तपदी, दायभाग की याचना का सभी का मर्मपरक अर्थ है।

पाद-टिप्पणी

1. तैतिरीय संहिता - 6.3.10.5 प्रजया पितृभ्य
2. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, डॉ. रविशंकर उपाध्याय : हिंदू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृ. 30, वाराणसी, 2009
3. ऋग्वेद - 8. 30।
4. तै. ब्रा. - 2.2, 2.6, 3.3, 3.1
5. ऋग्वेद - 3/52/4
6. कुमारसंभव - 1/21-58
7. कुमारसंभव -2/31-32/3/20
8. कुमारसंभव -7/37
9. शिव पार्वती विवाह मूर्ति, एटा (उ.प्र.) प्रतिहार, 10वीं शती ई., सम्प्रति भारत कला भवन वाराणसी, 175, क्रमांक
10. शिव पार्वती विवाह मूर्ति, उत्तरी कण्ठी, शत्रुघ्नेश्वर मंदिर, 7वीं शती ई. भुवनेश्वर
11. वामन पुराण - 27/15.16
12. कुमारसभंव - 7/22
13. वामन पुराण - 27/46
14. शिव पुराण (रूद्र संहिता), (सम्पा.) हनुमान प्रसाद पोवार, पृ. 291
15. वामन पुराण - 27/42,43
16. वामन पुराण - 27/46.47

❑❑

मनजीत
इतिहास विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक, हरियाणा

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

सूफी सन्तों के साथ सुल्तानों के संबंध

मध्यकालीन भारत में सूफीमत एक प्रभावशाली आन्दोलन के रूप में उभरा। यद्यपि सूफीमत इस्लाम से ही संबंधित था, किन्तु यह इस्लाम में आई कट्टरता के विरूद्ध था। सूफी बहुत ही खुले विचारों वाले थे। उन्होने रूढ़िवादी परिभाषाओं तथा धर्माचार्यों द्वारा दी गई कुरान एवं सुन्ना की बौद्धिक व्याख्या की कटु आलोचना की। सूफियों ने मुक्ति की प्राप्ति के लिए परमात्मा की भक्ति एवं उसक आदेशों के पालन पर बल दिया। उन्होंने पैगम्बर मुहम्मद को इंसान-ए-कामिल बताया तथा उनकी शिक्षाओं पर चलने की अपील की। उन्होंने कुरान की व्याख्या अपने निजी अनुभवों के आधार पर की। सूफी मानव सेवा को अपना परम धर्म मानते थे।

भारतीय इतिहास में शासकों के साथ सूफी सन्तों के संबंधों में काफी उतार-चढाव देखने को मिलता है। कई शासक इन सूफी सन्तों का बडा आदर करते थे। उन्हें विभिन्न प्रकार के उपहार आदि भेंट करते थे तो कई शासकों के संबंध सूफी सन्तों के साथ तनावपूर्ण रहे। चाहे जो भी हो भारत में इन सूफी सन्तों या साधकों ने जनता के दिलों में अपनी एक ऐसी छवि बनाई जो हमेशा याद की जाती रहेगी। वहीं सन्तों के सम्मान करने वाले कारणों या अच्छे धार्मिक विचारों के कारण जनता को विश्वास भी शासक दिलाते रहे। इन सूफियों के शासकों के साथ संबंध में कई बार कडवाहट भी हमें स्पष्ट दिखाई देती है।

भारत में सूफीमत का विकास मुख्य रूप से मुहम्मद गौरी के साथ आये शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के साथ हुआ। मुईनुद्दीन का जन्म सन् 1142 ई. में सीसतान में हुआ था।[1] वे चिश्ती सम्प्रदाय के शेख अब्दुल कादिर के शिष्य थे। ये 1190 में शहाबुद्दीन गौरी की सेना के साथ दिल्ली आये। ये लगभग तीन वर्षों तक दिल्ली में रहने के पश्चात् 1195 में राजस्थान के अजमेर में स्थाई रूप से निवास करने लगे। अजमेर में जब वे धार्मिक प्रचार करते तो चिश्ती तरीके से करते थे। इस तरीके में ईश्वर गान पद्य रूप से गायन के माध्यम से लोगों तक पहुंचाया जाता था। मतलब ये कि ईश्वर कव्वाली, समारव्वानी और उपन्यासों द्वारा लोगों को ईश्वर के बारे में बताना और मुक्ति मार्ग दर्शन करवाना। इस सूफी सन्त के कई हिन्दू राजाओं से भी मतभेद हुए किन्तु वह सब मतभेद स्वल्पकालीन थे। स्थानीय राजा भी मुईनुद्दीन के प्रवचनों से मुग्ध हुए और उन पर कोई कष्ट या आपदा आने नहीं दिया। इस तरह शासकों के साथ-साथ स्थानीय लोगों के हृदय भी जीत लिये और लोग भी इनके मुरीद (शिष्य) बनने लगे।

शेख मुईनुद्दीन चिश्ती की मृत्यु के बाद उनके शिष्य कुतुबुद्दीन बख्तियार[2] काकी ने चिश्ती परम्परा को आगे बढाया। ये मुईनुद्दीन के उत्तराधिकारी बने। इनको रोटियों वाला के नाम से भी जाना जाता है। ये सूफी सन्त बड़े ही साधारण थे। ये सुल्तान इल्तुतमिश के समकालीन थे। मुईनुद्दीन की आज्ञा से इन्होंने दिल्ली को अपना निवास स्थान बनाया। इस सन्त की ख्याति दिल्ली के आस-पास काफी फैल गई। इल्तुतमिश पर भी इस सम्प्रदाय व कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से अत्यधिक प्रभावित थे। इल्तुतमिश ये चाहते थे कि ये सूफी सन्त दिल्ली सल्तनत में कोई पद स्वीकार करें। इसलिए इल्तुतमिश ने इनके आगे यह प्रस्ताव रखा कि वे शेख-उल-इस्लाम का पद स्वीकार कर लें जो कि काफी महत्वपूर्ण पद था परन्तु इस शेख ने इल्तुतमिश के इस प्रस्ताव को अस्वीकार किया क्योंकि इनका मानना था कि सूफी साधक के लिए कोई भी पद या धन-दौलत निरर्थक है और यह उस ईश्वर की भक्ति के मार्ग में बाधा का काम करती है।

ख्वाजा कुतुबुद्दीन की 1237 ई. में दिल्ली में मृत्यु हुई और इनको कुतुबमीनार के पास दफनाया गया जहां आज भी इनकी कब्र है।[3] ख्वाजा कुतुबुद्दीन के बाद इनके शिष्य फरीदुद्दीन मसउद शकरगंज इनके उत्तराधिकारी बने। फरीदुद्दीन मसउद शकरगंज वाक फरीद के नाम से प्रख्यात हुए। वे एकान्त प्रेमी थे। धन-माया से दूर रहना पसंद करते थे। बाबा फरीद ने अपने मुरीदों शिष्यों को स्पष्ट व साफ हिदायतें दे रखी थी 'यदि तुम आत्मिक तरक्की की इच्छा रखते हो तो समय क हाकिमों के साथ कभी भी खिचडी न होओ।' अर्थात् उनका कहना था कि यदि तुम ईश्वर या अल्लाह में ध्यान लगाना चाहते हो तो राजनीति व ऐश्वर्य से दूर रहो। बाबा फरीद ने अपनी जिन्दगी में बडी दृढता तथा वफादारी से इस सिद्धान्त का पालन किया। गरीबी तथा शहरी जिन्दगी का आकर्षण भी हुक्मरान के प्रति उनके रवैये में कोई परिवर्तन न ला सका।

सुल्तान नासिरूद्दीन इब्बन शमससुद्दीन इल्तुतमिश जब उण्व शरीफ तथा मुल्तान पर हमला करने के लिए गया तब फरीद जी के दर्शन करने अजोधन भी गया था। दर्शन करने के पश्चात् वह उनसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने वजीर अलिफ खां के हाथ बाबा फरीद को बहुत सारी दौलत तथा चार गांवों की जमींदारी सौंपी। बाबा फरीद ने सारी दौलत उसी समय निर्धनों व जरूरतमंदों में बटवा दी और चार गांवों की जमींदारी का परवाना यह कहकर लौटा दिया 'यह जमीन उन लोगों को दे दो जिनको इसकी आवश्यकता है। मुझे जमीन की कोई आवश्यकता नहीं है अलिफ खां ने इल्तुतमिश की मौत के बाद हिन्दुस्तान का राज्य भार सम्भाला। बाद में ग्यासुद्दीन सुल्तान बना जो कि इतिहास मे बलबन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने अपनी बेटी का रिश्ता शेख फरीद से तय किया। सुल्तान या बादशाह से नाता जुडने के बाद भी बाबा फरीद शाही ठाठ-बाट से परे रहे। वह बिल्कुल साधारण जीवन जीते रहे। बाबा फरीद अपनी भक्ति में लीन थे। जो लोग रूहानी रहनुमाई के लिए बाबा फरीद के पास आते थे उन्हें वे हुकमत और हुकमती सियासतों से बचकर रहने की नसीहत देते थे। उनका कहना था कि राजाओं तथा अन्य अमीरों से घुलना-मिलना नहीं चाहिए। जब भी वे लोग तुम्हारे घर आये तो ये समझना चाहिए कि ये आफतें आई हैं। जो दरवेश राजाओं तथा अमीरों के साथ भाई-चारा बढा लेता है उसकी रूहानी हरियाली मुरझाने लगती है।

शेख फरीद से जो भी अमीर, सामन्त तथा राजकीय अधिकरी मिलने या उनके दर्शन करने के लिए आते थे वे बाबा फरीद को जो भी चढावा या उपहार लाते थे उनको बाबा फरीद तुरन्त अपने दरवेशों को बांट देते थे। कभी भी उनको अपने पास नहीं रखते थें।

एक बार सुल्तान बलबन ने उन्हें टकों से भरी तश्तरी भेजी। बाबा फरीद जी ने उन्हें स्वीकार करने से मना कर दिया परन्तु बहुत मिन्नतें करने पर उसे स्वीकार किया और मौलाना बदरूद्दीन को यह भरी हुई तश्तरी गरीबों में बंटवा देने के आदेष दिए। बाबा फरीद चाहते थे कि अगले दिन का सूरज निकलने से पहले यह धन उनके गरीबखाने से पहले जा चुका हो उनका मानना था कि उनका 'जमयत खाना' राजाओं के तोहफे संभालने का गोदाम नहीं।

बाबा फरीद पंजाबी लोक तथा पंजाबी लोक धारा से जुडे सूफी कवि थे। उनकी लोकप्रियता इसमें समाई है कि उन्होंने कुलीन शासकों और अमीरों व राजाओं से अपना संबंध स्थापित करने की बजाय सर्वसाधारण से निकटता कायम की। उनकी साधारण जीवन शैली को देखकर जनसाधारण को विश्वास हो जाता था कि वे उनके आत्मीय हैं। ऐसा कहा जाता है कि उनके प्रभावाधीन लाखों लोग मुसलमान बने। परन्तु उन्होंने न कभी इस्लाम की प्रशंसा की और न ही किसी अन्य धर्म की आलोचना की। उन्होंने जिन मूल्यों का प्रचार किया वो मात्र इस्लामिक मूल्यों वाले नहीं थे बल्कि सर्वकाल से सभी धर्मों द्वारा स्वीकृत रहे थे।

बाबा फरीद की रचनाओं में प्रयुक्त बिंब अधिकांशत: लोक जीवन से संबंधित हैं जैसे भावी वधू के घर भेजी गई साहे चिट्ठी विवाह तिथि की चिट्ठी, सिर पर भारी गठरी उठाकर चलती हुई स्त्री विवाह के अवसर पर तिल बांटती हुई गृहिणी, ऋतु परिवर्तन के समय रंग बदलती वृक्ष शाखाएं, तेज वर्षा में कंबल ओढकर चलने वाले मुसाफिर, पगड़ी के मैले हो जाने का डर, रूखी-सूखी रोटी खाकर ठंडा पानी पीने की संतुष्टी, सुहागिन-दुहागिन, लोक पीहर, परलोक, ससूराल, कुंआरी का भाव, ब्याहता के दुख, चूल्हे पर तप रही हंडिया आदि के बिंब दृश्यावली फरीद की रचनाओं में लो जीवन का सजीव चित्रण प्रस्तुत

करते हैं। वे जन साधारण की तरह सोचते तथा महसूस करते थे। वे राजकीय ठाठ बाट को बिल्कुल भी पसंद नही करते थे। पाकपतन पंजाब में बाबा फरीद की मृत्यु हो गई। उनकी मजार पर मुहर्रम की पांचवीं तारीख का उर्स लगता है।

बाबा फरीद के दो प्रमुख शिष्य-निजामुद्दीन औलिया व मखदूम अलाउद्दीन अली अहमद साविर थे। निजामुद्दीन का वास्तविक नाम मुहम्मद-बिन-अहमद-बिन-दनियाल अल बुखारी था। उनका जन्म बदायूं में 1238 ई0 में हुआ था। ये पांच वर्ष की आयु में अपने पिता की मृत्यु के बाद अपनी माता, बीबी जुलेखा के साथ दिल्ली आये। 20 वर्ष की आयु में निजामुद्दीन अजोधन जिसे आजकल पाकपट्टन शरीफ जो कि पाकिस्तान में स्थित है में बाबा फरीद से मिलने पहुंचे। उस समय बाबा फरीद की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। इन्होंने बाबा फरीद को अपना गुरू बनाया व उसकी शिष्यता ग्रहण की। निजामुद्दीन ने अजोधन को अपना निवास स्थान तो नहीं बनाया पर वहां पर अपनी आध्यात्मिक पढाई जारी रखी। साथ-ही साथ उन्होंने दिल्ली में सूफी अभ्यास जारी रखा। वह हर वर्ष रमजान के महीने मे बाबा फरीद के साथ अजोधन में अपना समय बिताते थे। इनको अजोधन के तीसरे दौरे में बाबा फरीद ने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। वहां से वापसी के साथ ही उन्हें बाबा फरीद के देहान्त की खबर मिली। दिल्ली में स्थाई निवास स्थान उन्होंने गियासपुर में बनाया। गयासपुर दिल्ली के पास शहर के शोर-शराबे और भीड-से दूर स्थित था। यहाँ पर उन्होने अपना एक खानकाह बनाया जहां पर विभिन्न समुदायों के लोगों को खाना खिलाया जाता था। खानकाह एक ऐसी जगह बन गई जहां सभी तरह के लोग चाहे अमीर हों या गरीब की भीड लगी रहती थी।

निजामुद्दीन औलिया ने सात सुल्तानों का शासनकाल देखा परन्तु कभी भी किसी के दरबार में नहीं गए। 1320 ई. के आस-पास दिल्ली में ग्यासुद्दीन तुगलक की सल्तनत थी। उसी समय दिल्ली में हजरत निजामुद्दीन की प्रसिद्धि बहुत ज्यादा थी। तुगलक निजामुद्दीन औलिया से बहुत चिडता था जबकि खुसरों को वह काफी पसन्द करता था। सुल्तान को लगता था कि औलिया के इर्द-गिर्द बैठे लोग उसके खिलाफ साजिशें रचते हैं। एक बार तुगलक कहीं से लौट रहा था। बीच रास्ते से ही उसने सूफी सन्त हजरत निजामुद्दीन औलिया तक एक संदेश भिजवा दिया कि उसकी वापिसी से पहले औलिया दिल्ली छोड दे। खुसरो को इस बात से तकलीफ हुई। वे औलिया के पास पहुंचे। तब औलिया ने उनसे कहा हनूज दिल्ली हरस्त यानि दिल्ली अभी दूर है। तुगलक के लिए दिल्ली दूर ही रह गई। रास्ते में उसके पडाव व स्वागत के लिए लकड़ी के पुल पर षाही खेमा बनवाया गया था लेकिन रात को ही भयंकर अंधड से वह टूट गया और ग्यासुद्दीन तुगलक की वहीं दबकर मौत हो गई। इन्होंने हिन्दू और मुस्लिम सभी को समान समझा व सभी को शिक्षाएं दी। इनको महबूब-ए-इलाही, सुल्तान-उस-मसहामक, दस्तगीर-उ-दोपहां, जग उजियारे, कुतबु-ए-देहली आदि उपाधियां मिली हुई थी।

इनके बहुत से शिष्यों को आध्यात्मिक उंचाई की प्राप्ति हुई जिनमें शेख नसीरूद्दीन मोहम्मद चिराग-ए-दिल्ली और अमीर खुसरो जो कि विख्यात विद्या ख्याल संगीतकार और दिल्ली सल्तनत के षाही कवि के नाम से प्रसिद्ध थे।

निजामुद्दीन औलिया बडे ही खुले दिल के विचारक और हर मजहब को एक ही नजर से देखने वाले थे। उनकी इस बात से उस दौर के मुल्ला खासे नाराज थे पर उनके ख्यालात लोगों तक पहुंच रहे थे। उनके दिलों में जगह बना रहे थे। सूफीवाद का एक ही सिद्धान्त है—इंसान चाहे किसी भी जाति, मजहब या रंग का हो, सभी की सेवा करना, सूफी एक बात मानते हैं 'अल खल्क औ-अयालुल्लाह', माने सब खुदा के बंदे हैं और खुदा से इश्क तभी है जब उसके अयल यानि बंदो से है।

निजामुद्दीन औलिया कहते थे—'इबादत से ज्यादा सवाब पुण्य जरूरतमंदों की सेवा से मिलता है। इसे उन्होने कुछ इस तरह से समझाया है खुदा की इबादत के दो तरीके हैं—लाजिमी और मुताद्दी। पहले में खुदा का सजदा हज और रोजे रखना इसका सवाब सिर्फ उसको है जो ये करता है 'मुताद्दी' है दूसरों की मदद लोगों से महोब्बत, खुलूस और ईमानदारी से काम करने वाला मुताद्दी के सवाब कभी खत्म नहीं होते।

फवैद अल-फुआद में उन्होंने बयान किया है कि पैगम्बर इब्राहिम ने एक बार किसी काफिर के साथ खाना बांटने में परहेज किया तब अल्लाह की आवाज आई मुझे इसे जिन्दगी देने से गुरेज नहीं था तुम्हें खाना बांटने से क्यूं है।

अल-बरानी ने लिखा है कि 'निजामुद्दीन औलिया का समाज पर इतना असर था कि उनके कहने से दिल्ली में अपराध कम हो गये थे। उन्होंने हमेशा माना कि कयामत के दिन यह हिसाब जरूर होगा कि तुमने अपनी रोजी कैसी कमाई। अगरचे गलत रास्ते का इख्तियार किया है तो खुदा सजा जरूर देगा।'

निजामुद्दीन औलिया व अमीर खुसरों का जुडाव भी बहुत अधिक था। एक बार निजामुद्दीन औलिया ने कहा था कि 'मैं कभी-कभी सबसे उकता जाता हूं। यहाँ कि खुदा से भी पर इस तुक्र अमीर खुसरो से कभी नहीं।' खुसरो को उन्होंने तुक्रुल्लाह की उपाधि से नवाजा था। निजामुद्दीन औलिया गयासपुर में बसने से पहले कुछ समय के लिए खुसरो के नाना इमाद-अल-मुल्क रावत की हवेली में रहे और एक समय पर वे पटियाला में भी इसलिए बसना चाहते थे कि वहां खुसरो की हवेली थी। यहीं से खुसरो का काव्यात्मक जीवन शुरू हुआ। खुसरो जो कुछ भी लिखते थे, पहले वे औलिया से दुरूस्त करवाते थे। खुसरो ने अपने तीन संकलन, धुरसत अल-कमाल, वसत-अल-हयात और निहायत अल-कमाल औलिया की नजर किये और इन सब में उन्होंने खुदा और पैगम्बर के बाद औलिया की षान में कसीदे पढ़े हैं।

खुसरो ने अपनी किताब 'लैला मजनूं' में उनकी शान में लिखा है—'औलिया अपनी खानकाह में किसी राजा से कम हैसियत नहीं रखते, वे इस जमीं पर मोहब्बत का आसमां है। एक ऐसा सुल्तान जिसके सिर पर न ताज है न कोई राज पर सुल्तान भी जिसके पैरों की धूल अपने जबीं माथे पर लगाते हैं। खुदा करे कि उन्हें जन्नत में सबसे उंची जगह मिले और खुसरो उनका नौकर बना रहे।'

एक बार औलिया ने उनके कलाम को सुनकर उनसे कुछ मांगने को कहा तो खुसरो ने उनसे कहा कि कलाम में शक्कर जैसी मिठास हो उन्होंने कहा कि ऐसा ही होगा और खुसरो के कलाम में शक्कर जैसी मिठास आ गई।

तीन अप्रैल सन् 1325[18] को इस महान सूफी सन्त निजामुद्दीन औलिया का इंतकाल हो गया। उस वक्त खुसरो बंगाल में थे। वे बदहवास से दिल्ली पहुंचे और शेख की मजार से लिपटकर रोये और कहा—'मैं इस राजा के मरने का गम करूं या अब खुद का दुनिया से जाने का गम मनाउं क्योंकि अब मैं भी जिंदा नहीं रह पाउंगा।' खुसरो ने भी निजामुद्दीन औलिया के जाने के छह महीने बाद ही अपने प्राण छोड़ दिए। इस तरह सूफीवाद के दो स्तम्भों का इस संसार से पलायन हो गया। खुसरो को भी निजामुद्दीन की मजार के पास ही दफना दिया गया।

नासिरूद्दीन महमूद चिराग[19] देहलवी उत्तर प्रदेश के अयोध्या में 1274 के आस-पास सईद नासिरूद्दीन महमूद अलहासानी के रूप में पैदा हुये थे। देहलवी के पिता सैयद महमूद माहता अलहस्नी जो पश्मीना में व्यापार करते थे और उनके दादा सैयद माहता अब्दुल लतीफ अल हसनानी, पहले ईरान के खोरासन से लौटे और लाहौर गए। उसके बाद अयोध्या में बस गए। उनके पिता की मृत्यु तब हुई जब वे नौ साल के थे।

उन्होंने मौलाना अब्दुल करीम शेरवानी से अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की और बाद में मौलाना इफितखार उदरी गिलानी के साथ इसे जारी रखा। 40 साल की उम्र में उन्होंने दिल्ली के लिए अयोध्या छोड दिया। जहां वे ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के शिष्य बने। यह कहा जाता है कि देलहवी अपने कुलीन शिष्य के रूप में अपने पूरे जीवन के लिए बने रहेंगे और हजरत निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी बन गए। समय के साथ वह फारसी भाषा के एक प्रसिद्ध कवि भी बन गए।

नासिरूद्दीन महमूद ने अपने गुरू की मृत्यु के बाद चिश्ती सिलसिले के प्रसार का जिम्मा उठाया। इनको रोषन चिराग-ए-दिल्ली का नाम दिया गया था। नासिरूद्दीन महमूद अपने गुरू के प्रति पूर्ण विरोधाभास बने। वह सेमा को सुनने के लिए सहमत थे जिसे उस सदी के दौरान मुस्लिम धार्मिक बौद्धिकता के अपमान और गैर इस्लामिक कार्य के रूप में माना जाता था और इसी कारण से आज भी कवाली अपने मकबरे और दक्षिण में दरगाह के पास नहीं गाया जाता है। इनके सुल्तानों के साथ संबंधों के बारे में ज्यादा जानकारी प्राप्त नहीं होती परन्तु इतना अवश्य है कि इनका प्रभाव समकालीन शासकों पर अवश्य था। इस बात का पता इससे चलता है कि इनकी मृत्यु के बाद सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने 1358 में इनकी कब्र बनवाई थी। बाद में दो गेटवे मकबरे के दोनों ओर जोडा गया था। विख्यात संलयन में से एक 18वीं शताब्दी के शुरूआती मुगल सम्राट

फरूखशियर द्वारा निर्मित एक मस्जिद थी और दोनों मुसलमानों और गैर मुसलमानों के बीच लोकप्रिय है। नासिरूद्दीन चिराग देलहवी अपने आध्यात्मिक गुरू निजामुद्दीन औलिया के विपरीत उस अवधि में मुस्लिम बुद्धिजीवियों के एक वर्ग द्वारा गैर इस्लामी माना जाता था, सेमा की बात नहीं सुनी। हालांकि उन्होंने इसके खिलाफ कोई विशेष निर्णय नहीं दिया।

नासिरूद्दीन चिराग-ए-दिल्ली, चिश्ती सम्प्रदाय के दिल्ली में अंतिम प्रसिद्ध सूफी सन्त के रूप में जाने जाते हैं। भारत में सुहरावर्दिया चिश्ती सम्प्रदाय के बाद दूसरा महत्वपूर्ण सिलसिला था। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे। इनका पूरा नाम शिहोब अल-दीन उमर बिन अब्द अल्लाह अल सुहरावर्दी था। इन्होंने अपने चाचा अबुल नजीब से शिक्षा ग्रहण की थी। इन्होंने अपने शिष्यों को सूफीमत का प्रचार करने के लिए भारत में भेजा। ख्वाजा हसन नियाजी का तो यहाँ तक कहना है कि 'सुहरावर्दी सूफी ही भारत में आने वाले सबसे पहले सूफी थे।

इस सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार हेतु सैयद वलालुद्दीन सुर्खपोष यहाँ आये थे। इसके पश्चात् हमीदुद्दीन नागौरी तथा शेख बहाउद्दीन जकारिया मुल्तानी ने इस सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान दिया। इन्होंने अर्थात् बहाउद्दीन जकारिया ने मुल्तान को अपना मुख्य केन्द्र बनाया और यहीं से सूफीवाद का प्रचार व प्रसार करने लगे। शेख बहाउद्दीन जकारिया के बाबा फरीद गंज-ए-शंकर से घनिष्ठ संबंध थे। बाबा फरीद उन्हें शेख-उल-इस्लाम कहा करते थे। इन दोनों के संबंध काफी अच्छे थे व दोनों ही एक दूसरे का काफी सम्मान करते थे।

सुहरावर्दी सिलसिले के शेख रूकुनद्दीन ने काफी प्रसिद्धी प्राप्त की। इनकी तुलना चिश्ती सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत निजामुद्दीन औलिया से की जाती थी। सुहरावर्दी सम्प्रदाय के संतों का जीवन काफी अच्छा होता था। चिश्ती सम्प्रदाय के सन्तों के विपरीत इस सम्प्रदाय के सन्तों का जीवन काफी सम्पन्नता के साथ व्यतीत होता था। ये सन्त दिल्ली के सुल्तानों औार अमीरों से दान प्राप्त करने में कोई संकोच नहीं करते थे। ये लोग राजनीति में भी भाग लेते थे। शेख बहाउद्दीन जकारिया ने बहुत दौलत एकत्र की। ये सन्त सरकारी पद प्राप्त करने में भी कोई शर्म महसूस नही करते थे। ये सन्त अपने शिष्यों से भी उपहार स्वीकार करते थे। सुहरावर्दी सन्त लम्बे उपवासों और भूखे रहकर शरीर शुद्धि में यकीन नहीं करते थे। ये सन्त अपने समय की राजनीति में भी काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इनकी खानकाह बडी होती थी और धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण होती थी। इससे इन सन्तों को नियमित आय प्राप्त होती थी। इन खानकाह में कई-कई हाल होते थे। इन खानकाहों में कुछ भक्त जन स्थायी रूप से रहते थे और कुछ अस्थाई तौर पर आते-जाते रहते थे। यात्री भी इन खानकाहों में आकर रात के समय रह सकते थे। खानकाह धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र होती थी। यहाँ के रहने वालों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे भाईचारे से रहते हुए ईश्वर प्रार्थना में लीन रहें और पवित्र जीवन व्यतीत करें।

समय के साथ-साथ सुहरावर्दी सम्प्रदाय के अन्तर्गत कई उपसम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। इसके प्रवर्तक सईद जलाल बुखारी हुए जो उच्छ के रहने वाले थे। ये सूफी गले में हार या रंगा सूत पहनते थे। गले में गुलबंद और लंगोट धारण करते थे। वे पात्रतन और दंभमोला कहलाते थे। हाथ में सोल रखते थे, ताबीज धारण करते थे। सिर में सूत लपेटते थे। दीक्षा के समय उनके दाये हाथ के उपरी भाग पर जलते कपडे से छाप दिया जाता था।

फिरदौसी सिलसिला सन्तों की एक व्यवस्था थी। यह सिलसिला सुहरावर्दी सिलसिले की ही एक षाखा थी जिसने 14वीं शताब्दी में महत्तव प्राप्त किया। फिरदौसी सिलसिले को समरकंद के शेख बदरूद्दीन द्वारा दिल्ली में गठित किया गया। उल्लेखनीय है कि शेख बदरूद्दीन शेख सैफुद्दीन बखारजी के शिष्य थे। शेख बदरूद्दीन के बाद शेख रूकनुद्दीन फिरदौसी ने इस सिलसिले का नेतृत्व किया और उन्हीं के साथ ही यह सिलसिला फिरदौसी सिलसिला कहलाया।

उल्लेखनीय है कि शेख बदरूद्दीन और उनके शिष्य दिल्ली में चिश्ती सिलसिला आने से पूर्व ही महत्वपूर्ण रूप से प्रचलित थे। फिरदौसी सूफी सन्तों ने सुल्तानों के साथ सम्पर्क रखने में काफी दिलचस्पी दिखाई। शेख नजमुद्दीन सुघरा सुल्तान इल्तुतमिश के समय धार्मिक मामलों के मंत्री थे। जबकि सुघरा फिरदौसी सिलसिले के सन्त थे। कुछ समय के लिए यह सिलसिला दिल्ली तक ही सीमित रहा फिर यह बिहार में प्रचलित हुआ जहां शेख शराफुद्दीन माहया मुनमारी सबसे प्रमुख सन्त हुए। उल्लेखनीय है कि फिरदौसी 11वीं शताब्दी का फारसी कवि था जिसने शाहनामा अर्थात् सम्राटों की किताब लिखी

थी जो ईरान के प्रसिद्ध राजाओं की कृति है। उसका वास्तविक नाम अबुल कासिम मंसूर था। कादिर सिलसिले के संस्थापक अब्दुल कादिर अल जीलानी थे। वे फारस के जिलान के रहने वाले थे। कादिर सिलसिला सनातन पंथी इस्लाम के काफी निकट था। अत: सनातनी मुसलमानों ने इसका अधिक स्वागत किया। अब्दुल कादिर के मरने के 300 वर्षों के बाद इस सम्प्रदाय का भारत में प्रवेश हुआ।

भारत में इस सम्प्रदाय के प्रथम प्रवर्तक मुहम्मद गौस थे। ये अब्दुल कादिर के वंशज थे। मुहम्मद गौस के दिल्ली आने पर समकालीन शासक सिकंदर लोधी ने उनका बडा स्वागत किया। सिकंदर लोधी शेख से बहुत प्रभावित हुए। सुल्तान ने अपनी पुत्री का विवाह शेख मुहम्मद गौस के साथ कर दिया। मुहम्मद गौस के उत्तराधिकारी उनके बेटे अब्दुल कादिर द्वितीय हुए[27]। इनका बचपन बडे ऐशो-आराम के साथ व्यतीत हुआ था। इनको बचपन में सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं प्राप्त थी। परन्तु जब ये मुहम्मद गौस के उत्तराधिकारी बने तो उन्होंने सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं एवं ऐशो-आराम का त्याग कर दिया और त्यागी जीवन शुरू कर दिया।

ख्वाजा बहाउद्दीन नक्षबंद को नक्षबंद सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। इनका जन्म तुर्कों में हुआ था। इनकी मृत्यु सं. 1446[28] ई. में हुई थी। वे बहुत बडे विचारक थे। इस सम्प्रदाय के सूफी धार्मिक आडम्बरों का विरोध करते थे। उनका दृष्टिकोण बुद्धिवादी था। इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार तुक्रिस्तान, चीन, जावा व भारत में काफी हुआ। भारत में यह सम्प्रदाय ख्वाजा बाकी बेरंग के साथ प्रविष्ट हुआ। बाकी बिल्लाह भारत में आने के पश्चात् दिल्ली में ही बस गए और यहीं रहते हुए तीन वर्ष पश्चात् इनका देहान्त हो गया।

संदर्भ सूची

1. प्रोफेसर राधेशरण - मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृ. 271 लगभग 1200-1750 ई.
2. सविता श्रीवास्तव - सन्त और सूफी काव्यों में नाटकीय तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन पृ. 45
3. प्रोफेसर राधेशरण - मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 272
4. बाबा शेख फरीद - रत्नावली पृ. 16
5. बाबा शेख फरीद - रत्नावली पृ. 16
6. बाबा शेख फरीद - रत्नावली पृ. 17
7. बाबा शेख फरीद - रत्नावली पृ. 17
8. बाबा शेख फरीद - रत्नावली पृ. 18
9. प्रोफेसर राधेशरण - मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 272
10. प्रोफेसर राधेशरण - मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 272
11. प्रोफेसर राधेशरण - मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 273
12. प्रोफेसर राधेशरण - मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 347
13. In the name of Earth द टाइम्स आफ इंडिया, चितपस 19, 2007
14. फवैद-अल-फुआद
15. अलबेरूनी - तहकीक-ए-हिन्द
16. अमीर खुसरो
17. अमीर खुसरो
18. प्रोफेसर राधेशरण - मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 272

19. प्रोफेसर राधेशरण – मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 273
20. तारीख–ए–फिरोजशाही – बरनी
21. प्रोफेसर राधेशरण – मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 273
22. प्रोफेसर राधेशरण – मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 273
23. सविता श्रीवास्मव – सन्त और सूफी काव्यों में नाटकीय तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 48
24. परशुराम चतुर्वेदी – सूफी काव्य संग्रह, पृ. 39
25. सविता श्रीवास्तव – सन्त और सूफी काव्यों में नाटकीय तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 55
26. प्रोफेसर राधेशरण – मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 275
27. प्रोफेसर राधेशरण – मध्यकाली भारतीय समाज एवं संस्कृति पृ. 2
28. परशुराम चतुर्वेदी – सूफी काव्य संग्रह, पृ. 43

❑❑

डॉ. रूबी चौधरी
सहायक प्राध्यापक
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हिसार (हरियाणा)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में नारी-स्थिति का वर्णन

21वीं सदी प्रगति के पथ पर अग्रसर है। इस संसार में प्रकृति के अनुसार प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है उसी प्रकार समाज में भी समय-समय पर परिवर्तन होते आ रहे है। समाज के पहलू के रूप में नर और नारी को महत्वपूर्ण माना गया है। किसी भी एक पक्ष का अस्तित्व दूसरे के बिना अधूरा है। प्राचीन काल में नारी को देवी के रूप में माना जाता रहा है। नारी को पुरुषों के समान समझा जाता था यथा: राधा-कृष्ण, सीता-राम, लक्ष्मी-विष्णु, गौरी-शंकर आदि। किंतु मध्यकाल तक आते-आते मुगलों व अन्य विदेशी ताकतों के आने से समाज में अनेक रूढियाँ आ गई। समाज में नारी को हेयदृष्टि से देखा जाने लगा। पर्दा प्रथा, सती प्रथाए बाल विवाह आदि कुप्रथाएं अपनी जड़े समाज में फैलाने लगी। समाज में उनकी दयनीय दशा हो गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक समाज सुधारकों जैसे राज्य राममोहन राय, ज्योतिबा फूले, स्वामी विवेकानंद आदि ने समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने का सफल प्रयास किया। स्त्रियों ने स्वयं भी आगे आकर अनेक कदम उठाए। पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है। यह सब प्राप्त करने के लिए उसे काफी संघर्ष करना पड़ा। नारी को पहले सिर्फ भोग्या के रूप में ही देखा जाता था। किंतु धीरे-धीरे स्थिति में परिवर्तन आया।

वर्तमान में साहित्य में भी अनेक महिला लेखिकाओं ने नारी की स्थिति और समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई है। इसमे मृदुला गर्ग, शिवानी, राजी सेठ, कृष्ण सोबती, मृणाल पांडे, मंजुल भगत, मन्नु भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा आदि अनेक लेखिकाएं प्रसिद्ध है।

मैत्रेयी पुष्पा ने समाज में नारी की स्थिति को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। इन्होनें अपनी कहानियों के माध्यम से नारी की समस्याओं और उनकी स्थिति को दिखाने का प्रयास किया है। इनकी कहानियों में हमें बेमेल विवाह, दहेज, विधवा नारी, बलात्कार जातीय शोषण आदि समस्याएं देखने को मिलती है।

बेमेल विवाह

वर्तमान युग में विवाह में लड़की और लड़के अपनी इच्छा से करना चाहते हैं अपनी पसंद का जीवनसाथी चुनना चाहते हैं। किंतु कहीं-कहीं पर आज भी ऐसा सुनने या देखने को मिलता है कि लड़कियों को गरीबी के कारण अथवा अशिक्षा के कारण बेमेल विवाह के बंधन में बांध दिया जात है।

प्रस्तुत कहानी 'बहेलिए' में गिरजा नामक लड़की की कथा है, उसके पिता की मृत्यु के बाद वो अपने चाचा पर निर्भर है। चाचा गिरजा का विवाह उसके पिता की उम्र के पुरुष से करवा देते हैं तथा उसकी बहन का विवाह एक रोगी व्यक्ति से करवा देते हैं उसको क्षय रोग था। गिरजा के विवाह करने पर भी माँ उसका विरोध करती है ''बाप की उमर के आदमी से हमारी लड़की की शादी तै करने वाले तुम होते कौन हो?'' इसी प्रकार ''रास'' कहानी में जमैन्ती का विवाह मनसुखा महाराज से होता है जो पुरुष होकर भी स्त्री समान व्यवहार करता है। मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक अत्याचार को इन कहानियों के द्वारा दर्शाया है।

दहेज प्रथा की समस्या

दहेज प्रथा भारतीय समाज पर बहुत बड़ा कलंक है। ये प्राचीन समय से चला आ रहा है तथा अब तक चल रहा है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानी ''सांप सीढ़ी'' में इस समस्या को दर्शाया है। इसमें सुरजन सिंह अपनी बेटी रज्जों को अच्छी प्रकार पढ़ाता है ताकि सुशिक्षित वर की तलाश सके। वर तो अच्छा मिलता है किंतु ससुर का दहेज लोभी के रूप में सामने आना सुरजन सिंह को अखरता है। रज्जों के ससुर ने कहा, ''एक लाख के बिना भाँवर नहीं पड़ेगी और पचास हजार बिना विदा नहीं होगी।''

''ताला खुला है पापा'' कहानी में बिंदो अपनी माँ की चिंता दूर करने का प्रयास करती है। अपनी बड़ी बहन की शादी में हुए खर्च को देखकर माँ को कहती है, ''अम्मा तुम मेरे ब्याह की फिकर बिल्कुल मत करना। जो रूपया खर्चा कराएगा, मैं उससे ब्याह नहीं करूँगी। ओरछा के मंदिर में 'आदर्श विवाह' होते हैं वहीं करूंगी। ठीक है न?''

इन पंक्तियों से पता चलता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने समस्या के साथ समाधान भी दिया है।

भ्रूण हत्या

भ्रूण हत्या की समस्या को मैत्रेयी पुष्पा ने अच्छी तरह से दिखाया है। वर्तमान में विज्ञान की तरक्की के साथ-साथ उसके बुरे परिणाम भी सामने आते हैं। जन्म से पहले लड़की का पता लगना तथा उसको नष्ट करवा देना की समस्या को अपनी कहानी में दिखाया है। ''तुम किसकी हो बिन्नी'' कहानी में डॉ. अग्रवाल स्वयं गर्भपात क्लीनीक का पता लिखकर देती है। मम्मी ने एक दिन भी व्यर्थ ना जाने दिया और बेटी से मुक्ति पा ली। बिन्नी को बुआ की बात समझ में नहीं आई, ''क्या हुआ बुआ?''

''पेट में ही मार डाला तेरी बहन को, और क्या हुआ। एक बार नहीं, दूसरी बार, तीसरी बार, तेरी बहनें.....''

''मार डाली?''

''हां।'' बुआ ने उत्तर दिया।

परित्यक्त नारी

भारतीय समाज में महिला को हर स्थिति में पुरुष पर निर्भर करके रखा गया है। कभी पिता, कभी भाई, कभी पति और फिर पुत्र के ऊपर आश्रित रही है। किंतु पति के द्वारा त्याग देने पर नारी का विश्वास टूट जाता है। तथा उसके पिता को भी ठेस पहुँचती है। ''राय प्रवीन'' कहानी में सावित्री के पिता को उस पर हुए शारीरिक अत्याचार का पता चलता है तो उसे गाली देकर घर से निकाल देते है, ''क्यो आ गई..... आगे पाँव मत रखना रंडी।'' उसका पति उसको दुत्कार देता है।

शारीरिक रूप से शोषित सावित्री को उसके पिता भी घर पर रखने को तैयार नहीं होते। इसमें एक ऐसी नारी को दिखाया गया है जो शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से शोषित है।

विधवा नारी

विधवा नारी का जीवन, करूणामयी तथा अंधकारमयी रहा है। उनके जीवन की कठिनता की अत्यंत दर्दपूर्ण वर्णन किया है। ''उज्रदारी'' कहानी में मैत्रेयी पुष्पा ने विधवा नारी शांति को चित्रित किया है। पति के गुजरने के बाद उन्हीं के परिवार वाले उसको जायदाद से बेदखल करते है। ऐसे कठिन समय में वह हिम्मत से काम लेती है। और बड़े धैर्य से अपना हक पाने के लिए लड़ती है। ''आइंदा न सुनुँ ये बेसिर-पैर की बाते। कानून कौन पढ़ा रहा है, हम खूब जानते है।''

समाज में नारी की स्थिति तथा उसके सामने की सभी समस्याएं मैत्रेयी पुष्पा ने वर्णित की है। नारी को संकुचित दायरे से निकलकर स्थिति का सामना करना होगा गुण विराम समाज का विकास तभी होगा जब नारी का विकास होगा।

संदर्भ

1. समग्र कहानियां : अब तक, बहेलिए, पृ. 439
2. वही, साँप सीढ़ी, पृ. 172
3. वही, ताला खुला है पापा, पृ. 209
4. वही, तुम किसकी हो बिन्नी ?, पृ. 34
5. वही, राय प्रवीण, पृ. 260
6. वही, उज्रदारी, पृ. 607

❑❑

गगनदीप सिंह
सहायक प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
गंगा डिग्री कॉलेज, धाबी गुज्जरां,
पटियाला, पंजाब

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

शिक्षा, सोशल मीडिया और छात्र : एक विश्लेषणात्मक चर्चा

सारांशिका

मानव हमेशा अपनी जैविक और सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए सामाजिक नेटवर्क में रहने की कोशिश करता है। इन सामाजिक नेटवर्कों में आजीविका चलाने वाली प्रेरक शक्ति संचार है। मानव ऐसे मीडिया को विकसित करने का प्रयास करता है जो अपने निकट और दूर के लोगों के साथ संचार को आसान बना सके। सोशल मीडिया ऐसी ही कोशिशों का नतीजा है। यह सबसे तेज़ संचार माध्यमों में से एक है जिसका उपयोग व्यक्तियों द्वारा दुनिया के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में सूचनाओं का आदान-प्रदान सेकंड के एक अंश के भीतरकरने के लिए किया जाता है। सोशल मीडिया ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक जीवन के हर क्षेत्र को छुआ है। यह शोध लेखशिक्षा पर सोशल मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव के बारे में है।

खोज शब्द : शिक्षा, सोशल मीडिया, संचार और प्रौद्योगिकी, छात्र और सोशल मीडिया, सामाजिक प्रभाव।

शिक्षा

शिक्षा दो लैटिन शब्दों एजुकेयर और एजुकेटम से मिलकर बनी है। एजुकेयर का अर्थ है प्रशिक्षित करना और ढालना। एजुकेटम सिखाने की क्रिया है। शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण, सचेत या अचेतन, मनोवैज्ञानिक के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। समाजशास्त्रीय, वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रक्रिया, जो व्यक्ति के पूर्ण विकास, समाज के विस्तार और विकास के बारे में बताती है। यह अनुभवों को प्राप्त करने की एक सतत और कभी न खत्म होने वाली प्रक्रिया है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की ओर ले जाती है।

शिक्षा सीखने और जानने की प्रक्रिया है, जो हमारे स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित नहीं है। यह एक समग्र प्रक्रिया है और हमारे जीवन के माध्यम से जारी है। यहां तक कि हमारे आस-पास की नियमित घटनाएं हमें किसी न किसी तरह से शिक्षित करती हैं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि शिक्षा के बिना मनुष्य का अस्तित्व ही निरर्थक है। एक शिक्षित व्यक्ति में दुनिया को बदलने की क्षमता होती है, क्योंकि वह आत्मविश्वास से भरा होता है और सही कदम उठाने के लिए आश्वस्त होता है। यह बेहतर नागरिक बनाती है, एक सुनहरा भविष्य सुनिश्चित करती है, नए रास्ते खोलती है, जागरूकता फैलाती है, निर्णय लेने में मदद करती है और आत्मविश्वास बढ़ाती है।

मीडिया

मीडिया शब्द की उत्पत्ति माध्यम से हुई है, जिसका अर्थ वाहक या विधा होता है। मीडिया विशेष रूप से बड़े दर्शकों को दर्शाता है। इस शब्द का प्रयोग पहली बार समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के आगमन के साथ किया गया था। हालांकि, समय बीतने के साथ, रेडियो, टीवी, सिनेमा और इंटरनेट के आविष्कारों द्वारा इस शब्द का विस्तार किया गया। आज की दुनिया में, मीडिया लगभग उतना ही आवश्यक हो गया है जितना कि भोजन और वस्त्र। यह सच है कि मीडिया समाज को मजबूत

करने में उत्कृष्ट भूमिका निभा रहा है। इसका कर्तव्य लोगों को सूचित करना, शिक्षित करना और उनका मनोरंजन करना है। यह हमें दुनिया भर की वर्तमान स्थिति को जानने में मदद करता है। मीडिया का समाज पर एक मजबूत सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव है। शिक्षा में मीडिया की भूमिका आज कंप्यूटर प्रयोगशालाओं, टेलीविजन सेटों और पुस्तकालयों की संख्या से स्पष्ट होती है जो आज अधिकांश स्कूलों में पाठ्यक्रम का हिस्सा बन गए हैं। मीडिया विभिन्न रूपों में आता है और प्रत्येक रूप छात्रों के सीखने और जानकारी की व्याख्या करने के तरीके को प्रभावित करता है। मीडिया ने दुनिया को करीब ला दिया है ताकि अब दुनिया के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न विश्वविद्यालयों के छात्र केवल इंटरनेट कनेक्शन के माध्यम से जुड़े रहें। सूचना क्रांति के बीच यह मीडिया हमारे जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा बन गया है।

सोशल मीडिया

प्रौद्योगिकी के आगमन के साथ, संचार और अंत:क्रिया के ऑफलाइन माध्यम को सोशल मीडिया नामक ऑनलाइन संचार माध्यम से बदल दिया गया है। मरियम-वेबस्टर डिक्शनरी सोशल मीडिया को ''इलेक्ट्रॉनिक संचार (सोशल नेटवर्किंग और ब्लॉगिंग के लिए वेबसाइट) के रूप में परिभाषित करती है, जिसके माध्यम से उपयोगकर्ता सूचना, विचार, व्यक्तिगत संदेश और अन्य सामग्री (वीडियो के रूप में) साझा करने के लिए ऑनलाइन समुदाय बनाते हैं।'' सोशल मीडिया डिजिटल उपकरण और गतिविधियों को समाहित करता है जो पूरे नेटवर्क में संचार और साझाकरण को सक्षम बनाता है।

सामान्य तौर पर, ''सोशल मीडिया'' शब्द का तात्पर्य उन गतिविधियों की संख्या से है जिनमें शब्दों, चित्रों और वीडियो के माध्यम से ऑनलाइन सामाजिकरण और नेटवर्किंग शामिल है। कुछ हद तक, यह दो तरफा चर्चा है जो लोगों को कुछ जानकारी, रुचियों और विचारों को खोजने और साझा करने के लिए एक साथ लाती है। इस मीडिया ने चित्र, वीडियो, ऑडियो और शब्द के रूप में सामग्री बनाना और आसानी से प्रसारित करना संभव बना दिया है। सोशल मीडिया के साथ उपलब्ध सेवाओं में ब्लॉग, विकी, सोशल बुकमार्किंग, सोशल नेटवर्किंग साइट्स, वर्चुअल वर्ल्ड कंटेंट (ऑनलाइन गेमिंग साइट्स) और मीडिया शेयरिंग साइट्स जैसे यूट्यूब, इंस्टाग्राम आदि शामिल हैं। मेफील्ड (2008) ने पांच विशिष्ट विशेषताओं की पहचान की जो संचालन को रेखांकित करती हैं, भागीदारी, खुलापन, बातचीत, समुदाय तथा जुड़ाव। तो, हम कह सकते हैं कि इस मीडिया ने व्यापक पैमाने पर बातचीत में संचार की भागीदारी को खोल दिया है जो व्यक्तियों के बीच जुड़ाव की भावना को जगाता है।

सोशल मीडिया इस विचार पर बनाया गया है कि लोग एक-दूसरे को कैसे जानते हैं और कैसे बातचीत करते हैं। यह लोगों को 'साझा' करने की ताकत देता है, जिससे दुनिया अधिक खुली और एक-दूसरे से जुड़ी हुई है। सोशल नेटवर्किंग का हमारे जीवन पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव है क्योंकि यह जीवन के हर क्षेत्र जैसे राजनीतिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र और शैक्षिक क्षेत्र में बहुत मदद करता है। सोशल मीडिया का उपयोग केवल पेशेवरों या बड़ों तक ही सीमित नहीं है बल्कि छात्रों द्वारा शैक्षिक क्षेत्रों में भी इसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। छात्र आमतौर पर कई कारणों से सोशल साइट का उपयोग करते हैं जैसे कि अध्ययन के उद्देश्य से, मनोरंजन के उद्देश्य के लिए क्योंकि सोशल मीडिया कोई भी डेटा जो आप चाहते हैं वह बहुत आसानी से और जल्दी से सेकंड के एक अंश के भीतर प्रदान करता है। सोशल मीडिया का उपयोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर निर्भर करता है क्योंकि इसका छात्रों पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इस शोध लेख की मदद से हम छात्रों पर सोशल मीडिया के इस्तेमाल के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को समझाने की कोशिश कर रहे हैं।

सोशल मीडिया और शिक्षा : एक जुड़ाव

इन दिनों हम तेज विकासशील समाज में रह रहे हैं जो हर दिन अपने सदस्यों को बड़ी संख्या में नई संभावनाएं प्रदान करता है। मुख्य रूप से, ये अनूठे अवसर सोशल मीडिया की उन्नति से संबंधित हैं जिन्होंने विशेष रूप से आधुनिक शिक्षा

जगत में प्रवेश किया है। वास्तव में, यह कोई रहस्य नहीं है कि अधिकांश शिक्षक और प्रोफेसर इन उपकरणों की शक्ति की अत्यधिक सराहना करते हैं जो छात्रों को गहन चिंतन और समझदार चर्चा में संलग्न करने, प्रेरित करने और साथ ही शामिल करने की क्षमता में निहित है। सोशल मीडिया की सीमा सोशल बुकमार्किंग के साथ है, जहां ऑनलाइन सहयोग स्थानों तक सभी उपयोगकर्ताओं के पास लिंक के अपने ऑनलाइन पुस्तकालयों को साझा करने और एक निश्चित ऑनलाइन समुदाय के भीतर एक-दूसरे की सूचियों से जुड़ने का मौका होता है।

सोशल मीडिया ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। शिक्षा के परिदृश्य में, यह मीडिया छात्रों के लिए सीखने के अवसरों को बढ़ाता है और साथ ही शिक्षकों के साथ छात्रों की 24 × 7 बातचीत के व्यापक दायरे को बढ़ाता है। शिक्षा के क्षेत्र में सोशल मीडिया का महत्व और प्रभाव इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि भारतीय सरकार अपना शैक्षिक सामाजिक नेटवर्क शुरू करने की पहल कर रही है। राजस्थान सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी विभाग ने सीखने के लिए फेसबुक जैसे अपने स्वयं के शिक्षा सामाजिक नेटवर्क शुरू करने की योजना बनाई है। इस साइट में सोशल नेटवर्किंग (फोटो, गेम) की सभी मानक विशेषताएं शामिल होंगी, लेकिन यह मुख्य रूप से शैक्षिक सहयोग पर केंद्रित होगी और इसमें उपयोगकर्ताओं द्वारा उठाए गए सवालों के जवाब देने के लिए विषय विशेषज्ञ शामिल होंगे। (किर्कपैट्रिक, 2011)।

साहित्यक समीक्षा

कुप्पुस्वामी और शंकर (2010) के अनुसार, सोशल नेटवर्क वेबसाइटें छात्रों का ध्यान खींचती हैं और फिर उन्हें गैर-शैक्षिक और अनुचित कार्यों की ओर मोड़ देती हैं, जिसमें बेकार चैटिंग भी शामिल है। उपरोक्त कथन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स छात्र के अकादमिक जीवन और सीखने के अनुभवों को बुरी तरह प्रभावित कर सकती हैं। टूसोव, बकलिन, और पॉवेल्स (2009) ने कहा कि इंटरनेट निस्संदेह प्रौद्योगिकी का विकास है, लेकिन विशेष रूप से सामाजिक नेटवर्क किशोरों के लिए बेहद असुरक्षित हैं, पिछले कुछ वर्षों में सामाजिक नेटवर्क बेहद सामान्य और प्रसिद्ध हो गए हैं।

बेंजी (2007) ने नोट किया कि कनाडा सरकार ने Facebook.com से कर्मचारियों को प्रतिबंधित कर दिया है। इसी तरह, बॉयड एंड एलिसन (2007) ने भी बताया कि अमेरिकी कांग्रेस ने युवाओं को स्कूलों और पुस्तकालयों में सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटों तक पहुंचने से प्रतिबंधित करने के लिए कानून का प्रस्ताव दिया है। जब अत्यधिक विकसित राष्ट्र सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटों के उपयोग पर खड़े हो जाते हैं और देशवासियों, युवाओं, छात्रों और कामकाजी लोगों के लिए इन सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटों की अनुमति नहीं दे सकते हैं, तो यह देखने की आवश्यकता महसूस की जाती है कि या तो सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट छात्रों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं या नहीं। यह शोध मुख्य रूप से ऐसे कारकों पर ध्यान केंद्रित करता है जो छात्र के शैक्षणिक जीवन और सीखने के अनुभव को प्रभावित करते हैं।

सोशल मीडिया के उपयोग ने शिक्षा को शिक्षा उद्योग की शकल में बदल दिया है। इस बदलाव ने छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों पर भी सकारात्मक प्रभाव डाला है। आज अध्यापन कक्षाओं तक सीमित नहीं है। यह उससे बहुत आगे है। टेक्नोलॉजी ने शिक्षा के क्षेत्र में बड़े बदलाव किए हैं। भारत शिक्षा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी के मामले में बहुत आगे बढ़ रहा है। शिक्षा का चेहरा बदल कर टेक्नोलॉजी ने शिक्षा की पहुंच को बढ़ा दिया है। शिक्षा के क्षेत्र में टेक्नोलॉजी एक महान प्रवर्तक साबित हुई है। सोशल मीडिया का प्रयोग समय की मांग बन गया है। शिक्षा क्षेत्र के सतत विकास और वृद्धि के लिए इसकी बहुत आवश्यकता है। (बोस, 2016)

शिक्षा पर सोशल मीडिया का प्रभाव

शोधों के सर्वेक्षणों के अनुसार, यूनिवर्सिटी कॉलेज के 90% छात्र सोशल नेटवर्क का उपयोग करते हैं। प्रौद्योगिकी ने छोटे संचार उपकरणों को पेश करने के माध्यम से एक तेजी से विकास दिखाया है और हम उन छोटे संचार उपकरणों का

उपयोग किसी भी जगह किसी भी समय सामाजिक नेटवर्क तक पहुंच प्राप्त करने के लिए कर सकते हैं, क्योंकि इन उपकरणों में पॉकेट कंप्यूटर, लैपटॉप, आईपैड या यहां तक कि साधारण मोबाइल टेलीफोन शामिल हैं [9]। स्कूली शिक्षा के उद्देश्य के लिए सोशल मीडिया का उपयोग एक नवीन तरीकों के रूप में किया गया है। छात्रों को इस उपकरण को बेहतर तरीके से लागू करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, निर्देशात्मक पाठों के मीडिया के भीतर बस मैसेजिंग या टेक्स्टिंग के लिए उपयोग किया जा रहा है, इसके बजाय उन्हें यह पता लगाना चाहिए कि इन मीडिया का सही तरीके से उपयोग कैसे किया जाए [10]। सोशल मीडिया ने कॉलेज के छात्रों के लिए संतोषजनक और सहयोग की दर का विस्तार किया है। सोशल मीडिया की मदद से छात्र फेसबुक और इंस्टाग्राम जैसी कई अन्य विविध सोशल साइट्स के माध्यम से एक दूसरे के साथ आसानी से बात कर सकते हैं या डेटा साझा कर सकते हैं [11]। इसी तरह कॉलेज के छात्रों के लिए पेपर पेंटिंग करने के बजाय थोड़ा व्यावहारिक काम करना भी जरूरी है। वे अपनी ज्ञान क्षमताओं को सजाने के लिए स्वयं के अतिरिक्त शिक्षकों के लिए ब्लॉग भी लिख सकते हैं [10]। सोशल नेटवर्किंग साइट्स ऑनलाइन परीक्षाका भी व्यवहार करती हैं जो छात्रों की जानकारी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। डॉ. एम. नीलमलर और पी. चित्रा के सर्वेक्षणों के अनुसार—

सूची-1
शिक्षा पर सोशल मीडिया का उपयोग

क्र.सं.	उपयोगकर्ता	प्रतिशत
1.	मेल (Mail)	33
2.	सर्फिंग	26.8
3.	चैटिंग	18.7
4.	सोशल नेटवर्किंग	17
5.	अन्य	4.5
	कुल	100

स्त्रोत : डॉ. एम. नीलमलर और पी. चित्रा [12]

उपरोक्त सूची में यह स्पष्ट है कि, उत्तरदाताओं के लिए शुद्ध उपयोग क्रमश: 33% और 26% के साथ मेल करने और नेट पर सर्फिंग के लिए हो जाता है। इंटरनेट के उपयोग के लिए मुख्य रूप से दो पारंपरिक उद्देश्य हैं—मेलिंग और सर्फिंग। भारत में, सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटें मान्यता प्राप्त करने के लिए तेजी से विकास कर रही हैं, हालांकि यह वैश्विक स्थिति की अपेक्षा तक नहीं पहुंच पाई है। सिर्फ 17% ने सोशल नेटवर्किंग वेबसाइटों को इंटरनेट के उपयोग के लिए अपना उपदेशात्मक मकसद बताया। वैकल्पिक प्रतिक्रियाएं इंटरनेट सामग्री को डाउनलोड करने, ऑनलाइन सामान खरीदने, ई-किताबें पढ़ने और पढ़ने की रही हैं।[12]

सूची-2
शिक्षा के लिए सोशल नेटवर्किंग साइटों में सदस्यता

क्र.सं.	सोशल नेटवर्किंग साइट्स के सदस्य	प्रतिशत
1.	हां	95.7
2.	नहीं	4.3
	कुल	100

स्त्रोत : डॉ. एम. नीलमलर और पी. चित्रा [12]

भारतीय युवाओं में 95.7% सदस्य सोशल मीडिया से जुड़े हुए हैं। ये आंकड़े दिन-ब-दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। जबकि केवल 4.3% सदस्य सोशल मीडिया से नहीं जुड़े हैं। [12]

शिक्षा के क्षेत्र में सोशल मीडिया की भूमिका नीचे दिए गए बिंदुओं से प्रदर्शित होती है—

- **स्व-गति से सीखना** : शैक्षिक उद्देश्यों के लिए तैयार की गई साइटों को शैक्षिक साइट के रूप में जाना जाता है। इन साइटों में स्व-गति से सीखने की एक अनूठी विशेषता है, जहां शिक्षार्थी किसी भी स्थान और समय पर और अपनी सुविधानुसार पाठ्यक्रम की सामग्री को देख सकता है।
- **आत्म-ज्ञान** : छात्र विभिन्न विषयों पर चर्चा मंच में विभिन्न चर्चाओं में शामिल हो जाते हैं। यह छात्रों को बिना किसी भौगोलिक बाधा के एक-दूसरे से बातचीत करने और सीखने का अवसर प्रदान करता है, जिससे उनके आत्म-ज्ञान में वृद्धि होती है।
- **कौशल-विकास** : ब्लॉगिंग के माध्यम से छात्रों को व्यावहारिक कार्य में लगाया जा सकता है जिससे उनके कौशल में वृद्धि हो सकती है। कंप्यूटिंग के इस युग में, सोशल मीडिया के उपयोग से व्यक्ति को कंप्यूटिंग और संचार कौशल विकसित करने में मदद मिलती है।
- **सूचना का तेजी से प्रसार और जुड़ाव का उच्च स्तर** : सोशल मीडिया परीक्षा और विशेष विषय, संगोष्ठी या सम्मेलन के बारे में एक बिंदु से दूसरे स्थान पर सूचना प्रसारित करने का एक तेज माध्यम के रूप में कार्य करता है। नेटवर्किंग प्रतिभागियों को समय-समय पर सीखने और जुड़ाव के उच्च स्तर की अनुमति देता है।
- **सीखने में लचीलापन** : सोशल नेटवर्किंग सीखने में लचीलेपन का एक तत्व जोड़ता है। ये शैक्षिक साइटें शिक्षार्थियों को उनकी रुचि और ज्ञान के अनुसार शिक्षण सामग्री का चयन करने की अनुमति देती हैं।
- **छात्र संपर्क में वृद्धि** : सोशल मीडिया प्रौद्योगिकी का एकीकरण छात्रों की भागीदारी, बातचीत और लेखन/साक्षरता विकास की सुविधा प्रदान करता है। (झेंग, 2013)। यह मीडिया शिक्षक-छात्र की बातचीत को बढ़ा सकता है और शैक्षिक सेटिंग में %संचार% मंच के रूप में काम कर सकता है (विलियम्स, 2012)।
- छात्र एक-दूसरे के असाइनमेंट पर आलोचना करते हैं और टिप्पणी करते हैं, सामग्री बनाने के लिए टीमों में काम करते हैं और आसानी से एक-दूसरे और शिक्षक से प्रश्नों के साथ या चर्चा शुरू करने के लिए आसानी से पहुंच सकते हैं (कालिया, 2013)।
- **समावेशी शिक्षा** : सोशल मीडिया का आसान उपयोग और पहुंच एक समावेशी सीखने का माहौल बनाता है। विकलांग छात्रों को उनके गैर-विकलांग साथियों के रूप में सोशल मीडिया का उपयोग करने के समान सीखने के अनुभवों से लाभ मिलता है (असुन्सियन et al., 2012)।
- **शिक्षक छात्र बातचीत के लिए 24×7 गुंजाइश:** सोशल मीडिया 24×7 शिक्षक छात्र बातचीत के लिए मंच प्रदान करता है। 62% छात्रों का मानना है कि सोशल मीडिया छात्रों और शिक्षकों के बीच संवाद करने का एक विस्तारित अवसर है (स्टैनसीयू, et al., 2012)। सोशल मीडिया ने शैक्षिक प्रक्रिया में समावेश, सहयोग, स्व-गति से सीखने, आत्म-ज्ञान, चौबीसों घंटे बातचीत और लचीलेपन का एक तत्व जोड़ा है। ये तत्व किसी न किसी तरह औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा में मूल्य के हस्तांतरणीय, तकनीकी और सामाजिक कौशल के विकास को प्रोत्साहित करते हैं।

शिक्षा पर सोशल मीडिया का सकारात्मक प्रभाव

1. सोशल मीडिया छात्रों को भव्यता उपक्रमों या होमवर्क असाइनमेंट में मदद के संबंध में हर तरह से प्रभावी ढंग से पहुंचने का एक तरीका प्रदान करता है।

2. Google और शिक्षा, Google ने अपने उपकरणों का उपयोग करके 20 मिलियन से अधिक छात्रों को उनकी शिक्षा में मदद की है।
3. नई तकनीकों के साथ काम करने में इतना समय बिताने से, छात्र कंप्यूटर और अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के साथ अधिक परिचित हो जाते हैं।
4. शिक्षा और व्यवसाय में प्रौद्योगिकी पर बढ़ते ध्यान के साथ, यह छात्रों को ऐसे कौशल बनाने में मदद करेगा जो उन्हें जीवन भर मदद करेगा।
5. बहुत सारे छात्र अपने मुद्दों के बारे में जनता को सूचित करने में सक्षम थे—सोशल मीडिया का उपयोग करके जो जागरूकता लाए और बहुत सारी समस्याओं को हल करने में मदद की।
6. जिस आसानी से कोई छात्र अपनी प्रोफाइल को अनुकूलित कर सकता है, वह उन्हें डिज़ाइन और लेआउट के बुनियादी पहलुओं के बारे में अधिक जागरूक बनाता है जो अक्सर स्कूलों में नहीं पढ़ाए जाते हैं।
7. बहुत से छात्र जो लालित्य में लगातार रुचि नहीं लेते हैं, वे महसूस कर सकते हैं कि वे अपने विचारों को सोशल मीडिया पर आसानी से स्पष्ट कर सकते हैं।
8. प्रतिभाओं को तेजी से खोजा गया, जो छात्र प्रोग्रामिंग में अच्छे थे, उन्होंने अपना नाम आसानी से निकाल लिया, जो छात्र संगीत में अच्छे थे, उन्होंने अपने वीडियो निकाले और उन्हें उनके सपनों तक ले जाने के लिए साझा किया।
9. शिक्षक उनके लिए बहुत फायदेमंद होने की दृष्टि से सोशल मीडिया पर लालित्य गतिविधियों, संकाय गतिविधियों, गृहकार्य कार्यों को प्रकाशित कर सकते हैं।
10. यह दिखाई दे रहा है कि सोशल मीडिया विज्ञापन और मार्केटिंग करियर के विकल्प में उभर रहे हैं। सोशल मीडिया विज्ञापन युवा कर्मचारियों को सफल उद्यमी बनने के लिए तैयार करता है।
11. सोशल मीडिया के प्रवेश से शिक्षकों को सटीक डिजिटल नागरिकता सिखाने और उत्पादकता के लिए इंटरनेट का उपयोग करने का अवसर मिलता है।

शिक्षा पर सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभाव

सोशल मीडिया का प्रमुख बुरा प्रभाव व्यसन है। लगातार फेसबुक, ट्विटर, लिंक्डइन अन्य सोशल मीडिया अपडेट की जांच करना। यह लत अन्य महत्वपूर्ण गतिविधियों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है जैसे पढ़ाई पर ध्यान देना, खेल में सक्रिय भाग लेना, वास्तविक जीवन संचार और जमीनी वास्तविकताओं की अनदेखी करना।

सोशल नेटवर्क पर सैकड़ों हजारों फर्जी अकाउंट हैं जो लड़कों के हैं, वे लड़कियों के साथ दोस्ती करने का नाटक कर हैं और ज्यादातर मामलों में यह शर्मिंदगी और निराशा का कारण बनता है जो अंततः अवसाद का कारण बनता है।

यदि हमारे समुदाय में सोशल मीडिया के जोखिम के बारे में जागरूकता है तो इससे कुछ भी बुरा नहीं होगा लेकिन जनजागरूकता की कमी हमेशा बनी रहती है और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि इंटरनेट उपयोगकर्ताओं का ग्राफ ऊंचा और ऊंचा होता जा रहा है जब कि हम अभी भी बहुत पीछे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार शिक्षा की कमी वाले समाज में जनजागरूकता बहुत कठिन है।

शिक्षा पर सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव निम्नलिखित हैं—

1. भयानक प्रभाव के बारे में विचारों में पहली चुनौती कक्षा के अंदर मौजूद विद्वानों के लिए एक प्रकार की व्याकुलता है। चूंकि शिक्षक अब यह नहीं समझ पा रहे थे कि कक्षा में कौन रुचि ले रहा है।

2. सोशल मीडिया की लोक प्रियता, और जिस गति से सूचना प्रकाशित की जाती है, ने उचित शब्दों और व्याकरण के प्रति एक ढीला रवैया पैदा कर दिया है। कंप्यूटर की स्पेलिंग चेक सुविधा पर निर्भर हुए बिना प्रभावी ढंग से लिखने की छात्र की क्षमता को कम करता है।
3. बहुत से छात्र उत्तर देने के लिए सोशल मीडिया और वेब पर जानकारी की पहुंच पर निर्भर हैं। इसका मतलब है कि जानकारी को सीखने और बनाए रखने पर कम ध्यान देना।
4. जिस डिप्लोमा के लिए गैर-सार्वजनिक जानकारी ऑनलाइन उपलब्ध है और इंटरनेट जिस गुमनामी की पेशकश करता है, उससे कॉलेज के छात्र अपने द्वारा जमा किए गए तथ्यों को फिल्टर करने की आवश्यकता भूल जाते हैं। कई स्कूल और क्षमता नियोक्ता मान्यता या साक्षात्कार देने से पहले एक आवेदक के सोशल नेटवर्किंग प्रोफाइल का निरीक्षण करते हैं। अधिकांश कॉलेज के छात्र लगातार ऑनलाइन प्रकाशित होने वाली सामग्री की तुलना नहीं करते हैं, जो महीनों या वर्षों में भयानक प्रभाव ला सकता है।
5. स्कूली शिक्षा में सोशल मीडिया के सबसे महत्वपूर्ण Khamion में से एक है, ऑनलाइन साइटों पर गैर-सार्वजनिक रिकॉर्ड पोस्ट करने जैसे गोपनीयता के मुद्दे।
6. कुछ परिदृश्यों में कई उपयुक्त रिकॉर्ड पोस्ट किए गए थे जो छात्रों को गलत पक्ष की ओर ले जा सकते हैं।
7. सोशल मीडिया के कारण छात्र आमने-सामने संचार के लिए खुद को संलग्न करने की क्षमता खो देते हैं।
8. रिकॉर्ड रखने की हमारी क्षमता कम हो गई है, और अध्ययन और सटीक जानकारी देखने में अधिक समय बिताने की इच्छा कम हो गई है, इस सच्चाई के कारण कि हम सोशल मीडिया पर डेटा तक आसानी से पहुंच के अभ्यस्त हो गए हैं।
9. छात्र, जो बहु-मिशन का प्रयास करते हैं, एक ही समय में विश्लेषण के रूप में सोशल मीडिया साइटों की जांच करते हैं, निर्देशक समग्र प्रदर्शन में कमी आई है। चुनौती पर ध्यान केंद्रित करने की उनकी क्षमता YouTube, Facebook या Twitter के माध्यम से दिए जाने वाले विकर्षणों से काफी कम हो जाती है।
10. बहुत से ब्लॉगर और लेखक सोशल साइट्स पर गलत रिकॉर्ड पोस्ट करते हैं जो शिक्षा उपकरण को विफल कर देता है।
11. छात्र जितना अधिक समय सोशल वेबसाइटों पर बिताते हैं, उतना ही कम समय वे व्यक्तिगत रूप से सामाजिकरण में बिताते हैं। फ्रेम संकेतों की कमी और विभिन्न अशाब्दिक संकेतों, जैसे स्वर और विभक्ति के कारण, सोशल नेटवर्किंग साइट आमने-सामने संचार के लिए पर्याप्त विकल्प नहीं हैं। जो छात्र सोशल नेटवर्किंग पर बहुत अच्छा समय बिताते हैं, उनमें व्यक्तिगत रूप से कुशलता से बात करने की क्षमता बहुत कम होती है।

शिक्षा में सोशल मीडिया के उचित उपयोग के लिए सुझाव

1. सोशल मीडिया टूल्स को छात्रों की उम्र के अनुसार शिक्षण संस्थानों द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए।
2. शिक्षकों को छात्रों को सोशल मीडिया के नकारात्मक पहलुओं से अवगत कराना चाहिए।
3. शिक्षकों को इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिए कि साइटें कैसे काम करती हैं और कौन सी विभिन्न सेटिंग्स और कार्य उपयोग करने के लिए उपलब्ध हैं।
4. शिक्षकों को पता होना चाहिए कि ऑनलाइन जोखिमों को कैसे कम किया जाए और छात्रों को इससे कैसे बचाया जाए।

निष्कर्ष

उपरोक्त जानकारी के अनुसार हम छात्रों पर सोशल मीडिया के विभिन्न अच्छे और बुरे प्रभावों को देख सकते हैं। हमें सोशल मीडिया के भयानक कारकों को कम करना होगा। सोशल मीडिया पर उनके प्रवेश को सीमित करना होगा। छात्रों 'सोशल कम्युनिटी साइट्स' पर बिताए जाने वाले समय को कम करके अधिकांश खराब घटकों को दूर किया जा सकता है। उनके शैक्षिक विकास में रुचि लेने और किसी भी परेशानी को दूर करने से सोशल मीडिया के नकारात्मक कारकों को उनकी पढ़ाई को प्रभावित करने की दिशा में एक लंबा रास्ता तय करना होगा। इसके लिए चाहिए आमने-सामने सामाजिक बातचीत के लिए समय देना, जैसे कि कुछ समय अपने परिवार के साथ बिताएं। दोस्तों और परिवार के सदस्यों के साथ उनके अध्ययन के बारे में बात करें। उन्हें इनडोर आउटडोर खेल जैसी शारीरिक गतिविधियों में समय बिताना चाहिए। इस तरह छात्रों पर सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव को कम करने का प्रयास किया जा सकता है।

संदर्भ

1. मीना, वी.के., रोल ऑफ सोशल मीडिया इन एजुकेशन, इंटरनेशनल जरनल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, वॉल्यूम 1, इश्यू 3 दिसंबर 2013.
2. मेफील्ड, ऐ., (2008), व्हाट इज सोशल मीडिया? आई क्रासिंग http://www.icrossing.co.uk/.../What_is_Social_Media_iCrossing_ebook.pdf
3. http://www.merriam-webster.com
4. http://www.weebly.com
5. http://www.weebly.com
6. किरकपैट्रिक, एम., (2011), इण्डियन गवर्नमेंट टू लाँच एजुकेशन सोशल नेटवॉर्क www.readwrite.com
7. कुमार, एस. तथा अहमद, एस. (2010), मीनिंग, एम्स एंड प्रॉसेस ऑफ एजुकेशन www.sol.dc.au.in
8. वसीम अकरम जरगर, इंपैक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन एजुकेशन विद् पॉजिटिव एंड नेगेटिव आसपेक्ट्स, इंटरनेशनल जरनल ऑफ मैनेजमेंट, आई.टी. एवं इंजीनियरिंग, खंड-8 अंक-3, मार्च 2018.
9. वक़ास तारिक, मदीहा महबूब, एम. अस़फ़न्दयार ख़ान, फ़सीउल्लाह, द इंपैक्ट ऑफ सोशल मीडिया एंड सोशल नेटवर्क्स ऑन एजुकेशन एंड स्टूडेंट्स ऑफ पाकिस्तान, आई.जे.सी.एस.आई. इंटरनेशनल जरनल ऑफ कंप्यूटर साइंस, खंड-9, अंक-4, 3 जुलाई 2012.
10. गीतांजली कालिया, ऐ रिसर्च पेपर ऑन सोशल मीडिया : ऐन इनोवेटिव एजुकेशनल टूल, इश्यूज़ एंड आइडियाज़ इन एजुकेशन, खंड-1, मार्च 2013.
11. http://www.edudemic.com/social-media-education/
12. डॉ. एम. नीलमालर एवं श्रीमति पी. चित्रा, न्यू मीडिया एंड सोसाइटी : ऐ स्टडी ऑन द इंपैक्ट ऑफ सोशल नेटवर्किंग साईट्स ऑन इण्डियन यूथ, स्टडी इन कम्युनिकेशन, अंक-6, 125-145, दिसंबर 2009.
13. विश्रांति राउट, प्रफुला पाटिल, यूज़ ऑफ सोशल मीडिया इन एजुकेशन : पॉज़िटिव एंड नेगेटिव इंपैक्ट ऑन द स्टूडेंट्स, इंटरनेशनल जरनल ऑन रीसेंट एंड इनोवेशन ट्रेंड्स इन कंप्यूटिंग एंड कम्युनिकेशन, खंड-4, अंक-1, जनवरी 2016.
14. विलियम्स, आर.डबल्यू. (2012), इमर्जिंग रिसर्चऑन सोशल मीडिया यूज़ इन एजुकेशन : ऐ स्टडी ऑफ डिज़र्टेशंस, रिसर्च इन हाईर एजुकेशन जरनल, खंड-27, 1-12.
15. असंसियों, जे.वी., तथा अन्य, (2012), सोशल मीडिया यूज़ बाए स्टूडेंट्स विद् डिसेबिलिटीस, अकादमिक एक्सचेंज क्वार्टरली, 16(1), 30-35.

16. ऋतिका, ऐम., सारा सेलवराज, इंपैक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन स्टूडेंट्स अकादमिक परफॉरमेंस, इंटरनेशनल जरनल ऑफ लॉजिस्टिकस एवं सप्लाई चेन मैनेजमेंट पर्सपेक्टिवज़, खंड-2 अंक-4, अक्टूबर-दिसंबर 2013.

17. कुप्पुस्वामी, ऐस., एवं नारायण, पी. (2010), द इंपैक्ट ऑफ सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट्स ऑन द एजुकेशन ऑफ यूथ, इंटरनेशनल जरनल ऑफ वर्चुअल कम्युनिटीज़ एंड सोशल नेटवर्किंग (IJVCSN), 2(1), 67-79.

18. सटेंशियु, ऐ. एवं अन्य, (2012), सोशल नेटवर्किंग ऐज़ ऐन अल्टरनेटिव एनवायरनमेंट फॉर एजुकेशन, एकाउंटिंग एंड मैनेजमेंट इन्फॉर्मेशन सिस्टमस, खंड-11, अंक-1, 56-75.

19. झेंग, बी. (2013), इमर्जिंग रिसर्च ऑन सोशल मीडिया यूज़ इन एजुकेशन : ऐ स्टडी ऑफ डिज़र्टेशंस, रिसर्च इन हायर एजुकेशन जरनल, खंड-27, 1-12.

20. बेंज़ी, आर. (2007), फेसबुक बैण्ड फॉर ओंटारियो स्टाफर्स, द स्टार. http://www.thestar.com/news/2007/05/03/facebook_banned_for_ontario_staffers.html

21. बोस, अनिंदिता (2016), सोशल मीडिया एंड एजुकेशन सेक्टर : एनरीचिंग रिलेशनशिप, कमेंटरी-4 ग्लोबल मीडिया जरनल-इण्डियन एडिशन, खंड-7, अंक-1, जून 2016.

❑❑

डॉ. गुरदीप सिंह
सहायक प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

भारत के परमाणु प्रतिरोध की संकल्पना

चीन, भारत और पाकिस्तान के बीच प्रतिस्पर्धी और अक्सर विरोधी संबंधों की जड़ें परमाणु हथियार रखने से पहले की हैं। फिर भी परमाणु क्षमताओं का महत्वपूर्ण परिवर्तन जो अब तीनों देशों में एक साथ चल रहा है, उनकी भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता को जटिल और कम करता है। अगर प्रतिरोध कभी टूटता है, तो भारत को इसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। समग्र रूप से, पारंपरिक संघर्ष के दायरे में, भारत द्वारा परमाणु हथियारों का पहला प्रयोग ठोस रणनीतिक अर्थ नहीं रखता है। भारत के परमाणु सिद्धांत की वास्तविक विशिष्ट विशेषता यह है कि यह वैश्विक, सत्यापन योग्य और गैर-भेदभावपूर्ण परमाणु निरस्त्रीकरण के लिए भारत की निरंतर प्रतिबद्धता पर आधारित है।

मुख्य शब्द : चीन, पाकिस्तान, एन.पी.टी, आदेश और नियंत्रण प्रणाली, परमाणु पहले उपयोग सिद्धांत, एन.डब्ल्यू.एस।

परमाणु प्रतिरोध या निरोध (Nuclear Deterrence Theory) विचारधारा है जो शीत युद्ध (Cold War) से पहले की है, जिसका उपयोग किसी भी परमाणु आक्रमण को रोकने के लिए किया जाता है। परमाणु निरोध प्रतिकूल राष्ट्रों को डराने की शक्ति है ताकि वे राष्ट्रीय हितों, क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता को खतरा न दें। यह अमित्र या विरोधी शक्तियों पर संयम की जाँच है। परमाणु निरोध सैन्य सिद्धांत है कि एक दुश्मन को तब तक परमाणु हथियारों का उपयोग करने से रोका जाएगा जब तक कि उसे एक परिणाम के रूप में नष्ट किया जा सकता है। जब दो राष्ट्र दोनों परमाणु निरोध का सहारा लेते हैं, तो परिणाम पारस्परिक विनाश हो सकता है। सबसे सरल रूप में रोकने का अर्थ है किसी को कुछ करने से रोकना। किसी न किसी रूप में और कुछ हद तक इस्तेमाल किया जाने वाला सैन्य बल सभी प्रकार की निरोध की नींव रखता है।[1] प्रतिरोध का अर्थ है सैन्य कार्रवाई की धमकी का उपयोग करके किसी विरोधी को कुछ करने के लिए मजबूर करना, या उन्हें कुछ ऐसा करने से रोकने के लिए जो दूसरे राज्य की इच्छा है। शीत युद्ध के दौरान परमाणु हथियारों के उपयोग के संबंध में एक सैन्य रणनीति के रूप में प्रतिरोध सिद्धांत ने प्रमुखता प्राप्त की और, इस समय के दौरान एक अवर परमाणु बल के रूप में एक अद्वितीय अर्थ प्राप्त किया। यह एक अधिक शक्तिशाली विरोधी को रोक सकता है बशर्ते कि इस बल को एक आश्चर्यजनक हमले से विनाश से बचाया जा सके।[2] 'परमाणु प्रतिरोध' पहली बार 1955 के दशक के अंत में अमेरिका में परमाणु ऊर्जा से चलने वाली पनडुब्बियों को ले जाने वाली अंतर-महाद्वीपीय दूरी की बैलिस्टिक मिसाइलों की मंजूरी पर बहस के दौरान गढ़ा गया था। शीत युद्ध के दौरान, यह अमेरिका के लिए एक आकर्षक दृष्टिकोण था जब सभी संभावित खतरों के खिलाफ हर जगह बचाव करना संभव नहीं था। इसके अलावा, इस अवधि के दौरान, परमाणु हथियारों और तत्काल और बड़े पैमाने पर विनाश की उनकी अद्वितीय क्षमता के साथ प्रतिरोध निकटता से जुड़ा हुआ है।

विश्वसनीय परमाणु प्रतिरोध भारत के परमाणु सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण तत्व है। वाजपेयी सरकार के सत्ता में आने से बहुत पहले ही प्रतिरोध की अवधारणा को स्वीकृत लिया गया था एक बार जब भारत ने 1974 में अपना पहला पोखरण परीक्षण किया और यह तथ्य कि चीन पहले से ही एक परमाणु हथियार वाला राज्य था, उस समय भारत और पाकिस्तान के साथ इतने मैत्रीपूर्ण संबंध नहीं थे, भारत ने पहले ही 1972 में अपना परमाणु कार्यक्रम शुरू कर दिया था। भारत के लिए न्यूनतम विकास करना अपरिहार्य हो गया था। परमाणु निरोध के लिए भारतीय दृष्टिकोण को नियोजित और कार्यान्वित करने पर जोर

देना होगा क्योंकि देश परमाणु क्षमताओं वाले लोगों के बीच स्थित है, यह एक मजबूत विश्वसनीय निवारक संरचना विकसित करने के लिए बहुत महत्व का विषय है। इसमें विभिन्न उपज श्रेणियों को कवर करने वाले उपकरण, समयबद्ध प्रतिक्रिया के लिए वितरण प्रणाली की तैयारी, कमांड और नियंत्रण प्रणाली, उत्पादन प्रणालियों और साइटों को सख्ती से जारी रखने के लिए समूहों के साथ पारदर्शी बातचीत शामिल है। भारत को लगातार बदलते तकनीकी वातावरण, खतरों और पड़ोसी देशों में से किसी एक से पहले हमले की संभावना में विभिन्न श्रेणियों और उपज क्षमता के साथ प्रतिक्रिया करने के लिए तैयार रहना चाहिए। भारत के पड़ोसी देशों में तकनीकी विकास और राजनीतिक स्थितियाँ भारत से एक मजबूत और गतिशील विकास कार्यक्रम की माँग करती हैं।[3] हालांकि, केवल परमाणु हथियारों पर कब्जा करना एक देश के लिए युद्ध में उनका उपयोग करने में सक्षम होने के लिए पर्याप्त नहीं है। उन्हें प्रबंधित करने के लिए एक कमांड और कंट्रोल सिस्टम की भी आवश्यकता होती है।[4]

भारत का सामना दो परमाणु हथियारों से लैस पड़ोसियों से हुआ। चीन द्वारा उत्पन्न प्रमुख खतरा और पाकिस्तान द्वारा खतरा। मामलों को जटिल बनाने के लिए ये दोनों देश मजबूत सुरक्षा संबंधों से बंधे हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान को परमाणु हथियार और मिसाइल हासिल करने में मदद की और भारत के साथ पारंपरिक समानता का आभास हुआ। चीन ने मुख्य युद्धक टैंक, तोपखाने के जहाजों और लड़ाकू विमानों सहित बड़ी मात्रा में सैन्य हार्डवेयर को स्थानांतरित कर दिया है। उन्नत हथियार प्रणालियों के साथ अपनी पारंपरिक सैन्य क्षमता को बढ़ाने के लिए अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को और भी अधिक सहायता प्रदान की जाती है। यह खतरों का एक अनूठा समूह है जिसके कारण भूतपूर्व भारतीय रक्षा मंत्री प्रणब मुखर्जी ने यह खुलासा किया कि भारत को सुरक्षा की कमी का सामना करना पड़ा क्योंकि भारत को अजीबो गरीब सुरक्षा चुनौतियों का सामना करना पड़ा और भारतीय खतरनाक पड़ोस में रहते हैं।[5]

जब तक भारत और पाकिस्तान कश्मीर पर एक समझौते पर नहीं पहुंच जाते, जिसे दोनों पक्ष स्वीकार्य मानते हैं, उपमहाद्वीप पर आक्रामक के लिए मौलिक प्रोत्साहन बना रहेगा। इसलिए भारत और पाकिस्तान के लिए और सामान्य रूप से नए परमाणु राज्यों के लिए, चल रहे क्षेत्रीय विवादों का समाधान परमाणु प्रसार की संभावित लागत को कम करने के लिए महत्वपूर्ण होगा। इस तरह के राजनीतिक समाधानों के अभाव में, यथास्थिति से असंतुष्ट कमजोर जनसमूह क्षेत्रीय सीमाओं को बदलने का प्रयास कर सकते हैं, भारत और पाकिस्तान के नीति निर्माताओं ने तर्क दिया है कि परमाणु का प्रसार दक्षिण एशिया के लिए हथियार क्षेत्रीय सुरक्षा को स्थिर करेंगे। भारतीयों और पाकिस्तानियों ने परमाणु हथियारों के अधिग्रहण और परमाणु हथियारों के संघर्ष के बीच संबंध की अलग-अलग व्याख्याएं की हैं। भारत के पास पाकिस्तान के कारण परमाणु हथियार कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।[6]

दुनिया के सभी प्रमुख परमाणु राज्यों में पाकिस्तान एकमात्र ऐसा देश है जहां परमाणु बटन सेना के हाथ में है। इसके अलावा इन हथियारों के लिए जिम्मेदार वरिष्ठ नागरिक और सैन्य अधिकारियों के पास उन पर निकट नियंत्रण बनाए रखने में समस्याग्रस्त ट्रैक रिकॉर्ड है।[7] पाकिस्तान के रणनीतिक विश्लेषक भी अपने देश के 'परमाणु पहले उपयोग' के सिद्धांत को अपनाने का समर्थन करते हैं और इस्लामाबाद ने एन.एफ.यू. समझौते के लिए भारत के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और प्रतिध्वनित तर्कों का उल्लेख किया। इस तर्क से ऊपर कि एक एन.एफ.यू. नीति पाकिस्तान के सामने आने वाली सुरक्षा दुविधा को संबोधित नहीं करती है, विशेष रूप से इस तथ्य को देखते हुए कि भारत की सैन्य क्षमताएं पाकिस्तान से कहीं अधिक हैं। जब तक दक्षिण एशिया में युद्ध संभव है और विषम पारंपरिक क्षमताएं पाकिस्तान को नुकसान पहुंचाती हैं, इस्लामाबाद को अपने रणनीतिक नुकसान को बेअसर करने के लिए पहले उपयोग की मुद्रा अपनानी होगी।[8]

भारत-चीन संबंधों के संदर्भ में, सीमा तनाव कई वर्षों से एक अड़चन बना हुआ है। अच्छे व्यापारिक संबंध होने के बावजूद, इन दोनों पड़ोसियों के बीच उच्च स्तर का अविश्वास बना हुआ है। पाकिस्तान के साथ चीन के संबंध भारत के लिए एक और चिंता का विषय है। चीन पारंपरिक और परमाणु दोनों क्षेत्रों में अपनी सैन्य तैयारियों के लिए पाकिस्तान की लगातार मदद करता रहा है। यकीनन, भारत चीनी खतरे को हल्के में नहीं ले सकता। इसने 1962 में एक कठिन सबक सीखा है। अपनी ओर से भारत की अपनी पूर्वी सीमाओं को मजबूत करने की विशिष्ट योजनाएँ हैं। भारत और चीन अपने आकार, उत्तराधिकारी

निकटता, उनकी सभ्यतागत पहचान और उनकी विश्व महत्वाकांक्षाओं के कारण एक दूसरे के लिए पारस्परिक चुनौतियों का गठन करेंगे और पाकिस्तान के परमाणु और मिसाइल कार्यक्रमों के लिए चीन की सहायता की निकट अवधि में भारत को परेशानी होगी क्योंकि अमेरिका उस सहायता के लिए चीन को दंडित करने में नरमी महसूस करेगा।[9] हालाँकि, परमाणु प्रौद्योगिकी में भारत की रुचि शुरुआत में केवल उसके शांतिपूर्ण उपयोग तक ही सीमित थी, चीन के साथ देश की समस्याग्रस्त भौगोलिक निकटता ने पूरे परिदृश्य को बदल दिया था। 1964 में चीन द्वारा परमाणु हथियार का परीक्षण करने के बाद, भारत अपनी परमाणु नीतियों को लेकर चिंतित हो गया। चीन ने एक मान्यता प्राप्त परमाणु हथियार राज्य के रूप में परमाणु अप्रसार संधि (एन.पी.टी.) पर हस्ताक्षर किए। चीन के विपरीत, हालांकि भारत ने एन.पी.टी. पर हस्ताक्षर नहीं किए, लेकिन इसकी परमाणु क्षमता को 1998 में परमाणु हथियारों के परीक्षण के बाद ही मान्यता मिली।

कश्मीर पर चीन के रुख को लेकर ताजा स्थिति भारत के लिए चिंताजनक है। चीन पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (पी.ओ.के.) के जरिए पाकिस्तान और चीन को जोड़ने के लिए तैयार की गई सड़क और रेलवे परियोजनाओं पर काम कर रहा है, जहां कथित तौर पर निर्माण कार्य के लिए चीनी सैनिकों को तैनात किया गया है। साथ ही, बीजिंग द्वारा कश्मीरी भारतीयों को नत्थी वीजा जारी करने का एक गहरा अर्थ प्रतीत होता है, यह दर्शाता है कि चीन कश्मीर मुद्दे पर अपनी पारंपरिक तटस्थता को त्याग रहा है। चीन के पास आज तीसरा सबसे बड़ा परमाणु भंडार है और यह संयुक्त रूप से फ्रांसीसी और ब्रिटिश रणनीतिक बलों की तुलना में अधिक होने का अनुमान है।[10]

चीन की दो विभाजित नीति भारत की परमाणु आकांक्षाओं का विरोध करना जारी रखना है और एक वास्तविक परमाणु हथियार शक्ति के रूप में उभरने के माध्यम से चीन के समान किसी भी नई राजनीतिक स्थिति से इनकार करना है, जबकि साथ ही इसे द्विपक्षीय संबंधों को प्रभावित करने की अनुमति नहीं देना है। चीन ने इस बात पर जोर देने का कोई मौका नहीं छोड़ा है कि भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 1172[11] का पालन करना चाहिए और यह कि भारत के विश्वसनीय न्यूनतम परमाणु प्रतिरोध के अधिकार की अमेरिकी वास्तविक मान्यता उस प्रस्ताव का उल्लंघन है।[12] एक निजी चीनी कंपनी द्वारा जारी किए गए मानचित्र से असहज प्रश्न उठे, जिसमें चीन के लंबे समय से भारतीय क्षेत्र के एक बड़े हिस्से के दावे को दिखाया गया था। दरअसल, जैसे-जैसे एशियाई राष्ट्र उभर रहे हैं और वैश्विक शक्तियों के रूप में प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, वैसे-वैसे भारतीयों का चीनियों के प्रति अविश्वास और भारतीयों के प्रति चीनी नापसंदगी बढ़ती जा रही है।

'विश्वसनीय परमाणु प्रतिरोध' (सी.एम.डी.) शब्द का प्रयोग अब भारतीय परमाणु सिद्धांत के लिए एक ब्रांड-नाम के रूप में किया जाता है, जो परमाणु हथियार-सशक्त भारत की तीन विशेषताओं का विज्ञापन करता है—निरोध पर जोर के साथ सुरक्षा, एक जिम्मेदार परमाणु हथियार राज्य और इसके लिए प्रतिबद्धता वैश्विक परमाणु निरस्त्रीकरण। परमाणु प्रतिरोध पर भारतीय सोच न तो मौलिक है और न ही अनन्य। हालांकि यह तर्क दिया जाता है कि भारत के परमाणु हथियार कार्यक्रम को हमेशा न्यूनतम परमाणु प्रतिरोध की अवधारणा द्वारा निर्देशित किया गया था, यह पता लगाना मुश्किल है कि यह शब्द कब आधिकारिक प्रवचन के भीतर और बाहर भारतीय शब्दकोष में प्रवेश किया। भारत के परमाणु रणनीति गुरु सुब्रह्मण्यम और जनरल के सुंदरजी द्वारा न्यूनतम निवारक मुद्रा की कट्टर वकालत ने भारत में इस मुद्दे पर आधिकारिक लाइन को प्रभावित किया है।[13]

भारत और चीन के बीच परमाणु प्रतिरोध प्रकृति में अनिवार्य रूप से स्थिर था और भारत और चीन के बढ़ते तकनीकी परिष्कार के साथ अपने परमाणु कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के बावजूद निकट भविष्य में ऐसा ही रहने की संभावना थी। यह राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार शिवशंकर मेनन ने राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस के अवसर पर भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में बोलते हुए कहा था। भारत का परमाणु सिद्धांत चीन की भावना के सबसे करीब था। उन्होंने कहा कि कम्युनिस्ट दिग्गज ने अब तक कभी भी भारत के खिलाफ प्रत्यक्ष परमाणु खतरा नहीं बनाया है। इसे इस तथ्य से और बढ़ाया गया था कि पूर्वी एशियाई राज्य ने अपने परमाणु शस्त्रागार की उत्तरजीविता पर ध्यान केंद्रित किया था, प्रौद्योगिकी और इसके परिवर्तन हमेशा सुरक्षा गणना के प्रमुख चालक रहे हैं। उन्होंने कहा कि भारत की परमाणु क्षमताएं मुख्य रूप से निरोध के लिए बनाई गई हैं, न कि युद्ध लड़ने वाले हथियार के रूप में। 1974 और 1998 में राजस्थान के पोखरण में भारत के परमाणु विस्फोटों का उल्लेख करते हुए, उन्होंने जोर देकर कहा कि उनका उद्देश्य एक महंगी हथियारों की दौड़ से मुक्त होने के दौरान एक विश्वसनीय न्यूनतम

प्रतिरोध (युद्ध के हथियारों के बजाय राजनीतिक रूप से परमाणु हथियारों का उपयोग करके) का निर्माण करना था। भारत पहला परमाणु हथियार संपन्न देश था जिसने किसी परमाणु सिद्धांत की सार्वजनिक रूप से घोषणा की और उस पर बहस की। परमाणु हथियारों के कब्जे ने इसे परमाणु जबरदस्ती और राजनीतिक ब्लैकमेल के प्रति कम संवेदनशील बना दिया। इसके विपरीत, श्री मेनन ने कहा, पाकिस्तान का सिद्धांत भारत के विरुद्ध था। उन्होंने इस्लामाबाद को परमाणु हथियारों का इस्तेमाल करने की तैयारी की ओर इशारा किया।[14]

भारतीय परमाणु हथियारों की भूमिका भारत के खिलाफ परमाणु हथियारों का उपयोग करने से रोकना है। यह उस भूमिका को तब तक निभा सकता है जब तक कि प्रतिशोधी बल को जीवित रहने योग्य माना जाता है और हमलावर को अस्वीकार्य क्षति पहुंचाने में सक्षम है। यह अलग-अलग आयुधों की विस्फोटक उपज पर निर्भर नहीं करता है। सैद्धांतिक रूप से कहा जाए तो, डिलीवरी वाहनों और कम उपज वाले वारहेड्स की संख्या में वृद्धि और उनकी उत्तरजीविता को बढ़ाकर समान अस्वीकार्य क्षति पहुंचाई जा सकती है। हथियार प्लेटफार्मों की विश्वसनीयता, मजबूती और उत्तरजीविता एक देश द्वारा अभ्यास किए जाने वाले प्रतिरोध को मान्य करने में महत्वपूर्ण निर्धारक हैं।

'न्यूनतम परमाणु निरोध' एक रणनीति है जिसमें एक राज्य परमाणु हथियार सम्मिलित करता है, परमाणु सक्षम बमवर्षक विमान या मिसाइल जैसी परिचालन वितरण प्रणालियों में एक प्रतिकूल हमले पर गंभीर क्षति पहुंचाने के लिए न्यूनतम संख्या में परमाणु हथियारों को तैनात करता है। परमाणु ब्लैकमेल और परमाणु हथियारों के उपयोग के खतरे के खिलाफ एक विश्वसनीय न्यूनतम परमाणु निवारक विकसित करने की भारत की इच्छा, राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक प्रमुख रूप से उचित अनिवार्यता है। भारत का नो फर्स्ट यूज, प्रतिशोध-मात्र परमाणु सिद्धांत न केवल नैतिक रूप से उपयुक्त और भारत की सभ्यतागत विरासत के योग्य है, यह परिचालन रूप से मजबूत रणनीति भी है। हालांकि, प्रतिरोध विश्वसनीयता पर टिका है और भारत अभी भी बड़े पैमाने पर जवाबी परमाणु हमले को अंजाम देने के लिए मजबूत राजनीतिक संकल्प का प्रदर्शन करने से दूर है। केवल जब भारत के विरोधियों को यह विश्वास हो जाएगा कि भारत के पास आवश्यक राजनीतिक और सैन्य इच्छाशक्ति और परमाणु हमले का जवाब देने के लिए दंडात्मक प्रतिशोध के साथ हार्डवेयर है, जो मानव जीवन की अस्वीकार्य क्षति और अभूतपूर्व भौतिक क्षति को बढ़ावा देगा, क्या उन्हें रोका जाएगा। तभी परमाणु राक्षस भारत के पड़ोस में और उसके आसपास कसकर जकड़ा रहेगा। स्नातक या लचीली प्रतिक्रिया रणनीतियों को अपनाने से भारत की प्रतिरोधक क्षमता की गुणवत्ता कमजोर होगी और भारत के संकल्प और क्षमताओं का परीक्षण करने के लिए इसके विरोधियों को लुभा सकता है। जब तक अन्य एन.डब्ल्यू.एस. द्वारा आक्रामक परमाणु निरोध का इतना निर्दयतापूर्वक अभ्यास जारी रखा जाता है, तब तक भारत की रक्षात्मक परमाणु नीतियां पूरी तरह से उचित हैं।

संदर्भ

1. नेवल स्टडीज बोर्ड नेशनल रिसर्च काउंसिल, ''शीत युद्ध के बाद संघर्ष निरोध'', नेशनल एकेडमी प्रेस, वाशिंगटन, 1997, पृ. 150
2. ब्रॉडी, बर्नार्ड, ''निवारक की रचना'', जैसा मिसाइल युग में रणनीति में पाया गया, प्रिंसटन, 1959, पृ. 264-304
3. एम.एल. सोंधी, ''परमाणु हथियार और भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा'', हर आनंद प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ. 33-34
4. लेफ्टिनेंट जनरल प्राण पाहवा, ''भारतीय परमाणु बलों की कमान और नियंत्रण'', नॉलेज वर्ल्ड पब्लिकेशन, 2002, पृ. 33
5. भारत कर्नाड, ''भारत की परमाणु नीति'', ग्रीनवुड प्रकाशन समूह, संयुक्त राज्य, 2008, पृ. 107
6. सायरा खान, ''परमाणु हथियार और संघर्ष परिवर्तन : भारत-पाकिस्तान का केस स्टडी'', रूटलेज प्रकाशन, लंदन और न्यूयॉर्क, 2009, पृ. 81
7. हर्ष वी. पंत, ''पाकिस्तान से परमाणु खतरा'', द ट्रिब्यून, 16 अप्रैल, 2012, पृ. 8
8. जे.एस. पॉल कपूर, ''खतरनाक निवारक'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2008, पृ. 18

9. जॉर्ज पेरकोविच, ''भारत का परमाणु बम : वैश्विक पर प्रभाव'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999, पृ. 385
10. कांति बाजपेयी और अमिताभ मट्टो, ''मोर और ड्रैगन'', हर आनंद पब्लिकेशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ. 57
11. सुरक्षा परिषद ने मई 1998 में भारत और पाकिस्तान द्वारा किए गए परमाणु परीक्षणों की निंदा की, मांग की कि वे देश आगे परमाणु परीक्षणों से परहेज करें और उनसे परमाणु हथियारों के अप्रसार पर संधि (एनपीटी) और व्यापक परमाणु परीक्षण-प्रतिबंध संधि (सीटीबीटी) बिना किसी देरी और शर्तों के।
12. बलदेव राज नायर, ''भारत और पोखरण के बाद परमाणु शक्तियाँ'', हर आनंद प्रकाशन लिमिटेड, नई दिल्ली, 2001, पृ. 15
13. शौमीजीत बनर्जी, ''भारत का परमाणु सिद्धांत चीन की भावना के सबसे करीब'', द हिंदू, 12 मई, 2012
14. के. सुब्रह्मण्यम वी.एस. अरुणाचलम, ''डिटरेंस एंड एक्सप्लोसिव यील्ड'', द हिंदू, 20 सितम्बर, 2009
15. मारियो एस्टेबन क्रैन्ज़ा, ''दक्षिण एशियाई सुरक्षा और अंतर्राष्ट्रीय परमाणु आदेश'', एशगेट प्रकाशन, यू.एस.ए., 2009,पृ. 59

❑❑

डॉ. प्रवीण कुमार पाकड़
सहायक आचार्य,
आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबंधन, विभाग
एसपीएनकेएस राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

वित्तीय बाजार में व्यक्तिगत निवेशकों के चुनिंदा निवेश मार्ग पर एक अध्ययन

1. सारांश

इस अध्ययन ने चुनिंदा निवेश के लिए जयपुर स्थित व्यक्तिगत निवेशकों की संभावनाओं की जांच करने का प्रयास किया। निवेशक अक्सर निम्नलिखित कारकों पर विचार करते हैं : रिटर्न, निवेश से संभावित रिटर्नय जोखिम, मूल्य में उतार-चढ़ाव या बाजार की अस्थिरता के कारण किसी दिए गए चौनल में निवेश से रिटर्न में परिवर्तनशीलताय और तरलता, निवेश को नकदी में बदलने की सरलता। प्रत्येक व्यक्ति निवेश के अवसरों को चुनता है जो उसके चुने हुए जोखिम, रिटर्न और तरलता के आधार पर उसके निवेश उद्देश्यों के साथ सरेखित होता है। अध्ययन में पाया गया कि उम्र और शिक्षा ने उन लोगों को प्रभावित किया जो पूंजी बाजार के निवेश निर्णयों में व्यापार करते हैं।

मूल शब्द : वित्तीय बाजार, सरकारी संस्थाएं, निवेश के रास्ते, निवेश पैटर्न।

2. प्रस्तावना

आर्थिक विस्तार पूंजी निर्माण पर निर्भर है, जो बदले में निजी निवेशकों, वित्तीय संस्थानों, सरकारी संगठनों, व्यवसायों और अन्य संस्थाओं द्वारा किए गए निवेश पर निर्भर करता है। एक व्यक्ति पैसे बचाने के लिए अपनी वर्तमान खपत को कम कर देता है, जिसे बाद में विभिन्न प्रकार के निवेश विकल्पों में निवेश किया जाता है। किसी भी व्यक्ति को उन सभी प्रासंगिक मुद्दों की पूरी समझ होनी चाहिए जो उसके निवेश विकल्पों को प्रभावित कर सकते हैं। अज्ञात भविष्य के लाभ के लिए निवेश वर्तमान मूल्य की एक विशिष्ट राशि को छोड़ रहा है। निवेश के कार्य में पैसे को एक मौका या एक वित्तीय साधन में इस उम्मीद में लगाना शामिल है कि यह संरक्षित होगा, मूल्य में वृद्धि होगी, या लाभ प्रदान करेगा।

बचत के लक्ष्य का उपयोग निवेशक और बचतकर्ता के बीच अंतर करने के लिए नहीं किया जा सकता है। एक व्यक्ति जो एक बचत बैंक खाता स्थापित करता है, बैंक से बढ़े हुए रिटर्न के माध्यम से अपने धन की वृद्धि का अनुमान लगाता है, एक बचतकर्ता के विपरीत जो अपने पैसे को लॉकर या अपने घर में कहीं और रखता है, जो अपनी बचत से अतिरिक्त रिटर्न की उम्मीद नहीं करता है। तो, इसका कारण यह है कि रिटर्न की उम्मीद निवेश का एक महत्वपूर्ण पहलू है। एक निवेशक निवेश रणनीति की अपेक्षा करता है, जिसमें वित्तीय और भौतिक दोनों संपत्तियों में निवेश करना शामिल हो सकता है, ताकि उसकी वर्तमान पूंजी पर अधिक रिटर्न मिल सके। एक वित्तीय संपत्ति शेयरों, डिबेंचर, म्यूचुअल फंड, यूलिप, या सावधि बैंक जमा में निवेश है, जबकि एक भौतिक संपत्ति एक घर, सोना, भूमि आदि का अधिग्रहण है।

व्यक्तिगत निवेशक : बाजार में सार्वजनिक भागीदारी (यानी, व्यक्तिगत निवेशक) की गहराई और दायरा वित्तीय बाजारों का एक प्रमुख पहलू है। लाखों परिवार और व्यक्तिगत निवेशक पूंजी पूल और विभिन्न प्रकार के विकल्पों में योगदान करते हैं जो बाजारों को तरल और सक्रिय रखते हैं। इस प्रकार, जनसंख्या में निवेशकों की सीमा को इंगित करने वाले सबसे

अधिक उद्धृत सारांश आँकड़े हैं घरेलू और व्यक्तिगत स्टॉक धारकों की संख्या, बैंकों और डाकघरों में फिक्स-डिपॉजिट धारक, विभिन्न म्यूचुअल फंड में बॉन्ड धारक या निवेशक, बीमा से जुड़ी निवेश योजनाएं, और सावधि जमा के धारक। ये आँकड़े नीति बनाने और वित्तीय बाजारों में गतिविधियों को समझने में सहायक होते हैं।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि निवेश प्रक्रिया में तीन मुख्य अभिनेता सरकार, व्यवसाय और व्यक्ति हैं, जिनमें से प्रत्येक में पूंजी प्रदान करने या निवेश करने की क्षमता है। व्यक्ति अपने विशिष्ट निवेश लक्ष्यों और उद्देश्यों के आधार पर बचत खातों, सार्वजनिक रूप से कारोबार वाली कंपनियों में स्टॉक, ऋण उपकरणों, बीमा, या विभिन्न प्रकार की अचल संपत्ति में अपनी बचत का निवेश करना चुन सकते हैं।

3. साहित्य की समीक्षा

स्टॉक मार्केट में व्यक्तिगत निवेशक का निवेश व्यवहार वार्न डॉ. डी.पी. (2012) द्वारा अध्ययन शेयर बाजार में व्यक्तिगत निवेशक के व्यवहार, विशेष रूप से शेयर बाजार के संबंध में उनके दृष्टिकोण और धारणा को समझने का प्रयास करता है। पेपर के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक सर्वेक्षण किया जाता है। एम उत्तरदाताओं को आय, पेशे, शिक्षा की स्थिति, लिंग और उम्र के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है। प्राथमिक डेटा अंबाला जिले के लगभग 50 निवेशकों के नमूने से एकत्र किया जाता है।

डैश एम.के. (2010) भारत में पीढ़ियों के निवेश निर्णय को प्रभावित करने वाले कारकों में : एक अर्थमितीय अध्ययन में पाया गया कि निवेश व्यवहार और विश्लेषण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक वास्तव में पुरुषों और महिलाओं और अलग-अलग आयु वर्ग के बीच निवेश जोखिम सहिष्णुता और निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

4. अध्ययन का उद्देश्य

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य जयपुर शहर के लोगों के बीच विभिन्न निवेश मार्गों और उनके संभावित बाजार के बीच साक्षरता और वर्तमान पूंजी बाजार की कुल जागरूकता जानना है।

कुछ अन्य माध्यमिक उद्देश्य इस प्रकार हैं—

1. पूंजी बाजार के बारे में जागरूकता जानने के लिए।
2. जयपुर शहर के लोगों की निवेश आदत का विश्लेषण करना।
3. चयनित निवेश मार्गों में निवेश के उद्देश्य की जांच करना।

5. अनुसंधान क्रियाविधि (जनसंख्या और नमूना आकार)

जयपुर शहर में शेयर बाजार में काम करने वाले सभी व्यक्ति इस अध्ययन के लिए आबादी होंगे जबकि 120 व्यक्तियों को अध्ययन के उद्देश्य के लिए नमूना के रूप में लिया गया है।

6. आंकड़ा संग्रहण

अध्ययन प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है। इस अध्ययन के लिए प्रयुक्त डेटा का मुख्य स्रोत प्राथमिक है और इसे संरचित प्रश्नावली से प्राप्त किया जाएगा। डेटा के अन्य स्रोत जर्नल, स्टॉक ब्रोकिंग हाउस, किताबें और अन्य वेब साइटों की प्रवृत्ति और प्रगति पर रिपोर्ट हैं।

7. अध्ययन की सीमाएं

1. अध्ययन केवल 100 निवेशकों तक सीमित है।

2. इस अध्ययन में वित्तीय बाजारों में निवेशकों के केवल निवेश के तरीकों का इस्तेमाल किया गया।
3. सर्वेक्षण केवल एक शहर में किया जाता है।
4. अध्ययन में समय, स्थान और संसाधन भी सीमित होते हैं।

8. डेटा विश्लेषण और निर्वचन

(i) निवेशकों का आयु अनुसार वर्गीकरण

तालिका 1 : निवेशकों का आयु-वार वर्गीकरण

आयु	प्रतिवादी की संख्या
25 से कम	14
25–35	21
35–45	41
45 से अधिक	24
कुल	100

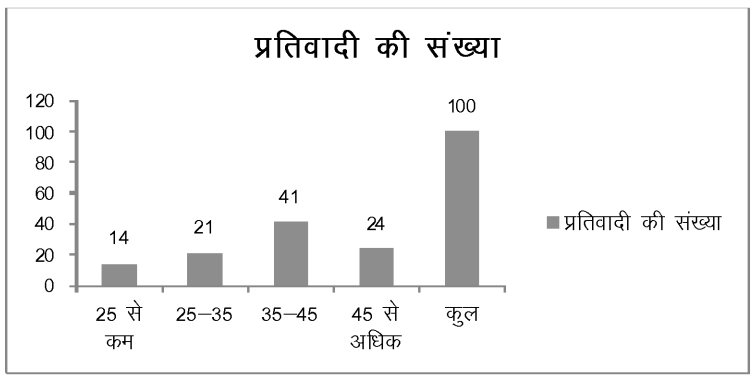

चित्र 1 : निवेशकों का आयु-वार वर्गीकरण

25 साल से कम उम्र के 14 लोग शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं। 25 से 35 की उम्र के बीच 21 लोग शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं, 35 से 45 साल के बीच के 41 लोग शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं और इस समूह में लोग किसी भी अन्य समूह की तुलना में अधिक निवेश कर रहे हैं, वहां ऐसे 24 लोग हैं जिनकी उम्र 45 वर्ष से अधिक है, शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं।

(ii) निवेशकों का शिक्षा के अनुसार वर्गीकरण

तालिका 2 : निवेशकों का शिक्षा के अनुसार वर्गीकरण

शिक्षा	प्रतिवादी की संख्या
अंडर ग्रेजुएट	27
स्नातक	40
पोस्ट ग्रेजुएट	18
व्यावसायिक डिग्री	15
कुल	100

ऐसे 27 लोग हैं जो अंडर ग्रेजुएट हैं, शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं, 40 लोग हैं जो स्नातक हैं, शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं और यह किसी भी अन्य शिक्षा की तुलना में सबसे अधिक संख्या में लोग हैं,

18 लोग हैं जो स्नातकोत्तर हैं निवेश कर रहे हैं शेयर बाजार में ऐसे 15 लोग हैं जो पेशेवर हैं और शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं।

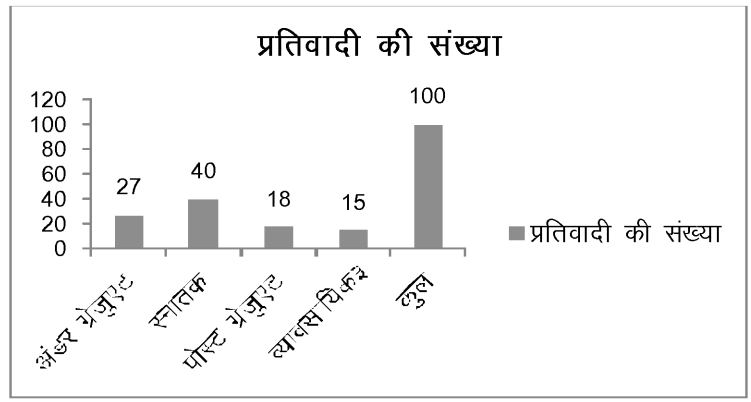

चित्र 2: निवेशकों का शिक्षा के अनुसार वर्गीकरण

(iii) निवेशकों का व्यवसायवार वर्गीकरण

तालिका 3: निवेशकों का व्यवसाय के अनुसार वर्गीकरण

व्यवसाय	प्रतिवादी की संख्या
व्यवसायी	60
गैर सरकारी कर्मचारी	17
पेशेवर	13
सरकारी कर्मचारी	9
कोई अन्य	1
कुल	100

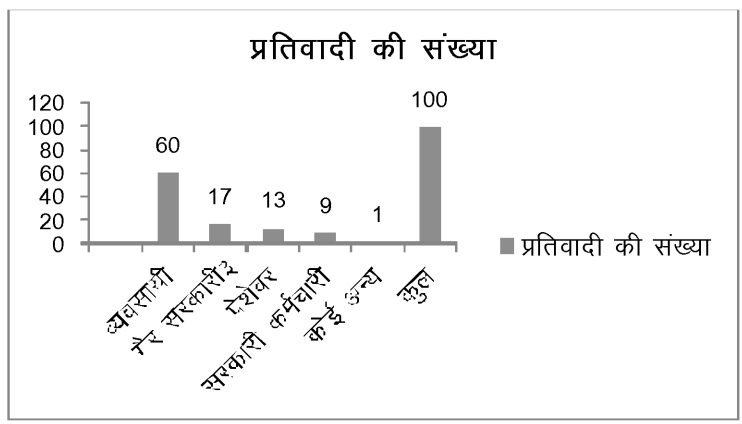

चित्र 3: निवेशकों का व्यवसाय-वार वर्गीकरण

ऐसे 60 लोग हैं जो व्यवसायी हैं और शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं और यह शेयर बाजार में निवेश करने वाले लोगों की संख्या सबसे अधिक है, 17 लोग ऐसे हैं जो गैर सरकारी हैं। कर्मचारी शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं, 13 लोग हैं जो पेशेवर हैं शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं, 9 लोग हैं जो सरकारी हैं। कर्मचारी शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं, 1 लोग हैं जो दूसरे व्यवसाय में हैं, शेयर बाजार में निवेश कर रहे हैं।

(iv) खंडों के अनुसार वर्गीकरण

तालिका 4 : खंडों के अनुसार वर्गीकरण (श्रेणी में)

खंड	प्रतिवादी की संख्या
इक्विटी	97
कमोडिटी	62
भविष्य और विकल्प	37
म्युचुअल फंड	29
आईपीओ	28
सभी	5

97 लोग हैं जो इक्विटी में निवेश कर रहे हैं और यह सबसे अधिक संख्या है, 62 लोग हैं जो कमोडिटी में निवेश कर रहे हैं, 37 लोग हैं जो भविष्य और विकल्प में निवेश कर रहे हैं, 29 लोग हैं जो म्यूचुअल फंड में निवेश कर रहे हैं, वहां 28 लोग हैं जो आईपीओ में निवेश कर रहे हैं, 5 लोग हैं जो सभी सेगमेंट में निवेश कर रहे हैं।

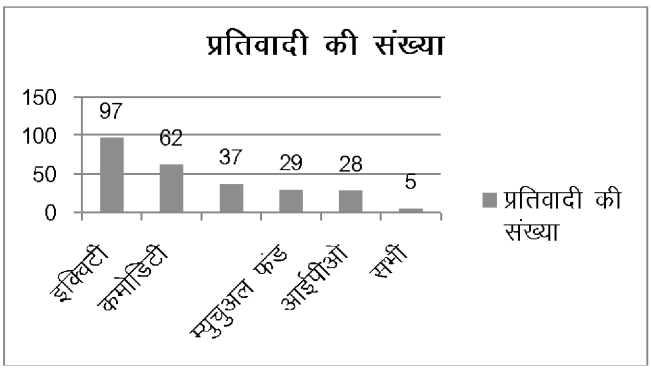

चित्र 4 : निवेशकों का खंडवार वर्गीकरण

(v) आयु, शिक्षा और विभिन्न खंड

तालिका 5 : निवेशकों की आयु और विभिन्न खंड के अनुसार वर्गीकरण और निवेशक की शिक्षा और विभिन्न खंड के अनुसार वर्गीकरण

आयु	इक्विटी	कमोडिटी	एफ एंड ओ	म्यूचुअल फंड	आईपीओ	सभी
25 से कम	13	6	5	4	4	0
25–35	22	11	7	6	5	4
35–45	36	17	16	8	12	1
45 से ऊपर	26	28	9	11	7	0
कुल	97	62	37	29	28	5
अंडर स्नातक	29	23	12	8	6	0
स्नातक	40	24	16	12	11	1
स्नातकोत्तर	19	13	6	7	9	4
व्यावसायिक डिग्री	9	2	3	2	2	
कुल	97	62	37	29	28	5

व्यवसायी	54	29	13	11	8	3
गैर सरकारी कर्मचारी	23	10	7	8	6	2
पेशेवर	12	14	11	8	9	0
सरकारी कर्मचारी	8	8	6	2	4	0
कोई अन्य	0	1	0	0	1	0
कुल	97	62	37	29	28	5

ऊपर दी गई तालिका शेयर बाजार में अलग-अलग सेगमेंट में व्यक्ति की उम्र और निवेश के बीच संबंध को दर्शाती है। 35-45 की उम्र के बीच के लोग ज्यादातर इक्विटी में निवेश कर रहे हैं। 45 साल से अधिक उम्र के लोग ज्यादातर कमोडिटी में निवेश कर रहे हैं। जो लोग अधिकतम 35-35 वर्ष की आयु के बीच भविष्य और विकल्प में निवेश कर रहे हैं। म्यूचुअल फंड में सबसे ज्यादा निवेश 45 साल से ऊपर के लोग करते हैं। आईपीओ में सबसे ज्यादा निवेश 35-45 आयु वर्ग के लोगों द्वारा किया जाता है। जो लोग अंडरग्रेजुएट हैं वे ज्यादातर इक्विटी में निवेश कर रहे हैं। कमोडिटी में ज्यादातर ग्रेजुएट और अंडरग्रेजुएट निवेश कर रहे हैं। भविष्य और विकल्प में ज्यादातर स्नातक निवेश कर रहे हैं। म्यूचुअल फंड और आईपीओ में सभी शिक्षा समूह निवेश कर रहे हैं। इक्विटी में ज्यादातर कारोबारी निवेश कर रहे हैं। कमोडिटी और फ्यूचर और ऑप्शन में सभी सेगमेंट निवेश कर रहे हैं लेकिन सबसे ज्यादा निवेश बिजनेसमैन ही करते हैं। म्यूचुअल फंड और आईपीओ में सभी वर्ग समान रूप से निवेश कर रहे हैं।

9. निष्कर्ष

अधिकांश निवेशक अपनी पूंजी की सुरक्षा को उच्च प्राथमिकता देते हैं। वे अधिक निर्भरता और सुरक्षा की मांग करते हैं। निर्भरता और सुरक्षा की तुलना में निवेशक मौजूदा प्रवृत्ति और पहुंच में आसानी से कम प्रभावित होते हैं। अधिकांश अर्जक अपना पैसा किसी भी क्षेत्र में विभिन्न स्तरों तक खर्च करते हैं, जिससे निवेश कंपनियों को अपने ग्राहकों को विकसित करने का बहुत अवसर मिलता है। भले ही वित्तीय बाजार बड़े रिटर्न की पेशकश करता है, निवेशक अप्रत्याशितता और पर्याप्त समझ की कमी के कारण इसे टालना चुनते हैं। लेकिन जो जानकार हैं और कुछ जोखिम उठाने को तैयार हैं, वे इक्विटी मार्केट में निवेश कर रहे हैं। चूंकि पिछले कुछ वर्षों में बैंकों की ब्याज दरें गिर रही हैं, इसलिए निवेशक अन्य निवेशों जैसे बांड, म्यूचुअल फंड, शेयर बाजार और अन्य चीजों जैसे रियल एस्टेट, सोना और इमारतों की ओर रुख कर रहे हैं। नतीजतन, अंतिम निष्कर्ष यह है कि जयपुर शहर में निवेशक वित्तीय निर्णय ले रहे हैं जो जोखिम, निर्भरता और निवेश पर वापसी को संतुलित करते हैं।

संदर्भ

- भल्ला, वी. के. (1983), निवेश प्रबंधन, एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली।
- भोले, एल.एम. (2004), भारतीय वित्तीय प्रणाली - सुधार, नीतियां और संभावनाएं, पहला संस्करण, न्यू सेंचुरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- चंद्र प्रसन्ना (1995), द इन्वेस्टमेंट गेम - हाउ टू विन, टाटा मैकग्रा हिल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- गिटमैन, एल.जे. और जोहंक, एम.डी. (1990), फंडामेंटल्स ऑफ इनवेस्टिंग, चौथा संस्करण, हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, न्यूयॉर्क सिटी
- मनोज कुमार दास, 'भारत में पीढ़ी के निवेश निर्णय को प्रभावित करने वाले कारक: एक अर्थमितीय अध्ययन', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बस। प्रबंधन पारिस्थितिकी। रेस।, वॉल्यूम नंबर 1 (2010), अंक संख्या 1, पीपी। 15-26।
- सुमन और डी.पी. वार्न, 'इन्वेस्टमेंट बिहेवियर ऑफ इंडिविजुअल इन्वेस्टर इन स्टॉक मार्केट', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन फाइनेंस एंड मार्केटिंग, वॉल्यूम नंबर 2 (2012), अंक संख्या 2 (फरवरी), पीपी। 243-250।

❑❑

अब्दुल्लाह कुरैशी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
डॉ. नागेंद्र सिंह भाटी (शोध निदेशक)
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

महिला प्रतिनिधियों का शहरी शासन में सशक्तिकरण : राजस्थान में शहरी स्थानीय निकायों का एक अध्ययन

1. सारांश

महिलाएं देश के विकास और सरकार के लिए महत्वपूर्ण हैं। सरकार में महिलाओं की भागीदारी न केवल उनकी स्थिति को बढ़ाती है बल्कि महिलाओं की मुक्ति का भी समर्थन करती है। अपने स्वयं के सशक्तिकरण, अपने सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों और शहरी सरकार की भूमिका के बारे में ज्ञान की कमी के कारण, महिलाएं परियोजनाओं के डिजाइन, निष्पादन, निगरानी और रखरखाव के चरणों में सफलतापूर्वक संलग्न नहीं हो पा रही हैं। महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी के बिना शहरी स्थानीय निकायों को मजबूत नहीं किया जा सकता है। शहरी शासन के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है। वर्तमान अध्ययन महिला प्रतिनिधियों का शहरी शासन में सशक्तिकरण के नमूने में जयपुर और अजमेर के राजस्थान जिलों से 30 महिला प्रतिनिधि शामिल है। पेपर का प्रमुख लक्ष्य शहरी स्थानीय निकायों के माध्यम से महिला प्रतिनिधियों का सशक्तिकरण और शहरी शासन में वे किन चुनौतियों और बाधाओं का सामना करते हैं जो सशक्तिकरण से जुड़ी हैं का अध्ययन करना है। यह पेपर शहरी स्थानीय सरकारी संस्थाओं और सरकार द्वारा महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए की गई सुधारात्मक कार्रवाइयों को भी ध्यान में रखता है।

मूल शब्द : महिलाओं की भागीदारी, राजस्थान शहरी शासन, महिला सशक्तिकरण, महिला प्रतिनिधि।

2. प्रस्तावना

अतीत में महिलाओं की भूमिका जैविक प्रजनन और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक मुख्यधारा में सीमित भागीदारी तक सीमित रही है। सामाजिक आर्थिक विकास का उद्देश्य विकास में महिलाओं की भूमिका से जुड़ा है। महिलाओं को समानता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक प्रगति आवश्यक है। मूल रूप से, महिला सशक्तिकरण अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति सहित विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति में सुधार की प्रक्रिया से जुड़ा है। यह मुख्य रूप से पुरुष-प्रधान समाज में एक महिला होने के साथ आने वाले उत्पीड़न से मुक्त एक सामाजिक वातावरण को बढ़ावा देता है, जैसे प्रभुत्व, शोषण, चिंता और असमानता का डर आदि (अर्चना सिन्हा 2011)।

महिलाओं के लिए नीति भारत सरकार द्वारा बनाई और संचालित की जाती है। राष्ट्रीय अधिकारिता नीति इस नीति का नाम थी। इस रणनीति का प्राथमिक लक्ष्य समुदाय और समाज में महिलाओं की सामान्य उन्नति है (कुमार, प्रह्लाद और पॉल, टिंकू, 2004)।

राष्ट्रीय अधिकारिता नीति के लक्ष्य इस प्रकार हैं :

1. एक ऐसे माहौल को बढ़ावा देना जो महिलाओं को सुदृढ़ आर्थिक और सामाजिक नीतियों के माध्यम से अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने की अनुमति देगा।
2. राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नागरिक सहित सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ सभी आवश्यक स्वतंत्रता और अधिकारों की महिलाओं द्वारा वास्तविक और कानूनी अभ्यास।
3. महिलाओं को देश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन में भाग लेने और निर्णय लेने का समान अवसर।
4. महिलाओं के लिए स्वास्थ्य देखभाल, सभी स्तरों पर उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा, करियर और व्यावसायिक परामर्श, रोजगार, समान वेतन, कार्यस्थल स्वास्थ्य और सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सार्वजनिक कार्यालय आदि तक समान पहुंच।
5. सक्रिय रूप से भाग लेकर और पुरुषों और महिलाओं दोनों को शामिल करके, कानूनी व्यवस्था को मजबूत करना और सांस्कृतिक दृष्टिकोण और सामुदायिक व्यवहार को बदलना पूरा किया जा सकता है।
6. एक लिंग परिप्रेक्ष्य को एकीकृत करना, महिलाओं के खिलाफ भेदभाव और हिंसा को समाप्त करना और नागरिक समाज के साथ संबंधों को मजबूत करना।

3. साहित्य की समीक्षा

अर्चना सिन्हा (2011) किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसकी महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक उन्नति पर निर्भर करती है। बदलते परिवेश के कारण महिलाओं को अब व्यापार के अवसरों में अधिक आसानी से स्वीकार किया जाता है। हमारा विस्तारित सेवा उद्योग महिलाओं की उद्यमिता को भी प्रोत्साहित करता है। अध्ययन का लक्ष्य कई आंतरिक और बाहरी कारकों की पहचान करना है जो महिलाओं की उद्यमिता को प्रोत्साहित और हतोत्साहित करते हैं। इसके अतिरिक्त, इसका अर्थ यह होगा कि महिलाएं निवेश करती हैं और उनके पास काम के रोमांचक घंटे होते हैं।

कुमार, प्रह्लाद और पॉल, टिंकू, (2004) शोध ने महिला उद्यमी के विचार को स्पष्ट किया, वे कारक जो महिलाओं को अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए प्रेरित करते हैं, भारत में महिलाओं के विकास में बाधाएं और उद्यमिता को बढ़ावा देने और विकास के लिए रणनीतियां।

गुरुंग लीना (2010) शोध का लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक और जनसांख्यिकीय कारकों और महिला सशक्तिकरण की डिग्री के बीच संबंधों की जांच करना था। अध्ययन महिलाओं को सशक्त बनाने और उनकी सामान्य भलाई में सुधार के लिए आर्थिक पहल की आवश्यकता का समर्थन करता है।

कौशिक, संजय, (2013) अध्ययन का लक्ष्य इस बात पर जोर देना था कि महिला उद्यमी उद्यमशीलता की गतिविधियों में अपनी भागीदारी का विश्लेषण करके आर्थिक विकास में कैसे योगदान करती हैं। इसने उत्साहजनक तत्वों और सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को देखा जो भारत में महिला उद्यमियों के विकास को समर्थन और प्रोत्साहित करते हैं।

4. राजस्थान की रूपरेखा

राजस्थान उत्तर पश्चिम भारत के अग्रणी राज्यों में से एक है। राजस्थान शब्द राजपुताना से बना है। 19 रियासते, 3 ठिकाने यथा लावा (जयपुर), कुशलगढ़ (बांसवाड़ा) तथा नीमराना (अलवर) तथा एक चीफशिफ अजमेर-मेरवाड़ा तत्कालीन राजपूताना एजेंसी के हिस्से थे। यह ब्रिटिश शब्द आधिकारिक दस्तावेजों में तब तक इस्तेमाल किया गया था जब तक कि 1949 के संविधान में 'राजस्थान' ने इसे बदल नहीं दिया। 30 मार्च 1949 में जयपुर को प्रदेश की राजधानी घोषित किया गया।

राजस्थान की प्रशासनिक संरचना

तालिका 1 : राजस्थान की प्रशासनिक संरचना का विस्तार

क्रमांक	प्रशासनिक संरचना	संख्या
1	राजस्थान के संभाग	7
2	राजस्थान के जिले	33
3	राजस्थान की तहसील	370
4	राजस्थान के ब्लॉक	295
5	कुल राजस्व गांव	44672

स्रोत : राजस्थान का सांख्यिकीय सार

राजस्थान का सांख्यिकीय सार

यहाँ राजस्थान के मुख्यतः क्षेत्र, जनसंख्या, पुरुष, महिला, शहरी, ग्रामीण, घनत्व, साक्षरता दर, पुरुष, महिला, लिंग अनुपात, को बताया गया है।

तालिका 2 : राजस्थान के बुनियादी आँकड़े

क्रमांक	सांख्यिकीय सार	संख्या
1.	क्षेत्र	3,42,239 वर्ग किमी
2.	जनसंख्या	68,548,437
3.	पुरुष	3,55,50,997
4.	महिला	3,29,97,440
5.	शहरी	1,70,48,085
6.	ग्रामीण	5,15,00,352
7.	घनत्व	200
8.	साक्षरता दर	66.11
9.	पुरुष	79.19
10.	महिला	52.12
11.	लिंग अनुपात	880

स्रोत : जनगणना-2011

राजस्थान में महिला स्तर

लिंग के मामले में नर बच्चे को मादा बच्चे से प्राथमिकता दी जाती है। राजस्थान राज्य में मौजूद एकतरफा लिंग अनुपात (और आज भी मौजूद है) - मुख्य रूप से कन्या भूण हत्या की प्रथा के परिणामस्वरूप - इस विशेषता को बहुत हद तक स्पष्ट करता है। स्थानीय कहावतें यह स्पष्ट करती हैं कि परिवार में बेटे को एक संपत्ति के रूप में महत्व दिया जाता है। व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली स्थानीय कहावत पढ़ती है :

चूंकि राजस्थान में भी कही कही देखा गया है की महिलाओं के साथ पुरुषों के समान व्यवहार नहीं किया जाता है, इसलिए उनकी स्थिति पर्याप्त नहीं है। वह अपनी शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह या वित्तीय स्वतंत्रता के बारे में निर्णय लेने में असमर्थ

है। महिलाएं परिवार का एक हिस्सा हैं, लेकिन उन्हें परिवार के फैसलों में भाग लेने या सुझाव देने तक की अनुमति नहीं है। वे अपने चेहरे पर परदा (घूंघट) लपेटते हैं। उन्हें आगे की शिक्षा हासिल करने के लिए समुदाय छोड़ने की अनुमति नहीं है।

हाल के वर्षों में हरित क्रांति, शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन में परिवर्तन देखा गया है। महिलाएं तेजी से अधिक शिक्षित हो रही हैं, विशेष रूप से महानगरीय क्षेत्रों में, और अधिक शिक्षित महिलाएं सार्थक नौकरियों का पीछा कर रही हैं। व्यावसायिक पैटर्न में गैर-पारंपरिक नौकरियों के पक्ष में एक उल्लेखनीय बदलाव देखा गया है। हालाँकि, ये बदलाव महानगरीय क्षेत्रों में अधिक स्पष्ट और तेज हैं, जहाँ महिलाओं का जीवन अभी भी पारंपरिक नौकरियों के इर्द-गिर्द घूमता है। हरियाणा राज्य महिलाओं की राजनीतिक और सामाजिक आर्थिक उन्नति का समर्थन करने के लिए कई कार्यक्रम चला रहा है। लेकिन राज्य के गिरते लिंगानुपात को लेकर विशेष चिंता की बात है।

राजस्थान में शहरी स्थानीय निकाय

राजस्थान में 10 नगर निगम, 34 नगर परिषद और 169 नगर बोर्ड या नगर पंचायत हैं। इस प्रकार राजस्थान में कुल 213 नगरपालिका या शहरी स्थानीय निकाय हैं। राजस्थान नगर पालिका अधिनियम, 2009 राज्य के सभी शहरी स्थानीय निकायों के प्रशासन को नियंत्रित करता है।

शहरी शासन की महिला प्रतिनिधि

महिलाओं के राजनीतिक और सामान्य (सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, आदि) सशक्तिकरण के आंदोलन में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक शहरी सरकार में महिलाओं की भूमिका है। महिलाएं देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा बनाती हैं, लेकिन निर्णय लेने, व्यवसाय और शहरी सरकार में उनका प्रतिनिधित्व बेहद कम है। दो या तीन महिला विधायकों के अलावा, वे शहरी शासन से अवगत नहीं हैं या सक्रिय रूप से शामिल नहीं हैं (वे शहरी शासन के कुल कामकाज से अवगत नहीं हैं)। हम महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के बिना देश के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विकास को पूरा नहीं कर सकते। स्थानीय चुनावों में निर्वाचित महिलाओं की संख्या शहरी स्थानीय सरकार में महिलाओं के लिए आरक्षण से बढ़ जाती है, लेकिन शहरी प्रशासन में उनकी सक्रिय भागीदारी में सुधार नहीं होता है। पति और परिवार के अन्य पुरुष सदस्य महिला प्रतिनिधियों के अधिकारों का प्रयोग करते हैं और कर्तव्यों का पालन करते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि जो महिलाएं शहरों में स्थानीय सरकार के प्रतिनिधियों के रूप में काम करती हैं, वे शहरी शासन की प्रक्रिया में सही और सार्थक रूप से उनकी जिम्मेदारियों में विकसित होती हैं। यदि हम शहरी स्थानीय सरकार को बढ़ाना चाहते हैं तो महिला प्रतिनिधियों को अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अधिक प्रभावी ढंग से निभानी चाहिए और नगरपालिका मामलों में सक्रिय रूप से संलग्न होना चाहिए।

5. मुद्दे और चुनौतियाँ

हमारे स्थानीय समाज के ऐतिहासिक पैटर्न के परिणामस्वरूप शहरी स्थानीय निकायों में निर्वाचित महिलाओं की प्रभावी भागीदारी के मार्ग में बहुत सारी बाधाएं/समस्याएं हैं।

1. महिला प्रतिनिधि और राजनीतिक जुड़ाव की कमी दोनों ही उनके बोलने के आत्मविश्वास की कमी में योगदान करते हैं।
2. परिवारों के दायित्व हैं और वे उनकी भागीदारी से असंतुष्ट हैं।
3. निर्वाचित महिला विधायकों के सभी नगरपालिका कर्तव्यों का पालन उनके पतियों द्वारा किया जाता है, और जनता को महिलाओं की शासन करने की क्षमता पर बहुत कम भरोसा है।
4. राजनीतिक ज्ञान की कमी, राजनीतिक अनुभव की कमी, और यूएलबी के संचालन के साथ राजनीतिक हस्तक्षेप।

5. नगरपालिका अधिनियमों, नियमों और विनियमों की समझ का अभाव, साथ ही नगरपालिका प्रशासन और शहरी विकास चुनौतियों में विशेषज्ञता की कमी।
6. दल-स्तरीय निर्णय लेने में पुरुषों की प्रधानता और शहरी विकास की कठिनाइयों का कोई ज्ञान नहीं होना।

6. अध्ययन का उद्देश्य

1. लेख का मुख्य उद्देश्य शहरी स्थानीय निकायों के माध्यम से महिला प्रतिनिधियों का सशक्तिकरण और शहरी शासन में महिला प्रतिनिधियों को उनके सशक्तिकरण से संबंधित किस तरह की समस्याओं और बाधाओं का सामना करना पड़ता है।
2. लेख शहरी स्थानीय निकायों और सरकार द्वारा महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए शुरू किए गए उपचारात्मक उपायों पर भी विचार करता है।

7. परिकल्पना पद्धति

1. अध्ययन राजस्थान के दो जिलों यानी जयपुर जिले और अजमेर जिले में आयोजित किया गया था।
2. राजस्थान के जयपुर जिले और अजमेर जिले से 30 महिला प्रतिनिधियों का चयन किया गया था।

8. डेटा का स्त्रोत

प्राथमिक डेटा एकत्र करने के लिए एक साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया था। जयपुर जिले को 91 वार्डों में विभाजित किया गया था और जिला अजमेर को 60 वार्डों में विभाजित किया गया था। जैसा कि हमारे अध्ययन में इन दो जिलों की केवल महिला प्रतिनिधियों का चयन किया गया था। विभिन्न सरकारी अभिलेखों और अन्य स्रोतों से माध्यमिक डेटा एकत्र किया गया था।

9. अध्ययन का महत्व

महिला प्रतिनिधि शहरी स्थानीय निकायों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को सशक्त किए बिना शहरी शासन को मजबूत नहीं किया जा सकता है। इसलिए शहरी शासन के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का अध्ययन करना बहुत महत्वपूर्ण है।

10. अनुसंधान पद्धति

अध्ययन राजस्थान के दो जिलों यानी जयपुर जिले और अजमेर जिले में आयोजित किया गया था। राजस्थान के जयपुर जिले और अजमेर जिले से 30 महिला प्रतिनिधियों का चयन किया गया था। प्राथमिक आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया। जयपुर जिले को 91 वार्डों में और जिला अजमेर को 60 वार्डों में विभाजित किया गया था। जैसा कि हमारे अध्ययन में इन दो जिलों की केवल महिला प्रतिनिधियों का चयन किया गया था। विभिन्न सरकारी अभिलेखों और अन्य स्रोतों से माध्यमिक डेटा एकत्र किया गया था।

तालिका 3 शहरी नगर निकायों के साथ महिला प्रतिनिधियों के परिचित होने की मात्रा को प्रदर्शित करती है। अधिकांश महिला प्रतिनिधि, या उनमें से 63.33 प्रतिशत, शहरी स्थानीय सरकारों के अधिकार और कर्तव्यों से अवगत हैं। हालांकि, अधिकांश महिला प्रतिनिधि इस बात से अनजान थीं कि शहरी स्थानीय निकाय सामान्य रूप से कैसे संचालित होते हैं, साथ ही साथ नगरपालिका पार्षदों, शहरी विकास कार्यक्रमों (यूडीपी) और अनुदान के वित्तपोषण के स्रोत भी। इस प्रकार, हमने पाया कि उत्तरदाताओं को विभिन्न शहरी स्थानीय सरकारी मुद्दों पर कम जानकारी थी। शहरी स्थानीय निकायों के केवल दो या तीन कार्य ही उन्हें ज्ञात थे।

तलिका 3 : शहरी स्थानीय निकायों के बारे में महिला प्रतिनिधियों की जागरूकता का स्तर

क्र. सं.	जागरूकता	उत्तरदाता हाँ/नहीं	प्रतिशत
1	क्या आप अपनी शक्तियों और कार्यों से अवगत हैं	19/11	63.33/36.67
2	क्या आप यूएलबी के कुल कामकाज के बारे में जानते हैं?	9/21	30.00/70.00
3	क्या आप एमसी की भूमिका के बारे में जानते हैं?	13/17	43.33/56.67
4	क्या आप शहरी विकास कार्यक्रमों (यूडीपी) के बारे में जानते हैं?	12.00/18.00	40.00/60.00
5	क्या आप अनुदान के स्रोतों के बारे में जानते हैं?	10.00/20.00	33.33/66.67

स्रोत : प्राथमिक डेटा

तालिका 4 : शहरी स्थानीय निकायों में महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी का स्तर

क्र. सं.	भागीदारी	हमेशा	कभी-कभी	कभी नहीं
1.	क्या आप एमसी की बैठकों में भाग लेते हैं?	13 (43.33%)	10 (33.33%)	7 (23.33%)
2.	क्या आप बैठकों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं?	13 (43.33%)	11 (36.67%)	6 (20.00%)
3.	क्या आपने एमसी की बैठकों में कोई मुद्दा उठाया?	15 (50%)	8 (26.67%)	7 (23.33%)
4.	स्थानीय लोग कितनी बार अपनी समस्याओं को लेकर आपसे संपर्क करते हैं?	7 (23.33%)	8 (26.67%)	15 (50.00%)
5.	क्या आप लोगों की शिकायतों का निवारण करने में सक्षम हैं?	5 (16.67%)	6 (20.00%)	19 (63.33%)
6.	क्या आप जनता की समस्याओं को हल करने के लिए अपने परिवार के पुरुष सदस्यों पर निर्भर हैं?	17 (56.67%)	8 (26.67%)	5 (16.67%)
7.	क्षेत्र के पुरुष सदस्य आपसे कितनी बार संपर्क करते हैं स्थानीय समस्याओं के साथ?	3 (10.00%)	8 (26.67%)	19 (63.33%)

शहरी स्थानीय निकायों में महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी दर तालिका 4 में दिखाई गई थी। यह बैठकों में महिला प्रतिनिधियों के दृष्टिकोण, बैठकों में उनकी भागीदारी, उनके द्वारा उठाए गए मुद्दों, स्थानीय लोगों ने उनकी समस्याओं के साथ कैसे संपर्क किया और कैसे वे अपनी शिकायतों का समाधान करने में सक्षम थे, साथ ही साथ अपने परिवार के पुरुष सदस्यों पर उनकी निर्भरता और स्थानीय पुरुषों ने उनकी समस्याओं को लेकर उनसे कैसे संपर्क किया इत्यादि प्रमुख सवाल पूछे गए। सभी एमसी बैठकों में अधिकतर महिला सांसद मौजूद रहीं। अधिकांश महिला सांसद सक्रिय रूप से सत्रों में शामिल हुईं और अपने वार्ड के लिए विशिष्ट चिंताओं पर प्रकाश डाला। अधिकांश महिलाएं अपनी ही भाषा में बोलती थीं जो कि राजस्थानी है। स्थानीय लोगों के बारे में उन्हें चिंता है या नहीं, अधिकांश महिलाओं की राय है कि उनके क्षेत्र के स्थानीय लोग अपने लोगों से संबंधित हैं, उनके पति या पुरुष परिवार के सदस्यों से ही मिलते हैं। उनके पति स्थानीय लोगों की समस्याओं को

सुलझाने में उनकी मदद करते हैं। अधिकांश महिला प्रतिनिधि अपने वार्ड या लोगों के काम को हल करने के लिए अपने परिवार या पति पर निर्भर थीं। अंत में क्षेत्र के अंतिम पुरुष सदस्य कभी भी अपनी समस्याओं को लेकर उनके पास नहीं जाते क्योंकि वे स्थानीय समस्या के संबंध में उनके पति से परामर्श करते हैं या उनसे ही मिलते हैं।

तालिका 5 : एमसी की बैठक में भाग लेने में मुख्य बाधाएं, मुख्य समस्या, सुझाव, राय, और उपाय।

क्रमांक	बाधा	प्रतिवादी की संख्या	प्रतिशत
1	घरेलू काम में व्यस्त	5	16.67
2	मुलाकातों की फिक्र न करें	5	16.67
3	पुरुष का दबदबा / पूर्वाग्रह रवैया	3	10.00
4	उनके पुरुष सदस्यों द्वारा किया गया कार्य	11	36.67
5	इनमें से कोई नहीं	6	20.00
क्रमांक	**क्षेत्र के विकास में प्रमुख समस्या**	**प्रतिवादी की संख्या**	**प्रतिशत**
1	जन सहयोग का अभाव	8	26.67
2	सक्षम शहरी नेताओं की कमी	6	20.00
3	एमसी अधिकारियों के सहयोग का अभाव	6	20.00
4	अधिक राजनीतिक हस्तक्षेप	10	33.33
क्रमांक	**सुझाव**	**प्रतिवादी की संख्या**	**प्रतिशत**
1	लोगों की भागीदारी को लामबंद करना	6	20.00
2	स्थानीय नेतृत्व को प्रोत्साहित करें (महिला)	18	60.00
3	शिक्षा का प्रसार	6	20.00
4	आम मुद्दों पर आम सहमति बनाना	–	–
क्रमांक	**महिलाओं के भविष्य के सशक्तिकरण के बारे में राय**	**प्रतिवादी की संख्या**	**प्रतिशत**
1	एमसी में पर्याप्त प्रतिनिधित्व के साथ आरक्षण	5	16.67
2	जनता के बीच जागरूकता	5	16.67
3	महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार	3	10.00
4	समाज की सोच में बदलाव	11	36.67
5	ये सभी	6	20.00
क्रमांक	**सुझाव**	**प्रतिवादी की संख्या**	**प्रतिशत**
1	महिलाओं के बीच राजनीतिक शिक्षा का प्रसार	3	10.00
2	एमसी में आरक्षण	3	10.00
3	अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता	3	10.00
4	प्रशिक्षण परिसर और अभिविन्यास कार्यक्रम	15	50.00
5	ये सभी	6	20.00

एमसी की बैठकों में भाग लेने के दौरान महिला प्रतिनिधियों के पास जो मुद्दे या चुनौतियाँ होती हैं, उन्हें तालिका 5 में बताया गया है या उनका प्रतिनिधित्व किया गया है। अधिकांश महिला प्रतिनिधियों ने कहा कि उनके पति को उनके काम में उनकी सहायता करनी चाहिए या उन्हें केवल आवश्यक एमसी बैठकों में भाग लेना चाहिए। अधिकांश महिला प्रतिनिधियों 20 प्रतिशत का मानना है कि एमसी की बैठकों में भाग लेने के दिन कठिन थे। अब उन्हें एमसीएस सत्र में भाग लेने में कभी कोई कठिनाई नहीं होती है।

अपने क्षेत्रों के विकास को रोकने वाले प्राथमिक मुद्दे पर महिला प्रतिनिधियों के दृष्टिकोण तालिका में प्रदर्शित किए गए हैं। उत्तरदाताओं के बहुमत ने कहा कि राजनीतिक हस्तक्षेप उनके क्षेत्रों के विकास को रोकने वाला सबसे बड़ा मुद्दा था। सार्वजनिक सहयोग की कमी का समर्थन 26.67 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने किया, इसके बाद सक्षम शहरी नेताओं और एमसी अधिकारियों की कमी 20 प्रतिशत थी। उनका दावा है कि न तो आम जनता और न ही सरकार के पुरुष सदस्यों को उनकी प्रभावशीलता पर भरोसा था।

अपने वार्डों या जिलों के विकास पर महिलाओं के दृष्टिकोण तालिका में परिलक्षित हुए। अधिकांश महिला प्रतिनिधियों को स्थानीय नेतृत्व, विशेष रूप से महिला नेतृत्व का समर्थन करने के लिए सोचा गया था। महिलाएं अपने समुदाय के विकास में अधिक से अधिक योगदान देने में सक्षम थीं, लेकिन अधिकारियों, सहकारी समितियों और परिवार के सदस्यों में उनकी क्षमताओं पर विश्वास की कमी थी। महिलाओं को एमसी में उनकी क्षमताओं, भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के बारे में भी कम जानकारी दी गई।

एमसी में भावी महिला सशक्तिकरण के प्रति महिला प्रतिनिधियों का दृष्टिकोण तालिका में दिखाया गया है। अधिकांश महिला प्रतिनिधियों का मानना था कि एमसी में महिलाओं के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व (16.67%), इस मुद्दे के बारे में जन जागरूकता (16.67%), महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार (10%), और सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव (36.67%) सभी ने एमसी में महिलाओं की मुक्ति में योगदान दिया या उनका समर्थन किया।

तालिका एमसी में महिला प्रतिनिधियों की सक्रिय भागीदारी बढ़ाने के लिए विचारों को सूचीबद्ध करती है। अधिकांश महिला प्रतिनिधियों ने सहमति व्यक्त की कि एमसी में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण का उन्नयन महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, उनका मानना था कि जब वे शहरी शासन में शामिल हुए, तो वे पूरी तरह से तैयार नहीं थे और अपने कार्यों को प्रभावी ढंग से करने में असमर्थ थे। नगर निगमों में महिला प्रतिनिधियों की सक्रिय और प्रभावी भागीदारी बढ़ाने के लिए, शहरी शासन प्रशिक्षण और कुछ अभिविन्यास कार्यक्रम सहयोग प्रदान करता है।

11. प्रमुख खोज

1. महिला सदस्य शहरी नगरपालिका अधिकारियों की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों से परिचित थीं। हालाँकि, अधिकांश महिला प्रतिनिधि इस बात से अनजान थीं कि शहरी स्थानीय निकाय सामान्य रूप से कैसे संचालित होते हैं, साथ ही साथ नगरपालिका पार्षदों, शहरी विकास कार्यक्रमों (यूडीपी) और अनुदान के वित्तपोषण के स्रोत भी। इस प्रकार, हमने पाया कि उत्तरदाताओं को विभिन्न शहरी स्थानीय सरकारी मुद्दों पर कम जानकारी थी। शहरी स्थानीय निकायों के केवल दो या तीन कार्य ही उन्हें ज्ञात थे।
2. अधिकांश महिला प्रतिनिधियों ने सत्र में भाग लिया, अपनी भाषा में बात की, और अपने वार्डों के विकास से संबंधित समस्याओं को सामने लाया। वार्ड के स्थानीय या पुरुष निवासी शायद ही कभी महिला प्रतिनिधियों से संपर्क करते हैं, इसके बजाय, वे महिला प्रतिनिधियों की ओर से अपने पति या अन्य पुरुष रिश्तेदारों से बात करती हैं।
3. अधिकांश महिला प्रतिनिधि या तो शहरी स्थानीय निकायों की महत्वपूर्ण बैठकों में भाग ले रही थीं या अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर रही थीं या अपने पति की ओर से अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर रही थीं।

4. अधिकांश महिला प्रतिनिधियों ने कहा कि राजनेताओं द्वारा बढ़ा हुआ राजनीतिक हस्तक्षेप उनके क्षेत्र के विकास में प्राथमिक बाधा थी। और अधिकांश महिला सांसदों को महिला नेतृत्व का समर्थन करने के लिए माना जाता था। महिलाएं अधिक सक्षम हैं और अपने समुदाय के विकास में अधिक योगदान देती हैं। हालांकि, जनता और पुरुष सदस्य उनकी प्रभावशीलता पर भरोसा नहीं करते हैं।
5. बहुसंख्यक महिला प्रतिनिधियों ने कहा कि समाज और लोगों के नजरिए में बदलाव फायदेमंद था और उन्होंने नगर निगमों में महिलाओं की मुक्ति को बढ़ावा दिया। और अधिकांश महिला प्रतिनिधियों ने सहमति व्यक्त की कि प्रशिक्षण संस्थान और अभिविन्यास कार्यक्रम शहरी स्थानीय अधिकारियों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को और बढ़ाने में फायदेमंद थे। जब उन्होंने शहरी सरकार में काम करना शुरू किया, तो उन्हें इस बात का बहुत कम ज्ञान था कि शहरी स्थानीय निकाय कैसे काम करते हैं, इसलिए वे अपने कार्यों को पूरा करने के लिए अपने जीवनसाथी पर निर्भर थे। महिला प्रतिनिधियों के अनुसार, शहरी शासन के कार्य और प्रक्रिया को समझने के लिए, इस प्रकार प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

12. सुझाव

समाज में महिलाओं की स्थिति को ऊपर उठाने और ऊंचा करने के लिए और अधिक कार्रवाई की जानी चाहिए। महिलाओं के अधिकारों और जिम्मेदारियों के ज्ञान को बढ़ाना या बढ़ावा देना। इसके अतिरिक्त, निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की क्षमता बढ़ाने और उन्हें अपने कर्तव्यों को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए प्रेरित करने के लिए एक महीने के प्रशिक्षण कार्यक्रम की आवश्यकता है।

13. निष्कर्ष

शहरी क्षेत्रों के निर्वाचित अधिकारी शहरों में स्थानीय सरकार की सफलता के लिए महत्वपूर्ण हैं। हालांकि नगर निकायों में महिला प्रतिनिधि हैं, लेकिन वे अपनी जिम्मेदारियों को ठीक से नहीं निभाती हैं। वे हमेशा अपने पति, बच्चों या परिवार के अन्य पुरुष सदस्यों का अनुसरण करती हैं। राजनीति में उनकी दिलचस्पी नहीं है। हालांकि, आरक्षण द्वारा सरकार महिलाओं को राजनीतिक मुद्दों में भाग लेने का मौका देती है। महिला सशक्तिकरण शहरी सरकार में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का परिणाम है, और यह महिलाओं को उनकी भूमिकाओं और जिम्मेदारियों से संबंधित कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करने में उपयोगी हो सकता है। वे पुरुषों की तरह मजबूत, अधिक प्रभावशाली और अधिक सक्षम नेता बनते जा रहे हैं। जब वे अपनी क्षमताओं और उसके नेतृत्व कौशल को प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त करते हैं, तो वे और अधिक सशक्त हो जाएंगे।

संदर्भ

- अर्चना सिन्हा 2011, ''ग्रामीण महिला विकास में महिला नेताओं की भूमिका'', एफ्रो-एशियन जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट, वॉल्यूम XXXXIV, नंबर 1, पी.19, जनवरी-जून 2011।
- मेहेंदले लीना, ''राष्ट्रीय नीति-2001'', महिला और बाल विकास विभाग की रिपोर्ट, मानव संसाधन विभाग, योजना मंत्रालय, खंड 45, पृष्ठ 67-74, अगस्त, 2001।
- साहिब सिंह स्विंदर सिंह, ''लोकल गवर्नमेंट इन इंडिया'', न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर, पी.164, 2000।
- राजस्थान का सांख्यिकीय सार, 2021-2022।
- पामेला सिंह, ''पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी : प्रकृति और प्रभावशीलता'', रावत प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 117, 2007।
- पामेला सिंगला, ''पंचायती राज प्रकृति और प्रभावशीलता में महिलाओं की भागीदारी'', रावत प्रकाशन, पी. 116, 117, 118, 136, 2007

- कौशिक, संजय, 2013. भारत में महिला उद्यमियों के सामने चुनौतियां, फाइल https%// से पुनर्प्राप्त की गई।
- थापा, अर्जुन कुमार और गुरुंग लीना, 2010, फीमेल्स : ए केस स्टडी ऑफ पोखरा'' विकास के मुद्दों के आर्थिक जर्नल। खंड 11, अंक 1.
- चौधरी, नीलम, भारत में महिला उद्यमिता विकास का लेखा-जोखा : चुनौतियाँ, अवसर - भविष्य की संभावनाएं, फाइल https%//editorialexpress-com/ से प्राप्त की गई cgibin/conference/download-cgidb_name IAFFE2013 &paper_id¾90.
- शूलर, सिडनी रूथ, इस्लाम फरजाना और रोट्टाच एलिजाबेथ, ''महिला सशक्तिकरण पर दोबारा गौर किया गया: एक केस स्टडी'' बांग्लादेश से। फाइल http%//www-ncbi-nlm-nih-gov/ pmc/articles/PMC2941240 से प्राप्त की गई।
- मल्होत्रा अनुज, शुल्ते जेनिफर, पटेल पायल और पेटेश पट्टी, महिला अधिकारिता के लिए नवाचार और लैंगिक समानता। फाइल www-icrw-org/node/288 से प्राप्त की गई।
- कुमार, प्रह्लाद और पॉल, टिंकू, (2004), ''अनौपचारिकीकरण और लैंगिक संवेदनशील सांख्यिकी की आवश्यकता'' पेपर 'वैश्वीकरण, राज्य और' पर भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था संघ द्वारा एक राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया 11-12 जून, 2004 को जी.बी. पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान में आयोजित कमजोर वर्ग।

❑❑

डॉ. विनोद कुमार सबलानिया
सहायक आचार्य
तिलक पी.जी. कॉलेज, बस्सी, जयपुर

बुद्धि प्रकाश बैरवा (शोधार्थी)
आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबंधन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

भारत के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के निर्देशन और विकास पर 2012-13 से 2021-22 तक का अध्ययन

सारांश

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (आरआरबी) का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण गरीबों को फसल उत्पादन और संबंधित उद्देश्यों के लिए ऋण सुविधाएं प्रदान करना था, जिनकी आधिकारिक बचत प्रणाली तक बहुत सीमित पहुंच थी क्योंकि यह 1970 के दशक की शुरुआत में थी। भारतीय बैंकिंग प्रणाली आर्थिक क्षेत्र के सुधारों के जवाब में 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के समय मौजूद परिस्थितियों और मांगों से दूर विकसित हुई है। इस स्थिति में, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की लाभप्रद बने रहने की क्षमता विस्तारित आर्थिक परिवेश में अपनी वांछित स्थिति निर्धारित करने में सबसे महत्वपूर्ण कारक के रूप में उभरी। 2012-13 से 2021-22 तक भारत में आरआरबी का उदय और विस्तार इस निबंध का विषय है। जानकारी पूरी तरह से आरबीआई और नाबार्ड की वार्षिक रिपोर्ट से एकत्रित माध्यमिक आंकड़ों पर आधारित है। वर्तमान अध्ययन में ''मुख्य प्रदर्शन संकेतक विश्लेषण'' के लिए एक विश्लेषणात्मक लुकअप व्यवस्था का उल्लेख किया गया है, जिसमें बैंकों, शाखाओं और कवर किए गए जिलों की संख्या, जमा और जमा तैनाती शामिल है। शोध इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की जमा राशि जुटाने, बचत सृजन और सीडी अनुपात में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

मूल शब्द : प्रमुख प्रदर्शन संकेतक, विकास दर, जमाराशियों का संग्रहण, नाबार्ड, क्रेडिट, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सीडी अनुपात।

प्रस्तावना

भारत में, ''ग्रामीण बैंकिंग'' वाक्यांश उन वित्तीय संस्थानों को संदर्भित करता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने और समाज के गरीब सदस्यों की सहायता करने के उद्देश्य से स्थापित किए गए हैं। ग्रामीण भारत में कृषि और ग्रामीण ऋण प्रदान करने के लिए आरआरबी ने सरकार की बहु-एजेंसी रणनीति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। एम. नरसिम्हम के नेतृत्व में, ग्रामीण वित्त के आसपास के मुद्दों का पता लगाने के लिए भारत सरकार द्वारा एक कार्य समूह की स्थापना की गई और एक नए प्रकार के बैंक की सिफारिश की गई जिसे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के रूप में जाना जाता है जो गरीबों को कम लागत वाली बैंकिंग सेवाएं प्रदान करेगा (रेवणकर डॉ. अशोक डी., 2020)। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (आरआरबी) की स्थापना 2 अक्टूबर, 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976 के अनुसार, कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग और अन्य उत्पादक विकास के वित्तपोषण द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करने की दृष्टि से की गई थी। गतिविधियों, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे और सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों, कारीगरों और छोटे व्यवसाय के मालिकों के लिए। आरआरबी

संयुक्त रूप से भारत की केंद्र सरकार, संबंधित राज्य सरकार और प्रायोजक बैंक के पास 50:15:35 के अनुपात में हैं। (घोष नारायण रेड्डी 2017)

राज्य में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का समामेलन जो एक ही बैंक द्वारा प्रायोजित हैं। कई राज्य के स्वामित्व वाले बैंकों द्वारा समर्थित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का समामेलन। समिति ने सोचा कि कभी-कभी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन को सुधारने में मदद करने से प्रायोजक बैंकों में बदलाव हो सकता है। प्रायोजन में बदलाव से संबंधित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रतिस्पर्धात्मकता, कार्यस्थल संस्कृति, प्रबंधन और प्रभावशीलता सभी में सुधार किया जा सकता है। (सुदर्शन रेड्डी, 2013)

वर्तमान निबंध का लक्ष्य 2012 से 2021 तक भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विकास और प्रवृत्ति का मूल्यांकन करना है। जनता को वित्तीय सेवाएं प्राप्त करने के लिए बैंक शाखाओं की आवश्यकता होती है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के बाद से, विभिन्न शाखा लाइसेंसिंग प्रक्रियाओं ने कम सेवा वाले और ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक से अधिक शाखाएं खोलने पर जोर दिया है। 2001-2002 के दौरान क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को अपनी घाटे में चल रही शाखाओं को उपग्रह या मोबाइल कार्यालयों में बदलने की अनुमति दी गई थी, बशर्ते ऐसा करने से उनकी सेवा क्षेत्र प्रतिबद्धताओं को पूरा करने की उनकी क्षमता में हस्तक्षेप नहीं होगा। सुदूर ग्रामीण स्थानों में कई शाखाएँ बनाने की पिछली रणनीति के विपरीत, आरआरबी को अब अपनी लाभहीन शाखाओं को मिलाने या भंग करने की अनुमति है, और उनकी शाखा लाइसेंस नीति लगभग वाणिज्यिक बैंकों के समान है (होसामनी, एस.बी., 2002)।

3. साहित्य की समीक्षा

रेवणकर डॉ. अशोक डी., 2020 अध्ययन में राष्ट्रीय बैंकिंग प्रबंधन संस्थान द्वारा आरआरबी के प्रदर्शन और भविष्य की संभावनाओं की एक उपयोगी परीक्षा आयोजित की गई थी। उन्होंने जमा, शाखा विकास और ऋण परिनियोजन के संबंध में किसी दिए गए क्षेत्र में सहकारी बैंकों, वाणिज्यिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन की तुलना भी प्रदान की। ग्रामीण साख के विषय में काम कर रहे कई शोधकर्ताओं ने इसे आंख खोलने वाला पाया।

घोष नारायण रेड्डी 2017 अपने अध्ययन में, ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में उत्पादकता वृद्धि'', उन्होंने 1996 से 2002 के वर्षों में तकनीकी घटकों की समग्र उत्पादकता और आरआरबी में स्केल दक्षता में परिवर्तन का मूल्यांकन किया। अध्ययन के अनुसार, आरआरबी प्रभावशीलता अध्ययन अवधि में अधिक थी समृद्ध अर्थव्यवस्थाओं और समाजों वाले स्थान। इसके अतिरिक्त, यह प्रदर्शित करता है कि, संपत्ति और शाखाओं की संख्या के मामले में, ग्रामीण बैंकों के पास बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्थाएं थीं। उस समय की सेवाओं की आपूर्ति की तुलना में, ग्रामीण बैंकों की कुल उत्पादकता में वृद्धि अधिक लाभदायक है, और यह दिखाया गया है कि तकनीकी दक्षता में परिवर्तन से आरआरबी में उच्च उत्पादकता वृद्धि होती है

सुदर्शन रेड्डी, 2013 आरआरबी के पुनर्गठन के बाद के उत्पादन की प्रभावशीलता की जांच की। 1990 से 2002 तक को शोध अवधि में शामिल किया गया है। पुनर्गठन से पहले और बाद के वर्षों के औसत दक्षता स्कोर की तुलना करते समय, लेखकों के विश्लेषण से पता चलता है कि ग्रामीण बैंकों में उत्पादन क्षमता में सकारात्मक सुधार हुआ है। उन्होंने दक्षता का आकलन करने के लिए डीईए दृष्टिकोण का उपयोग करके ऐसा किया।

पति, ए.पी., 2005 अपने अध्ययन के लिए 2001 और 2009 के बीच भारत के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विलय के उनके प्रदर्शन पर पड़ने वाले प्रभावों की जांच की। उनके शोध से पता चलता है कि विलय के चरण के बाद आरआरबी के प्रदर्शन में काफी सुधार हुआ है। विलय के बाद, पूंजी कोष में वृद्धि हुई, और समय के साथ, ऋण जमा अनुपात में भी वृद्धि हुई।

नवकिरणजीत कौर धालीवाल, 2010 कुछ प्रमुख प्रदर्शन कारकों के आलोक में आरआरबी के वित्तीय प्रदर्शन की जांच की, जिसमें शाखा वृद्धि, जमा राशि, समय के साथ निर्मित नुकसान, निवेश और 2012 और 2015 के बीच लाभ में उतार-चढ़ाव शामिल हैं। निवेश में गिरावट और नुकसान के बावजूद 5 आरआरबी, उनकी जांच से पता चला है कि कुल मिलाकर एक महत्वपूर्ण विकास हुआ है।

मिश्रा, बिस्वा स्वरूप (2006), अपने शोध में, उन्होंने 1975 से 2015 तक भारतीय क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन को देखा। अध्ययन के निष्कर्ष आरआरबी शाखाओं की संख्या में वृद्धि का संकेत देते हैं। 1976 और 2015 के बीच, प्रति शाखा और बैंक में औसत जमा के साथ-साथ प्रति आरआरबी जमा संग्रहण दोनों में भारी वृद्धि हुई थी। अध्ययन का निष्कर्ष है कि भारत में अध्ययन अवधि के दौरान, आरआरबी के समग्र प्रदर्शन में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

कनिका एंड नैन्सी (2013) यह देखते हुए कि भारत सरकार की विलय प्रक्रिया के बाद, भारत में ग्रामीण बैंकों के सामान्य प्रदर्शन में काफी सुधार हुआ है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या में गिरावट के बावजूद, भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की औसत स्थिति में विलय के बाद से वृद्धि हुई है।

खान एंड अंसारी (2015) यह साबित हो गया है कि वित्तीय संस्थानों के माध्यम से सस्ता ऋण प्रदान करने वाला उपकरण जो सामान्य रूप से और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र को ऋण के अनुदान के माध्यम से निरंतर वित्तीय वृद्धि उत्पन्न करता है वैश्विक आर्थिक उछाल और गरीबी में कमी के लिए आवश्यक है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या में कमी के बावजूद, विलय के बाद की अवधि के बाद से भारत में इन संस्थानों के प्रदर्शन में वृद्धि हुई है।

4. अध्ययन का उद्देश्य

1. प्रमुख प्रदर्शन चेतावनी संकेतों की जांच करना और भारत में आरआरबी के 2012 से 2021 तक किसी चरण में भारत में आरआरबी की प्रगति और वृद्धि पर विचार करना।
2. क्रेडिट जमा अनुपात का अध्ययन करना और भारत में आरआरबी के समुदाय को बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण सिफारिश करना।

5. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओ का विस्तार

तालिका 1 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक शाखाओं के विकास का प्रमाण प्रदान करती है। तालिका के अनुसार, वित्तीय संस्थान की शाखाओं में 27.07% या 2012-13 में 16170 से बढ़कर 2021-22 में 22172 हो गई। इसके अतिरिक्त, कवर किए गए जिलों की संख्या 2012-13 में 635 से बढ़कर 2017-18 में किसी समय 702 हो गई, जिसमें 9.4% की वृद्धि हुई। इसकी कुल वृद्धि दर 0.058 और 0.037 है, जो भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की वित्तीय संस्थान शाखाओं के नगण्य विस्तार का संकेत देती है।

तालिका 1 : क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओ का विस्तार

क्रमांक	साल	आरआरबी की संख्या	शाखाओं की संख्या	शामिल जिलों की संख्या
1.	2012-13	64	16170	635
2.	2013-14	57	16985	642
3.	2014-15	56	17901	642
4.	2015-16	56	19472	648
5.	2016-17	56	20416	648
6.	2017-18	56	21251	648
7.	2018-19	53	21805	683
8.	2019-20	45	22042	696
9.	2020-21	43	22130	699
10.	2021-22	43	22172	702

स्रोत : नाबार्ड की रिपोर्ट, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर सांख्यिकीय तालिका।

जमाराशियों का संग्रहण

जमा संग्रहण एक महत्वपूर्ण बैंकिंग कारक है जो वित्तीय संस्थान के विकास पथ को प्रभावित करता है। यह उस क्षेत्र के लोगों पर निर्भर करता है जहां बैंक उनकी बचत और निर्भरता की क्षमता के मामले में काम करता है। इसके अतिरिक्त, यह क्षेत्र की क्षमता और आरबीआई की वाणिज्यिक व्यापार रणनीति पर निर्भर करता है। ब्याज दर एक अन्य कारक है जो जमा के आकार को प्रभावित करता है। यदि ब्याज दर अधिक होती तो क्रेडिट बिलों की विविधता अधिक होती। उच्च ब्याज दर अधिक आय उत्पन्न करके बड़ी मात्रा में जमा को बढ़ावा देती है। जमाराशियों को जुटाना यह है कि बैंक अपने संसाधनों का विस्तार कैसे करते हैं। आरआरबी द्वारा जुटाई गई जमा राशियां वित्त पोषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं, लेकिन वे ग्रामीण आबादी के बीच बचत और बैंकिंग प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए एक उपकरण के रूप में भी काम करते हैं।

तालिका 2 : भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का जमा संग्रहण (करोड़)

क्रमांक	साल	जमाराशियों का संग्रहण
1.	2012-13	196422
2.	2013-14	220624
3.	2014-15	254226
4.	2015-16	293754
5.	2016-17	345573
6.	2017-18	400459
7.	2018-19	434444
8.	2019-20	478737
9.	2020-21	525226
10.	2021-22	562538

स्रोत : नाबार्ड की रिपोर्ट, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर सांख्यिकीय तालिका।

तालिका 2 में, यह दर्शाया गया है कि भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 2013 और 2022 के बीच अपनी जमाराशि कैसे बढ़ाएंगे। तालिका दर्शाती है कि बैंक जमा राशि बढ़कर रु. 2021-22 में 5,62,538 करोड़ रुपये से। 2012-13 में 196422 करोड़, 65.08% की वृद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। भारत में आरआरबी के वित्तीय संस्थान जमाओं में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जैसा कि इसके 0.192 के लिए लेखांकन के चक्रवृद्धि बूम शुल्क से संकेत मिलता है।

साख परिनियोजन

किसी भी वित्तीय संगठन के विकास का हर दूसरा महत्वपूर्ण तत्व ऋण की तैनाती है। यह उन वित्तीय संस्थानों में अधिक महत्वपूर्ण है जिन्हें देश के अप्रयुक्त क्षेत्र की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्थापित किया गया था। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से जमा परिनियोजन की वृद्धि की प्रवृत्ति को समझना महत्वपूर्ण है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक उपभोक्ता ऋण, फसल ऋण, कृषि ऋण, संबंधित व्यवसायों के लिए ऋण, ग्रामीण कारीगरों के लिए ऋण, ग्राम और कुटीर उद्योगों के लिए ऋण, और स्वरोजगार लोगों के लिए ऋण के रूप में प्रत्यक्ष अग्रिम प्रदान करते हैं। परोक्ष अग्रिम भी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा किए जाते हैं और किसानों की सेवा समितियों, किसान क्लबों, प्राथमिक कृषि समितियों, स्वयं सहायता समूहों आदि जैसे संगठनों के माध्यम से प्रसारित किए जाते हैं।

तालिका 3 : भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का जमा संग्रहण (करोड़)

क्रमांक	साल	साख परिनियोजन
1.	2012–13	129936
2.	2013–14	152051
3.	2014–15	173972
4.	2015–16	197111
5.	2016–17	213247
6.	2017–18	252919
7.	2018–19	273495
8.	2019–20	309632
9.	2020–21	338532
10.	2021–22	365012

स्रोत : नाबार्ड की रिपोर्ट, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर सांख्यिकीय तालिका।

तालिका 3 भारत में 2013 और 2021 के बीच बचत के आरआरबी के उपयोग के विकास को दर्शाती है। तालिका इंगित करती है कि बैंक क्रेडिट स्कोर में भी वृद्धि हुई है, जो रु. 2012–13 में किसी समय 129936 करोड़ रु. 2021–22 के दौरान 365012 करोड़, 34.69% की वृद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। जिलों को शामिल करने और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखा के विस्तार के साथ, इसकी चक्रवृद्धि वृद्धि दर 0.128 है, जो जमा की तुलना में वित्तीय संस्थान की बचत में व्यापक और मजबूत उछाल का संकेत देती है।

साख-जमा अनुपात

भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन का विश्लेषण करने के लिए, क्रेडिट-जमा अनुपात तालिका 4 में दिखाया गया है। तालिका से पता चलता है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का क्रेडिट-जमा अनुपात 2021–22 के दौरान 2012 के 66.15 से बढ़कर 64.88 हो गया है। 2012–13 भारत में यानी 1.01 गुना की वृद्धि।

तालिका 4 : भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का ऋण-जमा अनुपात (करोड़)

क्रमांक	साल	साख-जमा अनुपात
1.	2012–13	66.15
2.	2013–14	68.92
3.	2014–15	68.43
4.	2015–16	67.10
5.	2016–17	61.71
6.	2017–18	63.16
7.	2018–19	62.95
8.	2019–20	64.67
9.	2020–21	64.45
10.	2021–22	64.88

स्रोत : नाबार्ड की रिपोर्ट, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर सांख्यिकीय तालिका।

6. आरआरबी की सीमाएं

यद्यपि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विभाग समुदाय और व्यवसाय की मात्रा का तेजी से विस्तार हुआ, इन सुविधाओं में निम्नलिखित मुद्दों के परिणामस्वरूप एक अत्यधिक चुनौतीपूर्ण विकासवादी प्रक्रिया थी।

1. केवल लक्षित समूह में प्रचार के कारण गतिविधियाँ बहुत छोटे क्षेत्र में होती हैं और अत्यधिक खतरनाक होती हैं।
2. आम जनता द्वारा मान्यता कि आरआरबी बुरे लोगों के बैंक हैं।
3. क्षेत्रीय प्रबंधक क्षेत्रीय प्रबंधकों के निर्देशन में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के अध्यक्ष को दो दो दो दो निदेशकों के बोर्ड में नियुक्त करते हैं।
4. सरकारी सब्सिडी कार्यक्रमों का बोझ और उपभोक्ताओं के अपर्याप्त ज्ञान के कारण प्रथम श्रेणी की संपत्ति कम होती है।
5. संघीकृत कर्मचारी जो वास्तव में उत्पादकता और राजस्व पर ध्यान केंद्रित नहीं कर रहे हैं और कमाई उन्मुखीकरण के लिए अपर्याप्त ट्रेजरी प्रबंधन क्षमताओं
6. ऋण पोर्टफोलियो अपर्याप्त एक्सपोजर और सामान बनाने में असमर्थता और प्रायोजक बैंकों, भारत सरकार, नाबार्ड और आरबीआई के समक्ष कार्रवाई के दबाव के माध्यम से बोर्ड के गंभीर कमजोर होने से प्रतिबंधित हैं।

7. आरआरबी सुधार के लिए सुझाव

1. यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाना चाहिए कि छोटे देनदारों को उधार की गैर-ब्याज कीमत यथासंभव कम रखी जाए, और सरकार को ग्रामीण विकास में सुंदर कदम उठाने के लिए बैंकों को प्रोत्साहित और सहायता करनी चाहिए।
2. राज्य के कमजोर और दूर-दराज के क्षेत्रों में अधिक स्थानों के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी नीति स्थापित की जानी चाहिए। कीमतों को विनियमित करके और आय में वृद्धि करके उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।
3. सरकार को चूककर्ताओं के खिलाफ निर्णायक कार्रवाई करनी चाहिए और कर्ज माफ करने जैसे व्यापक रूप से प्रचारित बयानों को जारी करने से बचना चाहिए, और आरआरबी को निवेश निर्णय लेते समय एक महत्वपूर्ण कारक पर विचार करना चाहिए।
4. आरआरबी को माइक्रोक्रेडिट कार्यक्रम के लिए विकल्पों की पेशकश करनी चाहिए, स्वयं सहायता समूहों के विकास को बढ़ावा देना चाहिए और ग्रामीण आर्थिक एजेंसियों के लिए शौक मूल्य निर्धारण संरचना के लिए एक सामान्य पैटर्न बनाना चाहिए।
5. आरआरबी को क्रेडिट मूल्यांकन, ऋण की प्रगति की निगरानी और प्रभावी ऋण वसूली के माध्यम से उत्कृष्ट क्रेडिट प्रबंधन को मजबूत करना चाहिए, और आरआरबी की क्रेडिट नीति ग्रामीण गतिविधियों के वित्तपोषण के लिए समूह दृष्टिकोण पर आधारित होनी चाहिए।

8. निष्कर्ष

अध्ययन के निष्कर्षों के अनुसार, भारत के 43 आरआरबी में से। संसाधन जुटाने (जमा) और ऋण परिनियोजन के विपरीत, जिसमें उच्च चक्रवृद्धि विकास दर के कारण इस शोध अवधि में जबरदस्त वृद्धि देखी गई, बैंक शाखाओं का अपेक्षाकृत कम विस्तार हुआ। भारत में आरआरबी द्वारा संचालित कारोबार की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, कुल जमा और क्रेडिट

रुपये से बढ़ रहे हैं। 196422 करोड़ 2013 में रु. 2021 तक 562538 करोड़, समान समय अवधि में 11.10% से अधिक की वृद्धि दर का प्रतिनिधित्व करता है। क्रेडिट-डिपॉजिट अनुपात, जो 2013 में 66.15% से लगातार बढ़कर 2021 में 64.88% हो गया है, यह दर्शाता है कि देश के आरआरबी अपने परिचालन की शुरुआत से क्रेडिट सेवाओं को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। उसके बाद 2015 में 68.43% से 2018 में 63.16% तक की गिरावट देखी जा सकती है। शाखाओं और जमा, जमा और क्रेडिट, और शाखाओं और क्रेडिट के बीच 0.8 सहसंबंध गुणांक महत्वपूर्ण है क्योंकि गणना ''टी'' मान, जो 0.05 प्रतिशत (1.786) और 0.01 प्रतिशत (2.717) दोनों पर सारणीबद्ध ''टी'' मान से बढ़ा है।) का स्तर 7.4436 है। इसलिए, यह महत्वपूर्ण है कि संसाधन जुटाए जाएं, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, और यह कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक पूरे वर्ष 2012-2013 से 2021-2022 तक ऋण वितरित करते हैं।

संदर्भ

- खान एंड अंसारी (2015), ''स्ट्राइड्स ऑफ रीजनल रूरल बैंक्स इन इंडिया इन पोस्ट कंसोलिडेटेड पीरियडः एन एनालिटिकल स्टडी'', रिसर्च जर्नल ऑफ कॉमर्स एंड बिहेवियरल साइंस, 5 (2): पीपी. 12-16।
- खानखोजे, दिलीप और साठे, डॉ. मिलिंद (2008), ''ग्रामीण बैंकों की दक्षता: भारत का मामला'', अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अनुसंधान 1 (2): पीपी. 140-149। www-ccsenet-org/journal-html पर उपलब्ध है
- ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का विकास और प्रदर्शन'', 2010, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 2010।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर आंतरिक कार्यदल की रिपोर्ट (2005), www-rbi-org-in।
- कनिका एंड नैन्सी (2013), ''भारत में आरआरबी का वित्तीय प्रदर्शन मूल्यांकन'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट एंड इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी, 4 (2): पीपी. 237-247।
- मुदासिर अहमद (2014), ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रदर्शनः जम्मू और कश्मीर में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की एक तुलनात्मक स्थिति'', खंड संख्या 4, अंक संख्या 7।
- मिश्रा, बिस्वा स्वरूप, 2006, ''भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रदर्शन : क्या भविष्य के लिए सुझाव देने के लिए कुछ भी अतीत है?'' भारतीय रिजर्व बैंक समसामयिक पत्र, खंड 1 और 2, ग्रीष्म और मानसून, 2006।
- होसामनी, एस.बी., 2002, ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रदर्शन'', अनमोल प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 2002।
- पति, ए.पी., 2005, ''लिबरलाइज्ड एनवायरनमेंट में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक'', मित्तल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
- रेड्डी, ए अमरेंदर, 2006, ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में उत्पादकता वृद्धि'', आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, पीपी. 1079-1086।
- रेवणकर डॉ. अशोक डी., 2020, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक साढ़े चार दशक की यात्रा, अंतर अनुशासन में अंतर ए ग्लोबल जर्नल ऑफ इंटरडिसिप्लिनरी स्टडीज, (आईएसएसएन - 2581-5628), इम्पैक्ट फैक्टरः एसजेआईएफ - 5.047, आईआईएफएस - 4.875।
- सोनी, अनिल कुमार और कापरे, अभय (2012), ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भारत का प्रदर्शन मूल्यांकन'', अभिनव, 1 (11): पीपी. 132-144।
- सुदर्शन रेड्डी, 2013, ''भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का विकास और प्रदर्शन'', खंड संख्या 2 अंक संख्या। 11 नवंबर 2013।
- सैयद इब्राहिम (2010), ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भारत का प्रदर्शन मूल्यांकन'', अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अनुसंधान जर्नल 3(4): पीपी. 203-211। www-ccsenet-org/ibr पर उपलब्ध है

- सैयद महमद घोष नारायण रेड्डी (2017), ''भारतीय क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक विकास और प्रदर्शन'', विपणन और सतत विकास पर राष्ट्रीय सम्मेलन।
- सेल्वाकुमार, एम. (2010), क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक : प्रदर्शन विश्लेषण, इंडियन जर्नल ऑफ फाइनेंस। 4 (8)।
- डॉ. बालमुनिस्वामी, जी. एरैया (2014), ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका भारत में ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गों को वित्त प्रदान करती है'', भारतीय शोध पत्रिका, 3(1)
- नीतीश खुराना (2015), ''क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक : एक सिंहावलोकन'', इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 5(1)
- अनिल कुमार सोनी और अभय कापरे, भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रदर्शन मूल्यांकन, खंड संख्या 1, अंक संख्या 11।
- आर के अग्रवाल,1991 ''क्षेत्रीय ग्रामीण् नवकिरणजीत कौर धालीवाल, 2010, बैंकों के कामकाज का मूल्यांकन'', मित्तल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991।
- ग्रामीण बैंकों पर कार्यकारी समूह की रिपोर्ट (1975), वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

❑❑

डॉ. एकता दाधीच
अतिथि प्रवक्ता
ललित कला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

मुगल शैली में मानवाकृतियों का रूपांकन

सारांश

भारतीय लघु-चित्रकला में रूप को जानने का अच्छा उदाहरण है मुगल कला। मुगल कला में मानवाकृतियों की भीड़-भाड़ वाले दृश्यों में भी प्रत्येक रूप को उनकी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा पहचानना आसान है। मुगल साम्राज्य की स्थापना पश्चात् मुगल कला का प्रारम्भ सम्राट अकबर के शासन काल में माना जाता है। मुगल कला में राजदरबार, अन्त:पुर, शिकार एवं युद्ध के दृश्यों से संबन्धित विषयों का अंकन आरम्भ हुआ। साथ ही नए रंगों एवं आकारों की शुरुआत हुई। सम्राट की आकृति को केन्द्र में स्थान दे, दरबारियों से घिरे हुए एवं कहीं अन्त:पुर में स्त्रियों से घिरे अंकित किया है। राजदरबार संबन्धित दृश्यों में पदाधिकारी एवं सरदार उचित स्थान पर बेहद अदब खड़े है। निम्न श्रेणी के मानवों को सदैव कार्यों में व्यस्त दर्शाया है जो कि फारसी कला के प्रभाव स्वरूप है। प्रारम्भिक मुगल शैली में अंकित स्त्री आकृति का अनुकूलन प्रारम्भिक राजस्थानी शैली से किया गया है, जिसमें नारी का एक आदर्श रूप प्रस्तुत होता है। अकबर कालीन चित्रों में एक चश्म चेहरा बनाने की परम्परा रही। वहीं जहाँगीर कालीन चित्रों में आकृति का आकर्षक व सुकोमल अंकन हुआ है। नारी आकृतियों का भावपूर्ण चित्रण जहाँगीर के काल से प्रारम्भ हुआ। साथ ही चित्रकला में रूपवादी चित्रण की प्रधानता रही। शाहजहाँ कालीन अंकित मानवाकृतियों के चेहरे पर भाव का पूर्णत: अभाव पाया जाता है। शारीरिक अंगों का अनुपातहीनता एवं आकृतियों में कहीं-कहीं बौनापन आ गया है। मुगल चित्रकला में विलासमय जीवन की प्रवृतियों के चित्रण स्वरूप दास-दासियों एवं बेगमों को भड़कीली पोषाक एवं झीने वस्त्रों के भीतर उभरे हुए अंग प्रत्यंगों का चित्रण किया गया है। औरंगजेब के शासनारूढ़ होने के पश्चात् मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही मुगल कला का भी अन्त हो गया।

शब्द कुंजी : रूप, मुगल, मानवाकृतियां, चित्रकला, राजदरबार, अन्त:पुर, शैली, रेखांकन, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, नारी, अंकन, सम्राट, रूपांकन, साम्राज्य, चेहरा, आकृति, केन्द्र।

रूप कलाकृति में प्रवेश करने का द्वार माना जाता है। रूप का कार्य विषयवस्तु के अर्थ को समक्ष प्रस्तुत करना है। प्रत्येक रूप का निश्चित आकार एवं वर्ण है। भारतीय चित्रकला में मानवाकृतियों का रूपांकन सरल एवं सौम्यता लिए हुए है। आकृतियों द्वारा दृश्य में दर्शाये जा रहे विषय का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। मुगल शैली में अंकित मानवाकृतियों का अंकन रूप तत्व को जानने का सर्वोत्तम जरिया है। मुगल शैली में मानवाकृतियों की भीड़-भाड़ वाले दृश्यों में भी प्रत्येक मानव की उनकी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा पहचान करना आसान है।

मुगल सल्तनत के उत्थान एवं पतन के साथ-साथ मुगल चित्रकला का विकास एवं क्षीणता का संबन्ध है। समरकन्द में तुर्की राजदरबार पश्चिम एवं मध्य एशिया का सबसे समृद्ध सांस्कृतिक केंद्र था एवं भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर इस सांस्कृतिक विरासत का संवाहक था। बाबर को भारत में सन 1526 ई. में मुगल साम्राज्य की नींव रखने का श्रेय दिया जाता है।[1] इस्लाम धर्म में चित्रकला के प्रति परम्परागत कुण्ठाओं के रहते हुए भी मुगल शासकों ने चित्रकला के प्रति अपना असीम प्रेम दर्शाया। मुगल कला का विकास चित्रकला की स्वदेशी भारतीय एवं फारसी चित्रकला की सफाविद शैली

के उचित मिश्रण के परिणामस्वरूप हुआ। हालांकि हुमायूँ के शासन काल में मुगल शैली पर ईरानी प्रभाव पूर्णरूप से विद्यमान रहा। मुगलकालीन चित्रों द्वारा मध्यकालीन भारत के भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की स्पष्ट झलक प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सम्राटों एवं राजकुमारों द्वारा लिखित आत्मकथाओं से एवं मुगलकालीन चित्रों से उच्च वर्गीय, मध्यम वर्गीय एवं साधारण व्यक्तियों के रहन-सहन की जानकारी भी प्राप्त होती है। साथ ही अंकित मानवाकृतियों का रूपांकन दृष्टिगोचर होता है।

मुगल शैली में यथावत एवं यथार्थवादी चित्रण पर विशेष बल दिया गया। मुगल चित्रकार आकृति में चेहरे को भिन्न-भिन्न प्रकार से रूपायित करते थे। जिनमे एक चश्म, सवा चश्म, डेढ़ चश्म एवं उल्टा चेहरा आदि प्रमुख है। एक चश्म चेहरे के अन्तर्गत चेहरे का आधा भाग दिखाया जाता था अथवा कभी आकृति की स्थिति के अनुसार हल्की सी बायीं आँख भी दिखाई जाती थी। सवा चश्म चेहरे में एक ओर से पूर्व चेहरा एवं हल्की सी कनपटी व ठोडी अंकित की जाती थी। डेढ़ चश्म मुखाकृति एक ओर से अंकित की जाती एवं दूसरी ओर से थोड़ी सी ठोडी दर्शायी जाती थी। उल्टा चेहरा के अंतर्गत आकृति का पार्श्व भाग, जिसमे सिर अंकित किया गया है। मानवाकृतियों के विभिन्न अंगों में विध्यमान आनुपातिक तथ्यों के विश्लेषण करने का प्रयास मुगल शैली में किया गया यधपि मुगल चित्रकला में किसी प्रकार के मापदण्ड की जानकारी प्राप्त नहीं होती। राय कृष्ण दास के मतानुसार ''प्रमाण को मुगल शैली के भारतीय चित्रकार अंग-कद या कद-कैंड़ा कहते है। कद का तात्पर्य है कि अंकन में स्त्री का सारा शरीर उसके चेहरे की नाप से सतगुने से अधिक नहीं होना चाहिए, इसी प्रकार पुरुष का अठगुने से अधिक नहीं। कैंड़े का तात्पर्य यह है कि अंगों में समविभक्तता एवं अनुपात हो, यह नहीं कि आँख बहुत बड़ी या छोटी, नाक बहुत लम्बी अथवा चपटी इत्यादि। कद कैंड़ा में- कद का अर्थ परिमाण एवं कैंड़ा का अर्थ प्रमाण या तदवत रूप माना जायेगा।''[2] मुगल कलाकारों ने मानव शरीर को अपनी सुविधानुसार आठ भागों में विभक्त किया यथा चेहरा, सिर, नाक व ठोडी, गर्दन, वक्ष, नाभि एवं घुटने, पिंडली व पैर। इस प्रकार शरीर को विभिन्न भागों में नाप कर विभक्त कर दिया जाता, जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म आकृति को भी सही बनाया जा सके।[3]

अब्दुर्रहीम का स्वागत करते अकबर, अकबरनामा, अकबर काल, मुगल चित्रकला, 17वीं शताब्दी

मुगल चित्रकला के अधिकांश चित्रकारों ने इस नियम का पालन कर मानवाकृतियों का अंकन किया। चित्रों में मानवाकृतियों के चरित्र की अपेक्षा प्रभाव को अधिक महत्व दिया गया। यह तकनीक रेखांकन के दौरान ही अपनाई जाती थी। रेखांकन करते समय मांसपेशियों को गतिशील अंकित करने का कार्य कलाकार अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर ही करते थे। अकबर कालीन चित्रों में इस पद्धति को अधिक उपयोग में लिया गया। कलाकार उन भागों पर अत्यधिक रूप से ध्यान देते, जिसमें गति दर्शनी होती, शेष भाग को शरीर के अनुसार वास्तविक बनाने थे। अत: कहीं सिर की दिशा एवं हाथों की भाव भंगिमाओं को दर्शाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था। कहीं पर आकृति की दिशा किसी ओर एवं उसका रुख कहीं ओर अंकित है। कलाकार शरीर के प्रत्येक भाग दिशा व भावों को रेखाओं के द्वारा दर्शाते यधपि शरीर का प्रत्येक अंग सही आकार में अंकित करने में वे दक्ष नहीं थे। बिना किसी बदलाव के उनकी दिशा को मोड़ दिया जाता। पैरों को साधारण जूतों से ढका हुआ तो कहीं नंगे पैर ही अंकित किया है। यह पूर्णत: फारसी प्रभाव के फलस्वरूप है। उदाहरणार्थ अकबरनामा के एक चित्र में अकबर को सिंहासन पर पैर मोड़े हुए अंकित किया है। लेकिन उनके पैर का तलवा व छोटी अंगुली को दर्शाने में चित्रकार सफल रहा। इस प्रकार के दुर्लभ उदाहरण अजन्ता की मानवाकृतियों में दृष्टिगोचर होते है।[4] (चित्र संख्या-1)

दर्शन, शाहजहाँ काल, मुगल चित्रकला, सन् 1645 ई.

मुगल चित्रकला पुरुष प्रधान कला रही। साथ ही दरबारी चित्रकला होने के कारण सम्राटों, राजकुमारों एवं अन्य उच्च पदाधिकारियों का चित्रण इस शैली में प्रचुरता में किया गया। राजदरबार संबन्धित चित्रों में सामन्तवाद को प्रमुखता प्रदान करने के लिए सम्राट की आकृति को सदैव दृश्य के मध्य में सिंहासन पर विराजमान अंकित किया गया। अन्य मानवाकृतियों को आड़ी-तिरछी रेखाओं में नियमबद्ध रहते हुए महत्वपूर्ण व्यक्तियों की उपस्थिति दर्शायी गई। समस्त मानवाकृतियों का ध्यान सम्राट की ओर ही केन्द्रित किया हुआ है। अकबर कालीन दरबारी चित्रों में मानवाकृतियों की भीड़-भाड़ अधिक है। जहांगीर कालीन चित्रों में यह भीड़-भाड़ कम है। वही शाहजहाँ के काल में चित्रों में प्रमुख व्यक्तियों को ही स्थान प्राप्त हुआ। प्रमुख पदाधिकारियों को इतने सुरुचिपूर्ण ढंग से खड़ा किया गया है कि उनके स्थान को देखकर स्वयं उनके पदों का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ सन 1645 ई. में निर्मित एवं भारत कला भवन बनारस में संग्रहित एक चित्र में शाहजहाँ दायीं ओर बने झरोखे में बैठा है।

दरबारियों को उनके सामने से प्रारम्भ करते हुए अन्त तक बुद्धिमता के साथ संयोजित किया गया है। मानवाकृतियों की प्रथम कतार में खड़े जयपुर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह सफलतापूर्वक पहचाने जा सकते हैं।[5] (चित्र संख्या-2) राजदरबार के दृश्यों में सम्राट की आकृति को आयु के अनुसार ही अंकित किया गया है। सन् 1707-1717 ई. के मध्य चित्रकार भगवानदास द्वारा रूपायित एक चित्र से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। दृश्य में औरंगजेब के चेहरे पर अंकित सफेद दाढ़ी से उसकी वृद्धावस्था का अनुमान लगाया जा सकता है।[6] (चित्र संख्या-3)

मुगल शैली में जहाँ पुरुषाकृतियों को चित्रों में प्रमुख स्थान दिया गया, वहीं नारी चित्रण सीमित है। जिसका कारण उस युग की सामाजिक प्रथा थी कि नारी जीवन घर-आँगन तक सीमित था। राज दरबार के दृश्यों में नारी आकृति का चित्रण कम मात्रा में किया गया है। जहाँगीर कालीन चित्रों में शाही परिवार की

महिलाओं को स्थान प्राप्त होता है, वह भी अधिकांशत: अन्त:पुर के दृश्यों में ही।[7] पर्सी ब्राउन का मत है कि ये चित्र कलाकार की कल्पना शक्ति के आधार पर बनाए गए हैं।[8] नारी चित्रण में कमर के नीचे का भाग शरीर के ऊपरी भाग की अपेक्षा लंबा अंकित है। अकबर काल में निर्मित हम्जानामा में अंकित नारी आ कृतियों का अनुकूलन राजस्थान की प्राचीन चित्रकला से लिया एवं आदर्श रूप में किया गया है। अशोक कुमार दास के अनुसार ''जहाँगीर काल में चित्रकारों को स्त्रियों के व्यक्ति चित्र बनाने के लिए जनानाखाने में प्रवेश की अनुमति थी।''[9] मोती चंद्र ने मुगल शैली में प्रदर्शित मानवाकृतियों के विभिन्न अंगों में अनुपातिक तथ्यों का विश्लेषण करने का प्रयास किया है जिसके अनुसार मुगल शैली में स्त्री चित्रण सौंदर्य के अनुसार आदर्श रूप में किया गया है।

स्वागत करते हुए, औरंगजेब काल, मुगल चित्रकला, सन् 1707-1712 ई.

मुगल शैली के अंतिम चरण में मुगल सम्राट मोहम्मद शाह कालीन चित्रों में नारी आकृति बेहद ही सुडौल रूपायित की है। आकृति को प्राय: खड़े, बैठे, झुके अथवा नृत्य करते हुए अंकित किया है। इनके हाथों एवं पैरों की बनावट स्वाभाविक व यथार्थता लिए हुए है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मानवाकृति के रूपांकन में अकबर कालीन चित्रों में मुखाकृति को गोल एवं अंडाकार आकृति में जाता था। कहीं-कहीं तो ठोढ़ी के साथ गालों को भी गोल चित्रित किया गया है। आँख, कान, नाक, होंठ एवं पैरों पर गहरे रंग के तुलिकाघात लगाते थे एवं शरीर के अन्य भाग को सपाट रंग लगाया जाता था। भवों को तीर कमान के समान ऊपर उठा हुआ व आँखों को बड़ा तथा आधा खुला हुआ बनाया जाता। विशेषत: बाबरनामा एवं अकबरनामा के चित्रों में इसी प्रकार का अंकन किया गया है। जहाँगीर कालीन चित्रों में एक चश्म चेहरों का बाहुल्य है। एक चश्म चेहरे में उसके प्रत्यंगों जैसे नाक, होंठ, ललाट एवं ठुड्डी की सीमान्त रेखा बना दी जाती।[10] शाहजहाँ कालीन बादशाही अनुशासन के कारण चित्रों में भावना का पूर्णत: अभाव पाया जाता है। बादशाहनामा का सन 1645 ई. के पश्चात् के एक चित्र में शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र मुराद व बलख के बादशाह का मिलन दिखाया गया है। दोनों एक-दूसरे से मिल रहे हैं। इधर-उधर पदाधिकारी एवं सरदार अपने स्थान पर अदब से खड़े हैं। चित्र में भावना का पूर्णत: अभाव दृष्टव्य हो रहा है। यधपि पृष्ठभूमि में प्रकृति का अच्छा चित्रण किया गया है।11 मानवाकृतियों के शारीरिक गढ़न में रेखांकन बेजान, शिथिल, अंगों में अनुपातहीनता व कहीं बौनापन आ गया है। औरंगजेब कालीन चित्रों में सजीवता के स्थान पर स्तब्धता अधिक है।

सन्दर्भ

1. Maurice Diamond : Indian Miniature Painting, Bombay. Page No. 5
2. भानु अग्रवाल : भारतीय चित्रकला के मूल स्रोत, वाराणसी, पृ.स. 126
3. Moti Chandra : The Technique of Mughal Painting, Lucknow, 1949
4. Som Prakash Verma : Art and Material culture in the Painting of Akabar's Court, New Delhi, 1978, Page No. 26
5. Rai Krishan Das : Mughal Miniature, New Delhi, 1995, Page No. 8
6. Linda York Leach : Mughal and other Indian Painting, London, Vol. I, 1995, Page No. 500, Plate No. 4-18
7. Percy Brown : Indian Painting under the Mughal, Oxford, 1924, Page No. 78
8. www.indiaolddays.com
9. Ashok Kumar Das : Mughal Painting during Jahangir Time, Bombay, 1985, Page No. 185
10. रीटा प्रताप : भारतीय चित्रकला का इतिहास, जयपुर, 2015, पृ.स. 151
11. आशा आनन्द, सीमा सचदेव : भारतीय चित्रकला, मुजफ्फरनगर, 2004, पृ.सं. 54

❑❑

डॉ. काना राम रैगर
वरिष्ठ अध्यापक (संस्कृत)
महात्मा गांधी राजकीय विद्यालय
आंधी, जयपुर (राज.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

आयुर्वेद संहिता (चरक संहिता) में वर्णित रोगों में मंत्र चिकित्सा की उपयोगिता

शोध सारांश

आयुर्वेद के दो प्रयोजन स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा एवं रोगी के रोग का प्रशमन है।

''स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च''[1]

आचार्य चरक ने स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा को प्रथम कहकर प्रमुखता दी है। स्वस्थ की परिभाषा के अन्तर्गत कहा गया है।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

जिन मनुष्यों के दोष, अग्नियाँ, धातुएँ सम हो तथा मलों की क्रियायें समान हों साथ ही आत्मा, इन्द्रियाँ, मन भी प्रसन्न हो वह मनुष्य स्वस्थ है।

जैसा अन्यत्र कहा गया है—

स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा में स्वस्थवृत्त की दिनचर्या, ऋतुचर्या सद्वृत्त का पालन आवश्यक है। स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा एवं रोगी के रोग के प्रशमन में मन्त्रों की महत्ती भूमिका है। आचार्य चरक एवं वाग्भट्ट के अनुसार तीन प्रकार की चिकित्सा दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय, सत्वावजय का वर्णन मिलता है।

दैवव्यापाश्रय चिकित्सा में मन्त्रौषधमणिमंगलबल्युपहार आदि (मन्त्र, औषध, मणि, मंगल, बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्त्ययन प्रणिपात आदि) द्वारा चिकित्सा का विधान है। ज्वर रोग, राजयक्षमा रोग, उन्माद, अपस्मार रोगों में मन्त्र चिकित्सा का वर्णन आयुर्वेद संहिताओं में उपलब्ध है। दैव्यपाश्रय चिकित्सा से आत्मविश्वास बढ़ता है, साथ ही निराशा एवं भय से मुक्ति मिलती है। इस प्रकार रोगों की चिकित्सा में मन्त्र चिकित्सा उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

प्रस्तावना

आयुर्वेद शास्त्र के प्रयोजन स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा एवं रोगी के रोग के प्रशमन है। स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा में दिनचर्या, ऋतुचर्या, सद्वृत्त का पालन आवश्यक है। रोगी के रोग के प्रशमन के अन्तर्गत शोधन एवं शमन चिकित्सा का वर्णन किया गया हैं शोधन चिकित्सा के अन्तर्गत शमन चिकित्सा के अन्तर्गत आचार्य चरक ने औषध एवं मन्त्र चिकित्सा का वर्णन विविध रोगों में किया है। मानस रोगों में नौ मन्त्र चिकित्सा का विधान है। मानस रोगों की उत्पत्ति मानसिक एवं शारीरिक दोनों विकृति से होती है। मानस एवं अन्य रोगों में तीन प्रकार की चिकित्सा का विधान है—1. दैवरूपाश्रय चिकित्सा, 2. सत्वावजय चिकित्सा एवं 3. युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा। दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के अन्तर्गत मन्त्र चिकित्सा का विधान है, जिसमें आचार्य चरक ने ज्वर रोग, राज्यक्ष्मा रोग, उन्माद रोग, अतत्वाभिनेवश आदि रोगों में वर्णन किया है।

विभिन्न रोगों में दैवव्यपाश्रय (मन्त्र) चिकित्सा

''शापाभिचाराद्भूतानामभिषंगाच्च यो ज्वरः।
दैवव्यपाश्रयं तत्र सर्वमौषधमिष्यते॥''[2]

आगन्तुज ज्वर शाप, अभिचार (कृत्याकृत्य मारण मोहन आदि) से भूतप्रेत आदि के प्रकोप या लग जाने से जो ज्वर उत्पन्न होता है उसमें सभी प्रकार की दैवव्यपाश्रय चिकित्सा हितकर होती है। अभिघातज ज्वर में औषध द्रव्यों द्वारा सिद्ध घी पिलाने तथा उसी का अभ्यंग करने से लाभ होता है।

1. ज्वर में : दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

ये धूमा.....विषमज्वरे॥
मणीनामौषधीनां च मंगल्यानां विषस्य च।
धारणादगदानां च सेवानान्न भवेज्ज्वरः॥[3]

मानसिक रोगों में जो धूप, धूपन, नस्य और अंजन कहे गये है, उनका प्रयोग विषमज्वर में करना चाहिये। धारणीय मणियों, औषधियों, मांगलिक द्रव्यों, विष तथा अगदों का सेवन (धारण) करने से विषम ज्वर का आक्रमण नहीं होता।

हीरा, नीलम, पुखराज आदि के अतिरिक्त जिन मणियों का उल्लेख वैदिक काल में आया है वे काष्ठाषधि है, प्रभाव विशेष के कारण उनको मणि कहा गया है।

मांगलिक द्रव्य—नारियल, सुपारी, दूर्वा, दही आदि।

विष के प्रभाव से उत्पन्न रोगों में विषनाशक औषधों का प्रयोग होता है उन्हें अगद कहा जाता है।

''सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम्
पूजयन् प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात्''[4]

पार्वती (पार्वती सहित शिव), नंदी आदि अनुचरों, ब्राह्मी आदि आठ मातृका समूह के साथ महादेव भगवान शंकर की नियमपूर्वक पूजा करता हुआ विषम ज्वर का रोगी शीघ्र ही रोगमुक्त हो जाता है।

विष्णुं सहस्त्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम्।
स्तुवन्नामसहस्त्रेण ज्वारान् सर्वानपोहति॥[5]

सहस्त्र (हजार) शिर वाले, चर अचर के स्वामी, सर्वत्र व्यापक भगवान विष्णु के सहस्त्र नाम पाठ करने से सब प्रकार के ज्वरों से रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रं हुतमक्षं हिमाचलम्।
गंगा मरुद्गणांश्चेष्टया पूजयंजयति ज्वरान्॥

ब्रह्मा, अश्विनी कुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमालय पर्वत, गंगा, अन्य देवता समूह आदि की यज्ञ द्वारा इनकी पूजन करने से रोगी ज्वरों को जीत लेता है अर्थात् अपने-अपने इष्टदेव की पूजा करने से रोगी ज्वरमुक्त हो जाता है।

भवत्या ..... दर्शनेन च॥[6]

माता-पिता, गुरुजनों की भक्तिपूर्वक पूजा करने से ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने से, तपस्या करने से, सत्यभाषण से शौच सन्तोष, तप आदि नियम से, जय होम, दान, वेदों का श्रवण करने से तथा साधुओं के दर्शनों से रोगी शीघ्र ज्वरमुक्त हो जाता है।

इन दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का मानसिक रोगों में भी प्रभाव देखा गया है।

2. राजयक्ष्मा रोग में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

यथा प्रयुक्तया चेष्ट्या राज्यक्ष्मा पुरा जितः।
तां वेदविहितामिष्टमारोग्यार्थी प्रयोजयेत्॥[7]

प्राचीनकाल में जिन या आदि करने से राज्यक्ष्मा रोग को जीत लिया गया था अर्थात् यह राज्यक्ष्मा रोग रोगी को छोड़कर चला गया अतः वेदों में बतलायी गयी उस दृष्टि (यज्ञ) का आरोग्य प्राप्ति हेतु प्रयोग करें।

वेदों में रोगनाशक अनेक प्रकार के मन्त्रों का वर्णन मिलता है।

3. उन्माद में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

भूतानामधिपं देवमीश्वरं जगतः प्रभुम्।
पूजयन् प्रयतो नित्यं जयत्युन्मादजं भयम्॥[8]

भूतोन्माद की दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

उन्माद रोग में रोगी पवित्रापूर्वक भूतों के अधिपति तथा संसार के स्वामी दिव्यगुणों से सम्पन्न शिव जी की प्रतिदिन पूजा करता हुआ उन्मादरोगजनित भय से मुक्त हो जाता है।

उन्माद रुद्रगणों की पूजा विधान

रुद्रस्य प्रथमा नाम गणा लोके चरन्ति ये।
तेषां पूजां च कुर्वाण उन्मादेभ्यः प्रमुच्यते॥[9]

शिवजी के प्रभय नामक गण जो सभी लोकों में विचरण करते रहते हैं, उनकी पूजा करने वाला व्यक्ति सभी उन्माद रोगों से मुक्त हो जाता है।

बलिभिर्मंगलैहोर्मैरोषध्यगदधारणै।
सत्याचारतपोग्यानप्रदाननियमव्रतैः॥

देव गो ब्राह्मणानां च गुरुणां पूजनेन च।
आगन्तुः प्रशमं याति सिद्धैमन्त्रौषधैरतथा॥[10]

विविध प्रकार के बलिकर्म, मंगलाचार होम, सत्यभाषण, सदाचार पालन, तपस्या आध्यात्मिक ज्ञानप्रद विषयों का उपदेश, दान, नियम तथा व्रतों का आचरण, देवता, गाय, ब्राह्मण तथा गुरुजनों का पूजन से आगन्तुज उन्माद शान्त हो जाता है।

आगन्तुज अपसमार में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

यस्यानुबन्धस्त्वागन्तुर्दोष लिंगाधिकारकृतिः।
दृश्येत तस्य कार्यं स्यादागन्तून्मादभेषजम्॥[11]

4. आगन्तुज अपस्मार में भी आगन्तुज उन्माद के समान चिकित्सा का विधान है।

5. अतत्वाभिनिवेश में आश्वासन

सुहृदश्चानुकूलाश्च .....समाधिभिः॥[12]

रोगी को धर्मोपदेशक तथा रोगी के हित की बात करने वाले हो, ऐसे मित्रजन रोगी को विज्ञान, धैर्य, स्मरणशक्ति तथा समाधि से युक्त करें।

6. विषय चिकित्सा में मन्त्र प्रयोग

मन्त्रारिष्टोत्कर्षण निष्पीडनचूषणाग्नि परिषेकाः।[13]

24 प्रकार की विष चिकित्सा में विष वैध या सपेरों द्वारा सांप बिच्छु आदि से डसे हुये रोगी की मन्त्रों द्वारा चिकित्सा की जाती है।

निष्कर्ष

आयुर्वेद संहिताओं चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, वाग्भट्टसहिता में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का उल्लेख मिलता है जिनमें चरकसंहिता में ज्वर रोग, राज्यक्ष्मा रोग, उन्माद आदि रोगों में देवपूजन, मन्त्रादि का विधान किया गया है जिससे रोगी के रोग के शमन का विधान है।

स्वस्थ की परिभज्ञशा में आत्मा, इन्द्रिय, मन की प्रसन्नता का वर्णन किया गया है। रोगी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के लिये दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का प्रयोग निरन्तर किया जावे तो रोगों की चिकित्सा में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

संदर्भ

1. चरक सूत्र, 1/24.
2. चरक चिकित्सा, 3.
3. चरक चिकित्सा, 3/308.
4. चरक चिकित्सा, 3/310.
5. चरक चिकित्सा, 3/311.
6. चरक चिकित्सा, 3/313.
7. चरक चिकित्सा, 8/189.
8. चरक चिकित्सा, 9/403.
9. चरक चिकित्सा, 9/92.
10. चरक चिकित्सा, 9/93.
11. चरक चिकित्सा, 10/53.
12. चरक चिकित्सा, 10/63.
13. चरक चिकित्सा, 23/35.

❑❑

गुंजेश गौतम
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी (उ.प्र.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

भारतीय राष्ट्र दर्शन एवं डॉ. भीमराव अम्बेडकर

सारांश

डॉ. भीमराव अम्बेडकर राष्ट्र को राजनीतिक नहीं वरन् सांस्कृतिक इकाई मानते थे, लेकिन राजनीतिक रूप से राष्ट्रीय अखंडता के वे समर्थक थे। उनके कार्यों की मूल प्रेरणा जातिहित नहीं वरन् राष्ट्रहित थी। राष्ट्र कैसे सबल बनेगा, राष्ट्र की एकता तथा अखंडता को कहाँ से, किससे खतरा हो सकता है, इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार पूरी निर्भीकता के साथ रखे। ध्यान रखने वाली बात है कि डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय राष्ट्रवाद का कोई नया सिद्धांत नहीं दिया था, अपितु उन्होंने इस देश के एक सनातन सत्य को नये युग में, नयी शैली में व्यक्त भर किया था। अपनी पुस्तक 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' में उन्होंने बहुत ही स्पष्टता के साथ पाकिस्तान के पीछे छिपे जहरीले सांप्रदायिक, इस्लामी हिंसावादी और अतिवादियों के अभियान तथा राष्ट्रीयता की जमीन से जुड़ी मीमांसा की है। प्रस्तुत शोध-पत्र विवरणात्मक व विश्लेषणात्मक पद्धतियों पर आधारित है। शोध-पत्र में मूलत: द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है।

महत्वपूर्ण शब्द : राष्ट्र, राज्य, नेशन, भूमि, जन, संस्कृति, समाज, भौगोलिक एकता।

प्रस्तावना

भारतीय चिंतन में राष्ट्र की संकल्पना अति प्राचीन है। वैदिक साहित्य में राष्ट्र शब्द अपने पूर्ण विकसित अर्थ में उपलब्ध होता है। सभ्यताओं के उषा काल में, जब आज के तथाकथित विकसित राष्ट्रों में सभ्यता की किरणें भी प्रस्फुटित नहीं हुई थी, तब भारत में वैदिक ऋषियों ने राष्ट्रभाव का दर्शन किया था। यजुर्वेद कहता है—'**वयं राष्ट्रे जागृयाम।**'—(यजुर्वेद - 9/23), हमें राष्ट्र के प्रति जागरूक होना चाहिए। पुरुषसुक्त के स्वस्ति वचन में कहा गया है—'**पृथिव्यै समुद्रपर्यंताया एक राट्।**' अर्थात पृथ्वी से समुद्र तक एक ही राष्ट्र है। '**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।**' -(अथर्ववेद- 12/1/12), यह भूमि मेरी माता है और हम इस धरा के पुत्र हैं।

अथर्ववेद के 'पृथ्वी सूक्त' जिसमें पृथ्वी को माता कहा गया है और इस प्रकार राष्ट्र को मां की तरह पूजनीया मानते हुए उनके साथ अपना नाता पुत्र का रखा गया। ऋषियों द्वारा इन वेद मंत्रों में धरती के एक विशेष भूखंड को, जिसे हम राष्ट्र नाम से पुकारते हैं, उस राष्ट्र के साथ नागरिकों का पुत्रवत् संबंध बताकर यह संपुष्ट किया गया है कि संसार में इससे महत्वपूर्ण और पवित्र कोई दूसरा संबंध नहीं हो सकता। भारत के लिए राष्ट्र मानव निर्मित नहीं, अपितु सहज रूप से विकसित एक शाश्वत भाव है। भारत की पराधीनता के कालखंड में अंग्रेजों द्वारा राष्ट्र के वास्तविक भाव को न समझने की क्षमता या राजनीतिक चालाकियों के कारण 'राष्ट्र' के समानार्थी अंग्रेजी शब्द 'नेशन' का प्रयोग किया जाने लगा तथा यह कहा जाने लगा कि भारत में पहले से कोई राष्ट्र का स्वरूप नहीं है, भारत राष्ट्र बनने की ओर बढ़ रहा है। यहीं से भारतीय बौद्धिक वर्ग में राष्ट्र और नेशन को लेकर एक भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई।

उन्नसवीं शताब्दी का यूरोपीय चिंतन

एक दृष्टि है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय चिंतन का अनुसरण कर मानती है कि 'राष्ट्र', 'राष्ट्रीयता', 'राष्ट्रवाद'

आदि अवधारणाओं का जन्म ही कुछ शताब्दियों पूर्व विशेषकर फ्रेंच क्रांति के पश्चात् पश्चिम में हुआ है। 'राष्ट्र' एक राजनीतिक संकल्पना है। 'राज्य' ही राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का मुख्य वाहक होता है, राजनीतिक एकता उसके अस्तित्त्व की पहली आवश्यकता है। इसके साथ ही भूमि, भाषा, मजहब एवं नस्ल की एकता का होना भी 'राष्ट्र' कहलाने के लिए आवश्यक है। भारत के पास सुव्याख्यायित भूमि के अतिरिक्त इनमें से किसी भी तत्त्व की एकता नहीं रही है। भारत अलग-अलग भाषाओं, उपासना-पंथों एवं नस्लों के असंबद्ध जनसमूहों का जमावड़ा मात्र रहा है। अंग्रेजी शासन ने पहली बार उसे राजनीतिक एकता प्रदान की और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में से ही भारत के राष्ट्र बनने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई है। भारत पहले से बना-बनाया राष्ट्र नहीं है, वह 'राष्ट्र' बनने की ओर बढ़ रहा है।

राष्ट्र के संदर्भ में भारत में कहीं कोई भ्रम हमारे पूर्वजों के सम्मुख नहीं था। भारत एक 'राष्ट्र' की हमारी सनातन अवधारणा पक्की थी। 'राष्ट्र' के संदर्भ में सारा का सारा भ्रम यहाँ ब्रिटिश शासकों ने तथा स्वतंत्रता के बाद मार्क्सवादी इतिहासकारों ने पैदा किया। मैक्समूलर नामक विद्वान लिखता है कि—''India is a nation of philosphers and Indian intellect is lacking in political and material speculation and that the Indians never knew the feeling of nationality.''[1] अर्थात् भारत एक दार्शनिकों का देश है और भारतीय मनीषियों में राजनीतिक एवं भौतिक चिन्तन का अभाव है तथा भारतीयों में कभी भी 'नेशनैलिटी' की भावना नहीं रही।

सुप्रसिद्ध आंग्ल भारतीय लेखक **जॉन स्ट्रैशी** के अनुसार—''भारत के बारे में सर्वप्रथम और सबसे पहले यह समझना है कि भारत न तो एक है, और न ही कभी एक था। भारत नामक कोई देश भी नहीं था, जिसके पास, यूरोपीय दृष्टिकोण से, किसी प्रकार की भौगोलिक, राजनीतिक एकता थी।''[2]

हालाँकि अंग्रेजों द्वारा फैलाए गए इस भ्रम का अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने खंडन किया। प्रथम विश्व युद्ध ने यूरोपीय विद्वानों को भी राष्ट्रवाद संबंधी उन्नीसवीं शताब्दी की अवधारणाओं के बारे में पुनर्चिंतन के लिए बाध्य कर दिया। उन्हीं दिनों दक्षिण अफ्रीका में बैठे **गाँधीजी** ने सन् 1909 ई. में प्रकाशित अपनी **'हिन्द स्वराज'** नामक छोटी सी पुस्तक में स्पष्ट लिखा—**''अंग्रेजों ने हमें सिखाया कि हम पहले कभी एक राष्ट्र नहीं थे और हमें एक राष्ट्र बनने में सैंकड़ों बरस लगेंगे। यह बात बिलकुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे, तब भी हम एक राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अंग्रेजों ने यहाँ एक राज्य कायम किया। भेद तो बाद में उन्होंने (अंग्रेजों ने) ही पैदा किए।''**[3]

आगे गाँधीजी कहते हैं—''मैं जो बात कहता हूँ, वह बिना सोचे समझे नहीं कहता। एक राष्ट्र का यह अर्थ नहीं कि हमारे बीच अंतर नहीं था, लेकिन हमारे मुख्य लोग पैदल या बैलगाड़ी में हिन्दुस्तान का सफर करते थे, वे एक दूसरे की भाषा सीखते थे और उनके बीच कोई अंतर नहीं था। जिन दूरदर्शी पुरूषों ने सेतुबंध रामेश्वर, जगन्नाथपुरी और हरिद्वार की यात्रा निश्चित की उनका आपकी राय में क्या ख्याल होगा? वे मूर्ख नहीं थे, यह तो आप कबूल करेंगे। वे जानते थे कि ईश्वर-भजन घर बैठे भी होता है। उन्हीं ने हमें सिखाया है कि मन चंगा तो कठौती में गंगा। लेकिन उन्होंने सोचा कि कुदरत ने हिन्दुस्तान को एक देश बनाया है, इसलिए वह एक राष्ट्र होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अलग-अलग तीर्थस्थान तय करके लोगों को एकता का सबक इस तरह दिया, जैसा दुनिया में और कहीं नहीं दिया गया है।''[4]

भारतीय इतिहास के आरंभिक और ख्यातिनाम विद्वान **विंसेंट ए. स्मिथ** का दृष्टिकोण है—''समुद्रों एवं पहाड़ों से घिरा भारत निर्विवाद एक भौगोलिक इकाई है और इसे सही ही एक नाम दिया गया है।''[5] भूगोल के सुप्रसिद्ध विद्वान **चिशलॉम** के शब्द भी इसी प्रकार सशक्त और सकारात्मक हैं—''वर्मा को छोड़कर दुनिया का कोई भाग नहीं जो भारत से बेहतर अपने ही प्राकृतिक क्षेत्र से सीमांकित हो। यह क्षेत्र वस्तुत: भौगोलिक आकृतियों एवं मौसम के मामलों में विविधतापूर्ण है, लेकिन जो भौगोलिक आकृतियाँ इसे आसपास के क्षेत्रों से पृथक् एक संपूर्णता प्रदान करती हैं, उन्हें नजरअंदाज करना कठिन है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार कुछ लोग धूर्ततापूर्वक, भारतवर्ष के अन्दर जो एकता विद्यमान है उसका श्रेय अंग्रेजों को देते हैं। तथा कहते हैं कि भारत राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में है। वे चालाकी से इस तथ्य को छुपा ले जाते हैं कि अंग्रेजों के इस देश में आने के सैकड़ों वर्ष पूर्व भी भारत एक राष्ट्र था। विंसेंट ए. स्मिथ तथा गाँधीजी की ही तरह डॉ. अम्बेडकर भी

अंग्रेजों के इस मत का जोरदार खण्डन करते हैं तथा कहते हैं कि—''यह देश हजारों वर्षों से अपनी सांस्कृतिक समरसता एवं विशिष्टता के कारण ही संगठित है। यह संकलन सांस्कृतिक रूप से अत्यंत गुंथा हुआ है। इसी आधार पर मेरा कहना है कि भारत को छोड़कर संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिसमें इतनी सांस्कृतिक समरसता हो। हम केवल भौगोलिक दृष्टि से ही सुसंगठित नहीं हैं, बल्कि हमारी सुनिश्चित सांस्कृतिक एकता भी अविच्छिन्न और अटूट है, जो पूरे देश में चारों दिशाओं में व्याप्त है।''[7]

राष्ट्र की परिभाषा एवं राष्ट्र निर्माण के तत्त्व

अंग्रेजों द्वारा फैलाए गए भ्रम एवं भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उसके खंडन के पश्चात यह प्रश्न उठता है कि आखिर राष्ट्र की परिभाषा क्या है? राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक तत्त्व क्या है? प्रख्यात चिंतक पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र की बहुत ही सुंदर एवं सटीक परिभाषा दी है। जहाँ तक राष्ट्र के अर्थ का प्रश्न है, पंडित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र को एक आध्यात्मिक तत्व मानते थे। राष्ट्र को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है—''**भूमि, जन और संस्कृति के संघात से राष्ट्र का निर्माण होता है।**[8] राष्ट्र एक जीवमान इकाई है। वर्षों-शताब्दियों लम्बे कालखण्ड में इसका विकास होता है। किसी निश्चित भू-भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ तादात्म्य का अनुभव करने लगता है, जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परम्परा और महत्त्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख-दुःख की समान स्मृतियाँ और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियाँ प्राप्त कर परस्पर हित सम्बन्धों में ग्रथित होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है और इस परम्परा का निर्वाह करने वाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान् तप, त्याग, परिश्रम करने वाले महापुरूषों की श्रृंखला निर्माण होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है। जब तक यह राष्ट्रीयता अस्मिता बनी रहती है, राष्ट्र जीवित रहता है। इसके क्षीण होने से राष्ट्र क्षीण होता है और नष्ट हो जाता है। इस प्रकार राष्ट्र एक स्थायी सत्य है।''[9]

डॉ. अम्बेडकर भी राष्ट्र को इसी तरह परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार भी राष्ट्र के निर्माण के लिए भूमि, वहाँ का समाज (जन) तथा समाज की एक श्रेष्ठ परंपरा (संस्कृति), यह तीनों अनिवार्य अंग हैं। राष्ट्र केवल भौतिक ईकाई नहीं है। डॉ. अम्बेडकर के ही शब्दों में—''राष्ट्र एक जीवित आत्मा है। यह एक आध्यात्मिक सिद्धांत है। इसके लिए आवश्यक है स्मृतियों की बहुमूल्य विरासत का सामान्य अधिकार तथा वर्तमान काल में वास्तविक सहमति। एक साथ रहने की इच्छा तथा अविभाजित विरासत, जो हमारे पूर्वजों ने हमको सौंपी है, उसे कायम रखने की प्रबल इच्छा का होना नितान्त आवश्यक है। एक व्यक्ति की भाँति 'राष्ट्र' भूतकालीन लोगों द्वारा किये गये सतत् प्रयत्न, त्याग और देशभक्ति का परिणाम है। यहाँ पुरूषों की अराधना एक न्याययुक्त बात है क्योंकि इन्हीं पुरूषों ने हमें बनाया है। वीरतापूर्ण भूतकाल, श्रेष्ठ पूर्वज तथा उनकी महान यश-गाथाएँ हमारी सामाजिक पूँजी के ढाँचे का निर्माण करती हैं, जिस पर हम अपने राष्ट्र की रचना कर सकते हैं। एक राष्ट्र की रचना में भूतकालीन यश, वर्तमान कालीन सम्मिलित इच्छा, भूतकाल में एक साथ महान कार्य करने की प्रबल आकांक्षा, पूर्णरूपेण गर्भित है। इसके लिए हमने जो त्याग और कठिनाइयाँ झेली हैं, उनके प्रति हमारा अटूट अनुराग और अपने उत्तराधिकारियों को उन्हें सौंप देने की प्रबल इच्छा ही एक राष्ट्र की रचना करती है। स्पार्टावासियों का एक गीत-वह हैं जो तुम थे, हम होंगे जो तुम हो राष्ट्र की परिभाषा की स्पष्ट उक्ति है।''[10]

केवल भूमि से ही राष्ट्र का निर्माण नहीं होता वरन् उस भूमि पर रहने वाला समाज इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। इस विषय में '**रेनन**' का उदाहरण देते हुए अम्बेडकर कहते हैं—''भूमि नहीं, वहाँ का समाज ही राष्ट्र का निर्माण करता है। भूमि तो केवल आधार प्रदान करती है। समाज राष्ट्र की आत्मा है। यह कहा जा सकता है कि पवित्र राष्ट्र के निर्माण में व्यक्ति ही सब कुछ है।''[11] प्रख्यात भारतीय इतिहासकार **वासुदेवशरण अग्रवाल** राष्ट्र के निर्माण के तत्त्वों को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि—''भूमि राष्ट्र का शरीर है, जन उसका प्राण है और जन की संस्कृति राष्ट्र का मन है। भूमि, जन और संस्कृति तीनों के सुंदर सम्मिलन और उन्नति से ही राष्ट्र का निर्माण होता है। भूमि और जन के अभ्युदय का अन्तिम लक्ष्य उत्तम संस्कृति ही है।''[12]

राष्ट्र और राज्य एक नहीं

आज पश्चिम के राजनीति-प्रधान चिंतन के परिणामस्वरूप, सामान्यतः 'राज्य' और 'राष्ट्र' पर्यायवाची शब्द माने जाने लगे हैं। वास्तव में ये दोनों मूल में अलग-अलग संकल्पनाएँ हैं। राज्य, समाज की तात्कालिक भौतिक व्यवस्था है और राष्ट्र, समाज का स्थायी, नैतिक, भावनात्मक तथा जीवित शिल्प। राज्य का आधार राजनीति है और राष्ट्र का प्राण संस्कृति है। राज्य, राष्ट्र का एक अंग मात्र है। राज्य अस्थायी और परिवर्तनशील हो सकता है, राष्ट्र स्थायी और निरंतर होता है। राष्ट्र का अस्तित्व बहुमत और अल्पमत पर आधारित नहीं रहता। राष्ट्र की एक स्वयंभू सत्ता है। वह स्वयं प्रकट होती है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी में विभिन्न इकाइयों की स्थापना करती है। वह विभिन्न इकाइयों जिनमें 'राज्य' भी एक है। जिसे हम प्रजातंत्र कहते हैं, वह भी राज्य को उपयोगी बनाए रखने की आवश्यकता पड़ने पर उसे बदल डालने की प्रक्रिया का ही नाम है। राज्य बदला जा सकता है, किंतु कोई भी प्रजातंत्र 'राष्ट्र' को नहीं बदल सकता। राष्ट्र का अस्तित्व बहुमत और अल्पमत पर आधारित नहीं रखता। इस प्रकार राज्य, राष्ट्र की एक इकाई है, ना कि राष्ट्र और राज्य दोनों समान हैं। राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए 'राज्य' पैदा होता है।

पौराणिक साहित्य में राष्ट्रीयता के तत्त्व

यदि हम पाश्चात्य विद्वानों तथा भारतीय मनीषियों द्वारा राष्ट्र और राष्ट्रीयता के नवीन व्याख्याओं के आलोक में अपने प्राचीन इतिहास का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि संपूर्ण पौराणिक साहित्य राष्ट्रीयता के तीनों मूलभूत तत्त्व भूमि, जन की एकता तथा देशभक्ति एवं ऐतिहासिक सांस्कृतिक गौरव भाव से ओतप्रोत है। भारत की भौगोलिक एकता की व्याख्या करते हुए 'विष्णु पुराण' कहता हैं—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्तति॥

—(विष्णु पुराण - 2/3/1)

अर्थात् समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो भू-खण्ड है, उसका नाम भारत है और उसकी संतान को भारतीय कहते हैं। वायुपुराण, मतस्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि सभी पुराणों में इसी श्लोक या परिभाषा का अनुकरण हमें देखने को मिलता है। 'वायुपुराण' कहता है—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत्।
वर्ष यद् भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा॥

—(वायुपुराण - 45/75)

अर्थात् समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण का जो भू-खण्ड है, वह भारत है और इसमें रहने वाली जनता भारतीय प्रजा है। भारत की सांस्कृतिक एकता का ही दूसरा नाम उसकी मौलिक एकता है। यह सांस्कृतिक एकता जिस भू-प्रदेश में व्याप्त हुई उसका भौगोलिक नाम भारतवर्ष है। भारत का समस्त भू-खण्ड चाहे एक राजनैतिक चक्र अथवा शासन के अधीन न भी रहा हो तो भी यहाँ की कोटि-कोटि जनता के मन में भारत की मौलिक एकता का गहरा संस्कार था। राष्ट्र की अनेक संस्थाओं के रूप में यह सत्य प्रमाणित हुआ। भारत के सांस्कृतिक गौरव के इसी भाव तथा एकता की ओर लक्ष्य करते हुए विष्णु पुराण के लेखक कहते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमिभागेः।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतुर्भूते, भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्॥

—(विष्णु पुराण - 2/3/24)

अर्थात् देवता भी स्वर्ग में गीत गाते हैं कि धन्य हैं वे जिनका जन्म भारत भूमि पर हुआ है। यह भूमि तो स्वर्ग से भी बढ़कर है, क्योंकि वहाँ जन्म लेते ही मोक्ष का रास्ता मिल जाता है, लेकिन स्वर्ग में रहनेवाले हम देवताओं को पुण्य क्षीण होने पर फिर से पृथ्वी पर वापस आना पड़ेगा।

उपर्युक्त श्लोकों में कहीं भी पृथक्-पृथक् खण्ड की कल्पना नहीं है। उत्तरप्रदेश, गुजरात, बिहार, उड़ीसा, तमिलनाडु, बंगाल, कश्मीर या केरल की इन श्लोकों में चर्चा नहीं, बल्कि चर्चा है तो सिर्फ और सिर्फ अखण्ड भारत की। इन श्लोकों में उन्हें धन्य माना गया है जो भारतभूमि पर जन्म लेते हैं। कवि की दृष्टि में समस्त भारत भूमि ही धन्य है। राष्ट्रीयता के तीनों तत्व भूमि, जन और संस्कृति की स्पष्ट व्याख्या हमें इन श्लोकों में देखने को मिलती है। भूमि अर्थात हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त फैले अखण्ड भारत की भूमि, जन अर्थात् भारतीय प्रजा तथा संस्कृति से आशय भूमि और जन को एकसूत्रता में बाँधने वाला एकात्म भाव, भारत भूमि के प्रति मातृभाव।

इसी भाव को वासुदेवशरण अग्रवाल इस रूप में व्यक्त करते हैं—''सब भौतिक सुख और समृद्धि से संयुक्त राष्ट्र की उपलब्धि स्वर्ग है, और उन सुखों का त्याग मोक्ष है। जो संस्कृति इस मार्ग को सिखाती है वही भारत की संस्कृति है। देश के सभी भाग उसके अंतर्गत हैं। इसलिये कहा गया 'धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।' अर्थात् भारत के किसी भी भाग में मनुष्य जन्म ले स्वर्ग और अपवर्ग वाली संस्कृति से उसका जन्मसिद्ध नाता जुड़ जाता है। यहाँ यह नहीं कहा गया है कि देश का एक प्रदेश या एक प्रान्त या एक नगर मोक्ष-प्रधान संस्कृति का अधिकारी है, बल्कि देश का प्रत्येक भाग मातृभूमि के सत्यात्मक हृदय के साथ मिला हुआ है। सभी को संस्कृति की वेगवती धाराएँ प्राप्त हुई हैं। सुदूर मलैबार के शंकराचार्य, तमिल के कम्बन, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, असम के शंकरदेव, आन्ध्र के पोतनामात्य, बंगाल के चैतन्य, उत्तरापथ के वाल्मीकि और तुलसीदास, बिहार के बुद्ध और महावीर, राजस्थान की मीराबाई, कश्मीर की लल्लेश्वरी, गुजरात के नरसी मेहता, पंजाब के गुरूनानक, इन सबकी सांस्कृतिक भाषा एक है। यद्यपि उनका जन्म भारतभूमि के भिन्न-भिन्न भागों में हुआ, पर जीवन का तप और त्याग प्रधान मार्ग उन सब का एक है।''[13]

आधुनिक विद्वानों ने विष्णु-पुराण का रचनाकाल पाँचवी शती ईसवी माना है। इसका अर्थ हुआ कि आज से कम से कम 1,500 वर्ष पहले राष्ट्रीयता की आधार भूमि भारत में पूरी तरह तैयार हो चुकी थी। भारत के वर्तमान स्वरूप के निर्माण काल को भी पाँचवी शताब्दी से नीचे लाने का साहस कोई भी आधुनिक विद्वान अब तक नहीं कर पाया है। अत: स्पष्ट है कि पाँचवी शती तक भारतीय राष्ट्रीयता को भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आधार प्राप्त हो चुका था। सभी पुराणों में भारत की सीमाओं की निश्चित व्याख्या, उसके आकार का वर्णन, उसकी नदियों, पर्वतों एवं जनपदों की सूचियाँ दी गई हैं और उसके चप्पे-चप्पे पर बिखरे तीर्थों का वर्णन किया गया है।

डॉ. अम्बेडकर के चिंतन में राष्ट्र की संकल्पना

पौराणिक साहित्य तथा पाश्चात्य एवं भारतीय मनीषियों द्वारा राष्ट्र और राष्ट्रीयता के जिन तत्वों का ऊपर उल्लेख किया गया है, डॉ. अम्बेडकर इन सारी वास्तविकताओं से अच्छी तरह परिचित थे। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि प्रकृति और संस्कृति ने ही भारत को एक राष्ट्र का स्वरूप प्रदान किया है, किसी अंग्रेज या मैकाले के भारतीय उत्तराधिकारियों ने नहीं। डॉ. अम्बेडकर ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया था। उनका मानना था कि इस राष्ट्र की निर्मिति कोई सौ-दो सौ वर्ष में नहीं हो गई है। इसको प्रकृति, समाज एवं उसकी संस्कृति ने एक राष्ट्र के अखण्ड स्वरूप के साथ निर्मित किया है। देश की एकता और अखण्डता इस राष्ट्र की स्वाभाविक प्रकृति है। इस देश की एकता का आधार प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दोनों है। वे लिखते हैं कि—''**इस मौलिक तथ्य को भूलना नहीं चाहिए कि प्रकृति ने भारत को एकत्रित भौगोलिक इकाई के रूप में निर्मित किया है।..... इसकी एकता उतनी ही प्राचीन है जितनी प्राचीन प्रकृति है। इस भौगोलिक एकता के अंतर्गत अति प्राचीन समय से यहाँ सांस्कृतिक एकता रही है। इस सांस्कृतिक एकता ने राजनीतिक तथा जातीय विभाजन का सदैव विरोध किया है।** किसी भी मूल्य पर यह कहा जा सकता है कि विगत 150 वर्षों से सभी सांस्कृतिक, राजनीतिक आर्थिक, वैधानिक तथा प्रशासनिक संस्थाएँ एक ही समान उद्गम स्थल से कार्य कर रही है। पाकिस्तान से सम्बन्धित किसी भी विवाद पर विचार करते समय यह तथ्य आँखों से ओझल नहीं होना चाहिए कि किसी भी बात का प्रारम्भिक बिन्दु भले ही वह निर्णायक न भी हो, भारत की मौलिक एकता ही है।..... तब यह एकता क्यों छिन्न-भिन्न की जाये ? क्या केवल इसलिये कि कुछ मुसलमान असंतुष्ट हैं ? इसके टुकड़े क्यों करते हो, जबकि ऐतिहासिक समय से यह एक सम्पूर्ण इकाई है ?''[14]

डॉ. अम्बेडकर राष्ट्र की परिभाषा करते हुए उसके लिए अपरिहार्य तत्वों का उल्लेख करते हैं। राष्ट्र के संबंध में उन्होंने जो उद्धृत किया है, उसे आदर्श कहा जा सकता है। किसी भी राष्ट्र के निर्माण में वहाँ के समाज का, राष्ट्र के सम्बन्ध में सुख-दुःख, यश-अपयश के प्रति विचार एक ही जैसा होना चाहिए। राष्ट्र के भूतकाल और वर्तमान के प्रति देखने का दृष्टिकोण समान होना चाहिए। जिस समाज की राष्ट्र के प्रति ऐसी भावना होती है, वहीं समाज राष्ट्र का निर्माण करता है। अम्बेडकर कहते हैं—''**भूतकालीन यश, समान रूप से सुख-दुःख और आशा में हिस्सा बँटाना आदि बाते एक राष्ट्र के द्योतक हैं। एक साथ मिलकर कष्ट उठाना, आनन्द की स्मृतियों की तुलना में एकता के लिए अधिक महत्व का आधार है। राष्ट्रीय महत्व की स्मृतियाँ तथा ऐसी ही दुःखद घटनाओं के उदाहरण विजय की तुलना में अधिक मूल्यवान हैं क्योंकि इससे कर्तव्य बोध जाग्रत होता है और सामूहिक प्रयत्नों की आवश्यकता अनुभव होती है।**''[15]

भारत विभाजन के संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर के उपर्युक्त बातों को ठीक से समझा जा सकता है। जब मुस्लिम लीग ने मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में 1940 में अलग पाकिस्तान का प्रस्ताव अपने लाहौर अधिवेशन में प्रस्तुत किया तब देश के सभी बड़े राजनेता इसे कोरी कल्पना बता रहे थे, बकवास कहते थे। मगर डॉ. अम्बेडकर की दूरदृष्टि ने जान लिया था कि इसे कोई रोक नहीं सकता, क्योंकि उन्होंने मुस्लिम कट्टरवाद और इस्लाम के राजनीतिक स्वरूप का गहराई से अध्ययन किया था। हालाँकि हिन्दू जिस भूमि को युगों-युगों से अपनी पुण्यभूमि भारतवर्ष मानते रहे हैं उसके दो टुकड़े करके एक '**मुस्लिम राष्ट्र**' और एक '**गैर-मुस्लिम राष्ट्र**' बनाने की माँग उठने पर डॉ. अम्बेडकर भी भौंचक्के रह गये। वे मुस्लिम समुदाय तथा उनके नेताओं के इस कथन से बहुत ही रूष्ट थे कि भारत के मुसलमान एक अलग राष्ट्र हैं। हिन्दू समाज तथा हिन्दू नेताओं को लग रहा था, कि भारतीय सामाजिक जीवन की कुछ विशेषताएँ दोनों समुदायों के बीच एकता के तारों का काम करती है। पर क्या इतना ही पर्याप्त था? डॉ. अम्बेडकर कहते हैं—''यह निर्विवाद है कि (भारतवर्ष के) अधिकांश मुसलमान उसी जाति के हैं जिसके हिन्दू हैं। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि सभी मुसलमान एक ही भाषा नहीं बोलते, और बहुत से तो वही बोलते हैं जो हिन्दू बोलते हैं। दोनों समुदायों में कई सामाजिक रिवाज भी एक समान है। यह भी सत्य है कि कुछ धार्मिक कृत्य व प्रथाएँ दोनों समुदायों में एक से हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इन सभी तत्वों से ही हिन्दू व मुसलमान एक राष्ट्र बन जाते हैं, या कि क्या इनसे उनमें एक-दूसरे से जुड़ने की इच्छा पैदा हुई है?''[16]

आगे डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि—''जहाँ तक जातीय एकता, भाषाई एकता, और एक ही देश में साथ रहने का तर्क है, यह मुद्दा एक दूसरे ही प्रकार का है। यदि ऐसी बातें राष्ट्र को बनाने या तोड़ने में निर्णायक होती तो हिन्दुओं का यह कथन ठीक होता कि जातीय, भाषायी और निवास की समानता के कारण हिन्दू व मुसलमान एक राष्ट्र हैं। ऐतिहासिक अनुभवों से तो यह स्पष्ट होता है कि न जाति, न भाषा और न ही एक देश में निवास, किसी जनसमूह को एक राष्ट्र के सूत्र में पिरोने के लिए पर्याप्त है।''[17]

यहाँ प्रश्न उठता है कि फिर वह कौन सा तत्व है जो राष्ट्र के लिए जरूरी है, तो वह है एक समान इतिहास, शत्रु-मित्र तथा सुख-दुःख की समान भावना। इस भाव को समझाते हुए डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं कि—''क्या कोई ऐसा घटनाक्रम है जिसे हिन्दू और मुसलमान समान रूप से गौरव या व्यथा के विषय के रूप में याद रखे हुए हैं? समस्या की जड़ में यही प्रश्न है। यदि हिन्दू स्वयं को और मुसलमानों को एक ही राष्ट्र का अंग मानना चाहते हैं, तो उन्हें इसी प्रश्न का उत्तर देना होगा। दोनों समुदायों के बीच सम्बन्धों के इस पक्ष पर दृष्टि डालें तो यही सामने आयेगा कि वे तो बस एक दूसरे से युद्ध में रत दो सेनाओं की भाँति रहे हैं। उनके बीच किसी साझी उपलब्धि की प्राप्ति के लिए मिले-जुले प्रयासों का कोई युग नहीं रहा। जैसा कि भाई परमानन्द ने अपनी पुस्तिका 'हिन्दू राष्ट्रवादी आन्दोलन' में उल्लेख किया है—'हिन्दू अपने इतिहास में पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, शिवाजी और बन्दा बैरागी के प्रति श्रद्धा रखते हैं, जिन्होंने इस भूमि की रक्षा के और सम्मान के लिए मुसलमानों से संघर्ष किया, जबकि मुसलमान मुहम्मद बिन कासिम जैसे विदेशी हमलावरों और औरंगजेब जैसे शासकों को अपना राष्ट्रनायक मानते हैं।' धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू रामायण, महाभारत और गीता से अपनी प्रेरणा पाते हैं। दूसरी ओर, मुसलमान अपनी प्रेरणाएँ कुरान और हदीस से प्राप्त करते हैं। अतः जो बातें उन्हें एक सूत्र में बाँधती हैं, उनसे अधिक शक्तिशाली हैं वे बातें जो उन्हें

बाँटती हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों के सामाजिक जीवन की कुछ विशेषताओं समान जाति, भाषा व देश जैसी कुछ बातों पर निर्भर करके हिन्दू उन बातों को आधारभूत और महत्वपूर्ण मानने की गलती कर रहे हैं, जो केवल संयोगजनित और ऊपरी हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों को जितना ये तथाकथित समानताएँ मिलाती हैं, उससे कहीं अधिक बाँटती हैं राजनीतिक व साम्प्रदायिक शत्रुताएँ। दोनों समुदाय अपना अतीत यदि भूल पाते तो शायद सम्भावनाएँ कुछ और होतीं।''[18]

''.....पर दुःख यह है कि दोनों समुदाय अपना भूतकाल न मिटा सकते हैं, न भुला सकते हैं। उनका भूतकाल उनके धर्म या मजहब में स्थापित हुआ पड़ा है और अपने भूतकाल को भूलना उनके लिए अपने धर्म को या मजहब को त्यागने जैसा है। इसकी आशा करना व्यर्थ है। ऐतिहासिक समानताओं के अभाव में हिन्दुओं का यह विचार कि हिन्दू और मुसलमान एक राष्ट्र हैं, टिक नहीं पाता। इसी पर आग्रह करते रहना मानो मतिभ्रम में पड़े रहना है।''[19]

निष्कर्ष

भारतीय चिंतन में राष्ट्र की संकल्पना अति प्राचीन है। डॉ. अम्बेडकर राष्ट्र निर्माण में अपने देश की महान संस्कृति तथा धर्म पर गर्व करते थे। उनका मत था कि—''**भारत राष्ट्र की एकता का मूलाधार संस्कृति की संपूर्ण देश में व्याप्ति है। उनका कथन था कि इसमें न केवल भौगोलिक एकता है अपितु उससे भी ज्यादा गहरी और मूलभूत एकता में सांस्कृतिक एकता है जो एक छोर से दूसरे छोर तक देश में व्याप्त है।**''[20] डॉ. अंबेडकर के लिए भारत सर्वोपरि था। अपनी पुस्तक 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' में उन्होंने बहुत ही स्पष्टता के साथ पाकिस्तान के पीछे छिपे जहरीले सांप्रदायिक, इस्लामी हिंसावादी और अतिवादियों के अभियान तथा राष्ट्रीयता की जमीन से जुड़ी मीमांसा की है। यही बात है कि अंबेडकर अपने समसामयिक सभी नेताओं से अलग विशिष्ट एवं बड़े दिखते हैं। **उन्होंने लिखा है कि नागरिकों के लिए आवश्यक है अतीत का सम्मिलित गौरव, वर्तमान की सम्मिलित इच्छा तथा भविष्य में पुनः करने के लिए संकल्प।**

डॉ. अम्बेडकर को काँग्रेस का पाश्चात्य ढंग का भ्रामक राष्ट्रवाद स्वीकृत नहीं था। उन्हें काँग्रेस द्वारा मजहब के आधार पर, कांग्रेस के उतावलेपन से बने राष्ट्र स्वीकार्य न था। जब काँग्रेस के बड़े-बड़े नेता पाश्चात्य जगत के राष्ट्र संबंधी विचारों के प्रशंसक थे, तभी डॉ. आंबेडकर ने अपनी आस्था भारत के मूल हिन्दू चिंतन में व्यक्त की। उन्होंने काँग्रेस की मिलीजुली संस्कृति की आलोचना की। डॉ. अम्बेडकर के विचारों का महत्व इस बात में है कि उनके विचार गहन चिंतन, अध्ययन, अवलोकन और व्यवहारिक अनुभवों पर आधारित थे। तत्कालीन भारत के किसी भी नेता तथा चिंतक की अपेक्षा वे अधिक स्पष्ट थे।

सन्दर्भ

1. कृष्णगोपाल (2015), 'हिन्दुत्व-हिन्दू राष्ट्र, विकास पथ', सुरूचि प्रकाशन, नई-दिल्ली, पृष्ठ 26, 27
2. मुखर्जी, राधाकुमुद (2009), 'भारत की मूलभूत एकता', सस्ता साहित्य मण्डल, नई-दिल्ली, पृष्ठ 32
3. गाँधी, मोहनदास करमचंद (2013), 'हिन्द स्वराज', सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ. 48
4. पूर्वोक्त, पृष्ठ 49
5. मुखर्जी, राधाकुमुद (2009), 'भारत की मूलभूत एकता', सस्ता साहित्य मण्डल, नई-दिल्ली, पृष्ठ 32
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ 32
7. Ambedkar, B.R. (1990), *'Writing and speeches', (Vol.- 1)* compiled by Vasant Moon, Education Department, Government of Maharashtra, Page. 6
8. उपाध्याय, दीनदयाल (2014), 'राष्ट्र चिन्तन', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 130
9. उपाध्याय, दीनदयाल (2010), 'राष्ट्र जीवन की दिशा', लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 37, 38

10. Ambedkar, B.R. (1945), *'Pakistan or the partition of India'*, THACKER & Co., LTD., Bombay, Page 35

11. Ambedkar, B.R. (1990), *'Writing and speeches', (Vol.- 8)* compiled by Vasant Moon, Education Department, Government of Maharashtra, Page. 34

12. अग्रवाल, वासुदेवशरण (1954), 'भारत की मौलिक एकता', भारती-भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ 76

13. पूर्वोक्त, पृष्ठ 18, 19

14. Ambedkar, B.R. (1990), *'Writing and Speeche', (Vol.- 8)* compiled by Vasant Moon, Education Department, Government of Maharashtra, Page 348

15. Ibid, Page 35

16. Ambedkar, B.R. (1945), *'Pakistan or the Partition of India'*, THACKER & Co., LTD., Bombay, Page 15

17. Ibid, Page. 16

18. Ibid, Page. 17, 18

19. Ibid, Page. 19

20. Ambedkar, B.R. (1990), *'Writing and Speeches', (Vol.- 1)* compiled by Vasant Moon, Education Department, Government of Maharashtra, Page. 6

❑❑

डॉ. रीना देवी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
चौधरी ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय
पूण्डरी (कैथल)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

जूठन : दलित साहित्य की एक महान आत्मकथा

सार

हम कह सकते हैं कि ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी के जाने-माने दलित साहित्यकार थे और उनकी आत्मकथा 'जूठन' हिन्दी साहित्य जगत में बहुत लोकप्रिय कृति है। यह आम तौर पर स्वीकार किया जाता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित 'जूठन' दलित साहित्य की एक महान आत्मकथा है। यह स्वीकृत तथ्य है कि दलित समुदाय भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक अत्याचारों और परेशानियों का शिकार होता रहा है उनकी वर्ग पहचान के कारण। इस शोध पत्र में '**जूठन**' एक प्लेट में छोड़े गए भोजन के अंश को संदर्भित करता है जो कचरे या जानवरों के लिए नियत होता है। लेकिन इस 'जूठन' कहानी में यह रोटी दलित गरीब लोगों के लिए आरक्षित है जो असहाय स्थिति में जी रहे हैं ग्रामीण भारत में। यह लेखक द्वारा दावा किया जाता है कि भारत के दलितों तथा अछूतों को सदियों से जूठन स्वीकार करने और खाने के लिए मजबूर किया जाता रहा है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस शोध-पत्र में लेखक ने दलितों की पीड़ा और उनंके जीवन की परेशानियों को दुनिया के सामने उजागर किया है।

मुख्य शब्द : जूठन, दलित साहित्य, अत्याचार, अमानवीय।

भूमिका

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 1947 के नए स्वतंत्र भारत में अपने जीवन को एक अछूत दलित के रूप में वर्णित किया है। यह आम तौर पर स्वीकार किया जाता है कि भारत के अछूतों को सदियों से खाने से बचे हुई 'जूठन' स्वीकार करने और खाने के लिए मजबूर किया जाता रहा है। यह '**जूठन**' शब्द भारत के सामाजिक पिरामिड में नीचे रहने के लिए मजबूर समुदाय के दर्द, अपमान और गरीबी को प्रमुखता से दिखाता है। यह आम तौर पर स्वीकार किया जाता रहा है कि 'जूठन' समाज के ऐसे हाशिए पर पड़े लोगों की बात करता है जो सदियों से जातिगत पहचान के कारण असहाय नरकीय जीवन जीने के लिए छोड़ दिए गए हैं भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में। ये असहाय लोग जो अमीरों द्वारा फेंके गए भोजन के टुकड़े में से दो वक्त का भोजन भी चुन लेते हैं। यह स्वीकृत तथ्य है कि अछूत दलित भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अपना पूरा जीवन ऐसे अस्वस्थ वातावरण में बिताते हैं जहां सांस लेना भी मुश्किल हो जाता है। आज के डिजिटल जीवन की दौड़ में जितना जातिगत अत्याचार पर विश्वास करना कठिन है उतना ही इसे अपने जीवन में सहना भी कठिन है।

यहां पर 'जूठन' भारत के ग्रामीण क्षेत्र पर ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित एक आत्मकथा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस आत्मकथा में बताते हैं कि जब वे छोटे थे तो स्कूल के प्रधानाध्यापक कालीराम उनसे झाड़ू दिलवाते थे स्कूल में। लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि के घर में उसके पिता, माता, बड़े भाई, बड़ी बहन और भाभी शामिल हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि के उनके परिवार के सदस्य दूसरे लोगो के घरों में काम करते थे और इन कामों के बदले में दो पशु और अन्न के दाने और दोपहर को बची हुई रोटी उनके परिवार को मिलती थी जिसे वाल्मीकि द्वारा जूठन कहा जाता है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' के अनुसार ओमप्रकाश वाल्मीकि के घर की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर थी कि परिवार के हर सदस्य को एक-एक पैसे के लिए संघर्ष

करना पड़ता था। यहां पर लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने घर की स्थिति को देखते हुए अध्ययन करने का निश्चय किया और ध्यानपूर्वक अध्ययन करके हिंदी में स्नातकोत्तर करने के बाद उन्हें सरकार द्वारा डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार, पर्यावरण पुरस्कार, जयश्री सम्मान जैसे कई सम्मानों से सम्मानित किया गया था। ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित कई आत्मकथाएँ, लघु कथाएँ, कविता संग्रह और आलोचनात्मक रचनाएँ हिंदी साहित्य में हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने मेघदूत नामक एक नाट्य संस्था की स्थापना करके कई अभिनय और मंच प्रदर्शन का निर्देशन भी सफलतापूर्वक किया था।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिंदी क्षेत्र के दलितों और अछूतों को अपनी आवाज दी है। 'जूठन' एक आत्मकथात्मक लेख है जोकि भारत के ग्रामीण क्षेत्र के अत्यधिक अंदरूनी अत्याचारों के दृष्टिकोण से दुनिया को अवगत करवाती है। यह स्वीकृत तथ्य है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्र पर 'जूठन' दलित जीवन के जातिगत असमानताओं के चित्रणों में से एक है। यह स्वीकृत तथ्य है कि दलित समुदाय को ग्रामीण क्षेत्रों में जातिगत असमानताओं के कारण बचपन से ही तिरस्कार और अत्याचारों का सामना करना पड़ा था। वाल्मीकि पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक गांव के रहने वाले थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि के बरला गांव में मुस्लिम त्यागी भी काफी संख्या में थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि के बरला गांव में मुस्लिम त्यागी लोगो का दलितों के प्रति व्यवहार बेहद घृणित था। बरला गांव के मुस्लिम त्यागी लोग दलितो पर हर प्रकार के बेहद घृणित कमेंट करते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज के समय में हर जगह दलितों के साथ अमानवीय और प्रताड़ित व्यवहार किया जाता है। यह स्वीकृत तथ्य है कि उच्च जाति के लोग दलितों से जबरन मजदूरी करवाने के बाद भी ठीक से सम्मानजनक व्यवहार नहीं करते हैं भारत के ग्रामीण क्षेत्र में। हम कह सकते हैं कि प्रताड़ित गरीब दलित लोग तरसते हैं गांव में हर सुविधा के लिए भारत के ग्रामीण क्षेत्र में। आज के समय में यह भरोसेमंद तथ्य है कि वर्ण व्यवस्था की क्रूरता इतनी भयानक है कि जाति के कारण मनुष्य का मानव के प्रति व्यवहार भी बदल जाता है। यह तथ्य है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि को महाराष्ट्र में बदलते व्यवहार की इस यातना का सामना करना पड़ा था।

आज तक जिन दलित साहित्यकारों ने आत्मकथा लिखी उनमें सबसे महत्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'जूठन' है जो दो खंडों में विभक्त है। इस जूठन आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने जीवन के संघर्ष तथा यथार्थ को हमारे समक्ष रखा हैं। ओमप्रकाश बाल्मीकि ने अपने जीवन में शिक्षा के लिए किए गए संघर्ष, जाति प्रथा से लड़ने का संघर्ष, अंधविश्वास से लड़ने का संघर्ष, शहर गमन कर शिक्षा प्राप्त करने का संघर्ष, अपने परिवार में अशिक्षा रूपी द्वंश को समाप्त करने का संघर्ष, नौकरी प्राप्त करने और जूझने का संघर्ष आदि अनेक संघर्षों को अपनी 'जूठन' आत्मकथा में खूबसूरत तरीके से दिखाया हैं। लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने स्वयं 'जूठन' आत्मकथा की भूमिका में लिखा हैं की भारत के ग्रामीण क्षेत्र में ''दलित जीवन की पीड़ा असहनीय अनुभव है''। आज के समय में यह भरोसेमंद तथ्य है कि ये ऐसे अनुभव है जो आज तक ओमप्रकाश बाल्मीकि के साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके है।

यह भरोसेमंद तथ्य है कि ओमप्रकाश बाल्मीकि ने एक ऐसी समाज व्यवस्था में साँसे ली है जो भारत के ग्रामीण क्षेत्र में बेहद क्रूर और अमानवीय हैं। इसके साथ ही भारत के ग्रामीण क्षेत्र में यह सामाजिक व्यवस्था दलितों के प्रति असंवेदनशील भी होती है। लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि ने स्वयं आत्मकथा की भूमिका में लिखा हैं की आधुनिक लोकतांत्रिक संरचना भी दलितों का काफी हद तक शोषण करती है। आज के समय में यह तथ्य है कि ग्रामीण भारत में प्रशासन भी हमेशा दलितों को दबाने और उन पर अत्याचार करने की कोशिश करता रहा है। यह हकीकत है कि ग्रामीण भारत में प्रशासन ने हमेशा दलित लोगों पर अत्याचार किया है। यह भरोसेमंद तथ्य है कि ग्रामीण भारत में दलित लोगों द्वारा की गई हुई श्रम का कोई मूल्य नहीं है। इससे साफ पता चलता है कि ग्रामीण भारत में प्रशासन ने हमेशा से उच्च जाति के लोगों के दबाव के कारण दलितों की आवाज दबाने की कोशिश की है।

'जूठन' दलित साहित्य की एक महान आत्मकथा

ओमप्रकाश वाल्मीकि नव स्वतंत्र भारत के उत्तर प्रदेश के एक गाँव में बड़े होने की एक दिलचस्प कहानी बताते हैं। यह भरोसेमंद तथ्य है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित 'जूठन' कहानी एक संस्मरणों का संग्रह है। यह कहानी 'जूठन'

गैर-रैखिक प्रकृति के पाठकों के मन पर भारी बोझ डालने से रोकती है। यह कहानी 'वाल्मीकि' समुदाय से जुड़ी कठिनाइयों से भरे लेखक के बचपन की यादों से जुड़ी है। इस कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि अछूतों और उच्च जाति के लोगों के बीच मतभेदों पर जोर देते हैं जो पहले से ही समाज के जाति पदानुक्रम द्वारा बनाए गए थे। यह तथ्य है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह कहानी अस्तित्व की कहानी है। यह कहानी गुलामी और रंगभेद के रूप में आत्मसम्मान के उत्पीड़न की भी है क्योंकि लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि खुद शिक्षा प्राप्त करने का प्रबंधन करता है और अंततः अपनी दलित पहचान को गले लगाना सीखता है और अपने दलित समुदाय का प्रामाणिक प्रवक्ता बन जाता है। इसलिए यह कहानी 'जूठन' दलित साहित्य की एक महान आत्मकथा साबित होती है। इसमें लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित 'जूठन' दलित जीवन की वंचित पीड़ा का दस्तावेज है। यह इस कहानी में स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि जीवन की सुख-सुविधाओं और सभी नागरिक सुविधाओं से वंचित दलित जीवन की त्रासदी दलितो के व्यक्तिगत अस्तित्व से लेकर परिवार, बस्ती और पूरी सामाजिक व्यवस्था तक फैली हुई है।

यह तथ्य है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य को जनसाहित्य मानते थे। यह यथार्थ है कि 'जूठन' में दलित साहित्य की चेतना आत्मसम्मान के करीब है। लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि ने 'जूठन' में दलित जीवन की पीड़ा और उसका संघर्ष दिखाया है। इसलिए दलित साहित्य में दलित जातियों की पीड़ा की वास्तविकता उनकी चेतना की आवाज को तेज करती है। यह भरोसेमंद तथ्य है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि की मान्यता के अनुसार दलित की पीड़ा को केवल दलित ही बेहतर ढंग से समझ सकता है और दलित ही बेहतर ढंग से उस पीड़ा के अनुभव को प्रामाणिक रूप से व्यक्त कर सकता है। लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस आशय की पुष्टि के रूप में लिखी गई अपनी आत्मकथा 'जूठन' में वंचितों और दलित लोगों की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है। अपनी आत्मकथा 'जूठन' में लेखक ने यह भी बताया है कि कैसे दलितों को 'बेगार' करना पड़ता है ग्रामीण भारत में। ग्रामीण भारत में ऊंची जाति के जमींदार दलितों को अपने खेतों में काम करने के लिए मजबूर करते थे। ग्रामीण भारत में अगर किसी दलित ने 'बेगार' नहीं किया, तो उसे भी दंडित किया जाता है। ग्रामीण भारत में इस 'बेगार' प्रथा ने दलितों के सम्मान और स्वाभिमान को कुचल दिया है।

निष्कर्ष

यह आमतौर पर स्वीकार किया जाता है कि हिंदी साहित्य में कविता, कहानी, नाटक, आत्मकथा आदि साहित्यिक विधाओं के लेखन में दलित साहित्यकारों ने बड़ी भूमिका निभाई है। हम कह सकते हैं कि इन आत्मकथाओं ने दलितों की पीड़ा और उनके जीवन की परेशानियों को दुनिया के सामने उजागर किया है। यह स्वीकार किया जाता है कि इन दलितों की पीड़ा के बारे में लोग पहले कम जानते थे। यह आमतौर पर स्वीकार किया जाता है कि अलग-अलग भाषाओं में लिखी गई इन आत्मकथाओं में एक ही दर्द छिपा है दलितों की पीड़ा और उनकी जीवन की परेशानियों का। इसके साथ ही लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि ने जूठन की कहानी में उन्होंने दलित साहित्यकारों को संदेश दिया कि हमें क्या लिखना चाहिए और क्यों लिखना चाहिए। लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि ने जूठन की कहानी में साहित्य को मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि एक विशिष्ट सामाजिक उद्देश्य के लिए लिखने की बात कही है। इस शोध पत्र में लेखक ओमप्रकाश बाल्मीकि ने जूठन की कहानी में जिंदगी के एक असली सच को लोगो के सामने रखा है। यह स्वीकृत तथ्य है कि लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जूठन की कहानी में यह स्वीकार कर लिया है की भारतीय हिंदू समाज में दलितों का सामाजिक और आर्थिक शोषण अनादि काल से होता आ रहा है। यह स्वीकृत तथ्य है कि ऊंची जाति का समाज हमेशा से दलितों और निचली जाति के लोगों पर सामाजिक और आर्थिक आधार पर अत्याचार करता रहा है। यह तथ्य है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'जूठन' के माध्यम से दलितों की गरीबी, सामाजिक और आर्थिक शोषण की भीषण पीड़ा को अपनी साहित्यिक विधाओं के लेखन में चित्रित किया है।

संदर्भ

- चौहान, मंजू, ''ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'जूठन में संवेदना','' साहित्य संहिता, 1.2, (2015), पृष्ठ 1-8.

- वाल्मीकि, ओमप्रकाश, सलाम, राजकमल प्रकाशन, 2000, नई दिल्ली.
- राम, कमलेश, ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक जीवन, (लघु शोध प्रबंध), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, 2016.
- रावत, सरिता, ओमप्रकाश वाल्मीकि और शरणकुमार लिम्बाले की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन, (लघु शोध प्रबंध), महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, 2014.
- वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, दिल्ली।
- लामा,सरोज, ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में दलित चेतना, (लघु शोध प्रबंध), उत्तर बंगाल विश्वविद्यालय, 2021
- थोराता, विमला, दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, अनामिका प्रकाशन, 2008, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)
- सहाय, निरंजन, पच्चीस चौका डेढ़ सौ : ओमप्रकाश वाल्मीकि, इकाई-8, इग्नू विश्वविद्यालय, 2018, नई दिल्ली
- वाल्मीकि, ओमप्रकाश, (भूमिका, जूठन, खंड-1, पृष्ठ-7)

❑❑

डॉ. दिलीप कुमार
इतिहास विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

प्राचीन जैसलमेर राज्य से गुजरने वाले अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्राज्यीय व्यापारिक मार्ग : एक विवेचन

सारांश

प्राचीन जैसलमेर राज्य में विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कृषि कार्य बहुत दुष्कर था तो दूसरी ओर यहां उद्योगों का समुचित विकास भी नहीं हो पाया था परंतु अपनी विशिष्ठ भौगोलिक स्थिति के कारण जैसलमेर राज्य एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था जहां से कई प्रमुख व्यापारिक मार्ग गुजरते थे। व्यापारिक गतिविधियों के कारण राज्य की अच्छी आय हो जाती थी। प्रस्तुत लेख में जैसलमेर राज्य से गुजरने वाले विभिन्न व्यापारिक मार्गों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना

प्राचीन जैसलमेर राज्य की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण यहां वर्षा का नितान्त अभाव था जिसके कारण यहां कृषि कार्य करना बहुत दुष्कर था और पशुपालन ही यहां के लोगों के जीवनयापन का मुख्य आधार था। विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ही यहां किसी प्रकार के उद्योगों का विकास नहीं हो सका। जैसलमेर में रेगिस्तानी क्षेत्र होने के कारण कृषि से होने वाली आय न के बराबर थी। कृषि हेतु परिस्थितियां अनुकूल नहीं होने तथा उद्योगों का विकास नहीं होने के कारण राज्य की आय बहुत सीमित थी। परंतु जैसलमेर भौगोलिक रूप से कई अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय नगरों से जुड़ा होने के कारण एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र माना जाता था और यहां से गुजरने वाले व्यापारियों से प्राप्त होने वाला कर ही राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था।

प्राचीन जैसलमेर राज्य न केवल कुछ महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय वरन् कई अन्तर्राज्य मार्गों से भी जुड़ा हुआ था। भौगोलिक दृष्टि से जहां एक ओर जैसलमेर उत्तर पूर्व में पंजाब, पश्चिम में सिंध, दक्षिण में मालवा व गुजरात तथा उत्तर-पूर्व में दिल्ली व आगरा से सीधा जुड़ा हुआ था। जैसलमेर कई प्रमुख अन्तर्देशीय नगरों जैसे बीकानेर, जोधपुर, कच्छ आदि से भी सीधा जुड़ा हुआ था। मारवाड़ क्षेत्र जो पाली से कच्छ द्वारा सीधा जुड़ा हुआ था अतः जैसलमेर भी मारवाड़ द्वारा गुजरात के महत्वपूर्ण नगरों से सीधा जुड़ा हुआ था। जैसलमेर राज्य चांधन, लाठी, पोकरण, फलोदी, मथानिया मार्ग द्वारा मारवाड़ की राजधानी जोधपुर से सीधा जुड़ा हुआ था।

प्राचीनकाल में जैसलमेर की पहचान दक्षिण एशिया की विशाल व्यापारिक मंडी के रूप में थी। जैसलमेर राज्य भौगोलिक रूप से हैदराबाद, सिन्ध, मुलतान, खैरपुर, अमरकोट, अहमदपुर, भावलपुर, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान एवं मध्य एशिया के कई महत्वपूर्ण नगरों से भी जुड़ा हुआ था। जैसलमेर उन दिनों एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र बन गया था जहां इन क्षेत्रों से आने वाले व्यापारी जैसलमेर में ही अपने माल का आदान-प्रदान कर वापिस लौट जाते थे और इस प्रकार उन्हें रेगिस्तान पार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वापसी यात्रा में वे जैसलमेर में स्थानीय लोगों द्वारा हाथ से निर्मित ऊनी कम्बल, दरियां, गलीचे आदि ले जाते थे।

जैसलमेर मध्य एशिया को शेष भारत से जोड़ता था तथा इसी मार्ग से मध्य एशिया से कई व्यापारी माल लेकर गुजरते थे। ये व्यापारी ऊँटों के काफिलों के रूप में जैसलमेर में प्रवेश करते थे तथा फलौदी, बीकानेर, बाड़मेर तथा जोधपुर राज्य

की तरफ बढ़ जाते थे। वे अपने साथ जो सामग्री लाते थे उन्हें इन राज्यों में बेच कर विनियम के रूप में निर्यात की जाने वाली वस्तुएं खरीद लेते थे। अफगानिस्तान से व्यापारिक काफिलों का यहां आवागमन भी जैसलमेर मार्ग से होता था जो सड़क मार्ग द्वारा मारवाड़ की ओर बढ़ जाते थे। यह मार्ग ऊंट एवं बैलगाड़ी दोनों के लिए उपयुक्त था। जैसलमेर से मारवाड़ मार्ग पर राहगीरों एवं पशुओं को कई स्थानों पर पीने के लिए पानी उपलब्ध हो जाता था। सऊदी अरब तथा मक्का मदीना तीर्थ जाने वाला मार्ग जैसलमेर से होकर ही गुजरता था तथा मुगलकाल में कई मुस्लिम शासकों ने मक्का-मदीना की ओर जाते हुए जैसलमेर में पड़ाव किया।

रेगिस्तानी क्षेत्र में स्थित होने के कारण जैसलमेर राज्य के आसपास के मार्ग कच्चे एवं बहुत टूटे-फूटे तथा संकरे थे। यहां पक्की सड़क मार्गों का नितान्त अभाव था। रेगिस्तानी इलाका होने जल की बहुत कम उपलब्धता होने के कारण घोड़े व बैलगाड़ी द्वारा व्यापार करना असंभव था। इसलिए रेगिस्तानी क्षेत्रों में केवल ऊँटों पर सामान लाद कर ही व्यापारिक मार्ग तय किया था। ऊँट रेगिस्तानी क्षेत्रों में कई दिनों तक बिना जल के यात्रा तय कर लेते थे तथा उनके पैरों की विशेष बनावट के कारण भी ऊँट रेगिस्तानी क्षेत्रों में आसानी से चल पाते थे, अत: उनका उपयोग व्यापार हेतु सामान ढोने के लिए किया जाता था।

प्राचीनकाल में चीन से लेकर रोम तक रेशम का व्यापार होता था। ईराक, ईरान, सीरिया, उज्बेकिस्तान, कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान से होता हुवा यूरोप तक चीनी रेशम का व्यापार होता था जिसे 'सिल्क मार्ग' के नाम भी जाना जाता था। जैसलमेर भी सिल्क मार्ग का एक हिस्सा था। यंहा भी बाहर के देशों से काफी वस्तुओं का आयात निर्यात होता था। लंबे और सुनसान रेगिस्तानी रास्ते से गुजरने वाले सिल्क मार्ग के व्यापारियों के लिए जैसलमेर एक अहम पड़ाव था। हर व्यापारी निश्चित स्थानों तक ही सामान का आदान प्रदान करता था।

चीन से सिल्क मार्ग का दूसरा मार्ग उत्तर भारत के पंजाब से होता हुवा राजस्थान के जैसलमेर से वर्तमान पाकिस्तान के सिंध से होता हुवा समुद्री मार्ग तक पहुंचता था। जैसलमेर के व्यापारी पाकिस्तान से पंजाब तक के बीच ऊँटो के रास्ते सामान की सप्लाई करते थे। बीकानेर भी सिल्क रुट का व्यापारिक केंद्र था। रोम से शराब, कालीन, सोना, चांदी, शीशे लाये जाते थे। भारत से मुख्य रूप से मसाले, हाथी दांत, कपड़े, काली मिर्च और कीमती पत्थर भेजे जाते थे। चीन इस रूट के जरिये चीनी मिट्टी से बने बर्तन और रेशम तथा चाय का व्यापार करता था। अधिकतर सौदागर एक शहर से दूसरे शहर सामान पहुंचाकर अन्य व्यापारियों को बेच देते थे। पर कुछ ऐसे भी थे जो पूरे रुट पर घूमते थे।

प्राचीन जैसलमेर राज्य के प्रमुख व्यापारिक मार्ग

प्राचीन जैसलमेर राज्य न केवल कई महत्वपूर्ण अन्तर्देशीय राज्यों वरन् कई देश के कई महत्वपूर्ण नगरों से भी सीधा जुड़ा हुआ था। जैसलमेर एक ऐसा व्यापारिक केन्द्र था जहां कई महत्वपूर्ण अन्तर्देशीय राज्यों व्यापारी सामान का आदान-प्रदान करते थे। वे अपने साथ लाई वस्तुओं को बेच कई अपनी आवश्यकता की वस्तुएं लेकर पुन: अपने राज्यों को लौट जाते थे। इससे जहां एक ओर उनको भारत के अन्य राज्यों में व्यापार के लिए दुर्गम रेगिस्तान को पार नहीं करना पड़ता था तो दूसरी ओर जैसलमेर राज्य को कर के रूप में अच्छा राजस्व प्राप्त हो जाता था। जैसलमेर पोकरण, फलौदी, जोधपुर से पाली और पालनपुर होते हुए अहमदाबाद से जुड़ा हुआ था।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग

जैसलमेर को अन्य देशों से जोड़ने वाले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग निम्न प्रकार है—

जैसलमेर से मुल्तान—जैसलमेर की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर मुल्तान प्रमुख हिन्दू राज्य था। प्राचीनकाल में यूरोपीय काफिले इसी नगर से होकर बोलन दर्रे के माध्यम से आते जात थे। मुलतान शहर पंजाब और सिंध का संगम स्थल था। मुल्तान व्यापारियों का व्यापार पूरे भारत वर्ष में फैला हुआ था। मुलतानी व्यापारी पश्चिम देशों से माल लाकर पूरे भारत में बेचा करते थे।

मुल्तान से अहमदाबाद—गुजरात का अहमदाबाद शहर मुल्तान से सीधा जुड़ा हुआ था। यह मार्ग मुल्तान से आरंभ होकर भावलपुर से होते हुए जैसलमेर के लौद्रवा से भारत में प्रवेश करता था जहां से पोकरण, फलौदी, जोधपुर, पाली से होते हुए अहमदाबाद तक पहुंचता था।

जैसलमेर से हैदराबाद (सिंध)—जैसलमेर से खैरपुर वाला मार्ग आगे जाकर मीरपुर होते हुए हैदराबाद जाता था। इस मार्ग की कुल दूरी 145 कोस थी। यह मार्ग जैसलमेर से खैरपुर, वीरपुर से हैदराबाद तक विस्तृत था। उस मार्ग पर सिर्फ बैलगाड़ी जो खैरपुर से हैदराबाद तक ही जाती थी, का प्रयोग किया जाता था, शेष यात्रा के लिए ऊंट प्रयुक्त किया जाता था।

जैसलमेर से खेरपुर—प्राचीनकाल में खेरपुर जैसलमेर के पश्चिम में सिन्धु नदी के किनारे बसा एक प्रमुख नगर था। जैसलमेर, खुईवाला, खारो, खतियाला, दार अली सेखपुर से होते हुए खेरपुर से सीधा जुड़ा हुआ था। खेरपुर में कपास का उत्पादन प्रचूर मात्रा में होता था तथा यहां रूई के वस्त्र तथा रेशम की वस्तुएं तैयार की जाती थी। इसके अतिरिक्त यहां चांदी के आभूषण, लाख एवं लकड़ी द्वारा निर्मित वस्तुएं, घोड़ों के थडे, तलवार, ताले, माचिस एवं मिट्टी के बर्तन आदि भी तैयार किये जाते थे। खेरपुर में गलीचे बनाने के उद्योग भी स्थापित थे।

जैसलमेर से उमरकोट व हैदराबाद—जैसलमेर उमरकोट व हैदराबाद (सिंध) को जोड़ने वाला यह मार्ग दूसरा मार्ग गज खुहड़ी, म्याजलार में से होकर गुजरता था। गड़रा (पाकिस्तान) तथा कच्छ भुज जाने वाले कारवां, खेरा एवं देवरों से होकर गुजरते थे। उमरकोट व हैदराबाद (सिंध) को जोड़ने वाला यह मार्ग गज खुहड़ी, म्याजलार में से होकर गुजरता था। गड़रा (पाकिस्तान) तथा कच्छ भुज जाने वाले कारवां, खेरा एवं देवरों से होकर गुजरते थे।

जैसलमेर से रोहरी एवं भक्कर-सख्खर—जैसलमेर से रोहड़ी वाला यह मार्ग छत्रैल, कुछडी, खुईयाला होकर सख्खर, शिकारपुरा, लरकाना, जेकोमाबाद को जोड़ता था। जैसलमेर से रोहडी भक्खर लगभग 100 कोस की दूरी पर था तथा यहां से 12 कोस दूरी पर शिकारपुर तथा सहागढ़ से होकर खैरपुर मीर साहब स्थित है। यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम था, क्योंकि पूरे मार्ग में रेतीले टीले थे। यहां पर आवागमन के साधनों एवं पानी का अभाव था। यह मार्ग ऊंटों के काफिलों के लिए उपयोग में लिया जाता था।

जैसलमेर से शिकारपुर जेकोबाबाद तथा लरकाना—जैसलमेर से रोहरी जाने वाले मार्ग भक्कर से अलग होकर शिकारपुर, जेकोबाबाद एवम् लरकाना की ओर चला जाता था। सिंध की ओर से आने वाला समस्त अनाज इसी मार्ग से आता था। यह मार्ग 120 कोस (लगभग 360 किमी) लम्बा था।

जैसलमेर से अमर कोट—जैसलमेर, भोपा, चेलक, झिंझनयाली, हरसाणी, धारणा, कुटार, अमरकोट। यह मार्ग आगे जाकर मीरवाह, नसीरपुर, सिंधखान की बस्ती होता हुआ सिंध पहुँचता था। इस मार्ग से अमरकोट 85 कोस था व वहां से हैदराबाद 44 कोस पर स्थित था। इस मार्ग से जैसलमेर निचले सिंध एवम् कराची बन्दरगाह से सीधे जुड़े हुआ था।

जैसलमेर से अहमदपुर कोट—जैसलमेर से अहमदपुर कोट मार्ग पर खेरपुर, सबजाली और अंकोरा होकर ऊंट एवं बैलगाड़ी से जाने के लिए मार्ग बना हुआ था। यह जैसलमेर से लाणेला, सोनू, रामगढ़, रणाऊ और तनोट होकर जाता था। इस मार्ग द्वारा मालवाहक ऊंटों पर सिन्ध से जैसलमेर तक सामान लाने-ले जाने का कार्य किया जाता था।

जैसलमेर से बहावलपुर—बहावलपुर मार्ग जैसलमेर को मुल्तान शहर से जोडने वाला प्रमुख मार्ग था। यहां पर मुख्य रूप से जरीदार वस्त्र तैयार किये जाते थे। जल स्रोत प्रचूर मात्रा में होने के कारण यहां चावल, गेंहू, बाजरी आदि की खेती की जाती थी। इस प्रांत में किसी प्रकार का आयात-निर्यात शुल्क नहीं लिया जाता था। यह मार्ग जैसलमेर से निकलकर रामगढ़, सोनू, तनोट, अहमदपुर, खानपुर होते हुए बहावलपुर की ओर जाता था। जैसलमेर-बहावलपुर मार्ग आगे की ओर उपरी सिंध, मुल्तान एवं पंजाब से जुड़ता था जो कि व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र माने जाते थे। यहां मुख्य रूप से गेंहूं, चावल, चना एवं ज्वार बड़ी मात्रा में पैदा होता था जो भारत के विभिनन राज्यों में निर्यात किया जाता था। यहां पर विशेष रूप से रेशम की पैदावार भी अच्छी होती है जिसके कारण यहां रेशम के वस्त्र भी तैयार किये जाते थे जो जैसलमेर मार्ग द्वारा भारत के अन्य हिस्सों में निर्यात किये जाते थे। बहावलपुर राज्य जैसलमेर से सीधा जु?ा होने के कारण यहां से निर्यात मुख्य रूप से जैसलमेर से ही होता था।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग

जैसलमेर को अन्य राज्यों को जोड़ने वाले अन्तर्राज्य व्यापारिक मार्ग निम्न प्रकार है—

जैसलमेर से बीकानेर—जैसलमेर से बीकानेर जाने वाला यह मार्ग सुगम एवं उपयोगी होते हुए भी व्यापारी इस मार्ग का उपयोग कम किया करते थे जिसका मुख्य कारण यह था कि यह मार्ग जोधपुर राज्य से होकर गुजरता था जिसके कारण व्यापारियों को अतिरिक्त कर देना पड़ता था। इस अतिरिक्त कर से बचने के लिए व्यापारी अन्य वैकल्पिक मार्गों का उपयोग किया करते थे। यह मार्ग जैसलमेर से बासनपीर, चांदन, भादरिया, बाप, नोखा से होते हुए बीकानेर की तरफ जाता था। यह मार्ग बैलगाड़ी एवं ऊँट दोनों के लिए सुगम तथा इस मार्ग में व्यापारियों के लिए मीठा पानी भी उपलब्ध था।

नागौर से जैसलमेर—यह मार्ग नागौर से पोकरण-फलौदी होते हुए जैसलमेर तक पहुंचता था। पश्चिम एशिया से आने वाले कारवां पोकरण-फलौदी से नागौर होते हुए दिल्ली की ओर जाते थे। नागौर मारवाड़ का एक महत्वपूर्ण व्यवसायिक केन्द्र था।

जैसलमेर से कच्छ भुज—जैसलमेर गुजरात राज्य से दो मार्गों से जुड़ा हुआ था पहला पाली से पालनपुर होते हुए तथा दूसरा जैसलमेर से कोटड़ी, खुड़ी, झिंझनीयाली, शिव, बाड़मेर होते हुए कच्छ भुज तक। बाड़मेर से कच्छ की ओर जाने वाले मार्ग में बैलगाड़ी एवम् ऊँटों के काफिलों दोनों प्रयोग किया जाता था। यह मार्ग काफी लम्बा होने के कारण यात्रियों को रास्ते में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त इस मार्ग का लम्बा हिस्सा रेगिस्तानी होने के कारण इस मार्ग में व्यापारियों को कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था।

जैसलमेर से पोकरण एवं बालोतरा—जैसलमेर चान्दन, लाठी, पोकरण, धोंकसिरी सोलंकी धूलों, गोपती पचभद्रा, बालोतरा, जैसलमेर से पोकरण 30 कोस तथा बालोतरा 65 कोस की दूरी पर स्थित था। जैसलमेर पोकरण मार्ग द्वारा मारवाड़ की राजधानी जोधपुर से जुड़ा हुआ था। पालीवालों ने इस व्यापारिक मार्गों के माध्ययम से जहाँ सुदूर देश प्रदेशों में अपना व्यापार फैलाया वहीं जैसलमेर और जैसलमेर के अन्य भागों में भी उन्होंने अपने व्यापार पर ध्यान दिया। पालीवालों ने राज्य की राजधानी जैसलमेर की अपेक्षा गाँवों में अपना व्यापार फैलाया तथा वहां बहुत सुन्दर मकान, तालाब, कुएँ, मन्दिर आदि का निर्माण कराया।

जैसलमेर से जोधपुर—जैसलमेर, बासनपीर, चान्दन, लाठी, पोकरण, फलोदी, उधानिया, जोधपुर। यह मार्ग ऊँट एव बैलगाड़ी हेतु उपयोगी था इस मार्ग पर कई स्थानों पर पीने योग्य मीठा पानी भी उपलब्ध हो जाता था।

जैसलमेर से शक गेसों—जैसलमेर से पोकरण व बालोतरा जाने वाले मार्ग पर चांधन, लाठी, पक धोलसिरी, गोपती, पचपदरा, बालोतरा से होकर गुजरता था। मारवाड़ जाने लिए देवीकोट, धनवा, बींजोराई, गूंगा, शिव से होते हुए बाड़मेर तक ऊट एवं बैलगाड़ी से यात्रा कर रेल द्वारा जोधपुर तथा अन्यत्र प्रदेशों में यात्रा की जाती थी। स्पष्ट है कि प्राचीन जैसलमेर रियासत में व्यापार मण्डी होने के कारण सड़क मार्ग के एक विस्तृत जाल की तरफ फैला हुआ था।

जैसलमेर राज्य से गुजरने वाले व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा

जैसलमेर राज्य एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र होने के कारण यहां के शासकों ने भी चुंगी से होने वाली आय को बढ़ाने के लिए कई प्रयास किये। उस समय रेगिस्तानी क्षेत्रों में लूटपाट की घटनाएं आम बात थी। इसलिए शासकों ने व्यापारियों की सुरक्षा हेतु विशेष व्यवस्थाएं की तथा उन्होंने व्यापारियों को उनकी सुरक्षा के लिए आश्वस्त किया। मुगल सम्राट अकबर ने भी रेगस्तिानी व्यापारिक मार्गों से गुजरने वाले व्यापारियों को उचित सुरक्षा एवं सुविधाएं उपलब्ध कराने का आदेश दिया। मुगल शासक अकबर द्वारा फरमान जारी किये जाने से इन रेगिस्तानी मार्गों पर होने वाली लूटपाट एवं लुटेरों का आतंक समाप्त हो गया। इसके अतिरिक्त इन रेगिस्तानी इलाकों में चूंकि व्यापारियों से अच्छी मात्रा में कर प्राप्त होता था, अत: यहां के शासकों ने व्यापार को बढ़ावा देने के लिए व्यापारियों को सुविधाएं भी प्रदान की। रेगिस्तानी मार्गों में जैसलमेर, फलौदी, बीकानेर, अमरकोट, बाड़मेर, भटनेर, मेडता आदि मार्ग सम्मिलित थे जो गुजरात, आगरा को सिंध से जोड़ते थे।

जैसलमेर राज्य में शासकों द्वारा उनके क्षेत्र से गुजरने वाले व्यापारियों हेतु जल एवं उनके साथ चलने वाले जानवरों हेतु चारे की व्यवस्था तक की जाती थी। उस काल में मराठा लूटमारों द्वारा पूर्वी तथा दक्षिणी राजस्थान में लूटमार की घटनाएं बढ़ जाने के कारण व्यापारियों ने मध्य भारत की अपेक्षा रेगिस्तानी क्षेत्रों के आवागमन करना अधिक उचित समझा। यही कारण था कि मध्य भारत से व्यापारी सिंध तथा पंजाब की ओर जाने के लिए बीकानेर तथा जैसलमेर मुख्य व्यापारिक मार्ग थे, का उपयोग करने लगे थे। यही एक मुख्य कारण था कि 18वीं शताब्दी में बीकानेर तथा जैसलमेर राज्यों की चुंगी आय में वृद्धि दर्ज की गई।

निष्कर्ष

प्राचीन जैसलमेर राज्य में विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कृषि कार्य जीवनयापन का मुख्य आधार नहीं था और लोगों का जीवन पशुपालन और सीमित व्यावसायिक गतिविधियों पर ही निर्भर था। इस कारण राज्य की आय भी बहुत सीमित थी। अपनी विशिष्ठ भौगोलिक स्थिति के कारण जैसलमेर कई अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्राज्यीय मार्ग गुजरते थे इसी कारण जैसलमेर राज्य एक मुख्य व्यापारिक केन्द्र बन गया था और यहां से गुजरने वाले व्यापारियों से राज्य को चुगी के रूप में अच्छी आय प्राप्त हो जाती थी तो दूसरी ओर स्थानीय हथकरघा और हस्तशिल्प उत्पाद भी दूसरे राज्यों में भेजे जाते थे। अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि प्राचीन जैसमलेर से गुजरने वाले व्यापारिक मार्गों से गुजरने वाले व्यापारियों से न केवल राज्य को अच्छी आय प्राप्त होती थी और दूसरी ओर राज्य में व्यावसायिक गतिविधियों को भी बढ़ावा मिलता था।

सन्दर्भ

1. दी इम्पिरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, जिल्द XXI, पृ. 133, 1908
2. शर्मा नन्द किशोर, सिन्ध-हिन्द का इतिहास, सीमान्त प्रकाशन, जैसलमेर, पृ. 46
3. आर्सिकल के.डी., राजपूताना गजेटियर, खण्ड 3ए, 1909, पृ. 27।
4. रेकार्ड मेहकमा खास जैसलमेर, फाईल नं. 78, वर्ष 1898, ट्रेड इन केमल्स इन कराची, पृ. 4, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
5. टॉड, जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्युटिज ऑफ राजस्थान सं. विलियम क्रूक, खण्ड 3, पुन: मुद्रित मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971, पृ. 158
6. वाल्टर सीकेएम, गजेटियर ऑफ मारवाड़, मालानी एवं जैसलमेर, पृ. 124
7. शर्मा जी.एन, सोशियल लाईफ इन मेडिवल राजस्थान, पृ. 324
8. गुप्ता, बी.एल., ट्रेड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान, पृ. 113
9. पुरोहित, डॉ. अनिल, राजस्थान में व्यापार और वाणिज्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 121
10. रेकार्ड महकमा खास जैसलमेर, फाईल सं. 1208, बांधक नं. 79, 1939, पोकरण जैसलमर रोड़ फाम जैसलमेर टू बाड़मेर।
11. राजपूताना गजेटियर, पृ. 258
12. विलियम फिंच, उद्धृत, रोड्स एण्ड कम्यूनिकेशन इन मुगल इण्डिया, फारूकी, ए.के.एम. पृ. 62, इदाराह-ए-अदा बियत-ए-दिल्ली, दिल्ली, 1977
13. सनद परवाना, बही संख्या 14, मार्गशीष बदी 13, वि.सं. 1831/1774 ई. जोधपुर रिकार्डस, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

❑❑

वंदिता (शोध छात्र, योग)
सेम ग्लोबल विश्वविद्यालय
भोपाल

डॉ. शशिकांत त्रिपाठी (पर्यवेक्षक)
एसोसिएट प्रोफेसर, योग विज्ञान विभाग
सेम ग्लोबल विश्वविद्यालय, (मध्य प्रदेश) भोपाल

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

वर्तमान जीवन में हठयोग में वर्णित योगांगों का प्रभाव

सारांश

महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्तवृत्ति के निरोध का नाम योग है. (योगश्चितवृत्तिनिरोधः)। इसकी स्थिति और सिद्धि के निमित्त कतिपय उपाय आवश्यक होते हैं, जिन्हें 'अंग' कहते हैं और जो संख्या में आठ माने जाते हैं। अष्टांग योग के अंतर्गत प्रथम पांच अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार) 'बहिरंग' और शेष तीन अंग (धारणा, ध्यान, समाधि) 'अंतरंग' नाम से प्रसिद्ध हैं। बहिरंग साधना यथार्थ रूप से अनुष्ठित होने पर ही साधक को अंतरंग साधना का अधिकार प्राप्त होता है। इसी प्रकार महर्षि घेरंड द्वारा दी गई योग शिक्षा को सप्तांग योग के नाम से जाना जाता है व हठयोग के ग्रंथों में छः अंगों का वर्णन किया गया है। हठ रत्नावली जिसके रचयिता महायोगी श्रीनिवास भट्ट ने चतुरंग योग बताया है। गोरक्षनाथ, द्वारा लिखी गई गोरख शतक षडंग योग का वर्णन किया गया है। 'यम' और 'नियम' वस्तुतः शील और तपस्या के द्योतक हैं। यम का अर्थ है संयम जो पांच प्रकार का माना जाता है : (क) अहिंसा, (ख) सत्य, (ग) अस्तेय (चोरी न करना अर्थात् दूसरे के द्रव्य के लिए स्पृहा न रखना)। इसी भांति नियम के भी पांच प्रकार होते हैं : शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय (मोक्षशास्त्र का अनुशलीन या प्रणव का जप) तथा ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर में भक्तिपूर्वक सब कर्मों का समर्पण करना)। आसन से तात्पर्य है - स्थिर और सुख देने वाले बैठने के प्रकार (स्थिर सुखमासनम्) जो देहस्थिरता की साधना है। आसन के द्वारा जप होने पर श्वास प्रश्वास की गति के विच्छेद का नाम प्राणायाम है। बाहरी वायु का लेना श्वास और भीतरी वायु का बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है। प्राणायाम प्राणस्थैर्य की साधना है। इसके अभ्यास से प्राण में स्थिरता आती है और साधक अपने मन की स्थिरता के लिए अग्रसर होने लगता है। अंतिम तीनों अंग मनःस्थैर्य का साधना है। प्राणस्थैर्य और मनःस्थैर्य की मध्यवर्ती साधना का नाम 'प्रत्याहार' है। प्राणायाम द्वारा प्राण के अपेक्षाकृत शांत होने पर मन का बहिर्मुख भाव स्वभावतः शांत हो जाता है। फल यह होता है कि इंद्रियाँ अपने बाहरी विषयों से हटकर अंतर्मुखी हो जाती है। इसी का नाम प्रत्याहार है (प्रति = प्रतिकूल, आहार = वृत्ति)।

अब मन की बहिर्मुखी गति निरुद्ध हो जाती है और अंतर्मुख होकर स्थिर होने की चेष्टा करता है। इसी चेष्टा की आरंभिक दशा का नाम धारणा है। देह के किसी अंग पर (जैसे हृदय में, नासिका के अग्रभाग पर) अथवा बाह्यपदार्थ पर (जैसे इष्टदेवता की मूर्ति आदि पर) चित्त को लगाना 'धारणा' कहलाता है (देशबन्धश्चितस्य धारणा; योगसूत्र 3.1)। ध्यान इसके आगे की दशा है। जब उस देशविशेष में ध्येय वस्तु का ज्ञान एकाकार रूप से प्रवाहित होता है, तब उसे 'ध्यान' कहते हैं। धारणा और ध्यान दोनों दशाओं में वृत्तिप्रवाह विद्यमान रहता है, परंतु अंतर यह है कि धारणा में एक वृत्ति से विरुद्ध वृत्ति का भी उदय होता है, परंतु ध्यान में सदृशवृत्ति का ही प्रवाह रहता है, विसदृश का नहीं। ध्यान की परिपक्वावस्था का नाम ही समाधि है। चित्त आलंबन के आकार में प्रतिभासित होता है, अपना स्वरूप शून्यवत् हो जाता है और एकमात्र आलंबन ही प्रकाशित होता है। यही समाधि योग का अंतिम लक्ष्य है।

उपरोक्त विवरण में हठयोग शास्त्र में मिलने वाली योग के अंगों की प्रक्रिया की एक छोटी सी झलक भर है। इसी प्रकार से योग के अंगों के विभिन्न आयाम व उनकी प्रक्रियाओं का योग सिद्धांत के आधार पर वर्णन व अनगिनत सूत्र संकेत अन्य ग्रंथों में भी देखने को मिलते हैं।

परिचय : योग की परिभाषा

'योग' शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घं' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'योग' शब्द का अर्थ हुआ - समाधि अर्थात चित्त वृत्तियों का निरोध। वैसे 'योग' शब्द 'युजिरयोग' तथा 'युजसंयमने' धातु से भी निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः योगफल, जोड़ तथा नियमन होगा। आगे योग में हम देखेंगे कि आत्मा और परमात्मा के विषय में भी योग कहा गया है।

हठ योग की परिभाषा एवं उसका अर्थ

हठ का शाब्दिक अर्थ हठपूर्वक किसी कार्य करने से लिया जाता है। हठ प्रदीपिका पुस्तक में हठ का अर्थ इस प्रकार दिया है—

हकारेणोच्यते सूर्यष्ठकार चन्द्र उच्यते।
सूर्या चन्द्रमसो र्योगाद्धठयोगोऽभिधीयतें।

'ह' का अर्थ सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ चन्द्र बताया गया है। सूर्य और चन्द्र की समान अवस्था हठयोग है। शरीर में कई हजार नाड़ियाँ है उनमें तीन प्रमुख नाड़ियों का वर्णन है, वे इस प्रकार हैं। सूर्यनाड़ी अर्थात पिंगला जो दाहिने स्वर का प्रतीक है। चन्द्रनाड़ी अर्थात इड़ा जो बायें स्वर का प्रतीक है। इन दोनों के बीच तीसरी नाड़ी सुषुम्ना है। इस प्रकार हठयोग वह क्रिया है जिसमें पिंगला और इड़ा नाड़ी के सहारे प्राण को सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कराकर ब्रह्मरन्ध्र में समाधिस्थ किया जाता है। हठ प्रदीपिका में हठयोग के चार अंगों का वर्णन है—आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध, तथा नादानुसंधान।

घेरण्ड संहिता में सात अंग—षटकर्म, आसन, मुद्राबन्ध, प्राणायाम, ध्यान, समाधि।

जब कि योगतत्वोपनिषद में आठ अंगों का वर्णन है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

योग शिखोपनिषद में योग की परिभाषा देते हुए कहा है कि अपान व प्राण, रज व रेतस, सूर्य व चन्द्र तथा जीवात्मा व परमात्मा का मिलन योग है।

उपरोक्त विवरण में योग शास्त्र में मिलने वाली योग के अंगों की प्रक्रिया की एक छोटी सी झलक भर है। इसी प्रकार से योग के अंगों के विभिन्न आयाम व उनकी प्रक्रियाओं का योग सिद्धांत के आधार पर वर्णन व अनगिनत सूत्र संकेत अन्य ग्रंथों में भी देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न योग के अंगो का विवेचन किया गया है।

हठयोग की उत्पत्ति

श्री आदिनाथायनमोऽस्तुतस्मैयेनोपदिष्टाहठयोगविद्या।
विभ्राजतेप्रोन्नतराजयोगमारोदमिच्छोरधिरोहिणीव॥

हिंदू किंवदंतियों के अनुसार, भगवान शिव को हठयोग के प्रतिपादक का श्रेय दिया जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि एकांत द्वीप पर, यह मान कर कि कोई और उनकी बात नहीं सुनेगा, उन्होंने अपनी पत्नी देवी पार्वती को हठयोग का ज्ञान दिया—लेकिन एक मछली ने पूरे प्रवचन को सुन लिया, जो अभी भी शेष है। मछली (= मत्स्य) बाद में एक सिद्ध (= जादुई शक्तियां प्राप्त) बन गई और मत्स्येंद्रनाथ के नाम से जानी जाने लगी। मत्स्येंद्रनाथ ने अपने शिष्य गोरक्षनाथ और एक अंगहीन व्यक्ति, चौरंगी को हठ योग सिखाया। हठयोग इस प्रकार अनुशासनात्मक उत्तराधिकार में पारित किया गया था।

ऐतिहासिक रूप से, शास्त्रीय हठ योग को मुख्य रूप से हिंदू धर्म के तीन ग्रंथों में वर्णित किया गया है : हठ योग प्रदीपिका योगी आत्माराम द्वारा (15वीं शताब्दी ईसा पूर्व), अज्ञात लेखक द्वारा शिव संहिता (16वीं शताब्दी ईसा पूर्व) और योगी घेरंडा (17वीं शताब्दी ईसा पूर्व) द्वारा घेरंडा संहिता। आत्माराम ने पहले के हठ योग ग्रंथों का संकलन किया। उन्होंने अपनी प्रणाली का परिचय दिया, जो आसन (= शारीरिक आसन) और प्राणायाम (= श्वास तकनीक) पर आधारित है, उच्च ध्यान या योग के उद्देश्य से शरीर की शारीरिक शुद्धि के लिए प्रारंभिक चरण के रूप में। हठ योग प्रदीपिका में षट्कर्म (शुद्धि), चक्र (ऊर्जा के केंद्र) और नाड़ियों (ऊर्जा चैनल), कुंडलिनी (= वृत्ति), बंध (= मांसपेशियों के ताले), क्रिया (सफाई तकनीक), शक्ति (= पवित्र बल) और के बारे में जानकारी शामिल है। अन्य विषयों के बीच मुद्राएं (= प्रतीकात्मक इशारे)।

पश्चिम में हठ योग के कई आधुनिक स्कूल तिरुमलाई कृष्णमाचार्य के स्कूल से निकले हैं, जिन्होंने 1924 से 1989 में अपनी मृत्यु तक पढ़ाया था। पश्चिम में योग को लोकप्रिय बनाने में प्रमुख उनके छात्रों में के. पट्टाभि जोइस (1915–2009, के लिए प्रसिद्ध थे) जोरदार अष्टांग विनयसा शैली), बी.के.एस. अयंगर (1918–2014, सरेखण और प्रॉप्स के उपयोग पर जोर देने के लिए प्रसिद्ध), इंद्र देवी (1899–2002, समर्पित योगियों में पहली विदेशी महिला) और कृष्णमाचार्य के बेटे टीके वी देसिकाचार (जन्म 1938, अभी भी जीवित और अच्छी तरह से, योग के लिए प्रसिद्ध हैं। और वैदिक मंत्रोच्चार)।

भारत के भीतर और बाहर प्रभाव की एक अन्य प्रमुख धारा ऋषिकेश के स्वामी शिवानंद (1887–1963) और स्वामी विष्णु-देवानंद (अंतर्राष्ट्रीय शिवानंद योग वेदानंद केंद्रों के संस्थापक) और बिहार स्कूल ऑफ योग के स्वामी सत्यानंद सहित उनके कई शिष्य हैं।

हठ योग में वर्णित योगांगों का समन्वयात्मक वर्णन

योगशास्त्र के अंतर्गत आने वाले ग्रंथों में योग के अंगों का सूत्र संकेत समाहित है इन ग्रंथों में वेद उपनिषद हठयोग ग्रंथ हठयोग प्रदीपिका घेरंड संहिता विशिष्ट सहिंता शिवसंहिता योगउपनिषद आदि प्रमुख ग्रंथों में योग के अंगो का वर्णन है।

इन ग्रंथों में योग के अंगों की चर्चा का उल्लेख मिलता है जिस प्रकार पतंजलि योगदर्शन में अष्टांग योग के अंगों की चर्चा की गई है, महर्षि पतंजलि अष्टांगयोग का वर्णन इस प्रकार करते हैं यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि योग के आठ अंग है। (2/29) पतंजलि योग सूत्र अष्टांग योग के अंतर्गत प्रथम पांच अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार) 'बहिरंग' और शेष तीन अंग (धारणा, ध्यान, समाधि) 'अंतरंग' नाम से प्रसिद्ध हैं।

वेदों में योगंगो का वर्णन

वेदों में योग के अन्य ग्रंथों की भांति योग के अंगो का प्रत्यक्ष वर्णन तो मिलता है परंतु परोक्ष रूप से योग के विभिन्न अंगों का प्रतिपादन वेदों की ऋचाओं में देखा जा सकता है। वेदों के अंतर्गत यम, नियम, के समान जीवन को मानसिक तथा व्यवहारिक रूप से परिष्कृत करने वाले विभिन्न योगांगो का वर्णन अलग-अलग स्थानों पर मिलता है उनमें से कुछ इस प्रकार है।

यजुर्वेद (40/1), ऋग्वेद (2/28/11), (1/41/8), (1/41/9), (1/54/7), (1/23/5), (5/51/2) सामवेद (4/29/7), (4/26/6)

योगंगो के संदर्भ में विभिन्न उपनिषद में वर्णन किया गया है योगंगो से संबंधित मुख्य उपनिषद का वर्णन इस प्रकार है।

अमृतनादउपनिषद् : इसमें षड योगांगों का वर्णन है। प्रत्याहार ध्यान प्राणायाम धारणातक्र और समाधि यह षडगयोग कहलाते हैं।

तेजोबिंदु उपनिषद् (1/15/16), ध्यानबिंदु उपनिषद् (41, 42), योगकुंडिल्य उपनिषद् (1/4, 1/8), शांडिल्य उपनिषद् (1/1), जाबलबिंदु उपनिषद् (3/1, 2) (8/9)।

अध्ययन का उद्देश्य

हठयोग की गहराई को जानने के लिए योग साहित्य का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

1. हठयोग व्यक्ति की शारीरिक व आत्मिक शक्ति को बढ़ाता है।
2. योगांगो के द्वारा ही वैयक्तिक एवं सामाजिक समरसता, शारीरिक स्वास्थ्य, बौद्धिक जागरण, मानसिक शान्ति एवं आत्मिक आनन्द की अनुभूति हो सकती है।
3. योगंगो के द्वारा तर्क शक्ति का भी विकास करता है एवं कौशल को बढ़ाता है। योग की क्रियाओं द्वारा तार्किक शक्ति एवं कार्य कुशलता में गुणात्मक प्रभाव होने से आत्म विश्वास भी बढ़ता है।

योगांगो का आधुनिक जीवन में लाभ

योग के अंगो अर्थात् योगांगो के द्वारा विद्या पहले मनुष्य को उसकी अपनी आभ्यंतरिक अवस्थाओं वे पर्यवेक्षण का इस प्रकार उपाय दिखा देती है, कि मन ही उस पर्यवेक्षण का यंत्रा है। मनोयोग की शक्ति का सही नियमन कर जब उसे अंतर्जगत की ओर परिचालित किया जाता है, तभी वह मन का विश्लेषण कर सकती है। और तब उस ज्ञानरूपी प्रकाश से हम समझ सकते हैं कि अपने मन के भीतर क्या घट रहा है। मन की शक्तियां इधर उधर बिखरी हुई प्रकाश की किरणों के समान हैं। जब उन्हें वशीभूत किया जाता है, तब वे सब आलोकित कर देती हैं। यही ज्ञान का हमारा एकमात्र उपाय है। विवेकख्याति की प्राप्ति हेतु योगांगो के अभ्यास के द्वारा सारी अशुद्धियाँ तब तक कम नहीं होती जब तक कि आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश उपलब्ध नहीं होता है। योगांगों के अभ्यास से जैसे जैसे मन और बुद्धि से मल, विक्षेप हटते जाते हैं, वैसे आध्यात्मिक आलोक की उपलब्धि प्राप्त होती जाती है। आध्यात्मिक उन्नति की सबसे बड़ी बाधा अविद्या है। अविद्या से अस्मिता, अस्मिता उन समस्त विकारों की निवृत्ति हेतु हठ ग्रंथो में योगांगो को योग का प्रमुख साधन माना है। योगांगो के विभिन्न अंगों का अभ्यास योग साधक को साधना करने लिए आवश्यक होता है। इससे शरीर, मन की अशुद्धियाँ दूर होती हैं और क्रमशः अभ्यास से आध्यात्मिक उपलब्धियों की प्राप्ति होने लगती है।

वर्तमान जीवन में योगांगों का प्रभाव

आधुनिक युग में अपने व्यस्त जीवन में संतोष पाने के लिए लोग योग करते हैं जिस में हठ योग महत्वपूर्ण माना जाता है

हठयोग से न केवल व्यक्ति का तनाव दूर होता है बल्कि मन को शांति भी प्राप्त होती है योग ने केवल हमारे मस्तिष्क को ताकत पहुंचाता है बल्कि हमारे शरीर की आंतरिक व बाह्य शुद्धि भी करता है आजकल सामान्यतः लोग मोटापे, थायराइड, जोड़ों में दर्द इत्यादि बीमारियों से परेशान हैं उनके लिए योग बहुत फायदेमंद है योग के फायदे से आज सब ज्ञात है जिसके कारण योग विदेशों में भी प्रसिद्ध माना जाता है।

अयं तु परमोधर्मो यद्योगेनात्म दर्शनम्। योग से आत्मदर्शन कर लेना परमधर्म है।

योगाभ्यास से शरीर में हल्कापन, निरोगता, मन की स्थिरता, शरीर में ओज की वृद्धि, सुगंध की वृद्धि करता हैं एवं रोग शोक से छुटकारा होता है।

हठयोग के माध्यम से शारीरिक मानसिक व प्राणिक शक्तियों का संतुलन होता है। हठयोग के माध्यम से अन्य योगसाधनाओ की पृष्ठभूमि तैयार होती हैं।

हठयोग योगिक चिकित्सा पक्ष के तीन आयामों को उन्नत करता है—

योगिक चिकित्सा के आयाम

- **उपचारात्मक** : रोग से पीड़ित व्यक्ति योगिक अभ्यास द्वारा स्वस्थ महसूस करता है।

- **निरोधक** : यह वह संदेह है कि रोग होने वाला है और खतरे की घंटी से सजग होकर योगाभ्यास प्रारंभ किया जाता है।
- **स्वास्थ्यवर्धक** : कोई बीमारी न होने पर यौगिक अभ्यास शारीरिक, मानसिक क्षमताओं को बढ़ाता है और उनमें वृद्धि करता है।

निष्कर्ष

योगशास्त्रों के गहन अवलोकन तथा इसमें निहित योग के अंगों से संबंधित सूत्र संकेतों के अध्ययन से पता चलता है कि हठयोग ग्रंथों में भिन्न-भिन्न योग के अंगो का विवरण दिया गया है, इसी दृष्टि से योग के अंगो का समन्वयात्मक अध्ययन की संभावना बनती है। योगशास्त्रो में अध्ययन करने के पश्चात पता चलता है कि कहीं यम के दस प्रकार देखने को मिलते हैं कहीं यम के पांच प्रकार देखने को मिलते हैं उसी प्रकार नियम के दस प्रकार या पाँच प्रकार देखने को मिलते हैं और योगशास्त्रों में आसनों का विवरण भी भिन्न-भिन्न दिया गया है और लाभ भी कहीं-कहीं अलग देखने को मिलता है ठीक इसी प्रकार प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान तथा समाधि इन सभी का भिन्न-भिन्न विवरण देखने को मिलता है इस शोध कार्य का औचित्य यही है किस भी ग्रंथों में दिए गए योग अंगों का समन्वय कर उनका अध्ययन किया जा सके, इससे योग के अंगो का सही ढंग से अध्ययन करने के लिए एक उपयुक्त संभावना बनेगी। उपरोक्त विवरण से इस शोध के पूर्णता मौलिक व औचित्यपूर्ण बनने की संभावना बनती है, इस पर किए जाने वाले अनुसंधान से योग साहित्य में सर्वथानवीन आयाम का विकास होगा।

सहायक ग्रंथ

1. मिस्टर कुमार विकास, (2018), द योगा साइंस, चौखम्भा सुभरती प्रकशन, (भारतीय संस्कृति एव मसाहित्य तथा वितरक)
2. www.chaukhamba.co.in
3. मिस्टर गोयनदं का हरि कृष्णदास, ईशावास्य उपनिषद गीताप्रेस, गोरखपुर
4. सरस्वती स्वामी निरंजनानंद, घेरंडसंहिता योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार
5. गंगा दर्शन मुंगेर बिहार
6. झा डॉक्टर पीतांबर, स्वामी दिगंबरजी, (2017)
7. कुमार सिंह विशाल रवि केसरा (2019)
8. हठप्रदीपिका, केवल्याधाम योग संस्थान लोनावला, केवल्याधाम स्वामी कुवलयानंद, योग और योगी
9. umar Sandeep & Varma Kiran, (March 2019). Importance of ashtanga yoga, Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education | Multidisciplinary Academic Research.
   http://www.scienceofyoga.co.uk/blog/origins-hatha-yoga#.

❑❑

दुर्गेश राय
शोध छात्र
वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय
जौनपुर (उ.प्र.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

तहसील सिकन्दरपुर (जनपद-बलिया) उत्तर प्रदेश का भौतिक स्वरूप : एक भौगोलिक अध्ययन

शोध सारांशिका

''भौतिक स्वरूप'' का अध्ययन एक ऐसा पक्ष है जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर स्पष्टत: परिलक्षित होता है। नवाचार प्रत्येक समाज एवं स्थान पर घटित होने वाली आधुनिकता से सम्बन्धित एक प्रक्रिया है। यह नवोन्मेषी विचारधारा का प्रतिफल है जिसके परिणामस्वरूप समाज में विविध प्रकार की विचारधाराओं का सूत्रपात होता है। ''भौतिक स्वरूप''

एक ऐसा बहुद्देशीय अध्ययन है जिसके माध्यम से भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक सरोकारों का अध्ययन सुगमतापूर्वक हो जाता है। यह अध्ययन ग्रामीण विकास में सहायक सिद्ध होगा साथ ही विकास को एक सार्थक दिशा प्रदान करने हेतु एवं नीति निर्धारकों एवं विकास हेतु कार्य योजना बनाने वाले योजनाकारों के लिये नूतन मार्ग को भी प्रशस्त करेगा।

मुख्य शब्द—टीले, कटान, नाला, ताल, उफान, सम्यक, धनखर मिट्टी।

स्थिति, सीमा एवं विस्तार

सिकन्दरपुर तहसील उत्तर प्रदेश राज्य के सुदूरवर्ती पूर्वी क्षेत्र में स्थित आजमगढ़ मण्डल के बलिया जनपद की एक सीमावर्ती तहसील है। प्रारम्भ में यह तहसील बांसडीह तहसील का उत्तरी भाग था परन्तु कुछ वर्ष पूर्व ही यह तहसील बनाया गया है। अध्ययन क्षेत्र का अक्षांशीय विस्तार 25°55′ उत्तरी से 26°8′ उत्तरी अक्षांश के मध्य एवं देशान्तरीय विस्तार 83°55′ पूर्वी से 84°7′ पूर्वी के मध्य है। इस तहसील के अन्तर्गत नवानगर विकाससखण्ड (क्षेत्रफल 17518 हेक्टेयर), पन्दह विकासखण्ड (क्षेत्रफल 16344 हेक्टेयर) एवं मनियर विकासखण्ड का आंशिक भाग (क्षेत्रफल 8792 हेक्टेयर) आते हैं। इस प्रकार यह तहसील तीन विकासखण्डों की सीमा से आबद्ध सिकन्दरपुर तहसील की पूर्वी सीमा का निर्धारण बांसडीह तहसील की बड़सरी जागीर, बड़ागांव एवं शहरी ग्राम मनियर के द्वारा होता है जबकि पश्चिमी सीमा का निर्धारण रसड़ा तहसील के द्वारा होता है। अध्ययन क्षेत्र की उत्तरी सीमा पर घाघरा नदी का प्रवाह क्षेत्र है एवं नदी के उत्तर में देवरिया जनपद स्थित है। दक्षिणी सीमा पर बांसडीह तहसील का विस्तार है।

सिकन्दरपुर तहसील अपने गठन के पूर्व बांसडीह तहसील का ही एक भाग था परन्तु वर्ष 1994 में यह तहसील स्वतंत्र अस्तित्व में आयी। प्रशासनिक दृष्टिकोण से इसमें तीन विकासखण्ड नवानगर, पन्दह एवं मनियर (आंशिक) आते हैं। इस तहसील के अन्तर्गत 24 न्याय पंचायतें एवं 241 ग्राम सभायें आती हैं। नवानगर विकासखण्ड 10 न्याय पंचायतों एवं 46 ग्रामसभाओं, पन्दह विकासखण्ड 9 न्याय पंचायतों एवं 40 ग्रामसभाओं तथा मनियर विकासखण्ड (आंशिक) 5 न्याय पंचायतों एवं 24 ग्रामसभाओं से आबद्ध है।

उच्चावच

किसी क्षेत्र के उच्चावच के अध्ययन से वहाँ की मिट्टी, अपवाह, वनस्पतियों, नदियों के प्रवाह की दिशा, संरचनात्मक विशेषताओं आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। अध्ययन क्षेत्र घाघरा नदी के तट पर बसा हुआ एक सघन बसाव वाला क्षेत्र है। समुद्र तल से इसकी औसत ऊँचाई 60.86 मी. है। क्षेत्र के उच्चावचीय स्वरूप पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट होता है कि इसका उत्तरी पश्चिमी भाग अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा है एवं दक्षिणी पूर्वी भाग तुलनात्मक रूप से कम ऊँचाई वाला भाग है। घाघरा नदी का प्रवाह भी इसी उच्चावच का अनुसरण करता है। घाघरा नदी द्वारा किये गये अपरदन के कारण एवं प्राकृतिक नालों एवं जल जमाव क्षेत्रों के कारण यत्र तत्र अल्प विषमता दृष्टिगत होती है।

भौतिक विभाजन

अध्ययन क्षेत्र के भौतिक विभाजन हेतु उच्चावच एवं घाघरा नदी के प्रवाह दिशा एवं प्रवाह क्षेत्र को ही मुख्य आधार बनाया गया है जिसके आधार पर अध्ययन क्षेत्र के भौतिक स्वरूप को समझने का प्रयास किया गया है। (चित्र 2)

भौतिक बनावट एवं घाघरा नदी के अपवाह क्षेत्र के आधार पर शोधार्थी द्वारा इसे तीन भौतिक भागों में विभक्त किया गया है—

1. घाघरा तटीय निम्न भूमि
2. मध्यवर्ती उच्च भूमि
3. दक्षिणी निम्न भूमि

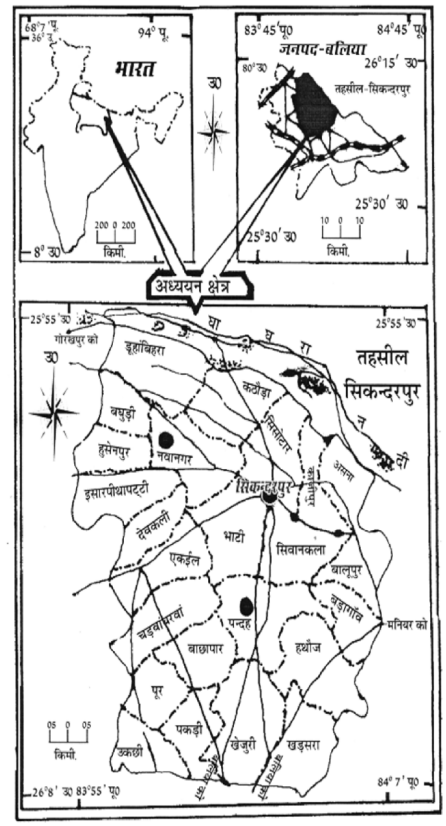

चित्र 1.2 : तहसील सिकन्दरपुर : स्थिति, सीमा और विस्तार

1. घाघरा तटीय निम्न भूमि

अध्ययन क्षेत्र के अपवाह हेतु सबसे महत्वपूर्ण घाघरा नदी का प्रवाह इसी क्षेत्र से होकर होता है। नदी के प्रवाह के कारण यह क्षेत्र तटीय निम्न भूमि के अन्तर्गत आता है। नदी के तीव्र अपरदन के कारण यहाँ व्यापक धरातलीय विषमता दृष्टिगत होती है। यहाँ अपेक्षाकृत न्यून ऊँचाई वाले रेत के टीले एवं नदी तटीय स्थलाकृतियां दृष्टिगत होती हैं। नदी के द्वारा किये गये अनवरत अपरदन के कारण इसका स्वरूप लगातार परिवर्तित हो रहा है एवं यह क्षेत्र और अधिक निम्न भूमि के रूप में परिवर्तित होती जा रही है। यह क्षेत्र प्रतिवर्ष बाढ़ की विभीषिका से प्रभावित होता है साथ ही कृषि योग्य भूमि का भी व्यापक मात्रा में कटाव होता है। यह क्षेत्र घाघरा नदी के प्रवाह के लगभग समान्तर 8540 हेक्टेयर भूमि को आच्छादित करता है जो सम्पूर्ण क्षेत्रफल का लगभग 20 प्रतिशत है। घाघरा नदी का प्रवाह क्षेत्र होने के कारण यह भाग विभिन्न धरातलीय विषमताओं से युक्त है साथ ही जलोढ़ मृदा के निक्षेप से निर्मित मैदान होने के कारण इसका अपरदन भी व्यापक मात्रा में हुआ है। इसके अन्तर्गत डूहा बिहरा, कठौड़ा, लिलकर, सिसोटार, काजीपुर, असना एवं नदी प्रवाह के निकटवर्ती अन्य गाँव आते हैं जो प्रतिवर्ष बाढ़ से जल प्लावित हो जाते हैं एवं कटान से भी प्रभावित हो जाते हैं।

निम्नवर्ती नदी तटीय क्षेत्र होने के कारण इस क्षेत्र में बहुत से बरसाती नाले भी प्रवाहित हो कर घाघरा नदी में मिल जाते हैं एवं छोटे छोटे तालों का भी निर्माण करते हैं।

2. मध्यवर्ती उच्च भूमि

यह भाग नदी के प्रवाह से प्रभावित नहीं हुआ है। साथ ही उच्च भूमि होने के कारण नदी की बाढ़ क्रिया से भी प्रभावित नहीं हुआ है। इस क्षेत्र में छोटे छोटे नाले प्रवाहित होते हैं जिसमें उत्तर पूर्व में बहेरा, दक्षिण पूर्व में बहेरी एवं उत्तर में उसारी प्रवाहित होने वाले प्रमुख नाले हैं। यहाँ की मृदा जलोढ़ प्रकार की है। अध्ययन क्षेत्र की मध्यवर्ती उच्च भूमि होने के कारण इस क्षेत्र में नालों का प्रवाह पश्चिम दिशा को छोड़ कर लगभग सभी दिशाओं में होता है। मध्यवर्ती उच्च भूमि का विस्तार इस क्षेत्र के 21560 हेक्टेयर भूमि पर है जो सम्पूर्ण क्षेत्रफल का 50.56 प्रतिशत है। इसके अन्तर्गत नवानगर, कोथ, बघुड़ी, इसार पीथापट्टी, भाटी, करमौता, चड़वां बरवां, हथौज, पन्दह, बालूपुर, महथापार, असना, आदि गांव आते हैं। इस क्षेत्र की समुद्र तल से औसत ऊँचाई 60 मीटर से अधिक है।

3. दक्षिणी निम्न भूमि

यह भाग अध्ययन क्षेत्र के दक्षिण में स्थित है इसलिये इसे दक्षिणी निम्न भूमि कहते हैं। घाघरा नदी से क्रमशः बढ़ती दूरी एवं गंगा नदी से क्रमशः निकटता के कारण यह भाग अपेक्षाकृत निम्नवर्ती भाग है। इसके अन्तर्गत बांसडीह तहसील के सीमावर्ती भाग आते हैं। इस क्षेत्र में छोटे छोटे तालों एवं नालों का विकास हुआ है। बरसात के दिनों में इसके कारण जल प्लावन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके अन्तर्गत पूर, बाछापार, एकईल, खेजुरी, खड़सरा, जिगिरसड़, बड़सरी जागीर गांव मुख्य रूप से आते हैं। यहाँ की भूमि अपेक्षाकृत निम्न ऊँचाई वाली है जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ तालों एवं नालों का विकास अधिक हुआ है जिसमें बहेरी ताल, सुहेला ताल, नकहला ताल प्रमुख हैं। समुद्र तल से इस भूभाग की ऊँचाई 58.7 मीटर है। इस क्षेत्र का विस्तार अध्ययन क्षेत्र के 12534 हेक्टेयर भूमि पर हुआ है जो सम्पूर्ण क्षेत्रफल का 29.50 प्रतिशत है। ऐसी मान्यता है कि कभी इस क्षेत्र में घाघरा नदी का प्रवाह क्षेत्र रहा होगा जिसके कारण यहाँ अनेकों छोटे छोटे तालों एवं नालों का प्राकृतिक रूप से विकास हुआ होगा। यही नाले एवं ताल इस क्षेत्र के अपवाह तन्त्र के प्रमुख निर्धारक कारक हैं।

अपवाह प्रणाली

अपवाह प्रणाली किसी भी क्षेत्र में जल के प्रवाह मार्ग एवं प्रवाह दिशा को अभिव्यक्त करती है। उच्चावच, अपवाह प्रणाली का सबसे प्रमुख निर्धारक कारक होता है जिसके आधार पर किसी क्षेत्र की भौतिक संरचना निर्धारित होती है। अध्ययन क्षेत्र के अपवाह तन्त्र का विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

1. घाघरा नदी अपवाह तन्त्र

घाघरा नदी की कुल लम्बाई 1080 किमी. एवं कुल जल ग्रहण क्षेत्र 1,27,950 वर्ग किमी. है। यह नदी अध्ययन क्षेत्र के उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूरब कि ओर प्रवाहित होते हुये बिहार राज्य के छपरा जिले में रिविलगंज के निकट गंगा नदी में मिल जाती है। यह नदी बेल्थरारोड तहसील से बलिया जिले में प्रवेश करती है एवं तहसील को पार करते हुये सिकन्दरपुर तहसील में डूहाबिहरा गांव के पास प्रवेश कर जाती है। कठौड़ा, लिलकर, सिसोटार होकर क्रमशः आगे बढ़ते हुये बलिया जिला एवं बिहार के सीवान जिले की सीमा रेखा निर्धारित करते हुये बिहार राज्य में प्रवेश कर जाती है।

2. हाहा नाला अपवाह तंत्र

यह नाला घाघरा नदी में मिलने वाला अध्ययन क्षेत्र का सबसे प्रमुख नाला है। इस नाले का सम्पर्क कई छोटे बड़े नालों एवं तालों से है। बरसात के दिनों में इसका प्रवाह क्षेत्र व्यापक हो जाता है तथा वेग भी तीव्र हो जाता है। यह नाला दक्षिण दिशा से प्रवाहित होता हुआ अत्यन्त संकरे मार्ग का अनुसरण करता हुआ कठौड़ा गांव के पास घाघरा नदी में मिल जाता है।

3. आंवला नाला

अध्ययन क्षेत्र में इस नाले का अपवाह क्षेत्र 2 से 2.5 किमी. तक है। यह रसड़ा तहसील से अध्ययन क्षेत्र में प्रवेश करता है तथा पाण्डेयपुर, दोघरा, रतसी आदि गांवों को जोड़ते हुये पुनः रसड़ा तहसील में वापस हो जाता है। इस प्रकार आंवला नाले के प्रवाह प्रतिरूप से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र का यह भाग उच्चावच के दृष्टिकोण से उच्च भाग है।

4. बहेरा नाला

इस नाले का प्रवाह अध्ययन क्षेत्र में अत्यन्त टेढ़ा मेढ़ा है। इस नाले का उद्गम स्थल डिहवां चांड़ी गांव है जहाँ से यह सर्पाकार मार्ग का अनुसरण करते हुये बाछापार, जनुआव, टंड़वां आदि गांवों को जोड़ता हुआ मनियर के पास घाघरा नदी में मिल जाता है। बरसात के दिनों में इस नाले के माध्यम से जल निकटवर्ती क्षेत्रों में फैल जाता है जिससे जल प्लावन की समस्या उत्पन्न हो जाती है एवं समीपवर्ती फसलों को भारी नुकसान होता है। यह दह ताल क्षेत्र से प्रवाहित होने वाला प्रमुख नाला है। अध्ययन क्षेत्र में इसकी लम्बाई 30.6 किमी. है।

5. पूर रजवाहा

यह नाला पकड़ी के पश्चिम में भांटी गांव होता हुआ खेजुरी, जगदरा होते हुये बड़सरी ताल में गिर जाता है। यह एक कृत्रिम नाला है जिसका प्रयोग सिंचाई आदि के लिये किया जाता है।

जलवायु

मध्य गंगा मैदान में स्थित होने के कारण यह क्षेत्र मानसूनी जलवायु प्रदेश के अन्तर्गत आता है। कोपेन के जलवायु प्रदेश के निर्धारण में यह क्षेत्र ब्रूह वर्ग के अन्तर्गत आता है। यह उष्ण, शीतोष्ण मुख्य जलवायु वर्ग का जलवायु प्रदेश है, जहाँ शीत काल शुष्क रहता है तथा वर्षा काल के पूर्व लम्बे समय तक तापमान उच्च बना रहता है तथा लम्बी उष्ण अवधि के बाद ग्रीष्मकाल में वर्षा होती है। यहाँ शीत ऋतु एवं ग्रीष्म ऋतु के तापमान में व्यापक अन्तर पाया जाता है जिससे यहाँ की जलवायु में विविधता देखने को मिलती है। यहाँ वर्षा मानसूनी होती है। भारत में मानसून की दो शाखायें अरब सागर शाखा एवं बंगाल की खाड़ी शाखा पायी जाती है। यहाँ वर्षा बंगाल की खाड़ी से उठने वाले मानसून से होती है। जलवायविक विविधता को ध्यान में रखते हुये सिकन्दरपुर तहसील की जलवायु को तीन भागों में बांटा जा सकता है—

1. **ग्रीष्म ऋतु**—यहाँ ग्रीष्म ऋतु का समय मध्य मार्च से मध्य जून तक रहता है।
2. **वर्षा ऋतु**—यह ऋतु मध्य जून से मध्य अक्टूबर तक का होता है।
3. **शीत ऋतु**—यह ऋतु मध्य अक्टूबर से मध्य फरवरी तक का होता है।

अध्ययन क्षेत्र का उच्चतम, मध्यम एवं न्यूनतम तापमान सारणी संख्या 1.1 एवं मानचित्र संख्या 1.4 से स्पष्ट है।

सारणी 1.1 : तहसील सिकन्दरपुर : तापमान (डिग्री सेल्सियस में), वर्ष 2020

क्र.सं.	माह	उच्चतम	न्यूनतम	औसत
1.	जनवरी	21.3	7.2	15.1
2.	फरवरी	27.2	9.2	18.3
3.	मार्च	34.5	14.2	25.2
4.	अप्रैल	39.5	20.3	28.5
5.	मई	42.6	23.5	32.3

6.	जून	39.5	26.1	28.1
7.	जुलाई	32.6	21.6	27.6
8.	अगस्त	30.5	20.9	25.9
9.	सितम्बर	32.5	10.7	24.7
10.	अक्टूबर	28.6	17.5	20.8
11.	नवम्बर	26.5	9.3	17.2
12.	दिसम्बर	22.3	8.1	15.3

स्रोत : तहसील कार्यालय, सिकन्दरपुर, जनपद बलिया।

सारणी संख्या 1.1 एवं मानचित्र संख्या 1.4 के माध्यम से अध्ययन क्षेत्र के तापमान को स्पष्ट किया गया है। सारणी से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र का उच्चतम तापमान मई माह में 42.6 डिग्री सेल्सियस एवं न्यूनतम तापमान जनवरी माह में 7.2 डिग्री सेल्सियस है। औसत तापमान पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र का उच्चतम औसत तापमान 32.3 डिग्री सेल्सियस तथा न्यूनतम औसत तापमान जनवरी माह में 15.1 डिग्री सेल्सियस दर्ज किया गया है।

सारणी 1.2 : तहसील सिकन्दरपुर : औसत वार्षिक वर्षा, वर्ष 2020

क्र.सं.	माह	औसत वर्षा, सेमी. में
1.	जनवरी	02.5
2.	फरवरी	01.6
3.	मार्च	02.0
4.	अप्रैल	01.3
5.	मई	02.6
6.	जून	19.9
7.	जुलाई	32.8
8.	अगस्त	36.5
9.	सितम्बर	38.9
10.	अक्टूबर	06.2
11.	नवम्बर	01.9
12.	दिसम्बर	01.3

स्रोत : तहसील कार्यालय, सिकन्दरपुर, बलिया।

वर्षा किसी भी क्षेत्र में जलवायु की प्रमुख निर्धारक कारक होती है। इसकी मात्रा से ही किसी क्षेत्र के तापमान, आर्द्रता, कृषि, वनस्पतियों आदि का निर्धारण होता है। इस क्षेत्र में सम्पूर्ण वर्षा बंगाल की खाड़ी से उठने वाले मानसून से होती है। समतल मैदानी क्षेत्र होने के कारण यहाँ वर्षा का वितरण समान है। बंगाल की खाड़ी में न्यून वायु दाब का क्षेत्र बनने के कारण मानसून की उत्पत्ति होती है। यहाँ वर्षा का आगमन 15 जून या इसके आसपास माना जाता है। इस प्रकार की वर्षा में गरज, चमक के साथ तीव्र बौछार भी पड़ती है। इसके उपरान्त यहाँ कृषि कार्य प्रारम्भ हो जाता है। मानसूनी वर्षा होने के कारण यहाँ की वर्षा अनिश्चित होती है। कभी कभी वर्षा बहुत अधिक हो जाती है तो कभी सूखा भी पड़ जाता है जिससे कृषि कार्य हेतु संकट उत्पन्न हो जाता है। तीव्र वर्षा के कारण नदियां एवं नाले उफान पर आ जाते हैं एवं घाघरा नदी में कटान की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा व्यापक जन-धन की हानि होती है। सारणी संख्या 1.2 में वर्षा के दिये गये आंकड़ों पर दृष्टिपात करें

तो यह स्पष्ट होता है कि यहाँ सितम्बर माह में 38.9 सेमी. वर्षा वर्ष 2020 में हुयी है जो वर्षा का उच्चतम स्तर है। अप्रैल माह में वर्षा का न्यूनतम स्तर 1.3 सेमी. दर्ज किया गया है। (सारणी संख्या 1.2 एवं मानचित्र संख्या-1.4)

सारणी 1.3 : तहसील सिकन्दरपुर : सापेक्षिक आर्द्रता (प्रतिशत में)

क्र.सं.	माह	8.30 बजे प्रातः	5.30 बजे सायं	सापेक्षिक आर्द्रता, प्रतिशत में
1.	जनवरी	80	58	66.3
2.	फरवरी	68	42	52.7
3.	मार्च	56	32	42.3
4.	अप्रैल	42	25	30.1
5.	मई	46	28	29.6
6.	जून	70	48	62.3
7.	जुलाई	86	70	82.6
8.	अगस्त	87	80	85.4
9.	सितम्बर	97	78	80.2
10.	अक्टूबर	79	70	70.9
11.	नवम्बर	70	56	60.5
12.	दिसम्बर	74	56	64.2

स्रोत : तहसील कार्यालय, सिकन्दरपुर, बलिया।

किसी क्षेत्र की सापेक्षिक आर्द्रता उस क्षेत्र के तापमान एवं वर्षा पर ही निर्भर करती है। इसीलिये शोधार्थी द्वारा इसके अध्ययन के पूर्व तापमान एवं वर्षा का अध्ययन किया गया है जिसके आधार पर सापेक्षिक आर्द्रता का मापन किया जा सके। अध्ययन क्षेत्र में अगस्त माह में वर्षा की अधिकता के कारण उस माह की सापेक्षिक आर्द्रता 85.4 प्रतिशत है जो सर्वाधिक है। मई माह में ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव सर्वाधिक रहता है साथ ही तापमान भी अधिक रहता है एवं मौसम शुष्क रहता है जिसके कारण इस माह की सापेक्षिक आर्द्रता 29.6 प्रतिशत है जो न्यूनतम है। यहाँ का तापमान एवं वर्षा विषुवत रेखा से दूरी, भारत में कर्क रेखा की स्थिति, समुद्र से दूरी, मानसून की क्रियाविधि, उच्चावच आदि से प्रभावित होती है जिससे कि सापेक्षिक आर्द्रता में भी व्यापक भिन्नता देखने को मिलती है। (मानचित्र संख्या-1.4)

मिट्टी

किसी क्षेत्र में मिट्टी का वितरण वहाँ की भौमिकीय संरचना, तापमान, वर्षा, आर्द्रता, वनस्पति आदि कारकों पर निर्भर करती है। इसलिये क्षेत्र के सम्यक अध्ययन के लिये वहाँ की मृदा का ज्ञान आवश्यक होता है जिसके माध्यम से अन्य प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों का ज्ञान प्राप्त हो सके।

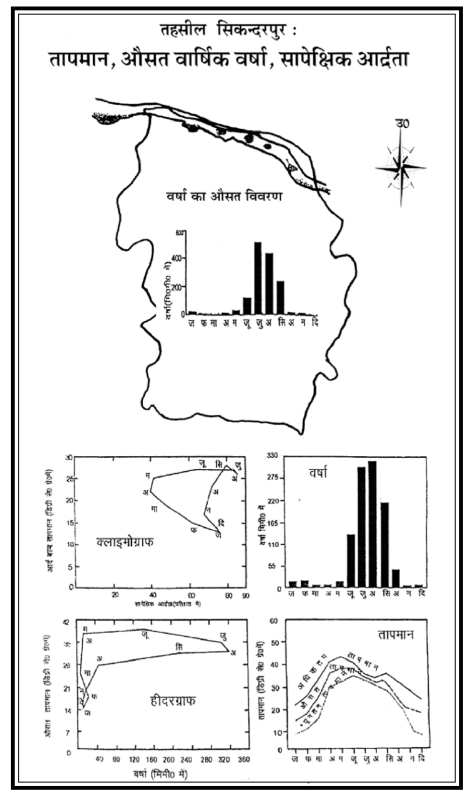

चित्र 1.4

अध्ययन क्षेत्र में गंगा एवं उनकी सहायक नदियों द्वारा हिमालय की चट्टानों को अपरदित कर लाये गये जलोढ़ मिट्टी का जमाव पाया जाता है। इसीलिये इस मिट्टी में उर्वरा शक्ति अधिक पायी जाती है साथ ही यहाँ की मृदा में विविधता भी दृष्टिगत होती है।

उपलब्धता के आधार पर अध्ययन क्षेत्र की मृदा को पाँच भागों में विभक्त किया गया है—

1. बलुई मिट्टी के क्षेत्र
2. खादर मिट्टी के क्षेत्र
3. बांगर मिट्टी के क्षेत्र
4. जलोढ़ मिट्टी के क्षेत्र
5. धनखर मिट्टी के क्षेत्र

1. बलुई मिट्टी

इस प्रकार की मिट्टी में बालू की मात्रा सर्वाधिक होती है एवं उत्पादक तत्व ह्यूमस की मात्रा सबसे कम होती है। इस प्रकार की मिट्टी नदियों के तटवर्ती भाग में पायी जाती है। नदी अपने प्रवाह क्षेत्र में उपलब्ध चट्टानों को अपरदित करके इसे बहा कर मैदानी क्षेत्रों में लाती है एवं यहाँ इसका निक्षेप कर देती है। अध्ययन क्षेत्र में इस प्रकार की मृदा घाघरा नदी के तटवर्ती भागों में नदी प्रवाह क्षेत्र के दोनों ओर पायी जाती है। इस मिट्टी में उर्वराशक्ति अत्यन्त कम होती है। गर्मी के दिनों में तापमान बढ़ने पर इसका तापमान और अधिक बढ़ जाता है। अध्ययन क्षेत्र में यह मिट्टी 3086.7 हेक्टेयर भूमि पर उपलब्ध है जो कुल क्षेत्रफल का 7.24 प्रतिशत है। इस प्रकार की मृदा अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग में घाघरा नदी के कछारी भाग में डूहाबिहरा, कठौड़ा, लिलकर, सीसोटार, काजीपुर आदि तटवर्ती गांवों में नदी प्रवाह क्षेत्र के दोनों ओर पायी जाती है।

निष्कर्ष—अध्ययन क्षेत्र के भौतिक स्वरूप के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उस क्षेत्र का उच्चवच अपवाह, मिट्टी तथा जलवायु का अध्ययन करके वहाँ के कृषकों की समस्याओं को दूर करना है। कृषि के नवाचार में भौतिक स्वरूप के मुख्य भूमिका होती है जिससे हमें यह ज्ञात होता है कि किस क्षेत्र में कौन सी मिट्टी तथा जलवायु पायी जाती है।

सन्दर्भ

1. तिवारी, आर.सी. एवं बी.एन. सिंह, कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2004
2. ह्विटलिसी, ड., मेजर एग्रीकल्चरल रीजन्स आफ अर्थ, 1935, पृ. 199-240
3. स्टैम्प, एल.डी., 1962, द लैण्ड आफ ब्रिटेन : इट्स यूज एण्ड मिस यूज, लॉग मैन्स लन्दन, 1962
4. मैकार्टी, एच. एच., प्रीफेस आफ इकोनामिक ज्योग्राफी, प्रिन्टीसी हाल, 1966, पृ. 204
5. शफी, एम., लैण्ड यूटीलाइजेशन आफ इस्टर्न उत्तर प्रदेश, एम.एम.यू. अलीगढ़, 1965
6. सिंह, ब्रजभूषण, कृषि भूगोल, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी, 1979
7. तिवारी, ब्रजेश, जनसंख्या, पर्यावरण एवं विकास : जनपद मऊ (उ.प्र) का एक भौगोलिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र., 2002
8. सिंह, उमेन्द्र, मऊ जनपद (उ.प्र.) में नवाचारों का कृषि एवं ग्रामीण विकास पर प्रभाव, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र., 2003
9. तहसील कार्यालय सिकन्दरपुर
10. यादव हीरालाल, जनसंख्या भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1998

11. सिद्दीकी, सबा, बलिया जनपद(उ.प्र.) का ग्रामीण अधिष्ठान रूपान्तरण, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ.प्र., 2002

12. दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र, वाराणसी संस्करण, दिनांक 21-06-2021

13. Agarwal, R.R., Soil fertility of India, Asia Publishing House, Bombay. 1965

14. Agrawal, S.N., Some Problems of India's Population Vora and Co. Puplishers, Bombay. 1966

15. Agrawal, V.P. and Rana, S.V.S., (Ed.) Environmental and Natural Resources (S.I.). Society of Biosciences, distributed by jagmander book agency, New Delhi ,1982

16. Anil Kumar & Pandey, R.N, Westland Management in India, Ashish Publication House, New Delhi, 1989

❑❑

रहीम खान
शोधार्थी, संस्कृति और मीडिया अध्ययन विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर
मोहम्मद आमिर
शोधार्थी, समाज कार्य विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. निकोलस लाकड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृति और मीडिया अध्ययन विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

नई शिक्षा नीति-2020 : संभावनाएं और चुनौतियाँ

नई शिक्षा नीति-2020 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में कैबिनेट ने मंजूरी दे दी है। आजाद भारत के पहले शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने सबके लिए शिक्षा और सामाजिक बदलाव के लिए शिक्षा के विचार की नींव रखी थी। हालांकि एक औपचारिक शिक्षा नीति की घोषणा पहली बार 1968 में की गई। इसके बाद 1986 में दूसरी शिक्षा नीति लागू की गई थी और 1992 में इस नीति में कुछ संशोधन किए गए थे। अब 34 साल बाद देश में एक नई शिक्षा नीति लागू की जा रही है। नई शिक्षा नीति में स्कूल शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक कई बड़े बदलाव किए गए हैं।

नई शिक्षा नीति तैयार करने के लिए 31 अक्टूबर, 2015 को सरकार ने पूर्व कैबिनेट सचिव टी.एस.आर. सुब्रह्मण्यन की अध्यक्षता में पांच सदस्यों की एक समिति का गठन किया गया, इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 27 मई, 2016 को दी। इसके बाद 24 जून, 2017 को पूर्व इसरो प्रमुख वैज्ञानिक के कस्तूरीगन की अध्यक्षता में नौ सदस्यों की कमेटी को नई शिक्षा नीति का मसोदा (ड्राफ्ट) तैयार करने की जिम्मेदारी दी गई थी। 31 मई, 2019 को ये ड्राफ्ट तत्कालीन मानव संसाधन एवं विकास (एचआरडी) मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक को सौंपा गया। ड्राफ्ट पर एचआरडी मंत्रालय ने लोगों के सुझाव मांगे थे। इस पर दो लाख से ज्यादा सुझाव आए। इसके बाद 29 जुलाई 2020 को केंद्रीय कैबिनेट ने नई शिक्षा नीति के ड्राफ्ट को मंजूरी दे दी(1, 2)।

क्या है नई शिक्षा नीति-2020 ?

यह एक वो दस्तावेज है, जिसमें सरकार का शिक्षा को लेकर आने वाले दिनों में क्या दृष्टिकोण है, उसके बारे में बताया गया है। यह नीति शिक्षा के क्षेत्र में देश की दिशा तय करती है। वैसे तो हर दस-पन्द्रह वर्ष में ऐसी नीति बनाई जानी चाहिए, लेकिन इस बार बनते बनते 34 वर्ष लग गए(1)।

इस नीति में कही गई बातें ना तो कानूनी बाध्यता हैं और ना ही तुरंत लागू होने वाली हैं। नई शिक्षा नीति को लागू करने के लिए केन्द्र सरकार ने साल 2030 तक का लक्ष्य रखा है—शिक्षा संविधान में समवर्ती सूची का विषय है, जिसमें राज्य और केन्द्र सरकार दोनों का अधिकार होता है, इसलिए राज्य सरकारें इसे पूरी तरह माने ये आवश्यक नहीं है। जहाँ कहीं टकराव वाली स्थिति होती है, दोनों पक्षों को आम सहमति से इसे सुलझाने का सुझाव दिया गया है।

क्या है 5+3+3+4 फॉर्मूला?

शिक्षा नीति के अनुसार शुरुआती स्कूली शिक्षा में कुछ बदलाव किए गए हैं। स्कूल पाठ्यक्रम में 10+2 की जगह अब 5+3+3+4 की नई संरचना को लागू किया जाएगा, जो क्रमश: 3-8 वर्ष, 8-11 वर्ष, 11-14 वर्ष, और 14-18 वर्ष के बच्चों के लिए है(3)।

इसमें 5 का अभिप्राय है—तीन साल प्री-स्कूल के और दो साल कक्षा 1 और कक्षा 2, उसके बाद के 3 का अभिप्राय है कक्षा 3, 4 और 5, उसके बाद के 3 का अभिप्राय है कक्षा 6, 7 और 8 और अंत के 4 का अभिप्राय है कक्षा 9, 10, 11 और 12।

इसमें अब तक दूर रखे गए 3-6 वर्ष के बच्चों को स्कूली पाठ्यक्रम के तहत लाने का प्रावधान है, जिसे विश्व स्तर पर बच्चे के मानसिक विकास के लिए महत्वपूर्ण चरण के रूप में मान्यता दी गई है। इस नीति के अनुसार अब बच्चे 6 वर्ष की जगह 3 वर्ष की उम्र में ही स्कूल जाने लगेंगे। अब तक बच्चे 6 वर्ष की आयु में पहली कक्षा में जाते थे, अब नई शिक्षा नीति लागू होने पर भी बच्चा 6 वर्ष की आयु में पहली कक्षा में ही होगा, लेकिन प्रारंभ के 3 वर्ष भी फॉर्मल एजुकेशन वाले ही होंगे। प्ले-स्कूल के प्रारंभिक वर्ष भी अब स्कूली शिक्षा में जुड़ेंगे। अब शिक्षा का अधिकार (राइट टू एजुकेशन) का विस्तार होगा। पहले 6 वर्ष से 14 वर्ष के बच्चों के लिए आरटीई लागू किया गया था। अब 3 वर्ष से 18 वर्ष के बच्चों के लिए इसे लागू किया गया है।

क्या है त्रि-भाषा सूत्र?

भाषा के स्तर पर नई शिक्षा नीति में त्रि-भाषा सूत्र की बात कही गई है, जिसमें कक्षा पाँच तक मातृ भाषा या स्थानीय भाषा में पढ़ाई की बात की गई है। यह भी कहा गया है कि जहाँ संभव हो, वहाँ कक्षा 8 तक इसी प्रक्रिया को अपनाया जाए। नई शिक्षा नीति में संस्कृत भाषा के साथ तमिल, तेलुगू और कन्नड़ जैसी भारतीय भाषाओं में पढ़ाई पर भी जोर दिया गया है। माध्यमिक विभाग में स्कूल चाहे तो विदेशी भाषा भी विकल्प के तौर पर दे सकेंगे। लेकिन त्रि भाषा सूत्र में ये कहीं नहीं लिखा है कि ऐसा करना राज्य सरकारों के लिए अनिवार्य होगा। ऐसा भी नहीं है कि बच्चे अंग्रेजी भाषा नहीं पढ़ पाएंगे। इसमें केवल यह है कि तीन भाषाओं में से दो भाषा भारतीय हो। जहाँ मातृ भाषा में पुस्तकें उपलब्ध नहीं है वहाँ मातृ भाषा में पुस्तकें छापने का प्रस्ताव भी दिया गया है।

बोर्ड परीक्षा का क्या होगा स्वरूप?

स्कूली शिक्षा की बोर्ड परीक्षा में भी बदलाव किया गया है। बोर्ड परीक्षा अब दो बार होगी। लेकिन इनको पास करने के लिए कोचिंग की जरूरत नहीं होगी। परीक्षा का स्वरूप बदल कर अब विद्यार्थियों की क्षमताओं का आंकलन किया जाएगा, ना कि उनकी स्मरण शक्ति का। 2022-23 वाले सत्र से इस बदलाव को लागू किया जा सकता है। इन बोर्ड परीक्षाओं के अतिरिक्त राज्य सरकारें कक्षा 3, 5 और 8 में भी परीक्षाएँ लेंगी। इन परीक्षाओं को करवाने के लिए नियम बनाने का काम नई एजेंसी को सौंपा जाएगा, जो शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत ही काम करेगी।

कैसे होगी IIT और NEET की परीक्षा?

नई शिक्षा नीति में स्नातक पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (एनटीए) से परीक्षा कराने की बात कही गई है। साथ ही क्षेत्रीय स्तर पर, राज्य स्तर पर और राष्ट्रीय स्तर पर ओलंपियाड परीक्षाएं कराने के बारे में भी कहा गया है। आईआईटी में प्रवेश के लिए इन परीक्षाओं को आधार बना कर छात्रों को प्रवेश देने की बात की गई है।

मेडिकल कोर्स में भी आमूलचूल बदलाव की बात की गई है। कोई भी नया विश्वविद्यालय केवल एक विषय विशेष की पढ़ाई के लिए आगे से नहीं बनाया जाएगा। 2030 तक सभी विश्वविद्यालयों में अलग अलग विषयों की पढ़ाई एक साथ कराई जाएगी। मेडिकल की पढ़ाई के लिए अलग मान्यता नीति बनाने की बात भी नई शिक्षा नीति में की गई है।

स्नातक और स्नातकोत्तर में क्या हुए बदलाव?

उच्च शिक्षा में भी कई तरह के बदलाव किए गए हैं। अब स्नातक कोर्स चार साल का होगा जिसमे विद्यार्थियों को बीच में कोर्स को छोड़ने की छूट भी दी गई है।

पहले साल में कोर्स छोड़ने पर प्रमाण पत्र (सर्टिफिकेट) मिलेगा, दूसरे साल के बाद एडवांस सर्टिफिकेट (डिप्लोमा) मिलेगा, तीसरे साल के बाद डिग्री तथा चार साल बाद की डिग्री शोध के साथ मिलेगी।

इसी तरह से स्नातकोत्तर कोर्स में तीन तरह के विकल्प होंगे। पहला होगा दो साल का मास्टर्स, उन विद्यार्थियों के लिए, जिन्होंने तीन साल का डिग्री कोर्स किया है। दूसरा विकल्प होगा चार साल के डिग्री कोर्स शोध के साथ करने वालों के लिए। ये विद्यार्थी एक साल का मास्टर्स अलग से कर सकते हैं। और तीसरा विकल्प होगा, 5 साल का इंटिग्रेटेड प्रोग्राम, जिसमें स्नातक और स्नातकोत्तर दोनों एक साथ ही हो जाएगा।

नई शिक्षा नीति के अनुसार पीएचडी के लिए अनिवार्यता चार साल की डिग्री शोध के साथ होनी चाहिए। एमफिल कोर्स को नई शिक्षा नीति में बंद करने का प्रावधान किया गया है।

उच्च शिक्षा में छात्रवृत्ति के लिए नेशनल स्कॉलरशिप पोर्टल के दायरे को और अधिक व्यापक बनाने की बात कही गई है। निजी संस्थाएँ, जो उच्च शिक्षा देंगी उनको 25 फीसदी से लेकर 100 फीसदी तक छात्रवृत्ति अपने 50 फीसदी छात्रों को देना होगा।

उच्च शिक्षा संस्थानों को वित्तीय सहायता देने का काम हायर एजुकेशन ग्रांट्स कमिशन करेगा। इसके अलावा इन संस्थाओं के अलग-अलग विभागों के लिए नियम, कानून और गाइड लाइन तैयार करने की जिम्मेदारी भी इसी आयोग की होगी। अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय का भी नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है।

किन बातों को लेकर हो रहा है नई शिक्षा नीति का स्वागत?

शिक्षा प्रणाली के भारतीयकरण को लेकर नई शिक्षा नीति का स्वागत किया जाना चाहिए क्योंकि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा को किनारे रखकर भारत एक राष्ट्र के रूप में सबल नहीं हो सकता है। वैदिक गणित, दर्शन और प्राचीन भारतीय परंपरा से जुड़े विषयों को प्राथमिकता देने के बारे में नई शिक्षा नीति में कहा गया है। इनको तार्किक और वैज्ञानिक आधार जाँचने के बाद जहाँ प्रासंगिक होगा, वहाँ पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाएगा।

पहले बच्चा 6 वर्ष की आयु में पहली कक्षा में सीधे स्कूल में आता था, तो उस वक़्त वो मानसिक तौर पर पढ़ने के लिए तैयार होकर नहीं आता था। तीन वर्ष के प्री-स्कूल के बाद अगर अब वो पहली कक्षा में आएगा, तो मानसिक तौर पर सीखने के लिए पूर्व की अपेक्षा ज़्यादा तैयार होगा। छोटे बच्चों को उनकी मातृ भाषा में ही पढ़ाना भी एक अच्छा प्रयास है। छोटा बच्चा कोई और भाषा नहीं समझता इसलिए घर की भाषा को ही स्कूल की भाषा बनाना बहुत लाभदायक होगा।

शिक्षा नीति को व्यापक परामर्श से तैयार किया गया है। इसमें कमियां हो सकती है, लेकिन जितने भी सुझाव आए थे, उनको मंथन का हिस्सा बनाया गया है। इस शिक्षा नीति में कक्षा कक्षों से बाहर शिक्षा को ले जाने की पहल की गई है।

नई शिक्षा नीति में शिक्षा को रोजगार से जोड़ने के उद्देश्य से ही व्यावसायिक शिक्षा को इसमें जोड़ा गया है। अब तक शिक्षा का मतलब औपचारिक शिक्षा से हुआ करता था, लेकिन अब अनऔपचारिक यानी इन-फॉर्मल एजुकेशन को भी शिक्षा के दायरे में लाया गया है।

केवल मैनेजमेंट, इंजीनियरिंग, और दूसरे विज्ञान के क्षेत्र में ही बाहर की संस्थाएं देश में आएँगी, सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में नहीं आएँगी, इससे हमारी मूल अस्मिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

साल 2030 तक स्कूली शिक्षा में 100 प्रतिशत सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) के साथ माध्यमिक स्तर तक सबके

लिए शिक्षा (एजुकेशन फॉर ऑल) का लक्ष्य रखा गया है (4)। अभी स्कूल शिक्षा से दूर दो करोड़ बच्चों को दोबारा मुख्य धारा में लाया जाएगा। इसके लिए स्कूल के बुनियादी ढांचे का विकास और नवीन शिक्षा केंद्रों की स्थापनी की जाएगी।

किन बातों को लेकर हो रहा है नई शिक्षा नीति का विरोध?

नई शिक्षा नीति में विदेशी विश्वविद्यालयों को भी भारत में संस्थान खोलने की अनुमति देने की बात की गई है जिसका कई राष्ट्रवादी संगठनों ने विरोध किया था लेकिन इस मामले में उनकी बात नहीं मानी गई है।

शुरूआत में राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा देने के लिए पूरे देश में प्राथमिक स्तर पर हिंदी पढ़ाने पर बल दिया गया था, लेकिन दक्षिण भारतीय राज्यों के विरोध के बाद यह स्वीकार कर लिया गया है कि हिंदी की जगह जहाँ जो मातृभाषा है, उसी में पढ़ाई होनी चाहिए।

पाँचवीं का बच्चा तीसरी की किताब नहीं पढ़ सकता, चौथी के बच्चे को जोड़ना और घटाना नहीं आता, प्रथम फाउंडेशन की ओर से तैयार की गई 'असर' की रिपोर्ट में भारत की शिक्षा व्यवस्था के लिए ऐसी रिपोर्ट्स आती थी। (5) लेकिन क्या नई शिक्षा नीति के लागू होने के बाद ये रिपोर्ट बदल जाएगी? अक्सर नीतियाँ कागज पर तो अच्छी हैं, लेकिन लागू कैसे और कब होती है ये सबसे बड़ी चुनौती होगी।

नई शिक्षा नीति के लिए आंगनबाड़ी केन्द्रों को भी तैयार करना होगा। अभी आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को सिर्फ स्वास्थ्य और पोषण के लिए प्रशिक्षित किया गया है। उनको अब बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करने का प्रशिक्षण भी देना पड़ेगा। इसके लिए महिला एवं बाल कल्याण मंत्रालय और शिक्षा मंत्रालय को एक साथ आकर काम करना होगा।

शिक्षा नीति को तीन बिंदुओं से देखने की जरूरत है। पहला- इससे शिक्षा में कॉरपोरेटाइजेशन को बढ़ावा मिलेगा, दूसरा इससे उच्च शिक्षा के संस्थानों में अलग-अलग श्रेणियां बन जाएँगी, और तीसरा खतरा है अति-केंद्रीकरण का।

स्कूलों के लिए परिणाम-आधारित अनुदान देने की नीति लागू करने की बात कही गई है, ऐसे में जो स्कूल अच्छे होगें, वो और अच्छे होते चले जाएँगे और खराब स्कूल और अधिक खराब। ये हम सब जानते हैं कि सरकारी स्कूल प्राइवेट के मुकाबले कहाँ हैं। इससे फायदा प्राइवेट वालों को ही होगा। इसी संदर्भ में नई शिक्षा नीति में स्कूल कॉम्प्लेक्स का प्रावधान किया गया है।

नई शिक्षा नीति में आरक्षण का कहीं जिक्र नहीं हैं जबकि देश की 80 फीसदी आबादी दलित, अन्य पिछड़ा वर्ग, आदिवासी और अति पिछड़ा वर्ग से है। इन समुदायों के ज़्यादातर छात्र जो कक्षा एक में प्रवेश लेते हैं वो 12वीं तक की पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते। वोकेशनल कोर्स की वजह से गरीब और निचले तबके के लोगों का मुख्यधारा की उच्च शिक्षा से अलग होने का भी खतरा नई शिक्षा नीति में है।

इंडियन एजुकेशन सर्विस, राष्ट्रीय शोध प्रतिष्ठान, नेशनल हायर एजुकेशन रेगुलेटरी ऑथोरिटी, नेशनल टेस्टिंग एजेंसी जैसी नई-नई संस्थाएँ बना कर केजी से पीजी तक सब कुछ केंद्र सरकार अपने हाथ में ले लेना चाहती हैं, जिससे अति केन्द्रीकरण का भी डर है।

लगभग हर प्रदेश में स्कूलों में शिक्षकों की कमी है या फिर कहीं-कहीं तो स्कूल का भवन तक नहीं है। इसमें सुधार के लिए सरकार ने शिक्षा पर खर्च बढ़ाने का भी ऐलान किया है। अब जीडीपी का 6 फीसदी शिक्षा पर खर्च होगा, जो कि अभी 4.3 फीसदी है। क्या ये नई शिक्षा नीति की बातें शहरों से दूर गांव-देहात के उन बच्चों तक भी पहुंच पाएंगी? क्या जिन स्कूलों में सामान्य विषयों के भी पर्याप्त शिक्षक नहीं हैं, वहां अब संगीत के शिक्षक और वोकेशनल कोर्स और ऐसी बाकी बातें लागू हो पाएंगी?

यह पॉलिसी बहुत महत्वकांक्षी है क्योंकि इसका मकसद भारत को विश्वगुरु बनाना है। यह तभी मुमकिन होगा जब मुख्य हिस्सेदार जैसे कि छात्र, अध्यापक, माता-पिता, प्रशासन और प्रबन्धन के साथ शिक्षा संस्थान व सरकार एकजुट होकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने के लिए काम करे।

शिक्षा नीति-2020 को लेकर प्रमुख चिंता का विषय इसका गैर समावेशी दृष्टिकोण है। यह पॉलिसी प्राचीन भारत के उच्च शिक्षा के संस्थानों से प्रेरणा लेने तक ही खुद को सीमित करती हुई प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि मानो मध्यकालीन भारत में फले-फूले शिक्षा संस्थानों को पूरी तरह से उपेक्षित छोड़ दिया गया है। मध्यकालीन युग में मुस्लिमो द्वारा स्थापित मदरसा प्रणाली में धार्मिक विषयों के साथ-साथ धर्मनिरपेक्ष विषयों जैसे कि तिब्ब (चिकित्सा) रियाजी (गणित) को लागू करने के लिए लॉर्ड मैकाले द्वारा भी बहुत प्रशंसा की गई है।

इस नीति में स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में भारत द्वारा की गई शानदार प्रगति का भी कोई जिक्र नहीं है। शान्तिनिकेतन, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के योगदान का कोई जिक्र नहीं है।

पूरे दस्तावेज में कहीं भी अल्पसंख्यक शब्द का प्रयोग भी नहीं किया गया है। बहुत विशेष होने के कारण राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में इसका उल्लेख केवल एक बार (सेक्शन 6.2.4) में किया गया है जो इसके विभिन्न प्रकार की परिभाषाओं और मूलमंत्र के व्यापक उपयोग जो आधुनिक शिक्षा साहित्य और विचार-विमर्श की शब्दावली बनाते हैं में केवल इसका उल्लेख है।

सच्चर कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार उच्च शिक्षा में मुसलमानों का सकल नामांकन अनुपात केवल 4.4 प्रतिशत है। यदि नई शिक्षा नीति इस अनुपात को वर्तमान राष्ट्रीय स्तर 26 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक लाना चाहती है तो यह काम भारतीय मुस्लिम जो कि देश की आबादी का 14 प्रतिशत हिस्सा हैं, उन्हें नजरंदाज करके नहीं किया जा सकता है।

नई शिक्षा नीति रचनात्मकता, तार्किक सोच और समावेशी दृष्टिकोण के बारे में बात करती है। यह वर्तमान राजनीतिक माहौल में बहुत विरोधाभासी लगता है जबकि विरोधी स्वरों, प्रश्न पूछे जाने के अधिकारों को कुचला जा रहा हो और बहुसंख्यकवाद को बढ़ावा दिया जा रहा हो। संविधान के आर्टिकल 30 में प्रतिष्ठित अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों के अधिकारों पर भी इस पॉलिसी में कुछ नहीं कहा गया है। यह पॉलिसी छात्रों और अध्यापकों को विविधता का सम्मान करने के लिए उन्हें संवेदनशील बनाने पर ज़ोर देती है जबकि राजनीति को एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा या एक राष्ट्र-एक संस्कृति के मार्ग पर धकेला जा रहा है।

शिक्षा नीति द्वारा शिक्षा व्यवस्था का केंद्रीकरण करने की ओर अत्यधिक झुकाव है, यह स्वाभाविक परिणाम के रूप में हमारी संघीय राजनीति को कमजोर करेगा। यह अल्पसंख्यकों और अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों पर भी असर डालेगा। प्रवेश प्रक्रिया के दौरान सीटों के आरक्षण और अल्पसंख्यकों को दी जाने वाली शिक्षा सम्बन्धित दूसरी रियायतों को लेकर भारत में अलग-अलग राज्यों की अलग-अलग नीति हैं। फंड के आवंटन, शिक्षा के मापदंडों, दूसरी शिक्षा संस्थाओं में कमजोर शिक्षा संस्थाओं का एकीकरण और नए शिक्षण परिसरों के लिए स्थान और सुविधाओं को लेकर भी चिंता बनी हुई है।

एक बड़ी चिंता मदरसों को लेकर भी है। इन 62 पन्नों की पॉलिसी दस्तावेज पर मदरसों के बारे में एक शब्द भी नहीं है। जब आश्रमों और आश्रम शालाओं में बाल शिक्षा के बारे में नई शिक्षा नीति में बात की जा सकती है तो मदरसों की उपेक्षा क्यों की गई है? उच्च माध्यमिक स्तर पर दी जाने वाली विदेशी भाषाओं की सूची में अरबी भाषा को शामिल नहीं किया गया है। जबकि अरबी उन देशों की भाषा है जहां सर्वाधिक अप्रवासी भारतीय रहते हैं। अरबी भाषा बोलने वाले देशों से हमारे सांस्कृतिक, व्यावसायिक और कूटनीतिक सम्बन्ध हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 शिक्षण संस्थानों को वित्तीय सहायता देने में लोक कल्याण की भावना की बात करती है। यदि वित्तीय सहायता कॉरपोरेट सीएसआर के द्वारा दी जाएगी तो यह शिक्षा के व्यवसायीकरण और दुरूपयोग की आशंकाओं को और बढ़ाएगा।

उच्च माध्यमिक कक्षाओं के लिए लाया गया अनिवार्य स्किल डेवलपमेंट मॉडल (कौशल विकास) जरूरतमंद और कमजोर छात्रों के स्कुल छोड़ने की दर (ड्रॉपआउट) को बढ़ाएगा विशेष रूप से दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक छात्र अपने उच्च व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के सपनों को छोड़ कर व्यावसायिक ज्ञान के साथ रोजगार की तलाश करेंगे।

आरक्षण के मुद्दे पर भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कोई बात नहीं की गई है। शीर्ष 100 वैश्विक विश्वविद्यालय जो भारत में अपने संस्थान खोलेंगे क्या वो भारत के दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के लिए सकारात्मक कदम उठाएँगे? क्या सामाजिक न्याय का लक्ष्य इसके बिना प्राप्त किया जा सकता है?

नई शिक्षा नीति ने देश में शिक्षा के लिए एक केंद्रीय सत्ता (सेंट्रल अथॉरिटी) बनाने की बात की है लेकिन यह संविधान के अनुच्छेद 30 पर पूरी तरह से शांत है जिससे अल्पसंख्यकों को शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रबंधन की अनुमति मिलती है। जो न केवल शिक्षा प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है बल्कि अपनी भाषा और संस्कृति को बढ़ावा देने का अधिकार भी देता है।

यह शिक्षा नीति कई सकारात्मक बिंदुओं के साथ कुछ आशंकाएं भी पैदा करती है। खासकर उच्च शिक्षा और शिक्षा के निजीकरण को लेकर। इसकी नीति, नीयत और नियमन को गंभीरता से समझना होगा। इसके सभी पक्षों पर ठहर कर विचार करना होगा। तभी वर्तमान शिक्षा का भविष्य सही दिशा में अग्रसर होगा।

संदर्भ

1. Colclough C, De A. The impact of aid on education policy in India. Int J Educ Dev. 2010 Sep; 30(5): 497–507.
2. Pandey B. Ensure Quality Education for All in India: Prerequisite for Achieving SDG 4. In: Chaturvedi S, James TC, Saha S, Shaw P, editors. 2030 Agenda and India: Moving from Quantity to Quality [Internet]. Singapore: Springer Singapore; 2019 [cited 2022 Oct 11]. p. 165–96. (South Asia Economic and Policy Studies). Available from: http://link. springer.com/10.1007/978-981-32-9091-4_8
3. MHRD. National Education Policy 2020 [Internet]. 2020. Available from: https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
4. Kumar K., Prakash A., Singh K. How National Education Policy 2020 can be a lodestar to transform future generation in India. J Public Aff [Internet]. 2021 Aug [cited 2022 Oct 11];21(3). Available from: https://onlinelibrary.wiley.com/doi/10.1002/pa.2500
5. ASER 2019 report: A reworking of curriculum is urgently needed for the age band from four to eight. The Indian Express [Internet]. [cited 2022 Oct 11]. Available from: https://indianexpress.com/article/opinion/columns/education-policy-india-schooling-6216711/

❑❑

ललित मोहन
पीएचडी योग स्कॉलर
सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी

डॉ. अखिलेश कुमार सिंह (पर्यवेक्षक)
डीन, अनुसंधान और विकास
सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी
भोपाल, मध्य प्रदेश

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के कारण और चयनित योगाभ्यासों की अवधारणा

सारांश

सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस ग्रीवा (गर्दन) के आसपास के मेरुदंड की हड्डियों की असामान्य बढ़ोतरी और सर्वाइकल वेर्टेब्रा के बीच के कुशनों इंटरवर्टेबल डिस्क में कैल्शियम का डी-जेनरेशन, बहि:क्षेपण तथा सर्वाइकल क्षेत्र में फुलाव अथवा सूजन और अपने स्थान से सरकने की वजह से होता है। लगातार लंबे समय तक कंप्यूटर या लैपटॉप पर बैठे रहना मोबाइल फोन पर गर्दन झुकाकर देर तक बात करना और फास्ट-फूड्स व जंक-फूड्स का सेवन इस मर्ज के होने के कुछ प्रमुख कारण हैं।[1] प्रौढ़ और वृद्धों में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस मेरुदंड में डी-जेनरेटिव बदलाव क्रिया है। वेर्टेब्रा के बीच के कुशनों के डी-जेनरेशन से नस पर दबाव पड़ता है और इससे सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के लक्षण दिखते हैं। यह समस्या स्पाइन के सबसे उपरी भाग सर्वाइकल स्पाइन में होती है। सामान्यत: 4वीं-5वीं, 5वीं-छठी, छठी-7वीं के बीच डिस्क का सर्वाइकल वेर्टेब्रा अधिक प्रभावित होता है।

योगासन शारीरिक स्वास्थ्य के लिए वरदान स्वरूप हैं क्योंकि इससे शरीर के समस्त भागों पर प्रभाव पड़ता है और वह अपने कार्य सुचारु रूप से करते हैं। ये रोग विकारों को नष्ट करते हैं रोगों से रक्षा करते हैं शरीर को निरोग स्वस्थ एवं बलिष्ठ बनाए रखते हैं।[2] सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस को ठीक करने वाली कोई दवा नहीं है। हालाँकि नियमित योगाभ्यास से इस रोग का निदान संभव है।

शब्द कुंजी : योग, सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस, गर्दन का दर्द और अकड़न, मांसपेशिया कशेरुका

परिचय

जीवन को निरंतर वह सुचारू रूप से चलायमान बनाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण अंग स्वास्थ्य का है जिसमें मनुष्य के प्रतिदिन कार्य करने की गुणवत्ता का स्थान सर्वोपरि है वर्तमान में विभिन्न व्यक्तियों में अनेक प्रकार की पीड़ा व दर्द प्रचलन में शामिल हो चुके हैं। जिसमें से गर्दन का दर्द एक मुख्य समस्या है। रोग-चिकित्सा में डाक्टरों और अस्पतालों द्वारा अक्सर सर्वाइकल शब्द का प्रयोग होता है जिसका सामान्य मतलब है गर्दन से संबंधित। सर्वाइकल का शाब्दिक अर्थ ग्रीवा अर्थात गर्दन है तथा स्पॉन्डिलाइटिस दो यूनानी शब्द स्पॉन्डिल तथा आइटिस से मिलकर बना है स्पॉन्डिल का अर्थ है वर्टिब्रा तथा आइटिस का अर्थ सूजन होता है इसका मतलब वर्टिब्रा अर्थात रीढ़ की हड्डी में सूजन की शिकायत को ही स्पॉन्डिलाइटिस कहा जाता है। हमारे मेरुदंड के क्षेत्र में 33 वेर्टेब्रा होते हैं जिसका मुख्य भाग सर्वाइकल ग्रीवा का क्षेत्र है यह वह भाग है जो सर को धड़ से जोड़ता है इस क्षेत्र में 7 वेर्टेब्रा या कशेरुका होती है सी-1 से सी-7 जो आपस में डिस्क के साथ जुडी होती हैं जिनके

मदद से हम गर्दन को इधर-उधर घूमना, ऊपर-निचे घूमना आदि आसानी से करते हैं। सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस सर्वाइकल स्पाइन की एक सामान्य अपक्षयी स्थिति है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें गर्दन की हड्डियों डिस्क और जोड़ों में बदलाव होता है। यह इंटर-वर्टेब्रल डिस्क में उम्र से संबंधित परिवर्तनों के कारण होने की सबसे अधिक संभावना है। ये परिवर्तन उम्र बढ़ने के साथ-साथ होते हैं। जो प्राय: वृद्धो में अधिक देखे जाते हैं लेकिन वर्तमान में यह समस्या वृद्धो के साथ-साथ, व्यस्को तथा युवाओ में भी देखी जा रही है जिसका मुख्य कारण है अनुचित जीवन-शैली उम्र के साथ हड्डियां और स्नायुबंधन अपनी सामान्य ताकत खोने लगते हैं[3] ग्रीवा रीढ़ की डिस्क धीरे-धीरे तरल द्रव पदार्थ खो देती है और सख्त हो जाती है। चिकित्सकीय रूप से कई अतिव्यापी और विशिष्ट सिंड्रोम देखे जाते हैं। इनमें गर्दन और कंधे का दर्द, सिरदर्द शामिल हैं।

सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के वैकल्पिक नाम हैं—सर्वाइकल ऑस्टियोआर्थराइटिस, सर्वाइकल, गर्दन का गठिया, सर्वाइकल का पुराना गर्दन दर्द, ग्रीवा ऑस्टियोआर्थराइटिस आदि।

स्पोंडिलोसिस और स्पॉन्डिलाइटिस के बीच अंतर

स्पोंडिलोसिस के लक्षण आमतौर पर दो श्रेणियों में आते हैं अर्थात् स्थानीयकृत लक्षण और विकीर्ण लक्षण। स्पोंडिलोसिस के स्थानीयकृत लक्षण समस्या के स्थल पर लगभग आसपास होते हैं जिसमे हर्नियेटेड डिस्क और उनमें सुस्त दर्द सीमित गति या अस्थिरता की भावना शामिल हो सकती है। स्पोंडिलोसिस के विकीर्ण लक्षण शरीर के दूरस्थ क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं जैसे कि उभड़ा हुआ डिस्क और हड्डी के स्पर्स से प्रभावित होती हैं। स्पॉन्डिलाइटिस का अर्थ है एंकिलोसिंग स्पॉन्डिलाइटिस है जो महिलाओं की तुलना में पुरुषों को अधिक प्रभावित करता है। स्पोंडिलोसिस के लक्षण आमतौर पर 50 साल की उम्र के बाद शुरू होते हैं दूसरी ओर स्पॉन्डिलाइटिस आमतौर पर युवा वयस्कों और किशोरों में विकसित होता है, इसके लक्षण 20 से 40 की उम्र से दिखने लग जाते हैं और जब यह चरम अवस्था में पहुंचता है तो हड्डियां कमजोर हो जाती हैं और रीढ़ वास्तव में फ्यूज हो सकती है, जिससे चलना मुश्किल और बहुत दर्दनाक हो सकता है।[4] दोनों हड्डियों की स्थिति के बीच महत्वपूर्ण अंतर यह है कि वे हड्डी को नुकसान पहुंचाते हैं। स्पॉन्डिलाइटिस के मामले में जोड़ों में सूजन का निदान किया जाता है। दूसरी ओर स्पोंडिलोसिस के मामले में हड्डियों के अध पतन, सामान्य घिसने का निदान किया जाता है।

कारण : लगातार लंबे समय तक कंप्यूटर या लैपटॉप पर बैठे रहना, गर्दन झुकाकर देर तक मोबाइल फोन का प्रयोग करना, पढ़ते या काम करते समय गर्दन का पॉस्चर सही नहीं रखना और फास्ट-फूड्स व जंक-फूड्स का सेवन, इस मर्ज के होने के कुछ प्रमुख कारण हैं। इसके अलावा अधिक लम्बे समय तक ड्राइविंग करना, अधिक लम्बे समय तक गद्दीदार कुर्सियों पर समय व्यतीत करना, कैल्शियम की कमी, विटामिन डी की कमी, घर में काम करती महिलाओं में, सिलाई-कढ़ाई करते लोगो में, यह गंभीर तनाव और चिंता के कारण भी हो सकती है। प्रौढ़ और वृद्धों में सर्वाइकल मेरुदंड में डी-जेनरेटिव बदलाव, उम्र बढ़ने के साथ-साथ हड्डियों का क्षय या विकार, कमजोर हड्डियां साधारण क्रिया है।

सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के जोखिम कारकों में शामिल हैं—

- उम्र : उम्र बढ़ने के साथ-साथ स्पाइनल डिस्क डिहाइड्रेट और सिकुड़ने लगती हैं।
- पेशा : कुछ काम गर्दन पर अतिरिक्त दबाव डाल सकते हैं जैसे—झुक कर घंटों तक लैपटॉप आदि पर काम करते लोगो में, अत्यधिक भारी वजन उठाना, कामकाजी महिलाओं में, सिलाई कढ़ाई करते लोगो में, अत्यधिक ड्राइविंग करते लोगो में।

- गर्दन की चोटें : गर्दन में लगी कोई चोट, चाहे सालों पुरानी हो।
- स्थायी विकलांगता : सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के लक्षण, यदि अनुपचारित छोड़ दिया जाए तो रीढ़ की हड्डी को स्थायी नुकसान हो सकता है, जिससे स्थाई विकलांगता आ सकती है।
- आनुवंशिक कारक : कुछ परिवारों में समय के साथ अधिक परिवर्तन होंगे, जबकि अन्य परिवारों का विकास कम होगा।

लक्षण : एक अनुमान के अनुसार हर पांचवें भारतीय को स्पाइन से संबंधित किसी न किसी प्रकार की समस्या है। पहले ये समस्याएं केवल उम्रदराज लोगों में ही होती थी लेकिन पिछले एक दशक में युवाओं में इसके मामले 60 प्रतिशत तक बढ़े हैं। लंबे समय तक गलत पॉस्चर बनाए रखना स्पाइन पर अत्यधिक दबाव डालता है। युवाओं में ही नहीं, बच्चों और किशोरों में भी गैजेट्स के अत्यधिक इस्तेमाल से सर्वाइकल स्पाइन से संबंधित समस्याएं हो रही हैं, जिसमें सर्वाइकल स्पॉन्डोलाइटिस प्रमुख है।[5] सर्वाइकल क्षेत्र मे कैल्शियम का डी-जेनरेशन, बहि:क्षेपण और सर्वाइकल क्षेत्र में फुलाव अथवा सूजन की अवस्था तथा अपने स्थान से सरकने की वजह से होता है। वेर्टेब्रा के बीच के कुशनों के डी-जेनरेशन से नसों पर दबाव पड़ता है और इससे सर्वाइकल स्पांडिलाइटिस के लक्षण दिखते हैं। सर्वाइकल स्पांडिलाइटिस के निम्न लक्षण हैं, जैसे—गर्दन में दर्द होना, दर्द के साथ चक्कर आना, गर्दन में दर्द के साथ बाजू में दर्द होना, गर्दन में अकड़न जो उत्तरोत्तर बिगड़ती जाती है, गर्दन में सूजन तथा हाथों का सुन्न हो जाना, हाथों में दर्द, झुनझुनाहट का होना, सिरदर्द, विशेष रूप से सिर के पिछले हिस्से में, अंग विशेष में भारीपन का एहसास होना, सुई के चुभने जैसे पीड़ा होना, मांसपेशियों में ऐंठन, मांसपेशियों में कमजोरी, अकड़न और सिकुड़ जाना। यहां तक गर्दन के आसपास की नसों में दर्द या सूजन का फैल जाना आदि। जब उम्र और समय के साथ लक्षण बढ़ते जाते हैं अगर उचित समय पर उपचार न किया जाय तो, चलना-फिरना भी मुश्किल हो सकता है।

योगाभ्यासों की अवधारणा

उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति मनुष्य की अमूल्य निधि है जिसके आधार पर मनुष्य जीवन के सभी उद्देश्यों को परिपूर्ण करने के लिए कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है। सांसारिक मनुष्य सदैव सुख की कामना करता है तथा सुख की प्राप्ति के बिना समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव नहीं है। योग का पारमार्थिक लाभ देखा जाय तो यह परमात्मा के साथ एक होने की अच्छी कला है, लेकिन योग के व्यावहारिक लाभ को भी देखा जाय तो यह शारीरिक एवं मानसिक रोगों को दूर करने के लिए एक उत्तम चिकित्सा पद्धति है। आज प्रत्येक मनुष्य अपने स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन के लिए सतत् प्रयत्नशील है। लेकिन भौतिकवादी दृष्टिकोण ने मनुष्य मात्र को प्रकृति एवं प्राकृतिक जीवन शैली से दूर कर दिया है। वर्तमान समय में मनुष्य अनेकानेक रोग व कष्टों से ग्रस्त होता जा रहा है, जिसमें से अधिकाँश का कारण तनाव ही है।

योग क्रियाओं द्वारा रोग निवारण करना ही योग चिकित्सा कहलाती है। आसन, प्राणायाम आदि समस्त योग क्रियाओं का उपयोग कर विभिन्न रोगों की चिकित्सा करना ही यौगिक चिकित्सा का उद्देश्य है। सामान्य शब्दों में कहा जाय तो यौगिक संसाधनों का वह समूह : यौगिक सूक्ष्म व्यायाम, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान आदि जिससे व्याधि की अवस्था से रोगी को स्वस्थ अवस्था में लाने हेतु सतत् प्रयास किया जाता है, वह यौगिक चिकित्सा अर्थात् योग चिकित्सा कहलाती है।

प्राचीन ग्रन्थों में रोगोपचार की विभिन्न विधायें वर्णित हैं। आज सम्पूर्ण विश्व योग एवं उसके चिकित्सकीय उपयोग के विषय में जानने के इच्छुक हैं।

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं आतुरस्यविकारप्रशमनं च —चरकसंहिता 30/26[6]

आयुर्वेद शास्त्र के अनुरुप ही यौगिक चिकित्सा का उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा एवं रोगी व्यक्ति के रोग की निवृत्ति है।

योग के आसन दूसरे शारीरिक आसनों की अपेक्षा लंबे शोध और प्रयोग के बाद रोग, शरीर विज्ञान के अनुसर निर्मित किए गए हैं। यह हमें हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों की देन है, ऋषि मुनियों ने योगासन का आविष्कार रोगो को दूर कर लंबी आयु के लिए किया था, क्योंकि वे स्वस्थ रहकर ज्यादा से ज्यादा जीवन जीना चाहते थे। ताकि मोक्ष की प्राप्ति की जा सके। योग के आसनों द्वारा कोई सा भी रोग दूर किया जा सकता है। किसी भी व्यक्ति को रोगी बनाकर जल्दी ही मृत्यु की ओर धकेलने वाले शारीरिक मल और जहर को दूर कर योग एक स्वस्थ और शक्तिशाली जीवन प्रदान करता है।[7]

आधुनिक युग में योग का महत्व और अधिक बढ़ गया है। इसके बढ़ने का कारण व्यस्तता और मन की व्यग्रता है। आज आधुनिक मनुष्य को योग की ज्यादा आवश्यकता है, जबकि मन और शरीर अत्यधिक तनाव, वायु प्रदूषण तथा भागमभाग के जीवन से रोगग्रस्त हो चला है। योगासनों के माध्यम से शारीरिक शक्तियों का विकास किया जा सकता है। शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने, उसके अंग प्रत्यंगो की कार्यक्षमता करने तथा उसे निरोग बनाये रखकर ओजस्वी एवं कांतिमय बनाने में योग साधना का अधिक महत्व है। शरीर में विभिन्न द्रव्यों का निर्माण करने वाली ग्रंथियों को ठीक प्रकार नियंत्रित कर उन्हें पर्याप्त रूप से सजग एवं क्रियाशील बनाये रखने में योग के द्वारा पूर्ण सहायता प्राप्त होती है। योग का महत्व श्वेताश्वतर उपनिषद में इस प्रकार वर्णित किया गया है—

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् —श्वेताश्वतर 2/12[8]

अर्थात् योगाभ्यास से तपा हुआ शरीर रोग, जरा एवं मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

योग से शरीर मजबूत और लचीला होता है। योग मांसपेशियों को सुगठित और शरीर को संतुलित रखता है, सुगठित और संतुलित और लोचदार शरीर होने से कार्य क्षमता में भी वृद्धि होती है। कुछ योग मुद्राओं से शरीर की हड्डियां भी पुष्ट और मजबूत होती हैं। यह अस्थि सम्बन्धी रोग की संभावनाओं को भी कम करता है। अतः योग चिकित्सा पद्धति सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस की स्थिति के लिए सरल, प्रभावशाली और स्थाई उपचार प्रदान करता है।

अध्ययन का उद्देश्य

- सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के कारक कारकों का अध्ययन और विश्लेषण करना।
- सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के निदान के लिए निहितार्थ विभिन्न योगाभ्यासों का उनके लाभों के संदर्भ में अध्ययन करना।
- सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस पर चयनित योगाभ्यासों के संयुक्त प्रभाव का पता लगाना।

विभिन्न साहित्यो में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में अनेक योगाभ्यासों का परामर्श दिया जाता है इसमें चयनित इस प्रकार है—

स्कंध चक्र सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध पृष्ठ 43-44 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में स्कंध चक्र का वर्णन है।

ग्रीवा संचालन सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध पृष्ठ 44-46 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में ग्रीवा संचालन का वर्णन है।

गोमुखासन सम्बन्धी : स्वामी निरंजनानंद सरस्वती, घेरण्ड संहिता महर्षि घेरण्ड की योग शिक्षा पर भाष्य पृष्ठ 147-148 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में गोमुखासन का वर्णन है।

वियोगासन सम्बन्धी : राजीव जैन त्रिलोक, सम्पूर्ण योग विद्या पृष्ठ 209 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस व मेरुदंड तथा कंधों की जकड़न के उपचार में वियोगासन का वर्णन है।

मकरासन सम्बन्धी : स्वामी निरंजनानंद सरस्वती, घेरण्ड संहिता महर्षि घेरण्ड की योग शिक्षा पर भाष्य पृष्ठ 192-193 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार तथा सम्पूर्ण शरीर के शिथिलीकरण के लिए मकरासन का वर्णन है।

उष्ट्रासन सम्बन्धी : स्वामी रामदेव, योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य पृष्ठ 84 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में उष्ट्रासन का वर्णन है।

मार्जरी आसन सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध पृष्ठ 123-124 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में मार्जरी आसन का वर्णन है।

बालासन सम्बन्धी : स्वामी रामदेव, योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य पृष्ठ 68 में सम्पूर्ण शरीर के शिथिलीकरण के लिए बालासन का वर्णन है।

सरल धनुरासन सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध पृष्ठ 218-219 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में सरल धनुरासन का वर्णन है।

सर्पासन सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध पृष्ठ 210-211 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में सर्पासन का वर्णन है।

मत्स्य क्रीड़ासन सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध पृष्ठ 94-95 में शरीर के स्नायुओं के शिथिलीकरण के लिए मत्स्य क्रीड़ासन का वर्णन है।

मर्कटासन सम्बन्धी : आचार्य बालकृष्ण दैनन्दिन योगाभ्यासक्रम पृष्ठ 53-55 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में मर्कटासन का वर्णन है।

शवासन सम्बन्धी : डॉ. पी डी शर्मा योगासन-प्राणायाम कीजिए और निरोगी रहिए पृष्ठ 46-47 में सम्पूर्ण शरीर के शिथिलीकरण के लिए शवासन का वर्णन है।

डॉक्टर स्वामी कर्मानंद सरस्वती, प्रत्यक्ष मार्गदर्शन स्वामी सत्यानंद सरस्वती, रोग और योग, पृष्ठ 179 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में शवासन का परामर्श दिया गया है।

नाड़ी शोधन प्राणायाम सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध पृष्ठ 400-407 में सम्पूर्ण शरीस्थ नाड़ियों के शुद्धिकरण में नाड़ीशोधन का वर्णन है।

डॉक्टर स्वामी कर्मानंद सरस्वती, प्रत्यक्ष मार्गदर्शन स्वामी सत्यानंद सरस्वती, रोग और योग, पृष्ठ 179 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में नाड़ीशोधन प्राणायाम का परामर्श दिया गया है।

भ्रामरी प्राणायाम सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध पृष्ठ 412-414 में तनाव, चिंता, क्रोध तथा शरीरस्थ उत्तको के स्वास्थ्य लाभ में भ्रामरी प्राणायाम का वर्णन है।

डॉक्टर स्वामी कर्मानंद सरस्वती, प्रत्यक्ष मार्गदर्शन स्वामी सत्यानंद सरस्वती, रोग और योग, पृष्ठ 179 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में भ्रामरी प्राणायाम का परामर्श दिया गया है।

वायु मुद्रा सम्बन्धी : डॉ. बृज भूषण गोयल, प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग पृष्ठ 218 में वायु रोग, वायुशूल तथा शरीर में दर्द निवारण के लिए वायु मुद्रा का वर्णन है।

अपान वायु मुद्रा सम्बन्धी : डॉ बृज भूषण गोयल, प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग पृष्ठ 219 में उदर वायु रोग तथा दर्द निवारण के लिए अपान वायु मुद्रा का वर्णन है।

योग निद्रा सम्बन्धी : स्वामी सत्यानंद सरस्वती, ध्यान तंत्र के आलोक में पृष्ठ 170-204 में तनाव, चिंता, क्रोध, अवसाद तथा सम्पूर्ण शरीर के शिथिलीकरण के लिए योग निद्रा का वर्णन है।

डॉक्टर स्वामी कर्मानंद सरस्वती, प्रत्यक्ष मार्गदर्शन स्वामी सत्यानंद सरस्वती, रोग और योग, पृष्ठ 179 में सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के उपचार में योग निद्रा का परामर्श दिया गया है।

चयनित योगाभ्यासों की चयन रचना कुछ इस प्रकार किया गया है जिसमें हर दो आसन के पश्चात एक शिथिलीकरण रिलैक्सेशन आसन का प्रयोग किया गया है, प्रत्येक आसन में 30 सेकंड से 1 मिनट का अंतराल दिया गया है और प्रत्येक प्रशिक्षण सत्र के अंत में 5 मिनट के लिए योग निद्रा, ध्यान में स्थिर के लिए निर्देशित किया जायेगा सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस के निदान में चयनित योगाभ्यासों का वर्णन निम्नलिखित इस प्रकार है—

चयनित योगाभ्यास

अभ्यास	समयावधि
1. यौगिक सूक्ष्म व्यायाम	
स्कंध चक्र (चालन)	2 मिनट
ग्रीवा संचालन	2.5 मिनट
2. आसन क्रमानुसार	
गोमुखासन, वियोगासना	2–2 मिनट
मकरासन	1.5 मिनट
उष्ट्रासन, मार्जरी आसन	2–2 मिनट
बालासन	1.5 मिनट
सरल धनुरासन, सर्पासन	2–2 मिनट
मत्स्य क्रीड़ासन	1.5 मिनट
मर्कटासन	3 मिनट
शवासन	2 मिनट
3. प्राणायाम	
नाड़ी शोधन प्राणायाम	5 मिनट
भ्रामरी प्राणायाम	4 मिनट
4. मुद्रा हस्त मुद्रा	
वायु मुद्रा	5 मिनट
अपान वायु मुद्रा	5 मिनट
5. ध्यान	
योग निद्रा	5 मिनट

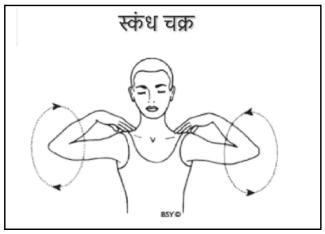

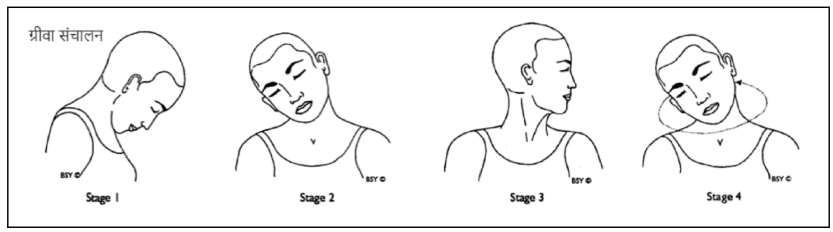

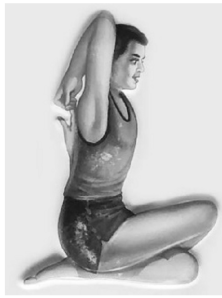

गोमुखासन

वियोगासना

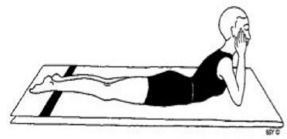

मकरासना

उष्ट्रासन

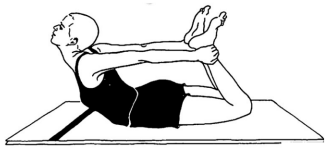

सरल धनुरासन

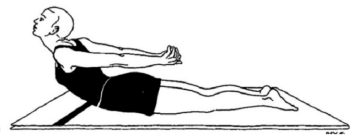

सर्पासन

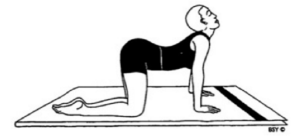

मार्जरी आसन

मत्स्य क्रीड़ासन

बालासन (विश्रामासन)

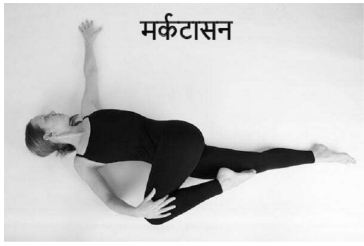

शवासन

नाड़ी शोधन प्राणायाम

भ्रामरी प्राणायाम

वायु मुद्रा

अपान मुद्रा

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह निकलता है कि सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस में ग्रीवा की जकड़न को यौगिक सूक्ष्म व्यायाम लचीलेपन को बढ़ाकर आराम दिलाते हैं। आसन मांसपेशियों के संकुचन और तनाव को कम करता है। प्राणायाम विकृत अंगों में नयी उर्जा का प्रवाह प्रसारित करता है, जिससे उन अंगो में रक्त का प्रवाह सुगमतापूर्वक होता है तथा उन अंगो में एक नयी ऊर्जा, चेतना प्रवाहित होती है। योग और प्राणायाम के साथ हस्त मुद्रा करने से दोगुना लाभ मिलता है। हमारी उंगलियों की नसें शरीर के विभिन्न हिस्सों से जुड़ी होती हैं, हस्त मुद्रा द्वारा इन पर प्रेशर डालकर शरीर का हर हिस्सा निरोगी रखा जा सकता है। ध्यान के सकारात्मक परिणाम होते हैं यह तनाव को कम कर, आत्मविश्वास में सुधार तथा प्रदर्शन की क्षमता में वृद्धि करता है।

सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस को रोकने के लिए कुछ अन्य तरीके निम्न इस प्रकार हैं—

- बहुत भारी वजन उठाने से बचें।
- गर्दन को आराम देने के लिए काम के बीच में थोड़ा-थोड़ा ब्रेक लेते रहें।
- बैठने और सोने की स्थति में शरीर का पोस्चर ठीक रखे।
- लेटते समय करवट लेकर लेटना सबसे अच्छा है। चेहरे के बल सोने से बचें।
- सर्वाइकल वाले क्षेत्र की तिल के तेल से हल्के हाथों से मालिस करे, तिल का तेल जोड़ों मांसपेशियों के लिए काफी फायदेमंद होता है।
- हरी पत्तेदार सब्जियां, फल, हरी सब्जियों का सलाद और स्प्राउट्स लें।
- खाद्य पदार्थों में जंक-फूड से बचें।

संदर्भ

1. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार।
2. संपूर्ण योग विद्या, राजीव जैन त्रिलोक मंजुल पब्लिशिंग हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।
3. स्वामी निरंजनानंद सरस्वती, घेरण्ड संहिता महर्षि घेरण्ड की योग शिक्षा पर भाष्य योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार।
4. आचार्य बालकृष्ण, दैनन्दिन योगाभ्यासक्रम, दिव्य प्रकाशन पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, उत्तराखंड।
5. योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, स्वामी रामदेव, दिव्य प्रकाशन पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, उत्तराखंड।
6. रोग और योग, डॉक्टर स्वामी कर्मानंद सरस्वती, प्रत्यक्ष मार्गदर्शन स्वामी सत्यानंद सरस्वती, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार।
7. डॉ. पी डी शर्मा योगासन-प्राणायाम कीजिए और निरोगी रहिए, नवनीत पब्लिकेशंस इंडिया लिमिटेड, नवनीत हाउस, भवानी शंकर रोड, दादर, मुंबई महाराष्ट्र।
8. डॉ. बृज भूषण गोयल, प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया फेज-2 नई दिल्ली।
9. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, ध्यान तंत्र के आलोक में, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार।
10. डॉ. अरुण कुमार साव, योग चिकित्सा सिद्धांत व व्यवहार चौखंभा ओरिएंटलिया, दिल्ली।
11. चित्र- स्वामी सत्यानंद सरस्वती, आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार। योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, स्वामी रामदेव, दिव्य प्रकाशन पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार, उत्तराखंड। Dreamstime, Adobe stock etc.

13. Ask Apollo- yourhealthonline
https://healthlibrary.askapollo.com/everything-you-need-to-know-about-cervical-spondylitis/
14. https://www.researchgate.net/publication/340871919_CERVICAL_SPONDYLOSIS_-CAUSES_AND_REMEDIAL_MEASURES
15. https://www.patrika.com/lucknow-news/cervical-spondylitis-know-how-disease-is-6714413/
16. https://www.instagram.com/p/CfD4CO-LMhr/

❑❑

डॉ. रामजीत सिंह (असिस्टेंट प्रोफेसर)
टी डी पी जी कॉलेज, जौनपुर
श्री अखिलेश कुमार यादव (शोध छात्र)
टी डी पी जी कॉलेज, जौनपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

जलालपुर तहसील जनपद अम्बेडकर नगर की व्यावसायिक संरचना : एक भौगोलिक अध्ययन

शोध सारांश

पारिवारिक या घरेलू क्रियाकलापों से इतर किया जाने वाला वह समस्त कार्य जिससे व्यक्ति को आमदनी व सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, उसे व्यवसाय कहा जाता है। **ऑक्सफोर्ड** शब्दकोष के अनुसार व्यावसायिक संरचना को समाज में व्यवसायों के संकलित वर्गीकरण के रूप में परिभाषित किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र सूक्ष्म स्तर पर व्यावसायिक संरचना के स्वरूप को ज्ञात करने का प्रयास है। प्रस्तुत अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहाँ की 68.4 प्रतिशत जनसंख्या प्राथमिक कार्यों में संलग्न है। मात्र 6.4 प्रतिशत जनसंख्या द्वितीयक कार्यों में एवं 25.1 प्रतिशत जनसंख्या तृतीयक व्यवसायों में सम्मिलित हैं। यहाँ की कुल जनसंख्या का 33.4 प्रतिशत कार्यशील है जिसका 17.9 प्रतिशत मुख्य कर्मकर एवं 15.6 प्रतिशत सीमांत कर्मकर है। जलालपुर में आसमान व्यावसायिक संरचना के उत्तरदायी कारकों एवं प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

संकेत शब्द : व्यावसायिक संरचना, कर्मकर, सीमांत कर्मकर, मुख्य कर्मकर।

भूमिका

व्यावसायिक संरचना न सिर्फ सामाजिक आर्थिक विकास को अपितु यह जनांकिकीय संरचना को भी व्यापक स्तर पर प्रभावित करती है। जनसंख्या का जितना ज्यादा हिस्सा आर्थिक रूप से सक्रिय होगा एवं उसके कार्यों में जितनी अधिक विविधता होगी वह आर्थिक दृष्टि से उतना अधिक विकसित होगा। भारत की जनगणना में व्यवसायों को प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र एवं तृतीयक जैसी श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। प्राथमिक क्षेत्र में किसानों, कृषि मजदूर, पशुधन, वानिकी और मत्स्य पालन खनन और उत्खनन में उपविभाजित किया जाता है। द्वितीयक क्षेत्र को घरेलू और अन्य उद्योगों तथा निर्माण में उप विभाजित किया जाता है, तृतीय क्षेत्र को व्यापार, वाणिज्य, परिवहन, संचार तथा अन्य व्यवसायों में वर्गीकृत किया जाता है। व्यावसायिक संरचना एक गत्यात्मक इकाई है जो समाज के प्रौद्योगिकी एवं प्रति व्यक्ति आय के बदलते स्वरूप के साथ परिवर्तित होती जाती है। **कार्ल पोलेनी**, 1944 के अनुसार वैज्ञानिक जानकारी की वृद्धि, तकनीकी परिवर्तन के कारण कार्य संगठन में परिवर्तन बाजारों कि वृद्धि, औद्योगिक और व्यावसायिक केन्द्रों का उदय और अन्य सामाजिक परिवर्तन व्यावसायिक संरचना के संयोजन और उसके भीतर तथा बाहर कर्मचारियों के व्यवहार को प्रभावित करते है।

जनसंख्या वृद्धि का सीधा संबंध नगरवासियों द्वारा अपनाए गए व्यवसाय के स्वरूप से है। (**सिंह** 1955) यह किसी क्षेत्र की आर्थिक प्रगति की प्रवृतियों को उजागर करता है। विविध आर्थिक क्रियाकलापों में पुरुष सहभागिता के अनुपात के आधार पर किसी भी अर्थव्यवस्था को कृषक व औद्योगिक अर्थव्यवस्था में बांटा जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी राष्ट्र या प्रदेश में यह अनुपात 35% से कम होता है तो उसे औद्योगिक अर्थव्यवस्था माना जाता है, यदि यह अनुपात 35-60 प्रतिशत होता है तो उसे अर्ध औद्योगिक अर्थव्यवस्था एवं 60% से अधिक होने पर उसे कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था का दर्जा दिया जाता

है (प्रेमी 2006)। यहाँ दृष्टव्य है कि भूमि एवं अन्य संसाधनों पर जनसंख्या का दबाव दिनोंदिन बढ़ रहा है। ऐसी स्थिती में समाज के लिए प्रासंगिक व्यावसायिक संरचना का होना अपरिहार्य है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र अम्बेडकर नगर जनपद के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है। यह गंगा–घाघरा दोआब का उपजाऊ भू–भाग है। यह 26° 10′ उत्तरी अक्षांश से 26° 29′ उत्तरी अक्षांश के मध्य एवं 82° 36′ पूर्वी देशांतर से 82° 54′ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। प्राकृतिक दृष्टि से टोनरी नदी इसकी उत्तरी सीमा, मझुई नदी इसकी दक्षिणी सीमा बनाती हैं तथा टोंस नदी इसके मध्य से प्रवाहित होती है। इसका कुल क्षेत्रफल 510.6 वर्ग किलोमीटर है। 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या 5,80,647 है, जिसमे 2,56,806 पुरुष एवं 2,51,841 स्त्रियाँ है। प्रशासनिक दृष्टि से यह तहसील दो विकासखंडों (भियांव एवं जलालपुर) 24 न्याय पंचायतों तथा 312 राजस्व ग्रामों मैं विभक्त है। 2011 में यहाँ की कुल साक्षरता 71.8 प्रतिशत है जिसमें 82 प्रतिशत पुरुष साक्षरता एवं 61.4 प्रतिशत स्त्री साक्षरता है।

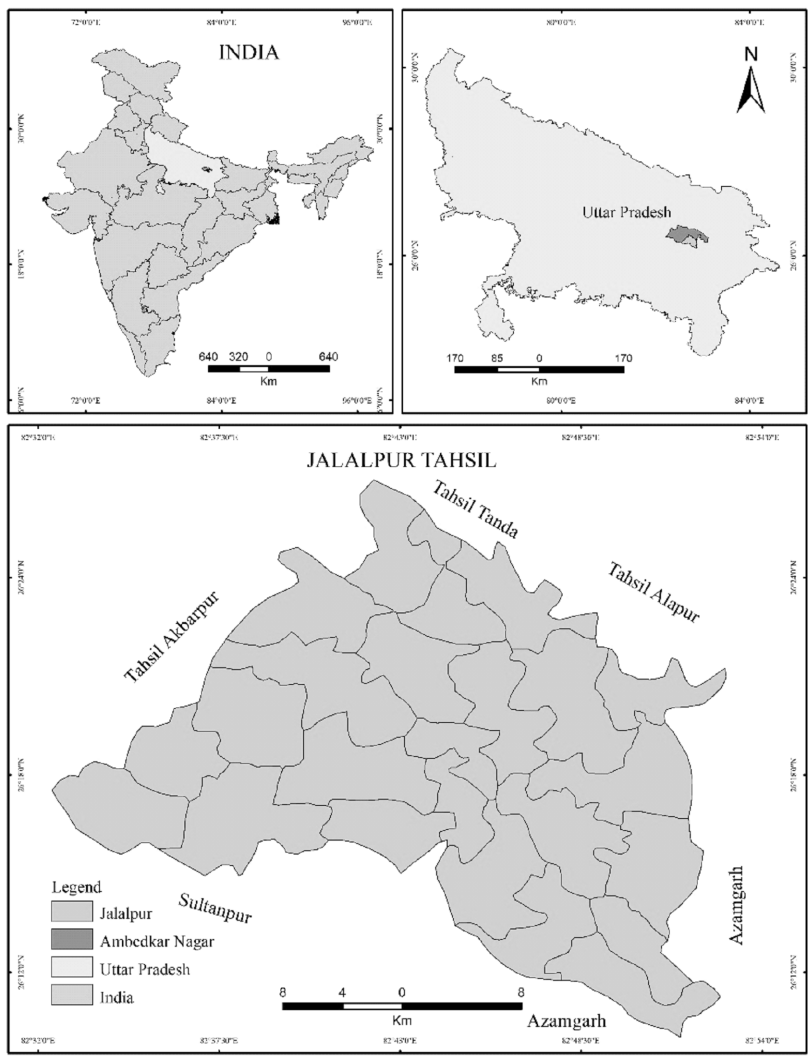

उद्देश्य

- व्यावसायिक संरचना के क्षेत्रीय प्रतिरूप का विश्लेषण करना।
- अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या की कार्यात्मक सहभागिता का आंकलन करना।

आंकड़ा संग्रह व शोध विधि तंत्र : प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। 2001 एवं 2011 के व्यावसायिक संरचना से संबंधित आंकड़े क्षेत्रीय जनगणना कार्यालय, लखनऊ से सॉफ्ट कॉपी के रूप में प्राप्त किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के क्षेत्रीय विस्तार को प्रदर्शित करने के लिए सर्वे ऑफ इंडिया, देहरादून द्वारा प्रकाशित भूपत्रक 1 : 50,000 का प्रयोग किया गया है। एकत्रित आंकड़ों को वर्गीकृत कर उन्हें विभिन्न स्तरों में विभाजित किया गया है जिनके आधार पर मानचित्र एवं तालिकाओं का निर्माण किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र की व्यावसायिक संरचना : कार्यों की विविधता के आधार पर कार्यशील जनसंख्या को बांटना व्यावसायिक संरचना कहलाता। भारतीय जनगणना 1991 के अनुसार किसी आर्थिक उत्पादन के कार्यकलापों में भाग लेने को कार्य कहते हैं। कार्य शारीरिक अथवा मानसिक दोनों रूप में हो सकता है काम में केवल शारीरिक काम करना ही नहीं आता है वरन काम का प्रभावी पर्यवेक्षण और निर्देशन भी शामिल हैं। इसमें फर्म या पारिवारिक उद्यम में अवैतनिक रूप से काम करना भी शामिल हैं। विविध आर्थिक क्षेत्रों में संग्लग्न अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या का स्वरूप निम्नवत है—यहाँ की कुल कार्यशील जनसंख्या का अधिकांश भाग 68.4% प्राथमिक कार्यों में 25.1% तृतीयक एवं 6.4% द्वितीयक कार्यो में संग्लग्न है। अध्ययन क्षेत्र की व्यावसायिक संरचना पर दृष्टि डाली जाए (Table-2) तो ज्ञात होता है कि 2001 में यहाँ के 34.4% आबादी आर्थिक रूप से सक्रिय हैं जबकि 2011 में यह घटकर 33.4% हो जाती है। 2001 में यहाँ की 65.5% जनसंख्या अकार्यशील है जो बढ़कर 2011 में 66.5% हो जाती है 2001 में 21.3 प्रतिशत जनसख्या मुख्य कर्मकर एवं 13.1 प्रतिशत जनसख्या सीमान्त कर्मकर के रूप में सक्रिय थी जबकि वर्ष 2011 में 17.9 प्रतिशत मुख्य कर्मकर एवं 15.6 प्रतिशत सीमान्त कर्मकर थी। द्रष्टव्य है कि कृषि से प्राप्त लाभ में उत्तरोत्तर गिरावट व बढ़ती चुनौतियों के परिणामस्वरूप इसके प्रति लोगो में उदासीनता एवं नगरों की ओर पलायन बढ़ा है। इसकी परिणति अध्ययन क्षेत्र में कृषकों की गिरती संख्या के रूप में सामने है।

व्यावसायिक संरचना का क्षेत्रीय स्वरूप

मुख्य कर्मकर : वे व्यक्ति जिन्होंने पूरे वर्ष के दौरान वर्ष के अधिकांश भाग में काम किया हो उन्हें मुख्यत: काम करने वाला माना गया है। वर्ष के अधिकांश भाग का अभिप्राय है छह माह (183 दिन) या उससे अधिक (भारतीय जनगणना 1991)। अध्ययन क्षेत्र के आंकड़ों पर दृष्टि डालें— तो ज्ञात होता है कि 2001 में यहाँ 91836 (21.3%)मुख्य कर्मकर है जो 2011 में घटकर 90922 (17.9%) रह जाता है। 2001 में न्यायपंचायत बड़ेपुर में सर्वाधिक मुख्य कर्मकर 5725 है एवं न्यूनतम मुख्य कर्मकर इस्माइलपुर में 2106 है। इसी प्रकार 2011 में बड़ेपुर न्यायपंचायत में सर्वाधिक मुख्य कर्मकर 6678 है एवं न्यूनतम 1887 इस्माइलपुर न्याय पंचायत मैं हैं।

तालिका-2

श्रेणी	2001		2011	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1. कार्यशील जनसख्या	148302	34.4	62147	33.4
2. अकार्यशील जनसख्या	282307	65.6	5795	66.5
3. मुख्य कर्मकर	91836	21.3	22800	17.9
4. सीमान्त कर्मकर	56466	13.1	90742	15.6

तालिका-2 : जलालपुर की व्यावसायिक संरचना

न्याय पंचायत	मुख्य कर्मकर		कृषक जनसंख्या			कृषि श्रमिक			परिवारिक कर्मकर			अन्य कर्मकर		
	2001	2011	2001	2011	परि	2001	2011	परि	2001	2011	परि	2001	2011	परि
1. सकरा युसुफपुर	3265	2849	59.2	43.7	-15.5	20.8	28.4	7.6	4.9	4.8	-0.1	15.2	23.1	7.9
2. फतेहपुरमोहिब्बूर	3210	4283	56.0	32.2	-23.8	21.0	28.6	7.6	4.1	5.3	1.2	18.9	33.8	14.9
3. डीह भियांव	4670	4294	61.1	49.3	-11.8	20.6	30.1	9.50	3.70	3.80	0.1	14.6	16.7	2.1
4. नगपुर	4600	3648	14.8	16.4	1.60	10.2	23.3	13.1	40.6	27.9	12.7	34.4	32.4	-2
5. अशरफपुर	3451	4526	50.9	29.8	-21.1	20.2	39.9	19.7	6.30	6.50	0.2	22.5	23.8	1.3
6. सम्मनपुर	3404	5090	69.1	24.1	-45.0	16.7	18.9	2.20	5.80	2.00	3.8	8.4	7.9	-0.5
7. बड़ेपुर	5725	6678	51.2	33.2	-18.0	15.5	37.6	22.1	3.80	4.70	0.9	23.4	24.5	1.1
8. कादीपुर	3181	2904	61.4	39.6	-21.8	19.6	29.1	9.50	6.50	5.20	-1.3	12.4	26.1	13.7
9. खजुरी करौंदी	2842	2539	55.7	34.9	-20.8	25.8	32.8	7.00	4.40	6.60	2.2	14.1	25.6	11.5
10. धौरुवा	2924	2891	49.4	45.7	-3.70	23.9	26.1	2.20	4.70	4.90	0.2	22.0	23.2	1.2
11. मालीपुर	4819	3471	50.9	37.2	-13.7	12.6	21.0	8.40	6.60	8.40	1.8	30.0	33.6	3.6
12. बडागांव	4071	4467	57.4	37.2	-20.2	20.3	30.4	10.1	4.50	4.70	0.2	18.3	27.6	9.3
13. इश्माइल्पुर	2106	1887	47.4	31.6	-15.8	13.4	19.9	6.50	4.70	8.30	3.6	34.5	40.2	5.7
14. सुरहुरपुर	4569	3896	55.4	40.4	-15.0	22.8	19.1	3.70	4.70	8.30	3.6	17.0	32.3	15.3
15. मरहरा	3434	2928	69.7	43.9	-25.8	14.4	37.4	23.0	4.40	3.90	-0.5	11.6	14.8	3.2
16. भियांव	5700	6088	62.7	53.0	-9.70	18.1	26.5	8.40	5.40	5.40	0.0	13.7	15.1	1.4
17. दुलहुपुर	2874	2800	69.4	53.2	-16.2	14.3	21.9	7.6	4.0	3.4	-0.6	12.2	21.4	9.2
18. अज्मल्पूर	3863	5293	69.5	76.9	7.4	16.1	20.7	4.6	2.5	9.0	6.5	11.8	22.3	10.5
19. आशापार	2991	3242	65.0	63.4	-1.6	20.6	22.1	1.5	3.2	3.2	0.0	11.0	11.3	0.3
20. बन्दीपुर	5049	3465	54.2	27.3	-26.9	24.8	33.9	9.1	8.0	5.0	-3.0	13.0	33.7	20.7
21. अम्बरपुर	4018	4167	73.3	50.2	-23.1	13.3	21.5	8.2	2.4	3.3	0.9	10.9	24.9	14.0
22. बलीपुर	4007	3583	70.6	44.5	-26.1	9.4	14.2	4.8	3.9	8.4	4.5	16.1	32.8	1.7
23. गोबरी चांदपुर	4425	3090	71.5	43.4	-28.1	14.9	23.4	8.5	2.1	3.6	1.5	11.4	28.2	16.8
24. पखनपुर	2367	2836	71.4	47.3	-24.1	14.7	21.5	6.8	5.1	4.4	-0.7	11.7	21.5	9.8
योग	91836	90922	58.3	41.1	-17.2	17.5	27.3	9.8	6.4	6.4	0.0	17.7	25.1	7.4

स्रोत : जिला जनगणना हस्तपुस्तिका, अंबेडकरनगर।

कृषक : कृषक वह व्यक्ति माना गया है जो कि अकेला या परिवार के कार्यकर्ता के रूप में अपनी स्वयं की जमीन, सरकारी पट्टे पर प्राप्त भूमि या किसी दूसरे व्यक्ति या संस्था से बटाई या किराये पर ली गई अथवा अन्य प्रकार से प्राप्त जमीन पर खेती करता है। (जनगणना 1991) वर्ष 2001 में न्याय पंचायत स्तर पर उपलब्ध आंक ?ों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि यहाँ की 58.3 प्रतिशत जनसंख्या कृषक है जिसमे अम्बरपुर न्याय पंचायत में सर्वाधिक कृषक 73.3 प्रतिशत है जबकि नगपुर न्याय पंचायत में न्यूनतम 14.8 प्रतिशत लोग कृषक के रूप में कार्यरत हैं। नगरीय परिक्षेत्र से संलग्न होने के कारण यंहां अधिकांश लोग अन्य व्यवसाय में भी संग्लग्न है वर्ष 2011 में सर्वाधिक कृषक 76.1 प्रतिशत अजमलपुर न्यायपंचायत में जबकि न्यूनतम कृषक नगपुर न्याय पंचायत में 16.4 प्रतिशत पुन: विद्यमान हैं। तहसील की पांच न्याय पंचायतों में 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषक है जिसमें भियांव 53 प्रतिशत दुल्लहपुर 63.2 प्रतिशत अजमलपुर 76.9 प्रतिशत आशापार 63.4 एवं अम्बरपुर में 50.2 प्रतिशत है।

कृषि श्रमिक : भारत की जनगणन 1991 के अनुसार जो व्यक्ति नकद व जिंस के रूप में मजदूरी लेकर किसी दूसरे व्यक्ति के खेत में काम करता है उसे कृषि श्रमिक माना गया है। उसे खेती में लाभ हानि से कोई सरोकार नहीं होता। अध्ययन क्षेत्र में जहाँ 2001 में 17.5 प्रतिशत लोग कृषक मजदूर के रूप में विद्यमान है वही 2011 में यह बढ़कर 27.3 प्रतिशत हो जाता है। वर्ष 2001 में सर्वाधिक कृषक मजदूर 25.8 प्रतिशत खजूरी करौंदी न्याय पंचायत में एवं न्यूनतम कृषक मजदूर बलीपुर न्याय पंचायत (9.4%) एवम नगपुर न्याय पंचायत में 10.2 प्रतिशत है वर्ष 2011 में सर्वाधिक कृषक मजदूर 39.9 प्रतिशत अशरफपुर न्याय पंचायत में जबकि न्यूनतम कृषक मजदूर 14.2 प्रतिशत बलीपुर न्याय पंचायत में है। क्षेत्र की 29 प्रतिशत न्याय पंचायतों (7) में 30 प्रतिशत से अधिक लोग कृषक मजदूर के रूप में कार्य करते हैं जिनमे डीह भियांव (30.1%) अशरफपुर (39.9%), बडेपुर (37.6%), खजूरी करौंदी (32.8%), मरहरा (37.4%), बन्दीपुर (33.9%) एवं बड़ागांव 30.4 प्रतिशत है।

पारिवारिक कर्मकर : पारिवारिक उद्योग वह उद्योग है जो परिवार के मुखिया द्वारा स्वयं और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा अपने घर पर और नगरीय क्षेत्रों के उस मकान के अंदर या अहाते में जिसमें परिवार रहता है, चलाया जाता है (भारतीय जनगणना 1991)। अध्ययन क्षेत्र के आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि यहाँ की 6.4 प्रतिशत आबादी पारिवारिक कर्मकर के रूप में विद्यमान है और यह दोनों अध्ययन वर्ष 2001 एवं 2011 में यथावत रहती है। वर्ष 2001 में सर्वाधिक 40.6 प्रतिशत पारिवारिक कर्मकर नगपुर न्याय पंचायत में है एवं न्यूनतम 2.1 प्रतिशत गोबरी चांदपुर में है। वर्ष 2011 में भी 12.7 प्रतिशत की गिरावट के बावजूद नगपुर न्याय पंचायत में सर्वाधिक पारिवारिक कर्मकर 27.9 प्रतिशत है जबकि न्यूनतम पारिवारिक करमकर 2.0 प्रतिशत सम्मनपुर न्याय पंचायत में है।

अन्य कर्मकर : कृषक, कृषक मजदूर और पारिवारिक कर्मकर के अलावा शेष कर्मकर को अन्य कर्मकर के रूप में जाना जाता है (भारतीय जनगणना 2011)। अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2001 में 7 प्रतिशत लोग एवं 2011 में 25.1 प्रतिशत लोग अन्य कर्मकर के रूप में विद्यमान है। सरकारी सेवाओं के प्रति बढ़ते स्थानीय आकर्षण के फलस्वरूप क्षेत्र में से 17.7 प्रतिशत कि दशकीय वृद्धि हुई है। वर्ष 2001 में सर्वाधिक पारिवारिक कर्मकार 34.5 प्रतिशत इस्माइलपुर एवम नगपुर न्याय पंचायत में एवं न्यूनतम 8.4 प्रतिशत सम्मनपुर न्याय पंचायत में है। वर्ष 2011 में सर्वाधिक पारिवारिक कर्मकर 33.8 प्रतिशत फतेहपुर मोहिबपुर में एवं न्यूनतम 7.9 प्रतिशत सम्मनपुर न्याय पंचायत में विद्यमान है। साक्षरता दर में वृद्धि के फलस्वरूप अन्य कर्मकरों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

निष्कर्ष

अध्ययन क्षेत्र की जनसंख्या के कार्यात्मक स्वरूप व सहभागिता में स्थानिक व कालिक स्तर पर असमानता दिखाई देती है। एक तरफ जहाँ कृषकों की संख्या में भारी गिरावट आ रही है वहीं कृषि मजदूरों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कृषि भाग का एक बड़ा भाग उन लोगों के पास है जो स्वयं श्रम न करके श्रम खरीदते हैं। क्षेत्र में रोजगार का व्यापक अभाव है जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में गांव से लोग नौकरी के लिए नगरीय

और औद्योगिक केंद्रों की ओर प्रवास कर रहे हैं। हजारों ऐसे ग्रामीण परिवारों में सिर्फ बूढ़े, बच्चे व महिलाएं शेष रह जाते है और वे कृषि श्रमिकों के रूप में अपनी आजीविका का निर्वहन करते हैं। श्रम पलायन व खेतीहर मजदूरों की बढ़ती संख्या का कृषि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। क्षेत्र में एक तरफ जहाँ बड़े उद्योगों का अभाव है वहीं कुटीर उद्योगों की तरफ भी लोग उदासीन है। मात्र 6.4 प्रतिशत लोग ही कुटीर उद्योगों में संलिप्त हैं। इससे स्पष्ट है कि क्षेत्र के विकास के लिए कुटीर उद्योगों के विकास की प्रचुर संभावनाएँ हैं। अध्ययन क्षेत्र में शिक्षा के प्रसार एवं सामाजिक चेतना के फलस्वरूप लोगों का सेवा क्षेत्र की तरफ व तृतीय व्यवसायों की तरफ रुझान बढ़ रहा है। 2001 की तुलना में 2011 में इसमें 7.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। मूलत: अभी भी यह क्षेत्र सरल कृषिगत समाज का परिचायक बना हुआ है।

संदर्भ

1. Chandana, R.C., (1980) : Introduction to population geography, kalyani publication, New Delhi.
2. Trewartha, GT 1969 a geography off population; World patterns, John Wiley and sons New York.
3. Maurya, S.D., (2005), population geography sharda pustak bhavan, Allahabad
4. District Census Handbook, Ambedkar Nagar 2001 & 2011.
5. Tiwari Vinay, Gupta, D.K. (2010) संत कबीर नगर (उत्तर प्रदेश) की व्यावसायिक संरचना एक भौगोलिक विश्लेषण, वोल्यूम 19.
6. कमलेश आर.एस. एवं शुक्ला संगीता (2016) बिलासपुर जिले छत्तीसगढ़ के लोरमी विकासखण्ड में व्यवसायिक संरचना में परिवर्तन उत्तर प्रदेश जियोग्राफीकल जर्नल, वोल्यूम 21 .
7. Census of India 1991
8. Premi, M.K. (2006) Population of India in the new millenium census 2001, National Book Trust, New Delhi pp-229-230
9. Singh, P.B., Sahi, P.P. (1988) The Image of The city: Case of Deoria Town, India.

❑❑

डॉ. (श्रीमती) सुमन शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग (कला संकाय)
डी.ई.आई. दयालबाग, आगरा

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

सनातन धर्म-संस्कृति : पर्यावरण शिक्षा की नींव

शोध-सार

मनुष्य ने प्रकृति को अत्यधिक शोषित किया है। ये अत्यन्त चिन्ता का विषय है। पर्यावरण से मानवीय सम्बन्ध अति प्राचीन है। वायु, भूमि, जल से नाता जैव मण्डल की अपरिहार्य अनिवार्यता है जिसमें प्राणी, पशु-पक्षी, वृक्ष और मनुष्य की एक अविभक्त कड़ी है। एक-दूसरे के अभाव में संसार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर्यावरण जीवित ही है इसमें रहने वाले जीव-जन्तुओं के कारण, पर्यावरण अपने आप में बहुत विस्तृत शब्द है। सम्पूर्ण भौतिक एवं जैविक व्यवस्था ही पर्यावरण है। अपनी स्वभाविक प्रवृत्तियों का विकास इस पर्यावरण में ही संभव है। सुखमय और निरोगी जीवन के लिए पर्यावरण संरक्षण अति आवश्यक है। मानव को जीवन मूल्यों को सुधारने हेतु पुनर्मूल्यांकन और प्रशिक्षण भी आवश्यक है।

पर्यावरण चेतना के विविध स्वरूप हैं जिनके माध्यम से पर्यावरण की सुरक्षा की जा सकती है। पर्यावरण चिन्तन एवं उसकी शिक्षा मानवीय अस्तित्व से सम्बद्ध है। वैदिक कालीन मनुष्य परोपकार, सहिष्णुता, कल्याण की भावना, जीवन के प्रति दया, प्रकृति प्रेम और लगाव प्रदर्शित करता था। किन्तु आधुनिक मानव की स्वार्थ परता, व्यक्ति लाभ और संकुचित सोच और भोगवादी प्रवृत्ति प्रकृति का ह्रास कर रही है।

सिमटते वन क्षेत्र, सूखते झरने, जीव-जन्तुओं और पेड़-पोधों की लुप्त होती प्रजातियाँ, बढ़ता वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण के साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रदूषण को मिटाने के लिये बाल्यावस्था से ही चेतना का विकास करना आवश्यक है। पर्यावरण संरक्षण हेतु वैदिक एवं धार्मिक अवधारणाओं को जीवन में व्याप्त करना आवश्यक है क्योंकि भारत में सनातन धर्म पर्यावरण शिक्षा की आधार भूमि उपलब्ध कराता है। धरती, प्रकृति और पर्यावरण से ही मनुष्य बना और उसका विकास हुआ। वर्तमान सन्दर्भ में पर्यावरण को समझने, उसके संरक्षण और सम्वर्द्धन हेतु मानवीय चिन्तन, दृष्टिकोण और पर्यावरण शिक्षण की अनिवार्यता है।

''द्यौः पिता पृथ्वीमाता सोमो भ्रातादितिः स्वसाः''[1]
''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''[2]

यह उद्घोष है मानवीय उस धार्मिक चेतना का जिसमें न केवल पर्यावरण की सुरक्षा निहित है वरन् मानव के अस्तित्व की जागृति का बोध निहित है। 'धारणपोषणयोः' के संदर्भ में धर्म मानव एवं पर्यावरण का धारण एवं पोषक है। मानवीय एवं पर्यावरणीय उर्वरक शक्तियों को धारण कर वह सत्य[3] अहिंसा आदि उन ध्रुव मूल्यों का संवर्धक है जो चराचर जड़चेतन भौतिक जगत् के अस्तित्व की आधारशिला बनते हैं। परि एवं उपसर्गद्वयपूर्वक वृञ् धातु से ल्युट प्रत्यय के योग से पर्यावरण शब्द निष्पन्न होता है। 'परितः आवृणोतीति' अर्थात् जो चारों ओर से घेरे हुए है वह पर्यावरण है। 'शिक्षेर्जिज्ञासायाम्' अर्थात् मानव जीवन को विशिष्ट बनाने के लिए विशिष्ट जिज्ञासा की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील शिक्षा है। 'शिक्षविद्योपादाने' से मानव का प्रकृति रूपी गुरु की शरण में जाकर जीवन को सीखना शिक्षा है।

सनातन धर्म पर्यावरण शिक्षा का पर्याय है। 'सनातन्', 'धर्म', 'पर्यावरण' एवं 'शिक्षा' शब्दों में आच्छादन का भाव है, जिज्ञासा का भाव है, सह-अस्तित्व का भाव है और शरण का भाव है। अतः यह शब्द चतुष्ट्य एक दूसरे के पूरक हैं। इनका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध कल्याण का सूचक है। कल्याण रूपी लक्ष्य ही सुरक्षा के योग्य है। जो सुरक्षा की शिक्षा दे सकता है वही आधार है। सनातन धर्म इन सभी गुणों से ओतप्रोत है। पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य विषय-वस्तु, शिक्षण-विधि, शिक्षक एवं शिक्षार्थी यहाँ विद्यमान है। पृथ्वी द्वारा मानव की रक्षा तथा उसके जीवनोपयोगी साधनों के जुटाव में उपकारक-उपकार्य का सम्बन्ध है। इसी के प्रति अनुगृह भाव प्रदर्शन धार्मिक-चेतना का जनक है। इसीलिए मानव जाति का प्रथम धर्म 'प्रकृतिवाद' है। सनातन धर्म में मातृत्व सम्बन्ध की स्थापना द्वारा मानव पृथ्वी की उर्वरक क्षमता से लाभान्वित हुआ है।

सनातन धर्म प्रकृति प्रेम और पृथ्वी संरक्षण की चिरन्तन धारा का नाम है। यह बाह्य एवं आभ्यान्तर पर्यावरण-शिक्षा एवं भू-जल एवं वायुमण्डलीय पर्यावरण-शिक्षा के प्रति सचेत है। सनातन धर्म में आत्मनियंत्रण एवं त्यागपूर्वक पार्थिव पदार्थों के उपभोग की शिक्षा का विधान है। सर्वत्र ब्रह्मभाव का आच्छादन है एवं 'आत्मवत् समाचरेत्' की भावना का क्रियान्वयन है।

ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।[4]

सनातन धर्म की संस्कृति समन्वयवादी है। यहाँ ब्रह्म और जीव एवं जीव और जगत् का अद्भुत समावेश है। परम तत्त्व का स्वयं उद्घोष है कि जैसे प्राणियों के पंचभूतों से बने शरीरों में पंचभूतों प्रविष्ट होकर भी अप्रविष्ट रहते हैं, उसी तरह सबमें व्याप्त होकर भी मैं उनसे निर्लिप्त हूँ।[5] अतः प्रकृति का अपमान एवं अवहेलना आराध्य की अवहेलना है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' के मानदण्ड के अनुसार सनातन धर्म पर्यावरण के प्रति जागरूक है। सिन्धुकालीन सभ्यता के अवशेष पशु-पक्षी, नान्दी, पशुपति, मातृदेवी, जल एवं सूर्योपासना द्वारा पर्यावरणीय चेतना-जागृति का स्पष्ट संकेत करते हैं। सनातन धर्म में पशु-पक्षी, वन-पादप, वनस्पति, पर्वत, कूप-जलाशय, नदी, सागर, ग्रह-नक्षत्र, सभी आराधना का केन्द्र बनकर पर्यावरण सुरक्षा एवं शुद्धता का आह्वान कर रहे हैं। अहिंसा एवं शान्ति की कामना में पर्यावरण पूर्णरूपेण समाहित है।

''द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापाः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विष्वेदेवाः। शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः। सर्वशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः। सा मा शान्तिरेधि।''[6]

ऋग्वेद की 'बहुदेववाद' की विचारधारा द्वारा क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर में देवत्व की कल्पना से पर्यावरण सुरक्षित है। जड़ व चेतन पर्यावरण के आधार यही पंचमहाभूत है। 'बहुदेववाद' की इस विचारधारा ने पर्यावरण-चेतना का जो अमर संदेश दिया है वह सनातन धर्म का मूलाधार है। 'अग्निमीळे पुरोहितं' के प्रथम उद्घोष के साथ ऋग्वेद ने जीवन में ऊर्जा का संचार किया है। तत्पश्चात् सूर्य, चन्द्र, मरुत्, पुषन्, वरुण, पर्जन्य, यम-यमी, विष्णु, प्रजापति, सविता, वायु-आदित्य आदि देवताओं की कल्पना कर प्रकृति के साथ अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है। प्रार्थनाओं द्वारा मधुरता की कामना की है, जिससे सुख एवं कल्याण और अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि सम्भव हो सके। 'सूर्यदेवो भव' कहकर सूर्य को ऊर्जा का अपरिमित स्रोत माना है और उसे सम्पूर्ण बराबर की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। 'सूर्यः आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'[7] सूर्य-रश्मि ऊर्ध्वगमन कर जलीय वाष्प में परिणित हो वर्षा रूप में पृथ्वी पर गिरती है—

हिमोष्णवारिवर्षाणां कारणं भगवान रविः।[8]

पौराणिक धर्म सूर्य, वायु एवं जल को एक दूसरे का पूरक मानता है।

तेजोऽर्कः सर्वभूतेभ्यः आदत्ते रश्मिभिर्जलम्।
सभुद्राद्वायुसंयोगाद् वहन्त्यापो गभस्तयः।।[9]

सात रंगों से बनी सूर्यरश्मियाँ मानव के लिए आरोग्य ऊर्जा भी लाती है। 'सूर्य-किरण-चिकित्सा पद्धति' में नारंगी रंग कफनाशक, हरा रंग वातनाशक और नीला रंग पित्तनाशक माना गया है।[10]

शुद्धवायु आयु एवं औषधि रूप में विवेचित है—

आ वात वाहि भेषजं विवातं वाहि यदपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे॥[11]

'नमोवृक्षेभ्यः', 'अरण्यानां पतये नमः' एवं 'नमः वन्याय च' आदि मंत्रों द्वारा वृक्षों एवं वनों का महात्म्य स्वीकृत है। धर्मक्षेत्र में वृक्षकर्तन निषिद्ध है। पीपल, वट, नीम, अशोक, सुपारी, अमरूद, अनार, शहतूत, आम, आँवला, जामून, बेल, कदली, तुलसी और अरण्ड चिकित्सकीय वृक्ष है।[12] ज्येष्ठ मास की अमावस्या को वट सावित्री पूजा, कार्तिक की अक्षय नवमी को आमलक पूजा एवं सोमवती अमावस्या को अश्वत्थ पूजा में जीवनोपयोगी वृक्षों को सुरक्षित रखने की भावना निहित है। आज धर्म का अभाव ही हिमालय के वनों के व्यापारिक दोहन, भूस्खलन एवं बाढ़ का कारण बन रहा है।

सनातन धर्म यज्ञ प्रधान धर्म है ऋग्वेद का प्रथम मंत्र है—

ऊँ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्।[13]

यजुर्वेद के अनुसार यज्ञ का सुप्रभाव वृक्षों एवं वनस्पतियों के मूल में और शाखाओं और फलों पर पड़ता है।[14] यज्ञ, पृथ्वी एवं मानव का पोषक है। 'यज्ञो वै विष्णुः'। यज्ञ प्रकृति एवं मानव के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्थापित कर पोषणचक्र का संचालन करता हुआ अभ्युदय एवं निःश्रेयस का कारण बनता है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवम्॥
कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥[15]

प्राणों को धारण करने के लिए जो खाया जाय वह अन्न है। समस्त खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति जल से होती है। 'द्रव्यदेवतात्यागः' द्रव्य, देवता और त्याग यज्ञ के तीन लक्षण हैं। यज्ञ का मुख्य उद्देश्य है होमद्रव्य तथा अधिदैवत में दिव्य संतुलित विनिमय। प्रक्षिप्त अणुमात्र द्रव्य भी सहस्रगुणित होकर शुद्ध और्जिक पर्यावरण उत्पन्न करता है। अभीष्ट पर्यावरण के लिए संतुलित विनिमय का होना अनिवार्य है। होमद्रव्य सुगन्ध गुणयुक्त मिष्टगुण युक्त, पुष्टिकारक गुणयुक्त और रोगनाशक गुणयुक्त होना चाहिए।

तेल, दही, सोमलता, यवागू, भात, घी, कच्चे चावल, फल और जल ये दस द्रव्य देवताओं के प्रीत्यर्थ त्यागे जाते हैं। कुशल यज्ञ सम्पादन से प्राणिजगत् का उपकार होता है। सुख एवं भोग-त्याग में पर्यावरण सुरक्षित है। यज्ञकर्म में परमतत्त्व का वास है। जीवन का अस्तित्व जल पर आधारित जीवद्रव्य में (प्रोटोप्लाज्म) अधिकांश भाग जल ही है। जल जीवन की मूल आवश्यकता है इसीलिए जल 'जीवन' एवं 'अमृत' संज्ञा से अभिहित है। सनातन धर्म की यज्ञ प्रक्रिया जलचक्र की व्यवस्था के लिए प्रकृति की सहयोगिनी है। समस्त संस्कार जल के अस्तित्व के वाचक है। समुद्रमंथन, विषपान प्रसंग, कालियादह कथाऐं, जलसुरक्षा का ही आह्वान कर रही हैं। शारीरिक दृष्टि से स्वच्छ प्रवृत्ति वाला मनुष्य अपने पर्यावरण को भी शुद्ध बनाने का प्रयास करता है। धार्मिक दृष्टि से स्नानादि आडम्बर नहीं वरन् स्वास्थ्य का मूलाधार हैं। जल की पवित्रता, शुद्धता एवं समायोजन क्षमता को समझने के लिए ही प्रातः स्नान के समय यह मंत्रोच्चारण किया जाता है—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरू॥

''गङ्गा तत्र नदी पुण्या''[16] गङ्गा नदी पवित्र नदी है। स्वयं श्रीकृष्ण का उद्घोष है कि नदियों में मैं गङ्गा हूँ। वर्तमान समय में 'गंगा बचाओं' अभियान के स्थान पर धार्मिक आस्था द्वारा ही विश्व की अद्भुत शक्तिसम्पन्ना नदी गंगा का शोषण और दोहन रोका जा सकता है।[17] राज्याभिषेक प्रक्रिया एक ओर राजा के चरित्र को पारदर्शिता, न्याय एवं नीरक्षीर विवेक क्षमता की कामना करती है तो दूसरी और प्रजापालनार्थ शुद्ध व पेयजल की व्यवस्था में निहित धर्म के कर्त्तव्य रूप की व्याख्या भी करती है।

'कुम्भ' भारतीय सनातन परम्परा में नवजीवन का वह पर्व है जिसमें भारतीय जनजाति वर्ण, वर्ग, प्रान्त और भाषा की दीवारें लांघकर जल और किरणों से साक्षात्कार करता है। मानव ने जाग्रत अवस्था में मृत्यु के विपरीत अमरत्व की खोज में समुद्रमन्थन के रूप में मन का, प्रकृति का मन्थन दिया और जहर को तमस्, मदिरा को रजस् और अमृत को सत् नाम से अभिहित कर त्रिगुणात्मिका प्रकृति के रहस्य को जानने का प्रयास किया। संघर्ष के मध्य अमृत भरा कुम्भ क्रमशः गंगा-यमुना-सरस्वती, गंगा, क्षिप्रा एवं गोदावरी नदी के तट पर बसे प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक नामक स्थलों पर रखा गया। जल ही वह तत्त्व है जिसमें गुरुत्वाकर्षण के विपरीत उछाल का कार्य देखा जाता है। 'रसना ग्राह्यो गुणोरसः' के अनुसार जिह्वा से जिसका पता चले वह रस है। जहाँ यह रस मिले वह जल है। जल कारण है और रस कार्य। आदिसृष्टि के समय पहले सब जलमय था। सृष्टि की पानी के बूँदों में रस बनकर ब्रह्म ही समाया हुआ है। अतः कुम्भ पर्व 'रसो वै सः' की अनुमति का पर्व है। भारतीय धर्मदर्शन की जीवन्त अभिव्यक्ति का पर्व है। वह गिरि, पुरी, भारती, वन, अरण्य, पर्वत, सागर, तीर्थ, आश्रम और सरस्वती नाम से दशनाम् संघों की प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परम्पराओं का मिलनपर्व है।

'अवतारवाद' की प्रक्रिया पर्यावरण की ही उपासना है। ''वस्तुस्वभावो धर्मः'', परिभाषा के अनुसार सजीव व निर्जीव वस्तु का स्वभाव ही 'धर्म' संज्ञा से अभिहित है। अधर्म वृद्धि और धर्म का ह्रास होने का मुख्य कारक है—नाशवान् पदार्थों की ओर आकर्षण। जब जीव अनित्य एवं विनाशशील प्राकृत पदार्थों से सुख पाने की इच्छा करता है तब उसका पतन होना प्रारम्भ होता है। अतः परमतत्त्व साधुभावों एवं क्रियाओं की रक्षा के लिए अवतार धारण करता है। साधुभावों एवं क्रियाओं में पशु, पक्षी, वृक्ष, पर्वत, मनुष्य, देवता, पितर, ऋषि-मुनि आदि सबका हित समाहित है परब्रह्म परमात्मा एक है। लीला के लिए वह एक से अनेक हो जाता है। लीला-विलास में उल्लास लाने के लिए और अपने भक्त प्रेमियों की रूचि को आदर प्रदान करने के लिए वह कभी शिव कभी विष्णु, कभी श्रीराम, श्रीकृष्ण, कभी गुरु विशेष के नामों और रूपों में अभिव्यक्त होता है। अंश रूप अवतारों की विविध लीलाएँ पर्यावरण सुरक्षा का ही भक्ति रूप है। प्रजापति का शिक्षा 'द' 'द' 'द' के दमन, दया और दान में पर्यावरण सुरक्षित है।[18] श्रीराम सीता वियोग में शोकाकुल होकर पेड़-पौधों से सीता का संकेत जानना चाहते हैं तो श्रीकृष्ण गोवर्धन पूजा और गौसेवा को महत्त्व देकर प्राकृतिक सम्पदा के पोषक बन जाते हैं। विष्णु के अंश से अवतीर्ण अत्रि और अनुसूया के पुत्र अवधूत दत्तात्रेय के जड़चेतन जगत् के चौबीस प्रतिनिधियों को अपना गुरु बनाकर पर्यावरण शिक्षा की विषय-वस्तु प्रदान की है।

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद् गजः॥
मधुहा, हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोडर्भकः।
कुमारी शरकृत सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत्॥
एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशति राश्रिताः।
शिक्षावृत्तिभिरे तेषामन्वशिक्षमिहात्मनः॥[19]

सनातन धर्म में व्रत-उपवासों, तीज-त्यौहारों, षड्ऋतुं एवं बारहमासाप्रसङ्गों ने पर्यावरण शिक्षा की ही आधारशिला रखी है। वेद, पुराणों और उपनिषदों में पर्यावरण के सभी अंगों की रक्षा करने की बात उल्लिखित है। पर्यावरण हेतु लिखा गया है—''जब तक पर्जन्य वृष्टि द्वारा पृथ्वी की रक्षा करते हैं, तब तक वृष्टि के लिए हवा बहती रहती है। चारों ओर बिजलियाँ चमकती रहती हैं, अन्तरिक्ष स्रवित होता रहता है और सम्पूर्ण भुवन की हित साधना में पृथ्वी समर्थ होती रहती है।''[20]

वैज्ञानिकता की ओट में सनातन धर्म पर्यावरण के दोहन एवं शोषण की अनुमति नहीं देता है। प्रकृति उपासना द्वारा यहाँ सद्भाव, सद्विचार और सत्कर्म की भावना का विकास हुआ है। यही शिक्षा जगत् में 'श्री एच' की संज्ञा से अभिहित हो गए है।

अन्ततोगत्वा सगुणोपासना, निर्गुणोपासना में बदल जब शब्दसिद्धि की वाचिका बन जाती है तब संत सत्गुरुओं की जीवन शैली के अनुगमन द्वारा बाह्य एवं आन्तरिक शुद्ध पर्यावरण की स्पष्ट शिक्षिका बन जाती है और जीवन में 'पूर्णमानव' की संकल्पना को चरितार्थ करती हुई, आरोग्य प्राप्ति द्वारा पुरुषार्थसिद्धि की आधारशिला भी बन जाती है।

''धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्''।

संदर्भ

1. ऋग्वेद 1/191,6.
2. अथर्ववेद, पृथ्वीसूक्त, 12/1/12
3. सत्येनोत्तमिताभूमिः, अथर्ववेद, 14/1/1
4. ईशावास्योपनिषद्-1 (यजु. 40-1)
5. श्रीमद्भागवद्पुराण, 2/9/34
6. शुक्लयजुर्वेद, 36
7. ऋग्वेद, 1/115/1
8. अग्निपुराण, 120/32
9. ब्रह्माण्डपुराण, 1/2/22/49
10. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 9 अप्रैल, 1989, पृ. 30-31
11. ऋग्वेद-10/137/3
12. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 14 नवम्बर 1992, पृ. 16-18
13. ऋग्वेद-अग्निसूक्त, 1
14. मूलेभ्यः स्वाहा। शाखाभ्यः स्वाहा। वनस्पतयः स्वाहा। फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा। यजुर्वेद, 22-28
15. श्रीमद्भागवदगीता, 3/14-15
16. महाभारत वन पर्व, 86/14
17. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 17 अक्टूबर 1991, पृ. 16-17
18. वृहदारण्यक, 5/2/1-3
19. श्रीमद्भागवद्पुराण 11/7/33-35
20. भारतीयता और पर्यावरण, डॉ. शिव बालकमिश्र, पृ. 140

❑❑

डॉ. रामजीत सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

साधना भारती
शोध-छात्रा, भूगोल विभाग
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

शाहगंज नगर की साक्षरता : एक भौगोलिक अध्ययन

शोध सारांश

साक्षरता में धनात्मक परिवर्तन के साथ-साथ क्षेत्र विशेष का बहुआयामी विकास होता है एवं जनसंख्या की संरचना और विभिन्न घटक सुदृढ़ होते हैं। 2011 में अध्ययन क्षेत्र (जनपद-जौनपुर, तहसील मुख्यालय शाहगंज नगर) की कुल साक्षरता दर 74.13 प्रतिशत है, जो जनपद जौनपुर 71.75 से अधिक है एवं पुरुष साक्षरता दर 54.76 तथा स्त्री साक्षरता दर 45.23 प्रतिशत है परन्तु 2001 में कुल साक्षरता दर 63.10 प्रतिशत थी तथा साथ ही पुरुष साक्षरता दर 57.64 प्रतिशत एवं स्त्री साक्षरता दर 42.35 प्रतिशत थी तथा 2011 में साक्षरता दर 11.04 प्रतिशत वृद्धि हो गयी है, जिसमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम साक्षर हैं तथा आज आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न प्रयासों द्वारा स्त्री-पुरुष साक्षरता को सन्तुलन सिापित किया जाय। साक्षरता किसी भी व्यक्ति के सोच-विचार एवं कार्य करने की योग्यता में वृद्धि करती है।

शब्द संकेत : नगरीय साक्षरता, स्त्री/पुरुष साक्षरता में अनुपात, दशकीय वृद्धि।

भूमिका

किसी भी क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए साक्षरता की आवश्यकता है। मानवीय दृष्टिकोण से साक्षरता जनसंख्या का एक ऐसा सामाजिक पक्ष है, जिसके आधार पर सामाजिक विकास का मापदण्ड निश्चित किया जा सकता है। तथापि जनसंख्या भूगोलविदों के लिए साक्षरता जनसंख्या का एक सामाजिक पक्ष होते हुये भी ऐसा गुणात्मक तथा है, जो क्षेत्रीय आधार पर परिवर्तनशील, सामाजिक-आर्थिक प्रवृत्तियों की ओर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संकेत करता है। वस्तुत: साक्षरता के विकास से मनुष्य सीमित परिवेश से बाहर निकलकर अपने क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक प्रवृत्तियों से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध सिापित कर लेता है, जिससे एक इकाई के रूप में मानव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज विकास क्रम में आगे आ जाता है (हीरालाल, 2001)। मानव के सर्वांगीण विकास एवं उसके द्वारा मानवोचित गुणों के अधिग्रहण के लिए शिक्षा एक सशक्त माध्यम है। शिक्षा न केवल सामाजिक-आर्थिक विकास प्रक्रिया में सहायक होती है। अपितु इसका प्रसार किसी क्षेत्र या समाज विशेष के सर्वांगीण विकास स्तर द्योतक माना जाता है। अतएव साक्षरता का उसके क्षेत्र की अर्थव्यवस्था पर अन्योन्याश्रित प्रभाव होता है (गोसल, 1996)। साक्षरता संकल्पना का तात्पर्य न्यूनतम साक्षरता निपुणता से है, जो एक से दूसरे देश से भिन्न है। निम्नतम साक्षरता स्तर की पात्रता मौखिक रूप से विचार विनिमय से लेकर विभिन्न प्रकार कठिन परिकल्पनाओं तक मानी जाती है। कभी-कभी विद्यालय अवधि के आधार पर साक्षरता एवं निरक्षरता का निर्धारण किया जाता है। ट्रिवार्था (1969) के अनुसार लिखने और पढ़ने की कला के विकास के पहले के मानव समाज को साक्षरता पूर्व की सांस्कृतिक अवस्था में बांटा जा सकता है। साक्षरता 4000 ईसा पूर्व में प्रारम्भ हुई जो चित्रकारी विधा से शुरू होकर शनै:-शनै: वर्ण विधा जा पहुँची (गोल्डन, 1968)।

लिखने की विधा के विकसित हो जाने के बाद मानव की सांस्कृतिक प्रगति में साक्षरता का प्रमुख योगदान रहा, इसीलिए जनसंख्या भूगोल में सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक प्रगति में साक्षरता को अति विश्वसनीलय कारक माना जाता है। साक्षरता के माध्यम से गरीबी उन्मूलन मानसिक एकाकीपन की समाप्ति शान्तिपूर्ण तथा विश्व बन्धुत्व का उत्तरदायित्व निभाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्माण और जनसांख्यिकीय प्रक्रिया स्वतन्त्र क्रियाशीला में अहम योगदान है चाँदना, (1980)।

निरक्षरता के कारण मानव का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, आर्थिक विकास एवं राजनैतिक प्रौढ़ता में अवरोध आता है। साक्षरता का अन्य सांख्यिकीय लक्षणों, जैसे उत्पादकता, मर्त्यता, परिसंचरण, व्यवसाय आदि पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए साक्षरता प्रतिरूप समाज के सामाजिक-आर्थिक विकास की गति का सूचक है। अत: एक जनसंख्या भूगोलविद् के लिए साक्षरता प्रवृत्ति एवं प्रारूप का विश्लेषण अति महत्वपूर्ण है।

शोध-पत्र का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य शाहगंज नगर में साक्षरता स्तर की आलोचनात्मक व्याख्या करना है तथा शोधार्थिनी इस शोध-पत्र के माध्यम से इस तथ्य की विवेचना करना चाहती है कि शाहगंज नगर में साक्षरता तथा स्त्री/पुरुष साक्षरता एवं जनांकिकीय लक्षणों, समाज के सामाजिक-आर्थिक विकास साक्षरता पर किस स्तर तक प्रभाव डालता है। जिसका गहन अध्ययन करना ही शोधार्थिनी का मुख्य उद्देश्य है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत शोध-पत्र शाहगंज नगर जनपद जौनपुर का तहसील मुख्यालय है। जिसका अक्षांशीय विस्तार 25°24′ उत्तरी अक्षांश रेखा से 26°12′ उत्तरी अक्षांश रेखा के मध्य एवं देशान्तरीय विस्तार 82°7′ पूर्वी देशान्तर रेखा से 83°24′ पूर्वी देशान्तर के बीच में अवस्थित है। अध्ययन क्षेत्र तीन जिलों—सुल्तानपुर, आजमगढ़, अम्बेडकरनगर के मध्य में स्थित है। अध्ययन क्षेत्र 25 वार्डों में विभाजित है जहाँ 2001 के जनगणना के अनुसार कुल 24,629 जनसंख्या एवं 2011 में कुल 26556 जनसंख्या निवास करती है। नगर का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3.63 वर्ग किमी. है और अध्ययन क्षेत्र में वार्षिक वर्षा 980 मिमी. व अधिकतम तापमान 47°C और 50°C तक रहता है।

विधि तन्त्र

प्रस्तुत शोध-पत्र द्वितीयक समंकों के संग्रहण जिला जनगणना हस्त-पुस्तिका की सहायता से तैयार किया गया है। अध्ययन क्षेत्र शाहगंज नगर की विभिन्न वार्डों को 2001 एवं 2011 की साक्षरता के आँकड़ों को निरूपित करने के लिए लेखराज मार्केट, इन्दिरा नगर लखनऊ से प्राप्त किया गया है तथा आँकड़ों का वर्गीकरण सारणीयन कर विश्लेषण व संश्लेषण किया गया। इस शोध-पत्र को स्पष्ट के लिए मानचित्र बनाया गया है।

तथ्य विश्लेषण

अध्ययन क्षेत्र जनपद-जौनपुर के अन्तर्गत अवस्थित तहसील मुख्यालय होने के साथ-साथ नगरीय क्षेत्र है। जहाँ पर साक्षरता की स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। शाहगंज नगरीय क्षेत्र की साक्षरता का अध्ययन करने के लिए इसे विभिन्न वार्डों में विभक्त किया गया है। यदि नगर के विभिन्न वार्डों का यथेष्ट अध्ययन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि सभी वार्डों में साक्षरता का प्रतिशत भिन्न-भिन्न है। शाहगंज नगर की कुल साक्षरता 2001 में 63.10 प्रतिशत थी, जिसमें पुरुष साक्षरता 57.6 प्रतिशत व महिला साक्षरता 42.35 प्रतिशत थी जबकि वहीं 2011 की कुल साक्षरता 74.13 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता 54.76 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 45.23 प्रतिशत है तथा दोनों आँकड़ों के विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र शाहगंज नगर में साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 में वृद्धि हुई है।

सारिणी-1

शाहगंज नगर में साक्षरता

	वार्ड का नाम	कुल साक्षर 2011	पुरुष साक्षर 2011	स्त्री साक्षर 2011	कुल साक्षर 2001	पुरुष साक्षर 2001	स्त्री साक्षर 2001	परिवर्तन
1.	चमरौटी प्रथम	72.48	56.36	43.63	51.97	70.30	29.69	+20.03
2.	चमरौटी द्वितीय	66.17	59.51	40.48	54.88	64.01	35.98	+2.16
3.	अलीगंज द्वितीय	69.56	53.62	46.37	70.01	53.15	46.84	–0.45
4.	भटियारी टोला द्वितीय	72.92	55.78	44.21	59.01	56.42	43.57	+13.89
5.	भादी प्रथम	72.51	56.55	43.44	50.42	57.69	37.5	+22.09
6.	हुसैनगंज	80.98	53.04	46.95	76.35	55.68	42.30	+4.63
7.	रेलवे कालोनी	74.04	56.28	43.71	69.53	58.88	41.11	+4.51
8.	पश्चिमी कौड़िया तृतीय	75.68	52.89	47.10	80.47	54.73	45.26	–4.79
9.	नई आबादी तहसील प्रथम	74.94	56.48	43.51	72.22	58.48	41.51	+2.72
10.	पश्चिमी कौड़िया द्वितीय	71.41	56.30	43.69	65.21	53.79	46.20	+6.2
11.	नई आबादी तहसील द्वितीय	76.96	54.96	45.03	69.62	59.16	40.83	+7.34
12.	श्रीरामपुर	80.99	55.20	44.79	63.63	64.43	35.56	+17.36
13.	शाहगंज षष्ठ	64.07	55.60	44.39	62.01	60.02	39.97	.2.06
14.	भादी द्वितीय	76.78	54.44	45.55	54.68	61.11	38.88	+22.1
15.	शाहगंज तृतीय	69.88	54.87	45.12	47.39	57.80	42.19	+23.74
16.	अलीगंज प्रथम	77.13	53.65	46.34	60.51	56.33	43.66	+16.62
17.	शाहगंज चतुर्थ	53.88	56.16	43.83	75.15	55.31	44.68	–21.27
18.	भटियारी टोला प्रथम	70.93	55.20	44.79	65.14	58.96	41.03	+5.79
19.	एराकियाना प्रथम	73.77	56.58	43.41	44.60	55.83	44.16	+29.17
20.	शाहगंज प्रथम	78.77	51.44	48.55	76.06	54.93	45.06	+2.71
21.	पश्चिमी कौड़िया प्रथम	76.64	53.35	46.64	52.01	58.91	41.08	+24.63
22.	शाहगंज पंचम	82.29	52.96	47.03	67.24	59.24	40.75	+15.05
23.	शाहगंज सप्तम	82.45	53.06	46.93	75.34	53.20	46.79	+7.11
24.	शाहगंज द्वितीय	83.45	53.16	46.83	63.58	54.30	45.69	+19.87
25.	एराकियाना द्वितीय	75.43	51.73	48.26	60.31	61.63	38.36	+15.12
	कुल योग	74.13	54.76	45.23	63.10	57.64	42.35	+11.01

स्रोत : DISTRICT CENSUS HANDBOOK, 2011, 2001.

साक्षरता दर को तीन श्रेणियों-उच्च, मध्यम व निम्न में वर्गीकृत किया गया है—

उच्च साक्षरता वाले क्षेत्र

2001 में पश्चिमी कौड़िया तृतीय एकमात्र वार्ड है, जहाँ उच्च साक्षरता पायी जाती थी, जो 80 प्रतिशत से अधिक थी, जबकि 2011 में हुसैनगंज, श्रीरामपुर, शाहगंज पंचम, शाहगंज सप्तम और शाहगंज द्वितीय में उच्च साक्षरता दर पायी जाती

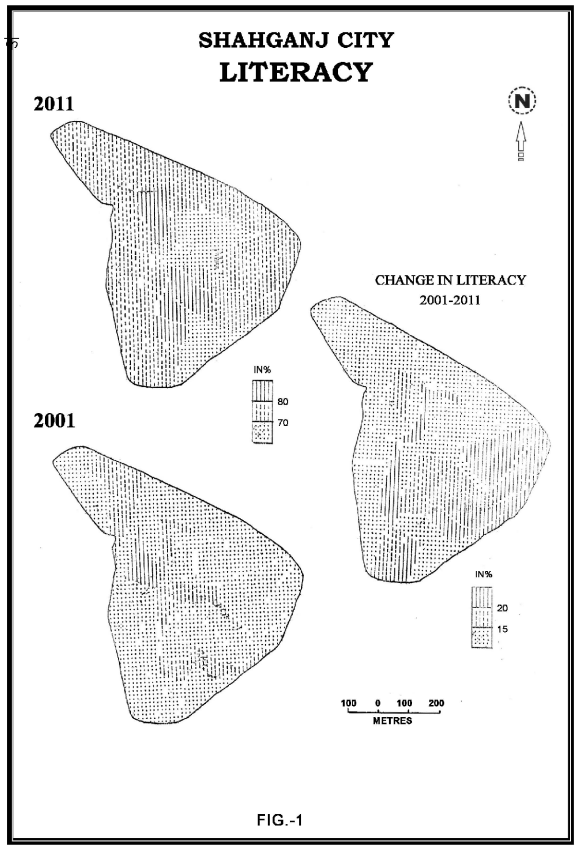

FIG.-1

है, जो क्रमशः 80.98 प्रतिशत, 80.99 प्रतिशत, 82.29 प्रतिशत, 82.45 प्रतिशत और 83.45 प्रतिशत है। साक्षरता उच्च होने का कारण नगरों में उपस्थित शैक्षणिक उपलब्धता तकनीकी व्यवस्थाएँ सरकारी नीतियों द्वारा सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए योजनाओं, कार्यक्रम लागू किया जाना नगरीय क्षेत्रों में अधिकांशतः लोग द्वितीयक एवं तृतीयक क्रिया में संलग्न होते हैं। जिसके फलस्वरूप नगरों में शिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। साथ ही क्षेत्र के लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता और तत्परता तथा विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य समझा जाता है, जिससे वहाँ की साक्षरता उच्च है।

मध्य साक्षरता वाले क्षेत्र

2001 में अलीगंज द्वितीय, हुसैनगंज, नई आबादी तहसील प्रथम, शाहगंज चतुर्थ, शाहगंज प्रथम, शाहगंज सप्तम् में मध्य साक्षरता दर पायी गयी थी, जो 70 प्रतिशत से अधिक थी, जबकि 2011 में चमरौटी प्रथम, भटियारी टोला द्वितीय, भादी प्रथम, रेलवे कालोनी, पश्चिमी कौड़िया तृतीय, नई आबादी तहसील प्रथम, पश्चिमी कौड़िया द्वितीय नई आबादी तहसील द्वितीय भादी द्वितीय, शाहगंज तृतीय, अलीगंज प्रथम, भटियारी टोला प्रथम, एराकियाना प्रथम, शाहगंज प्रथम, पश्चिमी कौड़िया प्रथम और एराकियाना द्वितीय में मध्य साक्षरता दर पायी जाती है, जो क्रमशः 72.48 प्रतिशत, 72.9 प्रतिशत, 72.51 प्रतिशत, 74.04 प्रतिशत, 75.68 प्रतिशत, 74.94 प्रतिशत, 71.41 प्रतिशत, 76.96 प्रतिशत, 76.78 प्रतिशत, 71.13 प्रतिशत, 77.13 प्रतिशत, 70.93 प्रतिशत, 73.77 प्रतिशत, 78.77 प्रतिशत, 76.64 प्रतिशत, 75.43 प्रतिशत है। मध्य साक्षरता वाले क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाएँ पायी जाती हैं और यातायात एवं संचार माध्यमों के व्यापक प्रसार तथा शिक्षा एवं प्रशिक्षण की सुविधाएँ भी व्याप्त होती हैं, जिससे नगर में भरपूर लाभ मिलने से साक्षरता एवं शैक्षणिक स्तर में उल्लेखनीय प्रगति हुई है एवं शिक्षा अन्य अवस्थापना तत्त्वों का विकास के कारण साक्षरता मध्य स्तर की है।

निम्न साक्षरता वाले क्षेत्र

2001 में चमरौटी प्रथम, चमरौटी द्वितीय, भटियारी टोला द्वितीय, भादी प्रथम, रेलवे कालोनी, पश्चिमी कौड़िया द्वितीय, नई आबादी तहसील द्वितीय, श्रीरामपुर, शाहगंज षष्ठम्, भादी द्वितीय, शाहगंज तृतीय, अलीगंज प्रथम, भटियारी टोला प्रथम, एराकियाना प्रथम, पश्चिमी कौड़िया प्रथम, शाहगंज पंचम, शाहगंज द्वितीय, एराकियाना द्वितीय में साक्षरता निम्न पायी गयी थी जो 60 प्रतिशत से अधिक थी जबकि 2011 में चमरौटी द्वितीय, अलीगंज द्वितीय, शाहगंज षष्ठ और शाहगंज चतुर्थ में निम्न साक्षरता दर पायी जाती है, जो क्रमशः 66.17 प्रतिशत, 69.5 प्रतिशत, 64.07 प्रतिशत, 53.88 प्रतिशत है। निम्न साक्षरता होने का प्रमुख कारण प्रचलित परम्पराओं में रूढ़िवादी समाजों में शिक्षा के प्रति विशेष महत्व नहीं दिया गया एवं इनके प्रभाव से शिक्षा में अवरोधक के रूप में उपस्थित होती है, निम्न साक्षरता वाले लोग प्राथमिक क्रिया में संलग्न रहते हैं, जिससे निर्धन व्यक्ति के बच्चे अल्पायु से ही अपने परिवार के साथ मजदूरी करने एवं धन अर्जित करने में लग जाते हैं तथा विद्यालय न जा पाने के कारण शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

स्त्री-पुरुष उच्च साक्षरता वाले क्षेत्र

2001 में पुरुष साक्षरता दर में चमरौटी प्रथम, चमरौटी द्वितीय, श्रीरामपुर शाहगंज षष्टम्, भादी द्वितीय, शाहगंज प्रथम, शाहगंज सप्तम और शाहगंज द्वितीय में पुरुष साक्षरता 60 प्रतिशत से अधिक थी जबकि स्त्री साक्षरता में अलीगंज द्वितीय, पश्चिमी कौड़िया तृतीय, पश्चिमी कौड़िया द्वितीय, एराकियाना प्रथम, शाहगंज सप्तम् और शाहगंज द्वितीय में स्त्री साक्षरता दर उच्च थी जो 45 प्रतिशत से अधिक थी परन्तु 2011 में साक्षरता दर शाहगंज द्वितीय 63.70 प्रतिशत एकमात्र उच्च साक्षरता दर वाला वार्ड है, जो 60 प्रतिशत से अधिक है। इसमें स्त्री साक्षरता दर अलीगंज, हुसैनगंज, पश्चिमी कौड़िया तृतीय, नई आबादी तहसील द्वितीय, भादी द्वितीय, अलीगंज प्रथम, शाहगंज प्रथम, पश्चिमी कौड़िया प्रथम, शाहगंज प्रथम, शाहगंज पंचम, शाहगंज सप्तम, शाहगंज द्वितीय और एराकियाना द्वितीय में उच्च साक्षरता दर पायी जाती है जो क्रमशः 46.37 प्रतिशत, 46.95 प्रतिशत, 47.10 प्रतिशत, 45.03 प्रतिशत, 45.55 प्रतिशत, 46.34 प्रतिशत, 48.55 प्रतिशत, 46.64 प्रतिशत, 47.03 प्रतिशत, 46.93 प्रतिशत, 46.83 प्रतिशत, 48.26 प्रतिशत है।

स्त्री-पुरुष मध्य साक्षरता वाले क्षेत्र

2001 में भटियारी टोला द्वितीय, भादी प्रथम, हुसैनगंज, रेलवे कालोनी, नई आबादी तहसील प्रथम, नई आबादी तहसील द्वितीय, शाहगंज तृतीय, अलीगंज प्रथम, शाहगंज चतुर्थ, भटियारी टोला प्रथम, एराकियाना प्रथम, पश्चिमी कौड़िया प्रथम और शाहगंज पंचम में पुरुष साक्षरता मध्य पायी जाती थी जो 55 प्रतिशत से अधिक थी। जिसमें स्त्री साक्षरता 2001 में भटियारी टोला द्वितीय, हुसैनगंज रेलवे कालोनी, नई आबादी तहसील प्रथम, शाहगंज तृतीय, अलीगंज प्रथम, शाहगंज चतुर्थ, भटियारी टोला प्रथम, एराकियाना प्रथम, पश्चिमी कौड़िया प्रथम और शाहगंज पंचम में साक्षरता दर 40 प्रतिशत के मध्य थी जबकि 2011 में पुरुष साक्षरता में चमरौटी प्रथम, चमरौटी द्वितीय, भटियारी टोला द्वितीय, भादी प्रथम, रेलवे कालोनी, नई आबादी तहसील प्रथम, पश्चिमी कौड़िया द्वितीय, श्रीरामपुर शाहगंज षष्ठ, शाहगंज चतुर्थ, भटियारी टोला प्रथम और एराकियाना प्रथम में मध्य साक्षरता क्रमशः जो 56.36 प्रतिशत, 59.21 प्रतिशत, 55.78 प्रतिशत, 56.55 प्रतिशत, 56.28 प्रतिशत, 56.48 प्रतिशत, 56.30 प्रतिशत, 55.20 प्रतिशत, 55.60 प्रतिशत, 56.16 प्रतिशत, 55.20 प्रतिशत, 56.58 प्रतिशत के मध्य साक्षरता पायी जाती है, जिसमें स्त्री साक्षरता में चमरौटी प्रथम, चमरौटी द्वितीय, भटियारी टोला द्वितीय, रेलवे कालोनी, नई आबादी तहसील प्रथम, पश्चिमी कौड़िया द्वितीय, श्रीरामपुर शाहगंज षष्ठ, शाहगंज तृतीय, शाहगंज चतुर्थ, भटियारी टोला प्रथम और एराकियाना प्रथम में स्त्री साक्षरता मध्य पायी जाती है, जो क्रमशः 43.63 प्रतिशत, 40.48 प्रतिशत, 44.21 प्रतिशत, 43.71 प्रतिशत, 43.51 प्रतिशत, 43.69 प्रतिशत, 44.79 प्रतिशत, 45.12 प्रतिशत, 43.83 प्रतिशत, 44.79 प्रतिशत, 43.41 प्रतिशत है।

स्त्री-पुरुष निम्न साक्षरता वाले क्षेत्र

2001 में अलीगंज द्वितीय, पश्चिमी कौड़िया तृतीय, पश्चिमी कौड़िया द्वितीय, शाहगंज प्रथम, शाहगंज सप्तम और शाहगंज द्वितीय में पुरुष साक्षरता निम्न पायी जाती थी जो 50 प्रतिशत से अधिक थी, जिसमें स्त्री साक्षरता में चमरौटी प्रथम,

चमरौटी द्वितीय, भादी प्रथम, नई आबादी तहसील द्वितीय, श्रीरामपुर, शाहगंज षष्ठ, भादी द्वितीय और एराकियाना द्वितीय में निम्न साक्षरता थी, जो 30 प्रतिशत से अधिक पायी जाती थी जबकि 2011 में अलीगंज द्वितीय, हुसैनगंज, पश्चिमी कौड़िया तृतीय, नई आबादी तहसील द्वितीय, भादी द्वितीय, शाहगंज तृतीय, अलीगंज प्रथम, शाहगंज प्रथम, पश्चिमी कौड़िया प्रथम, शाहगंज पंचम, शाहगंज सप्तम और एराकियाना द्वितीय में पुरुष साक्षरता निम्न है जो 50 प्रतिशत से अधिक है, जो क्रमशः 53.62 प्रतिशत, 54.04 प्रतिशत, 52.89 प्रतिशत, 54.96 प्रतिशत, 54.44 प्रतिशत, 54.87 प्रतिशत, 53.65 प्रतिशत, 51.44 प्रतिशत, 54.35 प्रतिशत, 52.96 प्रतिशत, 53.07 प्रतिशत है जबकि स्त्री साक्षरता की प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत अति निम्न है।

दशकीय परिवर्तन वृद्धि वाले क्षेत्र

सारिणी संख्या-1 के आधार पर वार्ड संख्या-1 चमरौटी प्रथम में 2001 की साक्षरता की तुलना 2011 की साक्षरता में +20.03 की धनात्मक परिवर्तन हुआ है तथा चमरौटी द्वितीय वार्ड संख्या-2 में 2001 की तुलना 2011 में साक्षरता +2.16 धनात्मक परिवर्तन पायी गयी है। अलीगंज द्वितीय वार्ड संख्या-3 में साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 की साक्षरता में -0.45 ऋणात्मक परिवर्तन हुआ है। भटियारी टोला द्वितीय, वार्ड संख्या-4 में साक्षरता 2001 व 2011 की तुलना में +13.89 परिवर्तन हुआ है। भादी प्रथम वार्ड संख्या 5 में 2001 की साक्षरता की तुलना में 2011 में +22.09 धनात्मक परिवर्तन हुआ, हुसैनगंज, वार्ड संख्या 5 की साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 में +4.63 धनात्मक वृद्धि हुई। रेलवे कालोनी वार्ड संख्या 7 में 2001 की साक्षरता की तुलना में 2011 में +4.51 धनात्मक परिवर्तन हो गया। पश्चिमी कौड़िया तृतीय वार्ड संख्या-8 की साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 में -4.79 ऋणात्मक परिवर्तन पायी गयी है। नई आबादी तहसील प्रथम वार्ड संख्या-9 में 2001 में साक्षरता की तुलना में 2011 में +2.72 धनात्मक वृद्धि हो गयी है। पश्चिमी कौड़िया द्वितीय वार्ड संख्या-10 में साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 में +6.2 धनात्मक परिवर्तन हुआ है।

नई आबादी तहसील द्वितीय वार्ड संख्या-11 में 2001 की साक्षरता की तुलना में 2011 में +7.34 धनात्मक परिवर्तन प्राप्त हुयी है। श्रीरामपुर वार्ड संख्या-12 की साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 में +17.36 धनात्मक परिवर्तन हुआ है। शाहगंज षष्ठ वार्ड संख्या-13 में 2001 की साक्षरता की तुलना 2011 में +2.06 धनात्मक परिवर्तन पायी गयी है, भादी द्वितीय वार्ड संख्या-14 की साक्षरता 2001 की तुलना 2011 में +22.1 धनात्मक परिवर्तन हुआ है। शाहगंज तृतीय वार्ड संख्या-15 में 2001 की साक्षरता तुलना में 2011 की +23.74 धनात्मक परिवर्तन हुआ है। अलीगंज प्रथम वार्ड संख्या-16 में साक्षरता का स्तर 2001 की तुलना में 2011 में +16.62 धनात्मक परिवर्तन पायी गयी। शाहगंज चतुर्थ वार्ड संख्या-17 2001 साक्षरता की तुलना 2011 में -21.27 ऋणात्मक परिवर्तन पायी गयी। भटियारी टोला प्रथम वार्ड संख्या-18 में 2001 की साक्षरता की तुलना 2011 में 5.79 धनात्मक परिवर्तन है। एराकियाना प्रथम वार्ड संख्या-19 की साक्षरता 2001 की तुलना 2011 में +29.17 धनात्मक परिवर्तन हो गया है, शाहगंज प्रथम वार्ड संख्या-20 में साक्षरता की स्तर 2001 की तुलना में 2011 में +2.71 धनात्मक परिवर्तन है। पश्चिमी कौड़िया प्रथम वार्ड संख्या-21 की साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 में +24.63 धनात्मक हुआ। शाहगंज पंचम् वार्ड संख्या-22 में साक्षरता 2001 की तुलना में 2011 में +15.05 धनात्मक परिवर्तन प्राप्त हुयी है।

शाहगंज सप्तम वार्ड संख्या-23 की साक्षरता 2001 तुलना में 2011 में +7.11 धनात्मक परिवर्तन है। शाहगंज द्वितीय वार्ड संख्या-24 में 2001 की साक्षरता की तुलना 2011 में +19.87 धनात्मक परिवर्तन हुयी। एराकियाना द्वितीय वार्ड संख्या-25 का साक्षरता 2001 की तुलना 2011 में +15.12 धनात्मक परिवर्तन है। अध्ययन क्षेत्र शाहगंज नगर की साक्षरता स्तर 2001 की तुलना में 2011 में धनात्मक परिवर्तन हुए हैं।

साक्षरता को प्रभावित करने वाले कारक

अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न वार्डों में साक्षरता के अध्ययन से यह विदित होता है कि नगरीय क्षेत्रों में साक्षर व्यक्तियों की अधिकता पायी जाती है और जिसके फलस्वरूप सामाजिक आर्थिक दशायें अनुकूल होती है एवं नगरों में द्वितीयक, तृतीयक क्रिया की प्रमुखता होती है जिनके संचालन के लिए शिक्षित होना आवश्यक है। नगरों में ऐतिहासिक परम्पराओं एवं रूढ़िवादी समाजों

और अन्धविश्वास, धार्मिक कट्टरता, भेद-भाव निर्धनता आदि को दूर करने के लिए साक्षरता का महत्व सर्वोपरि है। साक्षरता अभियान विद्यालय शिक्षा के उन्नयन के लिए सरकारी नीतियों तथा प्रयासों का योगदान होता है, जिससे नगरों में शिक्षा की उत्तम व्यवस्था होती है एवं सामान्य लोगों के लिए शिक्षा के अवसर उपलब्ध होते हैं। नगरीय क्षेत्रों में विद्यार्थियों को घर के निकट ही विद्यालय उपलब्ध हो जाते हैं, जिससे नगर का शैक्षणिक स्तर उच्च होता है। जीवन स्तर एवं साक्षरता दोनों एक-दूसरे के सहचर होते हैं, जिससे उच्च साक्षरता वाले परिवार एवं समाज में शिक्षा को जीवन की प्रथम वरीयता दी जाती है। नगर में व्याप्त यातायात के साधन, दूरदर्शन, समाचार-पत्र, टेलीफोन आदि संचार माध्यमों के अधिक प्रचलित होने से साक्षरता उच्च पायी जाती है। अध्ययन क्षेत्र में विद्यालय की उपलब्धता प्रत्यक्ष रूप से साक्षरता को प्रभावित करती है।

निष्कर्ष

गहन सर्वेक्षण के दौरान यह ज्ञात हुआ कि अध्ययन क्षेत्र शाहगंज नगर में अधिकांश जनसंख्या द्वितीयक, तृतीयक कार्य में लगी हुई, जिसमें साक्षरता के प्रति जागरूकता और तत्परता अधिक पायी जाती है साथ ही रोजगार के अवसर की उपलब्धता है नगर में शिक्षण संस्थाएँ एवं अन्य शैक्षणिक सुविधा की बहुलता है, जिस कारण से क्षेत्र के सामाजिक आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या संकेन्द्रण अधिक है, क्योंकि क्षेत्र में परिवहन एवं संचार, वाणिज्य व व्यापार एवं चिकित्सा, औद्योगिकरण, प्रशासनिक सेवा सुविधायें एवं पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता इत्यादि साक्षरता के कारक उत्तरदायी है, जिससे अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता उत्साहवर्द्धक स्थिति में है।

सन्दर्भ

1. हीरालाल (2001) जनसंख्या भूगोल, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृ ? 199-200.
2. Gosal, G.S. (1996) "Literacy in India and Interprejative Study", East-West Publication, Hawaii, pp. 19-25.
3. Trewartha, G.T. (1969) : A Geography of Population : World Patterns, John Wiley and Sons, New York.
4. Golden Hilda, H. (1968) : "Literacy", International Encyclopaedia of the Social Sciences, Vol. 9, MacMillan Company and Free Press.
5. Chandna, R.C. et.al. (1980) Introduction to Population Geography, Kalyani Publication, New Delhi.
6. मौर्य, एस.डी. (2015) जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ. 325-341.
7. शम्भूराम और यादव आशुतोष (2010) जनपद अम्बेडकरनगर में साक्षरता का एक भौगोलिक अध्ययन, भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, ISSN : 0974-0694, Vol. 20, No.2, Jun., 2011, पृ. 63-67.
8. गुप्ता, मुन्नालाल (2015) लैगिंग विषमता : एक गम्भीर समस्या ऋणाचल प्रदेश में तीन जनपदों अंजाब, लोहिता एवं नामसाई विश्लेषणात्मक अध्ययन उ.प्र. ज्योग्राफिकल जनरल, अंक-20 पृ. 131-137.
9. सिंह, संजय कुमार (2018) कुशीनगर जनपद उ.प्र. में साक्षरता के सन्दर्भ में लैंगिक विषमता : एक भौगोलिक विश्लेषण राष्ट्रीय भौगोलिक पत्रिका, अंक-2, पृ. 238.
10. सिंह प्रदीप कुमार एवं राम बचन मौर्य (2011) साक्षरता वृद्धि एवं वितरण प्रतिरूप : (वाराणसी नगर) की मलिन बस्तियों का भौगोलिक विश्लेषण, जम्बूद्वीप शोध पत्रिका, अंक-2, पृ. 87-92.
11. मिश्रा कु. निवेदिता (2006) मऊ जनपद में महिला साक्षरता प्रारूप, उत्तर भूगोल पत्रिका, अंक-36, पृ. 51-55.

❑❑

डॉ. महेंद्र कुमार डेहरा
सहायक आचार्य, चित्रकला विभाग
विनायक कॉलेज, बाघेर खानपुर
झालावाड़, राजस्थान

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

राजस्थान की सचित्र पाण्डुलिपियों में रूपाकृति एवं वस्त्राभूषण में विविधता

सारांश

रूप श्रृंगार सौन्दयाभिव्यंजना की कला है—''सुन्दरतम'' तत्व की साधना की कला है। पहले मनुष्य ने सहज भाव से बाह्य प्रसाधनों द्वारा देह को अलंकृत करना सीखा। जब उसने देखा कि इस विधि से असुन्दर का परिहार होता है और सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है तो उसकी कलात्मक चेतना जागृत हुई और उसने अपनी बुद्धि कौशल से नये प्रयोग शुरू किये।

भारतीय साहित्य और कला में नारी को असाधारण स्थान प्रदान किया है। धार्मिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के साहित्य में तथा चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीत एवं नाट्य कलाओं में नारी के विविध अंकन उसकी विशिष्टता के द्योतक है। समाज रचना तथा उसके व्यवस्थित विकास में भारतीय नारी की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। अत: विविध साहित्य की विधाओं में कलाकार ने उसके शील और करुणा को विशेष रूप से अपनी कृतियों में दर्शाया है।

नारी के उदार गुणों का बखान बहुसंख्यक लेखकों ने किया है। 500 ई. के लगभग ''वराहमिहिर'' ने अपने ग्रंथ ''वृहत्संहिता'' के अध्याय 70 में नारी नख-शिख का अंगो के साथ सांगोपांग वर्णन किया।[1]

राजस्थानी शैली के चित्रों में चित्रकार ने वस्त्रों का अंकन अत्यन्त ही सूक्ष्मता से किया है। इन चित्रों में क्षैत्रीय एवं विदेशी शैलियों के साथ ही अलग-अलग स्थानों की विभिन्नता के अनुसार वस्त्रों में भी इनका प्रभाव व भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। परिणामस्वरूप राजस्थानी शैली के चित्रो में अंकित वस्त्रों को विविधता एवं नवीनता के साथ अंकित किया गया है व प्रभावों को भी इन चित्रों में दर्शाया है।

आभूषण श्रृंगार के आवश्यक उपकरण है श्रृंगार की प्रबल भावना के कारण ही आभूषणों का निर्माण तथा उसमें निरन्तर परिष्कार और विकास हुआ। यही कारण है कि विश्व के सभी देशों, जातियों, एवं सभ्यताओं में आभूषणों को धारण करने की परम्परा प्रारम्भ से ही मिलती है। आभूषण नख से शिख तक के सभी अंगों में धारण किये जाते रहे है।

कला में नारी की भांति पुरूष आकृतियों को भी वस्त्राभूषण धारण किये चित्रित किया गया है। जैन शैली में इनको अधिकता से चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त अन्य चित्र शैलियों में वस्त्राभूषण का चित्रण देखने को मिलता है। राजस्थान की चित्र शैलियों में नारी एवं पुरूष आकृतियों को भी वस्त्राभूषण धारण किये चित्रांकित किया है। जिसमें आरम्भिक मेवाड़ शैली में जैन और गुजरात शैली का मिश्रण दृष्टव्य है। साथ ही लोककला ही रूक्षता, मोटापन, रेखाओं का भारीपन आदि मेवाड़ शैली की विशेषताएं रही है।

पुरूषाकृति गठीली मूंछों से युक्त भरे चेहरे, विशाल नयन, खुले हुए अधर, छोटी ग्रीवा, उदयपुरी पगड़ी, लम्बा साफा, कमर में दुपट्टा और सामान्य अलंकारो से आवृत शरीर मेवाड़ शैली की विशेषताएं है।

नारी आकृति में चित्र सरलता के भाव लिए, मीनाकृत आँखें, सीधी लम्बी नाक तथा भरी हुई दोहरी चिबुक, ठिगना कद, लूगड़ी घाघरे और विभिन्न ठेठ राजस्थानी आभूषणों से आवेष्ठित है।

राजस्थान की सचित्र पाण्डुलिपियों में रूपाकृति एवं वस्त्राभूषण में विविधता

मेवाड़ शैली

पुरुष रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—मेवाड़ शैली की कला हिन्दु, मुगल और पठानी प्रभाव को आत्मसात् करते हुए अपभ्रंश कला की धरती पर मेवाड़ स्कूल की चित्रकला विकसित हुई। उसमें पुरूषाकृति गठीली, लम्बी, चेहरा गोल व अण्डाकार है। चिबुक और गर्दन का भाग अधिक भारी तथा पुष्ट बनाया है। मुख पर बड़ी-बड़ी मूंछे और विशाल नैत्र है। अधर प्रायः खुले हुए, पुरूष पोशाकों में जामें सहित, अकबर कालीन शैली का कढ़ाईदार पटका, पगड़ियों में जहाँगीर शैली की बनावट, कानों में गोती, गले में मणियों के हार तथा लम्बा जामा, कमर में दुपट्टा, पायजामा और जूतियां है। जो राजसी वैभव को दर्शाती है। चावण्ड के चित्रों में चित्रित पगड़ी कुलेहदार पगड़ी का ही विकसित स्वरूप है तथा चाकदार जामा का प्रचलन चित्रों में ज्यों का त्यों रहा।[2]

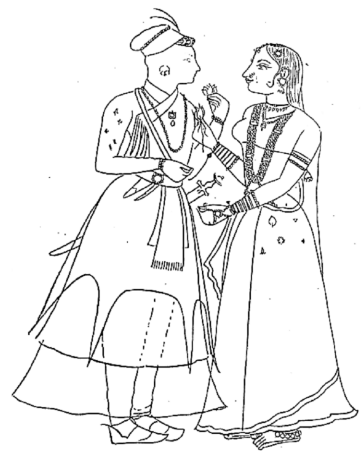

जगतसिंह के समय में पुरूष-पोशाके जामें सहित अकबर कालीन शैली का कढ़ाईदार पटका, पगड़ियों में जहाँगीर शैली की बनावट, स्त्रियों के चित्रों में बहुधा चौली का प्रयोग, फूल-पत्ते कढ़े हुए लिवास पारदर्शी ओढ़नी बाहों तथा हाथों में काले रंग के धागे इन चित्रों में अकबर-जहाँगीर कालीन शैली का अनुकरण है।[3]

नारी रूपाकृति एवं वस्त्राभूषण—नारी का चित्रण यहाँ की सहज विद्या में हुआ है। इसमें राधा का चित्रण तथा सूर की अन्यान्य बलोद-भावनाओं को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि अपेक्षित भाव की प्रणति करने में चित्रकार कवि से कही अधिक श्रेष्ठ प्रतीत होता है। नारी की आकृति मुख यौवन से दीप्त, खुली केश राशि, कभी-कभी आभूषणों व फुन्दनों से सजी वेणी कमर तक नीचे लटकी हुई बनी है। नाक पतली लम्बी नथ युक्त, रक्ताभ पतले होठ, भरा हुआ माँसल चेहरा, नेत्राकृति बादाम सदृश्य, दबा हुआ कपाल, बाहर को उठी हुई चिबुक, लम्बी पतली सुडौल ग्रीवा, भरा हुआ अधखुला कसा हुआ माँसल वक्ष, नग्न कटि प्रवेश, नीचे घाघरा, बहुधा चोली का प्रयोग, फूल-पत्ते कढ़े हुए लिबास, पारदर्शी ओढ़नी, बाहों तथा हाथों में काले रंग के धागें का चित्रण है। अलंकार सज्जा के माथे पर शीशफूल, कानों में मोती, कुण्डल गले में एकाधिक मुक्तमाल, पावों के पायजेब, हाथों में कंगन बाजुबंद है।

श्रृंगारी चित्रों के प्रदर्शन में विशेषतः रागमाला के चित्रों एव नायक-नायिका भेद वाले चित्रों में चित्रकारो ने श्रृंगार रस का पूर्ण रूपेण प्रतिपादन किया है। जिससें चित्रों में और भी अधिक कोमलता एवं हृदयग्राहिकता आ गई है।

नायिकाओं के विभिन्न हाव-भाव चित्रित करने के लिए कई अभिप्रायों का चित्रण हुआ है। नायिका श्रृंगार करती हुई दिखाई गई है। वहीं नायिका वासक-सज्जा (प्रियतम की प्रतीक्षा) रूप में बैठी या खड़ी है तथा परिचारिकाएँ मुख्य द्वारा के बाहर बैठी हुई है। उक्ता या उत्कंठिता नायिका किसी वृक्ष के नीचे अथवा ऊपर उपवन के पास तृण या पत्तों की शैय्या के पास बैठी हुई या खड़ी होकर प्रतीक्षा करती चित्रित की गई है।[4]

नारियों के चित्रों में उनकी वेणियाँ (चोटियाँ) एवं लहंगो की चुन्नटों में तथा उनपके लटकते हुए फुंदनों में तथा आभूषणों के अलंकरण में चित्रकारों ने पूर्णरूप से सजीवता एवं स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया है।

मारवाड़ शैली

पुरूष रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—यहाँ के चित्रणों में पुरूषाकृति ओज एवं शौर्य मय उग्रता को व्यक्त करती है। ऊपर को जाती हुई घनी दाढ़ी, लम्बी मूंछे, लम्बी ऊँची पगड़ी, मांसल ठुड्डी, लाल आँखे, खिंची भौहे, भरा हुआ मुँह, कान तक बाल, मोटी गर्दन, भारी उभरे स्कंध, लम्बी नाक, स्थूल बाहू, झुके होठ, मोटा लम्बा कलेवर, लम्बा जामा, कमर में तलवार, हाथ में माला, एक वीर पुरूष के स्वरूप का चित्रण है। यही साधारणत: अधिक है। अलंकारों में पगड़ी में झुमके, गले में फुँदने, मुक्तामालाएँ, कहीं-कहीं कानों में भी मुक्तमालाएँ है।[5]

नारी रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—नारी की आकृति अंशत: मुगलिया नारी से प्रभावित कुछ लम्बी है। पहनावें में भी मुगलिया ढंग मिलता है। रूपकार में नारी का माथा बाहर निकला हुआ। सर्पाकृति लटें कपोलों तक झूमती हुई, खंजराकृति नेत्र, लाल होठ, हास्य मुद्रा में, लम्बी गर्दन, भरा सीना, पट्टेमय पतली कमर, कहीं मुगल वस्त्रों में, कहीं राजस्थानी वस्त्रों में भवनों की छतों पर, बागों में अनेक सहेलियों के साथ क्रीड़ा करती हुई, कबूतर को उड़ाती हुई युवती, हाथ में कलिका को लिए मुग्ध योवना आदि चित्रित की गई है।[6] स्त्री आकृतियाँ भावपूर्ण रूप में दर्शित है, उनके अंग-प्रत्यंग का गठीलापन विशेषरूप से आकृष्ट करता है। स्त्रियों के आभूषणों में मोतियों का बाहुल्य है। टीका, बाली, बैसर, लूंग, नथ, माला, लोकेट, भुजबंध, टेटवा, आढ, पैरों में जूर, बनड़े तथा पायल पहने चित्रित किया गया है। साथ ही मखमली तथा सुनहरी जूतियाँ भी पहने दिखाई गई हैं। स्त्रियों के वस्त्रों में कहीं-कहीं स्त्रियों को सिर पर टोपी पहने चित्रित किया है, तो कहीं पर उन्हे लूगड़ी की जगह दुपट्टा ओढ़े चित्रित किया है। मुगल प्रभाव लिए चित्रो में स्त्रियों को चूड़ीदार पायजामा और ऊपर से पतला सफेद जामा पहने बताया गया है। राजस्थानी वेशभूषा में लहंगा, ओढ़नी, बसेड़ा, कांचली पहने चित्रित किया है, जो लाल, नीले, पीले एवं केसरिया कसूमल रंग में है।

ढोला-मारू चित्रण में मारू ढोला को संदेश भेज रही है, किसी में एक विशेष प्रकार का राजस्थी पक्षी कुरंजा अपने पंखों पर मारू की हृदय-व्यथा लिखा कर उड़ी जा रही है।

किशनगढ़ शैली

पुरूष रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—यहाँ के चित्रों में पुरूषाकृति में लम्बा नील छवियुक्त छरहरा शरीर, ऊँची पहाड़ियाँ, लटें कपोल प्रदेश को छूती हुई या पूर्ण उन्मुक्त स्कन्धों पर झूमती हुई, समुन्नत दीर्घललाट, उठी हुई नासिका, सिंदूर सुर्खी युक्त पतले अधर, कर्णान्तस्पर्शी खंजनाकृति-मृकुटि-युग, सकाजल-विसाल-मादक-नैत्र, नुकिली चिबुक है। किसनगढ़ के चित्रों में नेत्रों का चित्रण विशेष विधा में है जो कि इसे अन्य राजपूत चित्रकला शैली के कौशल से अलग कर वैशिष्ट की श्रेष्ठ श्रेणी का श्रेय देता है। भू और सारे मुख मण्डल से इतने प्रमुख रहते है कि प्रेक्षक का प्रथम आकर्षण और अंतिम आकर्षण नेत्र ही होते है। स्कंध फैले हुए, वक्ष पौरूष का प्रतीक, पट्टे से कसी क्षीण कटि, लम्बी भुजाएं तथा पावों तक झूमता हुआ जामा, चित्रों में प्रस्तुत हुआ है।[7] अलंकारों में पगड़ी में मोतियों के झुमके, लटकती हुई झालरें यौवन व लावण्य की अभिव्यक्ति करती है। मुखाकृति के चतुर्दिक कांतिचक्र चित्रित है।

नारी रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—नारी का निरूपण खुली स्कंधों पर से लहराती कटि तक जाती केश राशि, शीशफूल अलंकार से शोभित चंदन चर्चित पीताभ उच्च ललाट, पतली सीधी ऊपर उठी हुई नासिका, आँखों में गहरा काजल, कटीले नैन की चुभन, वलियत भ्रू, चमेली की पंखुड़ी से कोमल अधर, कपोलों पर आलोडित अलकें ऊरोजों तक बल खाई हुई, लम्बी गर्दन, चिबुक पर तिल, मुक्त मालाओं से अधखुला उभरा हुआ स्तन प्रदेश, अति क्षीण कटि, पांव तक लहंगा, कनक छुरी-सी-कामनी सा चित्रण हुआ है। जड़ाऊ झुमके व माथे में बिंदिया नारी के सौन्दर्य व रूप को और ज्यादा बढ़ा रही है।[8] नारी के इस रूप के चित्रण में राजा सामंत सिंह उर्फ कवि नागरीदास की प्रियतमा बणी ठणी है। बणी-ठणी सुंदरी होने के साथ ही साथ विदुषी एवं भक्त भी थी जिस कारण तत्कालीन चित्रकारों में राधा के रूप की कल्पना का आधार ही बणी-ठणी को स्वीकार लिया। इस शैली के अन्तर्गत बने ''राधा और कृष्ण'' आत्मा और ब्रह्म के प्रतीक स्वरूप है एवं उनमें भक्ति एवं श्रद्धा की उत्कृष्ट भावना निहित है।

सारे चित्र भावों, मुद्राओं, शारीरिक अनुपातादि की कसौटी पर खरे है। रंग-संयोजन एवं रंग विधान सुन्दर है। रेखाओं में गति एवं सजीवता है। उनमें बारीकी एवं कोमलता है। रेखाओं की कोमलता एवं लय गति में वे अजन्ता से किसी भी अर्थ में कम नही है।

बीकानेर शैली

पुरूष रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—पुरूषों की आकृतियाँ चौड़ा माथा, लम्बी जुल्फें, उग्र दाढ़ी मूंछों से युक्त, शौर्य को प्रदर्शित करती है। फैले हुए जामें, ऊँची शिखराकार पगड़ियाँ और लम्बे-लम्बे कद और खड्ग हाथ में लिये हुए जोधपुर के सदृश्य ही है। आकृतियों की रेखाएं कोमल हैं एवं मुख-मुद्राओं के अंकन में मुगल प्रभाव परिलक्षित होता है।

अठारहवीं सदी के मध्य तक बीकानेर और मारवाड़ में दाढ़ी-मूंछविहीन चेहरों वाली पुरूष आकृतियों का अंकन समान रूप से हुआ। दोनों ही राज्यों में ''कृष्ण-राधा'' एवं नायिकाओं के चित्रों में काफी समानता थी। ''डॉ. जयसिंह नीरज के अनुसार बीकानेर शैली में रेखाओं की गत्यात्मकता, कोमलांकन तथा बारीक रेखांकन विशेष हुआ है।''

पुरूष चित्रों में चिचुक तक जुल्फे, शाहजहाँ और औरंगजेब शैली की शिखराकार पगड़ियों का अंकन आदि बीकानेर चित्र-शैली की अपनी शैलीगत विशेषताओं में सम्मिलित करते है। ''श्री मोतीचन्द खजांची ने भी बीकानेर की उपर्युक्त विशेषताओं का ही उल्लेख किया है।''[9]

नारी रूपाकृतियां एवं वस्त्राभूषण—बीकानेर के आरम्भिक चित्रो में एकहरी, तन्वंगी, मृग नयनों सी आँखों वाली नारियों के चित्र बनाये जाते है। तंग कंचुकी, घेरदार घाघरे, मोतियों के आभूषण बीकानेरी शैली में अत्यधिक अंकित किये गये है। 18वीं शताब्दी में चित्रकारिता की इस शैली पर रसिक कालीन प्रभाव पड़ा। इस समय नारी की कमनीयता तथा लोच पर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा। महाराजा ''गजसिंह'' के काल में भी महिला आकृतियों के चेहरो पर थोड़ा सा परिवर्तन आया, वह था पहले से ज्यादा गोल तथा नाक एवं नयन और तीखे दर्शाना। यानी नाक कुछ लम्बी व ललाट गोल तथा ठुड्डी और नाक के बीच सलवटें भी बनायी जाने लगीं। इससे चेहरा अधिक दिव्यमान व तना हुआ दिखाई देने लगा। वेशभूषा प्रायः जोधपुर शैली के चित्रों की भांति दिखाई देती है। यहाँ घंटाकृति जामे का फैशन कम प्रतीत होता है। पगड़ियाँ अधिक ऊँची मुगल शैली के समान है।[10]

कोटा शैली

पुरूष रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—पुरूष का चित्रण सामान्य नाटा कद, बूँदी से प्रभावित हुआ है। नीला व लाजवरदी रंग की बहुलता से हुआ है। वल्लभ-सम्प्रदाय का प्रभाव होने के कारण अंग-प्रत्यंगो का अंकन गोस्वामी और पुजारियों की भाँति पुष्ट एवं प्रभावशाली है। भारी और गठीला शरीर, दिप्ती-युक्त चेहरा, मोटे नैत्र, तीखी नाक, पगड़ियों, अंगरखों वेशभूषा कोटा शैली की निजि विशेषता रही है।[11]

नारी रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—कोटा कलम के चित्रों में नारी का निरूपण अत्यन्त ही अल्प सौन्दर्य को व्यक्त करता है। अधिकांश अंगड़ाई सी लेती हुई या तो दर्पण देखती हुई या किसी वृक्ष की डाली को पकड़े खड़ी है। ऊँचा लहंगा, वेणी अकड़ी हुई नितम्बों से भी नीचे तक लटकती है। सिर पर केश राशि ललाट के बहुत ही ऊपर से आरम्भ होते है जिससे ललाट की शोभा श्री कुंठित हो जाती है। नैत्र काजल से मण्डित बादाम जैसी आकृति के है। नाक छोटी, चिबुक माँसल, वक्ष अत्यधिक बाहर को उभरा हुआ और कटि अत्यन्त क्षीणा, एक तरह से क्षीणता की परिसीमा के पार, अधर निकले हुए, बहुअलंकारो का प्रयोग इन चित्रों में चित्रित हुआ है।

बूँदी शैली

पुरूष रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—बूँदी के चित्रों में पुरूषाकृति सिर पर झुकी हुई पगड़ी, घुटने तक जामा, कमर में दुपट्टा, पाँवों में चुस्त पायजामा, कानों में मोती, कपोलो तक लटकती लटे, रौबीला भरा हुआ मुख, बड़ी मूँछ व राजसी सज्जा में है। आभूषणों में गले में मोतियों की माला हाथ में कड़े व कानों में बुन्दें एवं अन्य जड़ाऊ आभूषण पुरूषों के शरीर पर दिखाई देते है।

नारी रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—नारी चित्रण में काली रेखाओं से विभाजित अति अरूण अधर, अर्द्ध निमीलित नैत्र, घनी सीधी भृकुटि, अलंकार मण्डित सामान्य ग्रीवा, पतली लम्बी बाहें मेहन्दी रचे हाथ, कंचुकी चोली नुमा, कसा उभरा वक्ष हल्का उदर, क्षीण कटि, पैर काले लहंगे से ढके, लाल चुनरी, धवल कंचुकी से वष्टित स्वरूप है। अलंकारों में शीशफूल जड़ाऊ बिंदी, नाक में मोती, हथफूल, बाहों में सुनहरी झुमके आदि प्रमुख है।

नायिका भेद का मूल आधार राधा कृष्ण ही है किन्तु ये राधाकृष्ण देवकोटि के ना होकर सामान्य जन से प्रतीयमान है।

रसिकप्रिया का चित्रण वास्तव में रसिकों के लिए हुआ प्रतीत होता है। पात्रों के वेश में अनुकूलता वर्ती है। राधा कृष्ण ही नायिक-नायका है। इसमें राधा कृष्ण सर्वमान्य प्रेमी प्रतीत होते है। कृष्ण मोर मुकुट की जगह पाग धारण किये रसिक शिरोमणी लगते है। कहीं-कहीं राजपूती कलंगी पाग में धारण किये है। सभी चित्र वासना को प्रदीप्त करते है। कुछ चित्रों मे अति है। जैसे एक चित्र में राधा को आलिंगन करते हुए उसकी कमर को हाथ डालकर कृष्णा ने दबोच रखा है जिससे राधा का पृष्ठ और वक्ष पीछे की ओर झुक गया है। फलतः राधा का वक्ष कृष्ण के मुख के नीचे आ गया है। रसिक-प्रिया में प्रस्तुत बूँदी की नायिका में कहीं-कहीं किसनगढ़ की बणी-ठणी का रूप अंशतः उभरा है।[12]

जयपुर शैली

पुरूष रूपाकृतियाँ एवं वस्त्राभूषण—यहाँ के चित्रों में प्रस्तुत पुरूषाकृति मध्यम काठी का बनाया है। गोल चेहरा ऊँचा ललाट, सिर पर पगड़ी, पगड़ी पर तुर्रा या कलंगी, कानों तक वलयित केशराशि, कनपटी के पास से निकलती हुई दाढ़ी-मूंछे, नाक गोल व लम्बी न छोटी, अधर भारी, चिबुक मांसल, नैत्र मीनाकृति, भरा गठा हुआ शरीर है।[13] मुख पीताम श्याम वर्ण ताम्रद्युति सदृश्य है। घेरदार चुन्नटि जामा, कमर पर पट्टा, नीचे पायजामा ढीली मोहरी का, नोकदार जूती, आवरण है। पुरूष प्रायः कानों में कुण्डल या लोंग पहने रहते थे। गले में कण्ठी, सोने की जंजीर ईष्ट देव का ताबीज या अलंकारों से युक्त मालाएं, मणिबंध मोती के झुमके, हाथों में अंगूठी, कुछ अंगुठियाँ मणियों, मूंगे तथा हीरे-रत्नो जड़ित व्यवहृत रूप में चित्रित है।

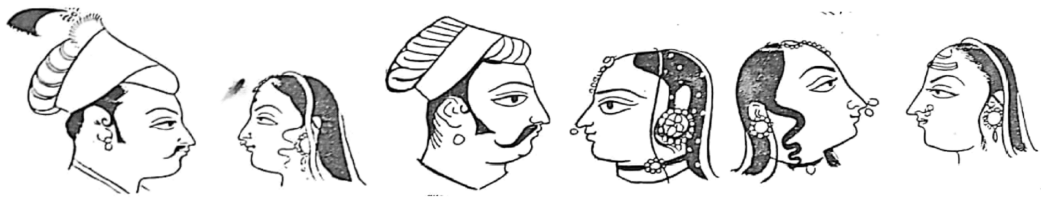

नारी रूपाकृतियां एवं वस्त्राभूषण—नारी चित्रण में उसे मध्यम कद-काठी का बनाया है जिसमें (यानी न लम्बा न छोटा), अण्डाकार चेहरा, ऊँचा ललाट, पूर्ण यौवना, काले मेघ सदृश्य केशराशि, कजनारी कटीली मादक आँखे, भँवें किंचित उठी हुई, सुडौल नाक अपेक्षाकृत बाहर निकली हुई, लालिमायुक्त कपोल एवं अधर, तीखा मांसल वक्ष, पतली कमर, वेणी नितम्ब तक झूलती हुई, ऊपर चोली नीचे घाघरा, कलात्मक मेहंदी रचे हाथ और पाँवों के अतिरिक्त माथे पर बिंदी अथवा चंदन लेप की प्रथा थी।[14]

अलंकार मुगल दरबार से उधार लिये हुए प्रतीत होते है। रानियों को कहीं बेगमों के सदृश्य वेशभूषा में चित्रित किया है। नारी आकृतियों को घाघरा, चोली या कुर्ता, दुपट्टा या पारदर्शी चुन्नी पहने दर्शाया गया है, तो कहीं-कहीं वे जामें, ओढ़नी, पायजामे में चित्रित है। आभूषणों मे टीका, टोटी, बाली, हार, हँसली, सतलड़ी, टेवटा, कंठा, मेजबन्द, बाजूबन्द, चूड़ी, पायजेब व पैरो में जूतियाँ पहने दर्शाया है। ''सवाई मानसिंह'' प्रथम के पश्चात् स्त्रियों का मुगल परिधान पूर्णतः विलुप्त हो गया। लहंगा कुछ मुगल जामे के समान घण्टाकृति बनने लगा। आभूषणों के अतिरिक्त नारियों की रूप-सज्जा भी उनको और अधिक आकर्षक बनाने में सहायक हुई है। व्यक्ति चित्र से लेकर सामूहिक चित्रों का सफल अपेक्षित प्रभावोत्पादक चित्रण हुआ है। रेखा की सबलता यहाँ का वैशिष्टय है।

अठारवीं शताब्दी के भागवत का चित्रण मुगलिया रंग विद्या का है। भागवत में द्वारिकापुरी का चित्रण जयपुर नगर के आधार पर किया है तथा अर्जुन और कृष्णा की वेशभूषा मुगल चित्रों के समानुरूप है।

चित्रों के विश्लेषण एवं शैलीगत आधार पर हम कह सकते है कि राजस्थान की सचित्र पाण्डुलिपियों में शैलीगत व क्षेत्रीयता के आधार पर समयानुसार पुरूषाकृतियों की वेशभूषा व रूप का चित्रांकन बदलते स्वरूपों में किया गया है जिन पर समय-समय पर विविध आलेखन भी बनाये गये है। क्योंकि चित्रकार जिस आधार एवं परिवेश का अनुभव करता है उसी का

ही अंकन भी करता है। चित्रकार ने समकालीन जन-सामान्य वेशभूषा को ही अपने चित्रों में स्थान दिया है। जिनसे अलग-अलग समय में प्रचलित वेशभूषा व वस्त्र उद्योग की उन्नति का पता इन चित्रों द्वारा सहज ही लगाया जा सकता है।

संदर्भ

1. पाण्डेय कमलदत्त, भारतीय चित्रकला में नारी रूप विन्यास, नई दिल्ली, 1992, पृ. 10
2. दास रायकृष्ण, भारत की चित्रकला, इलाहाबाद, 1969, पृ. 36
3. गैरोला वाचस्पति, भारतीय चित्रकला, दिल्ली, 1963, पृ. 159
4. अग्रवाल आर.ए., कला विलास, भारतीय चित्रकला का विवेचन, मेरठ, 1989, पृ.93
5. अग्रवाल मधुप्रसाद, मारवाड़ की चित्रकला, नई दिल्ली, 1993, पृ. 174
6. तिवारी रघुनन्दन प्रसाद, भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, दिल्ली, 1973, पृ.50
7. डॉ. गोयल अभिलाषा, किशनगढ़ चित्रकला एक विवेचनात्मक अध्ययन, निवाई (टोंक), 2006, पृ. 155
8. डॉ. वर्मा महेन्द्र, भारतीय चित्रकला की परम्परा, दिल्ली, 2006, पृ. 65
9. डॉ. शर्मा गिरिजा शंकर, बीकानेर की चित्रांकन की परम्परा, जयपुर, 2005, पृ. 79
10. डॉ. प्रताप रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर, 2021, पृ. 202
11. डॉ. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला, जयपुर, 1994, पृ. 72
12. तिवारी रघुनन्दन प्रसाद, भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, दिल्ली, 1973, पृ. 59
13. डॉ. प्रताप रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, जयपुर, 2021, पृ.230
14. चौहान सुरेन्द्र सिंह, राजस्थानी चित्रकला, दिल्ली, 1994, पृ. 47

❑❑

डॉ. अनिल कुमार पारीक
सहायक आचार्य, लोक प्रशासन
राजकीय कला महाविद्यालय
कोटा, राजस्थान

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

जेण्डर संवेदी बजट के विभिन्न आयाम

सार

आर्थिक पक्ष सामाजिक आयाम का महत्वपूर्ण पक्ष है। महिला के अस्तित्व को वास्तविक मान्यता तभी प्राप्त हो सकती है, जब आर्थिक दृष्टिकोण से महिलाओं के सशक्तीकरण की प्रक्रिया आरंभ हो। इस हेतु आवश्यक है कि महिलाओं के हित में व्यवस्थित ढंग से बजट के एक निश्चित हिस्सा समर्पित किया जाए। अभी तक महिलाओं के हित में जितनें भी कार्यक्रम बनाए गए है, उनका वास्तविक लाभ पूर्णत: उन तक नहीं पहुँचा है। आज की अवधारणा के अनुसार बजट का आवंटन वर्ग आधारित होने की अपेक्षा जैण्डर आधारित होना अधिक आवश्यक है.

शब्द संक्षेप : बजट, प्रशासन, लैंगिक, परिषद, सशक्तीकरण।

शोध का उद्देश्य

1. जेंडर बजट के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की संभावना का पता लगाना।
2. राजस्थान में जेंडर बजट की विभिन्न विभागीय प्रक्रियाओं की जानकारी पता करना।
3. भावी संभावनाओं की जानकारी करना।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक विधि पर आधारित है। इस शोध में पूर्णता द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। इसमें विभिन्न शोध पत्रों पत्र-पत्रिकाओं लेखों, पुस्तकों एवम वेबसाइट का संदर्भ लेते हुए वर्णनात्मक व्याख्या एवं निष्कर्ष निकाले गए हैं।

परिचय

प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पक्ष वित्तीय प्रशासन है। वित्त प्रशासन वह प्रशासन है जिसमें वित्त (धन) के विभिन्न आयामों का अध्ययन किया जाता है। मानव शरीर में जैसे रक्त आवश्यक है, वैसे संगठन के कार्यकलापों हेतु वित्त आवश्यक हैं। अत: वित्त ही प्रशासन की जीवन शक्ति है। एल.डी. व्हाईट का मानना है कि ''प्रशासन एवं वित्त को परस्पर पृथक नहीं किया जा सकता।[1] प्रत्येक प्रशासनिक कार्य का वित्तीय पहलू होता है, जो उससे वैसे ही अपृथक्करणीय होता है जैसे मनुष्य तथा उसकी छाया। वित्त प्रशासन का महत्वपूर्ण पक्ष सरकार की राजकोषीय नीति होती है। राजकोषीय नीति का अंग्रेजी पर्याय 'फिसकल से संबंधित है जो यूनानी भाषा के शब्द फिस्क से बना है। इसका अर्थ है टोकरी या डलिया जो कि सरकारी खजाने को व्यक्त करता है। राजकोषीय नीति आर्थिक नीति का वह हिस्सा है जो कि मुख्यत: सरकार के आय तथा व्यय से संबंधित है। इसमें सरकार विभिन्न स्त्रोतों से जो भी उधार लेती है वह भी शामिल है।

जेण्डर संवेदी बजट

जेण्डर संवेदी बजट एक विधि है जिसके द्वारा लोक बजट तथा नीति निर्माण की प्रक्रिया को जेण्डर रूप से संवेदी बनाया

जाता है। जेण्डर संवेदी बजट, जिसे जेण्डरबजट, महिला बजट, जेण्डर संवेदनशील बजट आदि नाम से भी जाना जाता है, बजट विश्लेषण करने का एक तरीका है, जिसके द्वारा यह देखने का प्रयास किया जाता है कि बजट में सरकार की प्राथमिकताएं क्या हैं तथा सरकारी खर्चों का प्रभाव महिलाओं एवं पुरुषों तथा लड़कों एवं लड़कियों पर कैसे होता है। जेण्डरबजट विश्लेषण महिला तथा पुरुषों पर समान खर्च की बात नहीं करता बल्कि इसमें यह समझने का प्रयास किया जाता है कि सरकारी खर्चों तथा राजस्व उगाही का महिला और पुरूष पर क्या प्रभाव हो रहा है, इसीलिये एक जेण्डर संवेदी बजट, वह बजट है जो समाज में व्याप्त जेण्डर असमानताओं को स्वीकार करते हुए, सरकार इस प्रकार से बजट आवंटित करे कि समाज में जेण्डर असमानताओं में कमी आए। जेण्डर संवेदी बजट की प्रक्रिया में कई प्रकार के औजार (टूल्स) उपयोग में लिये जाते हैं।

जेण्डर बजट विवरण

जेण्डर संवेदी बजट का एक औजार जेण्डरबजट विवरण है, जो यह बताता है कि सरकार के कुल खर्चे का कितना हिस्सा महिला सशक्तिकरण तथा जेण्डर समानता पर खर्च हो रहा है। भारत सरकार वर्ष 2005-06 से जेण्डरबजट विवरण जारी करती आ रही है। विगत लंबे समय से राजस्थान सरकार ने भी यही प्रक्रिया आरंभ की है। कई अन्य राज्यों में भी जेण्डरबजट विवरण पेश किया जाता है। वर्तमान में सरकारें अपने प्रत्येक खर्च में महिलाओं का हिस्सा उस योजना/कार्यक्रम के लाभार्थियों में महिलाओं/बच्चियों के प्रतिशत के आधार पर दिखाती हैं। लेकिन जेण्डरबजट विवरण की अपनी सीमाएं हैं तथा कई बार सरकारी खर्चों को जेण्डर आधार पर अलग करना काफी कठिन हो जाता है। कई मामलों में, उदाहरण के लिये राजस्थान में भी कई बार महिलाओं का हिस्सा कुल आबादी में महिलाओं के प्रतिशत के आधार पर दिखाया जाता है। जाहिर है ऐसा करना उचित नहीं है, क्योंकि किसी भी कार्यक्रम का लाभ महिलाओं एवं पुरूषों को समान रूप से नहीं मिलता है। इस समस्या के समाधान के लिये विशषज्ञों ने जेण्डर बजट विवरण (या जेण्डर बजट स्टेटमेन्ट) को बनाने अर्थात सरकार के कुल खर्च में महिलाओं एवं बच्चियों पर हो रहे खर्च को दर्शाने के लिये भी वैकल्पिक तरीके सुझाए गये हैं। व्यवहार में बजट एक तय समयावधि के लिए, सामान्यत: एक वर्ष के लिए आय-व्यय का पूर्वानुमान है। यह सरकार द्वारा आने वाले वर्ष के लिए निश्चित नीहित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु तैयार की गई विस्तृत कार्य-योजना होती है। वित्तीय प्रशासन बजट के माध्यम से ही काम करता है। बजट राजकोषीय नीति का महत्वपूर्ण उपकरण है।

बजट शब्द का निर्माणफ्रेंच (फ्रांस) भाषा के शब्द 'बोजते' से हुई जिसका सामान्य अर्थ चमड़े का थैला हैं। यह शब्द सन् 1733 में इंग्लैण्ड की संसद में बोला गया था। उस समय वहाँ वित्तमंत्री राबर्ट वालपोल (1721-1742 कार्यकाल) ने अपनी वित्तीय योजना संसद में प्रस्तुत की जिसेससंद के ही एक सदस्य ने व्यंग्य में कहा कि वित्तमंत्री ने अपना बजट अर्थात चमड़े का थैला खोला है। भारत में आधुनिक बजट प्रणाली की शुरुआत गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग के समय में हुई। इस समय गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद के वित्त सदस्य जेम्स विल्सन ने 18 फरवरी, 1860 को सर्वप्रथम बजट प्रस्तुत किया। 1860 से ही भारत में अप्रैल से मार्च का बजट वर्ष या वित्तीय वर्ष की प्रणाली शुरु हुई। भारत में लंबे समय तक पारम्परिकबजट तो निश्चित समय पर बनता रहा है लेकिन जेंडर बजट की घोर उपेक्षा हुई हैजिसका परिणाम महिलाओं के पिछड़ेपन के रूप में हमारे सामने आया है।

जैण्डर रेस्पोन्सिव (संवेदनशील) बजट का तात्पर्य पुरूष एवं बालकों की तुलना में महिलाओं एवं बालिकाओं पर होने वाले वास्तविक सरकारी व्यय एवं राजस्व के प्रभावों का विश्लेषण एवं जांच करना है।[2] जैण्डर रेस्पोन्सिव बजट एक साधन है, जिसके माध्यम से वर्तमान बजट में जैण्डर समानता का आंकलन करने के साथ-साथ महिला एवं पुरूष तथा बालक एवं बालिकाओं दोनों के लिए बजट के अंतिम वांछनीय प्रभावों को सुनिश्चित किया जा सकता है। जैण्ड रेस्पोन्सिव बजट महिला एवं पुरूष के लिए अलग-अलग बजट का विभाजन या बजट एवं साधनों का 50-50 प्रतिशत बंटवारा करना कदापि नहीं है। महिला एवं पुरूष दोनों की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती है। अत: उन्हें उसी आधार पर चिन्हित किया जाना चाहिए। जैण्डर रेस्पोन्सिव बजट का ध्येय सभी विभागों की योजनाओं एवं कार्यक्रमों को जैण्डर संवदेनशील बनाना है, ताकि नीतियों की प्रभावी क्रियान्विति सुनिश्चित करी जा सके।

उद्देश्य

जैण्डर बजटिंग के उद्देश्य है यथा—

1. पुरूष के समान महिला की आवश्यकता तथा प्राथमिकता पर ध्यान देना
2. बजट तैयार करने के क्रम में सभी स्तरों पर जैसे आवंटन, कार्यान्वयन, लेखा परीक्षा इत्यादि का लैंगिक विश्लेषण कर लैंगिक समानता के उद्देश्यों की प्राप्ति करना
3. आर्थिक नीतियों को सामाजिक नीतियों के अनुरूप बनाकर समावेशी विकास को सकारात्मक दिशा प्रदान करना
4. विभिन्न विभागों के बजट प्रावधानों को संकलित कर जैण्डर दृष्टिकोण के आधार पर विश्लेषण करना।
5. विभिन्न विभागों की योजनाओं में उन क्षेत्रों को ज्ञात कर चिन्हित करना जिन में जैण्डर रेस्पोन्सिव बजटिंग (जीआरबी) पर विषेष ध्यान देने की आवश्यकता है एवं विभागों को अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन चिन्हित क्षेत्रों के लिए बजट आवंटित करने में सहायता प्रदान करना।[3]
6. विभागों द्वारा क्रियान्विति की जाने वाली योजनाओं/कार्यक्रमों की जैण्डर आवश्यकता एवं उपयोगिता को सुनिश्चित करने हेतु समीक्षा करना। विभिन्न विभागों में जैण्डर प्रकोष्ठ की स्थापना करना तथा इस प्रकोष्ठ के अधिकारियों/कर्मचारियों को जीआरबी एवं जैण्डर संबंधित प्रशिक्षण प्रदान करवाना ताकि विभागों में उक्त प्रकोष्ठ से संबंधित विषयों के लिए केन्द्र के रूप में कार्य कर सके। जैण्डर रेसपोन्सिव बजट बनाने में विभिन्न तकनीकों को विकसित कर विभिन्न विभागों को तकनीकी सहायता उपलब्ध कराना। जीआरबी तथा जैण्डर से संबंधित मुद्दों पर प्रशिक्षण[4] एवम जीआरबी तथा जैण्डर से संबंधित विषयों पर अनुसंधान/डाक्यूमेन्टेशन को प्रोत्साहन देना। विभिन्न विभागों के लिंग आधारित सांख्यिकी आंकडों के संकलन एवं विश्लेषण में विभागों की सहायता करना।

चुनौतियाँ

जैण्डर बजटिंग कार्यान्वित करने में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड रहा है यथा—

1. लैंगिक आंकडों की अपर्याप्तता सर्वप्रमुख चुनौती है। विशेष कर संसाधनों की पहुँच सुनिश्चित करने हेतु।
2. पारम्परिक बजटीय प्रक्रिया का प्रभाव अभी भी देखा जा सकता है।
3. विधायी प्रक्रिया में समिति हस्तक्षेप की शक्ति भी इसके सफल कार्यान्वयन को बाधित करती है।
4. आर्थिक संसाधनों केसीमितहोने के कारण इच्छा शक्ति होते हुए भी अनेक बार क्रियान्वयन सफल नहीं हो पाता।

यद्यपि लैंगिक संवेदनशीलता को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने वर्ष 2022-23 के बजट में महिला केन्द्रित कार्यक्रमों के लिए 4 प्रतिशत अधिक बजटीय आवंटन किया है। इसके अन्तर्गत बेटी बचाओं बेटी पढाओं, मातृत्वलाभ योजना, निर्भया फण्ड के आवंटन में वृद्धि की गई है।[5] इसके अतिरिक्त उज्जवला योजना, मुद्रा योजना व स्टेण्ड अप इण्डिया जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से भी जेंडर बजटिंग को यथार्थ में बदलने के प्रयास किए जा रहे है।

जेण्डर संवेदी बजट की 5 चरण प्रक्रिया

जेण्डर संवेदी बजट बनाने की यदि कोशिश की भी जाए तो उसे प्रभावी रूप से लागू कैसे किया जाए, इसके लिए कुछ कारगर कदम उठाये जा सकते हैं। जेण्डरबजट का उद्देश्य आयोजना एवं बजट की प्रक्रिया में जेण्डर के मुद्दों को शामिल किया जाना है। इसके लिए महिलाओं एवं पुरुषों तथा बच्चों एवं बच्चियों की वर्तमान स्थिति को समझना तथा सरकार की वर्तमान नीतियों का जेण्डर की दृष्टि से विश्लेषण करना भी अत्यावश्यक है। सरकारी नीतियों का ''जेण्डर संवेदी बजट'' का एक अन्य औजार है। जेण्डर संवेदी बजट की प्रक्रिया को ठीक से लागू करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण सुझाव डेब्बीबुडलेण्डर ने 5 चरण प्रक्रिया के रूप में दिया है। इसके अनुसार जेण्डर संवेदी बजट प्रक्रिया में निम्नलिखित 5 चरण शामिल होने चाहिए[6]—

चरण-1 : किसी भी क्षेत्र में महिलाओं, पुरुषों, बच्चियों तथा बच्चों की स्थिति का विश्लेषण।

चरण-2 : इस स्थिति को ठीक करने हेतु लागू किये जा रहे वर्तमान नीतियों तथा कार्यक्रमों की समीक्षा।

चरण-3 : यह देखना कि जेण्डर संवेदी नीतियों को लागू करने के लिये आवश्यकबजट आवंटन किया जा रहा है या नहीं।

चरण-4 : सरकारी खर्चे के प्रभावों की अल्पकालीन समीक्षा, जिससे यह पता चले कि आवंटित संसाधन कैसे खर्च हो रहे हैं तथा कार्यक्रम एवं नीतियां किस प्रकार लागू की जा रही हैं।

चरण-5 : सरकारी खर्चों के प्रभावों की दीर्घकालिक समीक्षा।

जेण्डर संवेदी बजट की यह 5 चरण की प्रक्रिया किसी भी क्षेत्र में महिलाओं एवं पुरूषों तथा बच्चियों एवं बच्चों की स्थिति के विश्लेषण से आरंभ होती है।[7] इसके बाद संबंधित नीतियों की समीक्षा या उनका जैण्डर विश्लेषण किया जाना चाहिये, जिससे यह पता चले कि वर्तमान नीतियाँ महिलाओं एवं बच्चियों की स्थिति में सुधार लाने तथा उस क्षेत्र में जैण्डर समानता लाने में कितनी सक्षम हैं।

स्पष्टत: यदि नीतियां पर्याप्त नहीं हैं तो उनमें सुधार करने या नई नीति बनाने की आवश्यकता है जो जेण्डर संवेदी हों। इसके बाद ही इन नीतियों के अनुरूप महिलाओं एवं बच्चियों तथा पुरुषों एवं बच्चों की आवश्यकता के अनुसार बजट आवंटन किया जाना चाहिए, ताकि जेण्डर संवेदी नीतियों को लागू किया जा सके। आवंटित बजट के क्रियान्वयन किये जाने पर, लागू किए जा रहे कार्यक्रमों के अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक प्रभावों का अध्ययन कर यह देखा जाना चाहिये कि क्या इनसे सुधार की कोई आवश्यकता है।

राजस्थान में जैण्डर बजटिंग

राजस्थान सरकार 2000 के दशक के आरम्भ से ही महिलाओं सम्बन्धी विभिन्न योजनाओं एवं अन्य मुद्दों को बजट में शामिल करने को लेकर गम्भीर रही है। राज्य में जैण्डर संवेदनशील बजटिंग की ओर पूर्व वर्षो में भी प्रयास किए जाते रहे है। इसके प्रथम चरण के रूप में वर्ष 2005-06 में 6 विभाग यथा स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, महिला एवं बाल विकास, मुद्रांक एवं पंजीयन तथा सामाजिक अधिकारिता एवं न्याय विभाग के बजट का विश्लेषण किया गया। वर्ष 2006-07 में 8 और विभागों का यथा ग्रामीण विकास, स्वायत्त शासन, जनजाति क्षेत्र विभाग, उद्योग विभाग, सहकारिता विभाग, वन विभाग, पशुपालन एवं उद्यान विभाग के बजट का जैण्डर आधारित अंकेक्षण किया गया।[8] अब तक 14 विभागों का जैण्डर आधारित विश्लेषण किया गया है। राज्य के वरिष्ठ अधिकारियों को जैण्डर संबंधी मुद्दे व जैण्डर रिपोर्टिंग की प्रक्रिया से अवगत कराने हेतु दिनांक 20 मार्च 2009 को मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक कार्यशाला आयोजित की गई।

महिला विकास और सशक्तीकरण हेतु बजट घोषणा वर्ष 2009-10 के अनुक्रम में महिलाओं से संबंधित योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए जैण्डर रेस्पोन्सिव बजट बनाने का निर्णय लिया गया। राज्य के बजट को जैण्डर मुखी बनाने के उद्देश्य से महिलाओं के संरक्षण, विकास एव सशक्तीकरण की दृष्टि से महिला अधिकारिता विभाग में जैण्डर प्रकोष्ठ की स्थापना 8 सितम्बर 2009 को की गई।[9] राज्य में विभिन्न विभागों के बजट को जैण्डर संवेदनशील एवं जैण्डर मुखी बनाये जाने के उद्देश्य से समयानुकूल बजट के परीक्षण, पुनरावलोकन एवं समय पर उचित सुझाव देने हेतु मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन, राज्य सरकार के आदेश दिनांक 28.08.2009 के द्वारा किया गया, जिसमें अतिरिक्त मुख्य सचिव, वित्त, प्रमुख सचिव, आयोजना, प्रमुख सचिव, महिला एवं बाल विकास विभाग सदस्य है। आयुक्त एवं सचिव, महिला अधिकारिता इस समिति की सदस्य सचिव है।[10] वर्तमान में राजस्थान में मुख्य सचिव स्वयं एक महिला है एवम वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से ये विभिन्न विभागों को नियमित रूप से जैंडर संवेदनशीलता के लिए प्रोत्साहित करती रहती है।

समिति के कार्य

1. किसी विभाग के बजट की समीक्षा करते समय विभाग के सम्बन्धित प्रमुख शासन सचिव एवं विभागाध्यक्ष आदि को आमंत्रित करेगी ताकि सार्थक विचार विमर्श संभव हो सके।
2. समिति ऐसे विभाग के बजट की जांच कर सकेगी जो मानव विकास से संबंधित हो अथवा जिसे समिति महिलाओं के विकास और सशक्तीकरण के लिए आवश्यक समझती हो। समिति ऐसे विभाग को चिन्हित कर सकेगी जिनमें जैण्डर आधारित बजटिंग प्राथमिकता के आधार पर लिया जाना अपेक्षित हो।

3. विभाग के बजट की जांच एवं पुनरावलोकन करते समय दिये प्रावधानों एवं योजनाओं/कार्यक्रमों में जैण्डर संवेदनशीलता पर विषेष ध्यान दिया जायेगा। यह देखा जायेगा कि उन कार्यक्रमों से महिलाओं को अपेक्षित लाभ पहुँचा है या पहुँच सकेगा।
4. बजट मूल्यांकन करते समय गत वर्ष के भौतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों और उपलब्धियों का भी मूल्यांकन किया जायेगा।
5. समिति उक्त परीक्षण हेतु निश्चित प्रक्रिया स्थापित कर सकेगी और सूचना संकलन हेतु प्रपत्र आदि निर्धारित कर सकेगी।
6. समिति जैण्डर संवेदनशीलता की दृष्टि से महिलाओं के विकास और सशक्तिकरण के लिए विभागों को उचित सुझाव देगी एवं जहाँ कठिनाई हो वहाँ उपयुक्त मार्गदर्शन व सहयोग प्रदान करेंगी।
7. समिति ऐसे सर्वेक्षण/अध्ययन का सुझाव दे सकेगी अथवा अपने स्तर से अध्ययन करा सकेगी जो जैण्डर संवेदनशील बजटिंग के लिए और उसकी अवधारणा स्थापित करने हेतु आवश्यक हो।
8. यह समिति स्थाई समिति होगी जिसकी कम से कम दो माह में एक बार बैठक आयोजित की जायेगी। आवश्यकता होने पर समिति के अध्यक्ष की अनुमति से कभी भी बैठक आयोजित की जा सकेगी।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर बनाये जाने वाले विभिन्न बजट में महिलाओं के लिये विशेष स्थान रखा जाता है।[11] वर्तमान में राजस्थान सरकार द्वारा अनेक महिला केन्द्रित योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। साथ ही अनेक विभागों में विभिन्न बजटिय आवंटनों के तहत महिलाओं के लिये निश्चित प्रतिशत राशि निर्धारित की जा रही है। नि:सन्देह जैण्डर बजटिंग एक नवीन अवधारणा है, लेकिन यह भी सत्य है, कि इस की आवश्यकता सदियों से रही है। आवश्यकता इस बात की भी है, कि जैण्डर बजटिंग के तहत् न केवल विभागों की संख्या बढाई जानी चाहिये वरन् खर्च किये जाने वाले मद में भी अभिवृद्धि आवश्यक है। सतत् एव समावेशी विकास हेतु जैण्डर बजटिंग अत्यन्त आवश्यक है।

संदर्भ

1. अवस्थी, माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2020, पृष्ठ 242
2. दुबे अशोक कुमार, 21 वीं शताब्दी में लोक प्रशासन, टाटा मेक्ग्राहील प्रकाशन, 2011, नई दिल्ली, पृष्ठ 63
3. राजस्थान राज्य महिला नीति 2021, महिला एवं बाल विकास विभाग प्रकाशन राजस्थान सरकार, जयपुर, 2021, पृष्ठ 22
4. अवस्थी, माहेश्वरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2020, पृष्ठ 247
5. राजस्थान पत्रिका संपादकीय, जयपुर संस्करण, 22 फरवरी 2021
6. राजस्थान राज्य महिला नीति 2021, महिला एवं बाल विकास विभाग प्रकाशन, राज. सरकार, जयपुर 2021, पृष्ठ 28
7. वही
8. वही
9. वही
10. वही
11. दुबे, अशोक कुमार, 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासन, टाटा मैक्ग्रा हिल प्रकाशन ,नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 68

❑❑

डॉ. मनोज सिंह यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
ज्ञानपुर, भदोही

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

महात्मा गाँधी की ग्राम स्वराज्य की अवधारणा

भारत गाँवों का देश है तथा इसकी ग्रामीण संस्कृति काफी पुरानी है। दुनिया में अनेकों संस्कृतियों के बीच भारतीय संस्कृति की अपनी अलग पहचान रही है। भारत में गाँवों को शासन की आत्मा कहा जाता है। महात्मा गाँधी का दर्शन व चिंतन गाँवों के विकास को लोकतांत्रिक राष्ट्र की मूल आत्मा मानता है संभवत: इसीलिए गाँधी के चिंतन एवं दर्शन का केन्द्र गाँव ही रहे हैं। गाँधी जी के विचारों में लोक अर्थात जनता सबसे महत्वपूर्ण है, बिना लोक को साथ लिए राष्ट्र की अवधारणा बेमानी होगी। वास्तव में इसी लोक के सर्वांगीण उन्नति के लिए ग्राम स्वराज्य की संकल्पना को साकार करने का प्रयास किया गया। ग्राम स्वराज्य की पूर्णरूपेण प्राप्ति व्यक्ति की स्वधीन चेतना के साथ विकसित होती है। जब तक समाज का प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक व आर्थिक रूप से समानता को प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक स्वाधीनता की बात करना बेमानी है। लोक ही भारतीय शासन प्रणाली का केन्द्रीय तत्व है। महात्मा गाँधी का समूचा चिंतन और दर्शन लोक अर्थात ग्राम को केन्द्र में रखकर संचालित हुआ है। इसी के दृष्टिगत गाँधी जी का मानना था कि यदि भारत के उन्नति की अवधारणा एवं संरचना गाँवों को केन्द्र में रखकर बनायी जाय तो हम स्वराज्य के वास्तविक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं। गाँधी जी ने जिस ग्राम स्वराज्य की कल्पना की है उसमें पुरानी ग्राम पंचायतों को पुर्नजीवन देने की बात नहीं है, उसमें आधुनिक जगत को ध्यान में रखते हुए स्वराज्य के स्वतंत्र ग्राम घटकों की नई रचना करने की बात है। वास्तव में ग्राम स्वराज्य, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में अहिंसा को मूर्तरूप प्रदान करता है।

गाँधी जी चाहते थे कि भारत में सच्चे लोकतंत्र की स्थापना हो। इस संदर्भ में उनका कहना था कि—''सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठे हुए बीस व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता है। उसे प्रत्येक गाँव के लोगों को नीचे से चलाना होगा। ग्राम स्वराज्य में गाँव सम्पूर्ण सत्ताएं भोगने वाला एक विकेन्द्रित राजनीतिक घटक होगा, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का सरकार अथवा शासन में सीधा हाथ होगा। व्यक्ति अपनी सरकार का निर्माता होगा। गाँव का शासन चलाने के लिए प्रतिवर्ष गाँव के पाँच व्यक्तियों की एक पंचायत चुनी जायेगी। इसके लिए एक अल्पतम निर्धारित योग्यता वाले गाँव के वयस्क स्त्री-पुरूषों को अपने पंच चुनने का अधिकार होगा। इस पंचायत को सभी प्रकार की आवश्यक सत्ताएं और अधिकार प्राप्त होंगे। इस ग्राम स्वराज्य में दण्ड की कोई प्रथा नहीं होगी, इसलिए यह पंचायत धारासभा, न्यायसभा और व्यवस्थापिका सभा तीनों का कार्य संयुक्त रूप से करेंगी।''[1] गाँधी जी का मानना था कि शासन के ऐसे मॉडल में नागरिक सत्ता द्वारा नियंत्रित न होकर स्वयं द्वारा नियंत्रित होंगे तथा प्रत्येक कार्य अपनी सूझ-बूझ से करेंगे और जीवन की तमाम बातों के लिए सरकार की ओर ताकने वाले न होकर नागरिक उत्तरदायित्व की उच्च विकसित भावना रखने वाले होंगे।

ग्राम-स्वराज्य की अपनी परिकल्पना में गाँधी जी कहते हैं—''ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रतातन्त्र होगा जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसियों पर भी निर्भर नहीं करेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा—वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिए जिसमें ढोर चर सकें और गाँव के बड़े व बच्चों के लिए मनबहलाव के साधन और खेल-कूद के मैदान

वगैरह का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा, जिन्हे बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सकें, यों वह गाँजा, तम्बाकू, अफीम वगैरह की खेती से बचेगा।''[2] गाँधी जी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने लाभ एवं उन्नति के लिए समान अवसर मिलना चाहिए। यदि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर मिले तो वह भी समाज के अन्य व्यक्तियों की तरह अपनी भी भौतिक तथा अध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। गाँधी के ग्राम स्वराज्य के लिए समानता आवश्यक घटक है। गाँधी ने ग्राम स्वराज्य की अवधारणा के लिए समता एवं एकरूपता को एकांगी रूप में नहीं देखा बल्कि समग्र रूप से विचार करते हुए कहा कि जब तक व्यक्ति दोनों ही सामाजिक एवं आर्थिक स्तरों पर समानता की स्थिति प्राप्त नहीं कर लेगा, तब तक समानता का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता है। गाँधी यह चाहते थे कि अहिंसापूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सबसे पहले आर्थिक समानता को स्थापित किया जाय। इसलिए गाँधी जी ने सबकी उन्नति और समानता के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों की वकालत किया। वास्तव में यह आर्थिक समानता के लिए गाँधी जी द्वारा उठाया गया एक बड़ा एवं महत्वपूर्ण कदम था। इस संदर्भ में गाँधी जी का मानना था कि जब तक सीमित संख्या के पूँजीपति और करोड़ो की संख्या में गरीबों एवं वंचितों के बीच का अंतर बहुत बड़ा रहेगा तब तक अहिंसा के आधार पर राज्य की व्यवस्था स्थापित नहीं की जा सकती है।

2 अगस्त 1942 के हरिजन सेवक में गाँधी जी इस संदर्भ में लिखते हैं कि—''हर एक गाँव में गाँव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभा भवन रहेगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा-वाटर वर्क्स होगे जिससे गाँव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुँओं और तालाबों पर गाँव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहाँ तक हो सकेगा गाँव के सारे काम पारस्परिक सहयोग के आधार पर किये जायेंगे। जात-पांत और क्रमागत अपृश्यता जैसे भेद जो आज हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम समाज में बिल्कुल नहीं रहेगे।''[3] गाँधी जी का मानना था कि सच्चा अर्थशास्त्र वह है जो सामाजिक न्याय के सिद्धान्त का समर्थन करता है और समभाव से 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' के आधार पर सभी के कल्याण की बात करता हो। गाँधी जी जानते थे कि व्यावहारिक रूप से समान वितरण के आदर्श को पूरी तरह प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ कार्य है इसलिए समानता एवं न्यायपूर्ण वितरण की बात गाँधी जी करते हैं।'' सत्याग्रह, असहयोग एवं अहिंसा का ग्राम स्वराज्य के लिए महत्व बताते हुए वे कहते हैं कि—''सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन बल होगी।''[4]

गाँधी जी के ग्राम स्वराज्य की अवधारणा में शारीरिक श्रम पर विशेष बल दिया गया है। उनका मानना था कि प्रत्येक स्त्री पुरष को जीवित रहने के लिए कायिक श्रम करना चाहिए उनका मानना था कि मनुष्य को अपनी बुद्धि की क्षमता का उपयोग अजीविका या उससे भी अधिक प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि सेवा एवं परोपकार के लिए करना चाहिए। इस नियम के पालन का चमत्कारिक असर होता है और इससे बहुत शक्ति मिलती है। गाँधी जी की कल्पना के ग्राम-स्वराज्य की योजना में ग्राम-सेवक का स्वाभाविक रूप से केन्द्रीय स्थान था। उसके कर्तव्यों के विषय में गाँधी जी कहते हैं कि ''ग्राम सेवक ग्रामों का इस प्रकार से संगठन करेगा कि वे खेती और ग्रामोद्योगों के द्वारा स्वयंपूर्ण और स्वावलम्बी बन जायें, वह ग्रामवासियों को स्वास्थ्य और सफाई की तालीम देगा तथा इस बात की हर तरह से सावधानी रखेगा कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ने न पाये और उन पर रोगों का आक्रमण न हो, साथ ही वह गाँव के लोगों को नई तालीम के आधार पर जन्म से मृत्यु तक की शिक्षा देने की व्यवस्था करेगा।''[5] इस प्रकार से ग्राम सेवक ग्राम सेवा की परिकल्पना को मूर्त रूप देने वाला एक महत्वपूर्ण माध्यम है जो ग्रामवासियों को एक आदर्श नागरिक बनाना सिखायेगा तथा गाँव में स्वच्छता, स्वास्थ्य, रक्षा एवं उसकी उन्नति की परिस्थितियों को तैयार करने में गाँव का सहयोग लेगा। एक आदर्श ग्राम सेवक के लिए गाँधी जी ने कुछ महत्वपूर्ण योग्यताओं का निर्धारण भी किया था जैसे ईश्वर में आस्था रखने वाला हो तथा निर्व्यसनी एवं अनुशासित हो। गाँधी जी ने ग्राम सेवकों के कुछ कर्तव्य भी बताये हैं। जैसे—वह सर्वधर्म समभाव का स्वयं पालन करें तथा ग्रामवासियों को उसके लिए जागरूक करे, स्त्री-पुरूष में भेद-भाव किये बिना सभी को समान अवसर के आदर्श में विश्वास पैदा करे, गाँव को संगठित करे, स्वयं भी स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बने, खेती बाड़ी तथा गृहउद्योगों के लिए प्रोत्साहित करें, अभिनव शिक्षा पद्धति का प्रयोग करवाये,

मतदाता सूची में ग्रामवासियों का नाम दर्ज करवाये। ग्राम सेवक का कर्तव्य है कि उसको अपने ग्राम को एक आदर्श ग्राम के रूप में परिणत करने के लिए निरन्तर प्रयासरत रहना चाहिए। गाँधी जी का कहना था कि—''इस तरह के गाँवों की पुर्नरचना का काम आज से ही शुरू हो जाना चाहिए। गाँवों की पुनर्रचना का काम काम चलाऊ नहीं, बल्कि स्थायी होना चाहिए।''[6]

गाँधी जी का मानना था कि मानव का सर्वोच्च लक्ष्य है लोगों को सुखी बनाना और इसके साथ ही साथ उनका बौद्धिक और नैतिक उन्नयन भी करना होगा। नैतिक उन्नयन से आशय यहाँ आध्यात्मिक उन्नयन से है और यह लक्ष्य विकेन्द्रीकरण से प्राप्त किया जा सकता है। विश्वशांति की आकांक्षा रखने वाले विश्व के राजनेता ऊपर से नीचे जाने वाली योजना बनाने की बात सोंचते हैं, जबकि गाँधी जी की सभी योजनाएं नीचे से ऊपर की दिशा में काम करने की वकालत करती हैं। इसलिए उन्होने कहा है—''स्वतंत्रता नीचे से आरम्भ होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक गाँव एक प्रजातंत्र अथवा पंचायत होगा जिसके हाथ में सम्पूर्ण सत्ता होगी। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गाँव को स्वाश्रयी और आत्मनिर्भर बनना होगा तथा अपने सारे कामकाज की व्यवस्था स्वयं करने की योग्यता प्राप्त करनी होगी। प्रत्येक गाँव को ऐसी तालीम देनी होगी और इस तरह तैयार करना होगा कि वह किसी भी बाहरी आक्रमण से अपनी रक्षा करने के प्रयत्न में अपने आपको मिटा सके। इस प्रकार अंत में व्यक्ति ही गाँव का घटक यानी आधार होगा।''[7] गाँधी जी के ग्राम स्वराज्य की अवधारणा में ग्राम शासन की सबसे महत्वपूर्ण एवं आधारभूत इकाई है। उनकी ग्राम स्वराज्य की कल्पना में सर्वाधिक अधिकार प्राप्त व सशक्त इकाई ग्राम ही होगी। जिला, राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर पृथक-पृथक स्तरानुसार कार्य होंगे अर्थात् किसी भी एक स्तर पर कार्यों का बोझ नहीं होगा और न ही कार्यों की अतिव्यापकता होगी। शासन का प्रत्येक स्तर अपना-अपना कार्य स्वयं करेगा तथा उच्च स्तर केवल समन्वय बनाने का कार्य करेगा इससे सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का पुर्ननिर्माण होगा। गाँधी जी की दृष्टि में ''स्वराज्य का अर्थ है सरकार के नियन्त्रण से स्वतंत्र रहने का निरन्तर प्रयास, फिर वह विदेशी सरकार हो या राष्ट्रीय सरकार। यदि देश के लोग जीवन की हर बात की व्यवस्था और नियमन के लिए स्वराज्य सरकारों की ओर ताकने लगे, तब तो उस सरकार का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा।''[8] इस प्रकार से ग्राम स्वराज्य में अंतिम सत्ता व्यक्ति के हाथ में रहेगी तथा यही स्वतंत्रता के वास्तविक मायने होंगे।

गाँधी जी की परिकल्पना के आदर्श ग्राम के विकास के लिए स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता एक अनिवार्य तत्व है। इसमें साफ-सफाई की पूरी-पूरी व्यवस्था होगी, गलियाँ व सड़के धूल से मुक्त होंगी। ''देहात वालों में ऐसी कला और कारीगरी का विकास होना चाहिए जिससे बाहर उनकी पैदा हुई चीजों की कीमत की जा सके। जब गाँवों का पूरा-पूरा विकास हो जायेगा तो देहातियों की बुद्धि और आत्मा को संतुष्ट करने वाली कला, कारीगरों के धनी स्त्री पुरूषों की गाँव में कमी नहीं रहेगी। गाँव में कवि, चित्रकार, शिल्पी, भाषा के पण्डित और शोध करने वाले लोग भी होंगे।''[9] गाँधी जी के ग्राम स्वराज्य की अवधारणा में निर्णय बहुमत से नहीं किये जायेंगे बल्कि निर्णय सर्वानुमति अथवा सर्वसम्मति से किया जायेगा अर्थात ग्राम सभा में लिया गया निर्णय सर्वसम्मति से होगा ''ग्राम स्वराज्य ऐसी सरल और सादी ग्राम-अर्थव्यवस्था है, जिसका केन्द्र मनुष्य है, जो शोषण रहित एवं विकेन्द्रित है। वह स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर अपने हर नागरिक को पूरा काम देने का प्रबन्ध करती है और जीवन की अन्न-वस्त्र की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा अन्य आवश्यकताओं के विषय में स्वावलम्बन सिद्ध करने का प्रयत्न करती है।''[10]

गाँधी जी आदर्श ग्राम स्वराज्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने में होने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों से वाकिफ थे। 02 अगस्त 1942 के 'हरिजन सेवक' में वह लिखते हैं—''संभव है ऐसे गाँवों को तैयार करने में एक आदमी की पूरी जिन्दगी खतम हो जाय। सच्चे प्रजातंत्र का और ग्राम जीवन का कोई भी प्रेमी एक गाँव को लेकर बैठ सकता है और उसी को अपनी सारी दुनिया मानकर उसके काम में मशगूल रह सकता है। निश्चय ही उसे इसका अच्छा फल मिलेगा। वह गाँव में बैठते ही एक साथ गाँव के भंगी, कतवैये, चौकीदार, वैद्य और शिक्षक का काम शुरू कर देगा। अगर गाँव का कोई आदमी उसके पास न फटके तो भी वह संतोष के साथ अपने सफाई और कताई के काम में जुटा रहेगा।''[11] गाँधी जी का मानना था कि राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को पूरा काम देने वाली अर्थव्यवस्था खड़ी करने के लिए हमें उद्योगवाद, केन्द्रित उद्योग-धंधो का और अनावश्यक यंत्रों के त्याग करना होगा। शहरों को वह ग्रामों के शोषण का साधन मानते थे। ग्राम स्वराज्य की परिकल्पना में

गाँधी का कहना था कि ''मेरी कल्पना की ग्राम-इकाई मजबूत से मजबूत होगी। मेरी कल्पना के गाँव में 1000 आदमी रहेंगे। ऐसे गाँव को अगर स्वावलम्बन के आधार पर अच्छी तरह संगठित किया जाय तो वह बहुत कुछ कर सकता है।''[12]

ग्राम स्वराज्य में इतनी ऊँची संभावनाएं और शक्तियाँ भरी हैं। उसे गतिशील और वास्तविक बनाना हम सभी नागरिकों का दायित्व है। राष्ट्रपिता के उत्तराधिकारी होने के नाते, जिन्हे उनकी समृद्ध और अमर विरासत पाने का सौभाग्य मिला है, हमारा यह कर्तव्य है कि हम उनके इस स्वप्न को पूरा करें। इसीलिए हमारी राज्य-सरकारों ने विशाल सत्ताएं धारण करने वाली ग्राम-पंचायतों को जन्म देने के लिए जो कानून बनाये है, वे सर्वथा सही और उपयुक्त हैं। हमें उन्मीद है कि यह ग्राम-पंचायते गाँधी जी की कल्पना के ग्राम-स्वराज्य का है कि यह ग्राम-पंचायते गाँधी जी की कल्पना के ग्राम स्वराज्य का चित्र अपने सामने सदैव रखेंगी तथा उनके बताये हुए मार्ग का अनुशरण करते हुए अपना काम करेगी। गाँधी जी ने जिस भावना से ग्राम-स्वराज्य की कल्पना की थी, उसी भावना के साथ उस पर अमल किया जाना चाहिए। जिन लोगों के हाथ में ग्राम-पंचायतों के संचालन की जिम्मेदारी होगी, उनके भीतर यदि नि:स्वार्थ सेवा भाव और जाति धर्म या वर्ग के मर्यादाओं से परे रहने वाले प्रेम की भावना नहीं होगी तो ग्राम-स्वराज्य के वे मीठे फल चखने को नहीं मिलेंगे, जिनकी अपेक्षा गाँधी जी ने रखी थी।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि ग्राम स्वराज्य की संकल्पना को साकार करने के लिए सरकारों को अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति दिखानी होगी। सरकार ग्रामोद्योगों लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए गाँवों में रहने वाले नागरिकों को मानसिक तौर पर तैयार एवं प्रोत्साहित करे तथा जनता को सहयोग प्रदान करके इन उद्योगों को पुर्नजीवित करे। गाँधी जी का चरखा एवं करघा तथा अन्य कुटीर उद्योगों के समर्थन के पीछे तथा औद्योगीकरण के विरोध करने के पीछे बेरोजगारी की समस्या का समाधान, मानवीय श्रमशक्ति को प्रोत्साहित करना तथा मानवीय मूल्यों से युक्त जीवन दर्शन निहित है।

संदर्भ

1. ग्राम स्वराज्य; महात्मा गाँधी, पृ. 16
2. मेरे सपनों का भारत; महात्मा गाँधी, पृ. 88
3. हरिजन सेवक; 2 अगस्त 1942
4. मेरे सपनों का भारत; महात्मा गाँधी, पृ. 84
5. ग्राम स्वराज्य; महात्मा गाँधी, पृ. 17
6. मेरे सपनों का भारत; महात्मा गाँधी, पृ. 85
7. ग्राम स्वराज्य; महात्मा गाँधी, पृ. 17-18
8. ग्राम स्वराज्य; महात्मा गाँधी, पृ. 18
9. मेरे सपनों का भारत; महात्मा गाँधी, पृ. 85
10. ग्राम स्वराज्य; महात्मा गाँधी, पृ, 18
11. 'हरिजन सेवक'; 02 अगस्त 1942
12. 'हरिजन सेवक'; 04 अगस्त 1946

❑❑

मेहर सिंह
शोधार्थी राजनीति विज्ञान
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. मंजीत (सहायक प्रोफेसर)
राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

भारत के संसदीय लोकतंत्र में चुनावी राजनीति एवं मतदान व्यवहार : एक अध्ययन

शोधालेख सार

वस्तुत: भारत का संसदीय लोकतत्र काफी पुराना है, फिर भी वर्ष 1989 के बाद क्षेत्रीय दलों की पीत राजनीति ने हमारी संसदीय परम्पराओं का काफी नुकसान किया है। आज बदलते राजनीतिक मूल्यों के संदर्भ में आधुनिक राजनीतिक विज्ञान में मतदान व्यवहार से सम्बंधित तथ्यों को जानने की जिज्ञासा राजनीतिज्ञों में बहुत अधिक रहती है, क्योंकि मतदान व्यवहार द्वारा निमित जनादेश लोग देश का प्राण तत्व हैं तथा लोकतंत्र को जीवित रखना मतदान व्यवहार पर निर्भर करता है। मतदान व्यवहार राजनीतिक व्यवस्था के लिए वह आधारभूमि प्रस्तुत करता है, जहाँ यह सत्ताधारी पार्टी के विरोध या समर्थन पर आधारित मतदाताओं का व्यक्तिगत निर्णय होता है, जिसकी सामूहिक परिणीति जनादेश रूप में होती है। इस जनादेश के अनुरूप ही शासक वर्ग से नीति निर्धारित एवं शासन वर्ग से राजनैतिक व्यवस्था के संचालन की अपेक्षा की जाती है। मतदान व्यवहार उन प्रतिनिधियों में दायित्व बोध उत्पन्न करता है। राजनीतिक दलों की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करता है। शान्तिपूर्ण सत्ता परिवर्तन का मुख्य साधन मत व्यवहार होता है। मतदान व्यवहार इस बात से भी निश्चित होता है कि कोई दल कितना बड़ा है। इसी तरह चुनाव से पहले सभी राजनीतिक दल लोकमत को अपने पार्टी के पक्ष में करने के लिए घोषणा पत्र तैयार करते हैं। अत: चुनावी घोषणा पत्रों का भी मतदान व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

मूल शब्द : राजनीतिक दल, लोकमत, चुनावी घोषणा पत्र, मतदान व्यवहार।

भूमिका

चूंकि मतदान व्यवहार किसी एक तत्व विशेष से सम्बन्धित नहीं होता है। इस पर अनेक तत्वों तथा परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। मतदान व्यवहार का सीधा सा अर्थ है - **'मतदाता का मतदान करते समय व्यवहार'**। यद्यपि कोई भी मतदाता अपना मत देते समय कई तत्वों से प्रभावित होता है और ये तत्व चुनाव क्षेत्र तथा चुनाव की प्रकृति के अनुसार बदलते रहते हैं। इसमें उम्मीदवार का व्यक्तित्व, उसका सामाजिक प्रभाव, जाति, धर्म, भाषा, प्रचार-अभियान, क्षेत्रीयता, धन-बल, शराब, सोशल मीडिया, सम-सामयिक मुद्दे, राजनैतिक विचारधारा व कार्यक्रम, चुनावी घोषणा पत्र, उम्मीदवार के जीतने की संभावना, आदि की महत्वपूर्ण भूमिका को अनेक शोध अध्ययनों ने स्पष्ट किया है। अंतत: मतदान व्यवहार एक जटिल प्रक्रिया है। अब तक भारत में संसदीय जनादेश प्राप्त करने के लिए 17 लोकसभा के चुनावों के संदर्भ में मतदान व्यवहार का विश्लेषण करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

वस्तुत: मतदान व्यवहार का अध्ययन 20वीं सदी की प्रक्रिया है फिर भी अधिकांश समाजशास्त्री और राजनैतिक विद्वान इस बात से सहमत हैं कि आधुनिक राजनीतिक शास्त्र के क्षेत्र में मतदान व्यवहार का अध्ययन सबसे पहले चार्ल्स मेरियम तथा

हेरोल्ड गोसबिल ने अपनी पुस्तक 'Non Voting' में किया है। फ्रांस में सन् 1913 में मतदान व्यवहार का अध्ययन किया था। इसके बाद अमेरिका में और ब्रिटेन में महायुद्ध के बाद इसका अध्ययन किया गया। लेखक आस्टिन रेमी ने मतदान के व्यवहार के आयाम को प्रकट किया है। जो आम चुनाव में मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है—राजनैतिक दलों के मतदान करने के दौरान वरीयता देने में तथा अपनी वरीयता को विशेष रूप से प्रकट करने के लिए।

मतदाता व्यवहार का अध्ययन का केन्द्र बिन्दु व प्रमुख उद्देश्य मतदाता वोट देते समय किस तथ्य से सर्वाधिक प्रभावित होता है जो आम मतदाता को अपना मत देने के लिए प्रेरित करती है। मतदान व्यवहार किसी देश अथवा राज्य में लोकतंत्र के मूल्य समता, स्वतंत्रता, समानता, विधि के शासन तथा संविधानवाद की स्थिति का परिचायक है। मतदाताओं का आचरण इस बात को स्पष्ट करता है कि नागरिकों की सामाजिक व राजनैतिक चेतना का स्तर क्या है? मतदान व्यवहार का अभिप्राय: यह है कि मतदाता अपने मत के प्रयोग के समय किन तत्वों से प्रभावित होता है। इसमें यह भी समाहित है कि कौन सी मूल प्रवृति उसे मतदान हेतु प्रेरित और कौन सी निरूत्साहित करती है। इसके माध्यम से यह जानने का भी प्रयास किया जाता है कि मतदाता एक विशेष प्रत्याशी या राजनैतिक दल की ओर क्यों आकृष्ट होता है?

इस तरह अधिकांश राजनैतिक विद्वान मतदान आचरण का अध्ययन करते समय कई बातों का ध्यान रखते हैं, फिर भी सामान्य रूप से मतदान व्यवहार से हमारा अभिप्राय: मतदाता अपने मत का प्रयोग करते समय किन-किन तत्वों से प्रभावित होता है? ये सभी तत्व सभी समय और स्थान पर एक स्थान नहीं होते। इसलिए विभिन्न परिस्थितियों में मतदान व्यवहार एक समान नहीं होता। अत: मतदान व्यवहार का क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है। भारत जैसे एक विशाल देश में इसका अध्ययन करना बहुत अधिक कठिन लगता है। हम मतदान व्यवहार का अध्ययन करते समय मतदान करने वाले लोगों का ही अध्ययन नहीं करते बल्कि उन लोगों का भी अध्ययन करते हैं जो चुनाव में अपनी वोट का प्रयोग नहीं करते। इसके अन्तर्गत चुनाव से पहले और बाद में विभिन्न क्षेत्रों में मतदाताओं से सम्पर्क स्थापित करके और उनसे मिलकर प्रश्न पूछ कर मतदान व्यवहार के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकालने का प्रयास करते हैं।

यहाँ हम इस बात को नकार नहीं सकते कि संसदीय लोकतंत्र में मतदान व्यवहार का विश्लेषण करना कठिन है क्योंकि मतदान व्यवहार का अध्ययन करते समय मतदाता प्रश्नों का उत्तर सही नहीं देते और अपने दलीय सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से बताने में संकोच करते हैं। भारत में राष्ट्रीय एवं राज्यों के स्तर पर मतदान आचरण एवं चुनावों पर अध्ययन किए हैं। परन्तु स्पष्ट से हमारे सामने नहीं आया है। कुछ क्षेत्रों के मतदाताओं के उत्तर भी अनेक कारणों से अनुकूल तथा प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं। यहां अनेक मतदाता प्रश्नों के उत्तर सही नहीं देते। हमारे देश में मतदाताओं की संख्या अधिक है, जो साक्षात्कारों को सरकारी प्रतिनिधि मानकर सही उत्तर देने में हिचकिचाते हैं। यही कारण है कि भारत में मतदाताओं के व्यवहार का अध्ययन देश की निर्वाचन सम्बन्धी खामियों को सुधारने के लिए आवश्यक है। इसी दृष्टि में मतदान व्यवहार का अध्ययन काफी उपयोगी है। अत: यह स्पष्ट है कि मतदान के समय भारत में लोकतंत्रीय शासन प्रणाली होने के कारण यह भी समझना आवश्यक है कि भारत का सामाजिक व राजनीतिक परिवेश किस प्रकार निर्वाचन प्रक्रिया को प्रभावित करता है। यह देखना पड़ता है कि किस प्रकार मताधिकार प्राप्त नागरिक अपने शासकों के चयन हेतु निर्णय लेते हैं और निश्चित प्रक्रिया और विधि द्वारा उम्मीदवारों को पसंद करते हैं। इसलिए राजनीतिक चुनाव विशेषकर लोकतंत्र में उसकी आत्मा का काम करते हैं और मतदाता के लिए एक राजनीतिक भूमि तैयार करते हैं।

जब हमारे देश में 16वीं लोकसभा के चुनाव हुए और उनका परिणाम 16 मई 2014 को घोषित किया गया था, उसने भारत की राजनीति में परिवर्तन ला दिया। लोकसभा चुनाव 2014 में मुख्य विपक्षी दल भारतीय जनता पार्टी ने 543 लोकसभा सीटों में से 282 पर विजय प्राप्त की। भाजपा के नेतृत्व में राजग (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) को लोकसभा की कुल सीटों में से 336 सीटें प्राप्त हुई, वहीं दूसरी ओर यू.पी.ए. 59 सीटें प्राप्त कर पाई। वंशवादी राजनीति, भ्रष्टाचार, सत्ता विरोधी लहर, एक प्रधानमंत्री जो भारत में लोगों के साथ संचार करने में विफल रहा, मुद्रा स्फीति, महिला के अपराध की बढती भूमिका और उपयुक्त शासन का अभाव, 2014 में लोकसभा और विधानसभा चुनाव में मतदाता के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक थे। इसी तरह भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने हरियाणा में राज्य विधानसभा चुनाव 2014 में बहुमत हासिल किया।

भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव के परिणामों की घोषणा 19 अक्तूबर 2014 को की गई। हरियाणा विधानसभा चुनावों में 47 सीटें प्राप्त करके भाजपा को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ व सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभर कर कुल 90 विधानसभा सीटों के लिए मतदान 15 अक्तूबर 2014 को कराया गया था। हरियाणा में पहली बार 64.54 प्रतिशत अपने उच्चतम स्तर का मतदान दर्ज किया गया।

भारतीय जनता पार्टी की जीत का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण योगदान श्री नरेन्द्र मोदी जी की प्रभावशीलता को बताया जा रहा है, जिससे हरियाणा भी अछूता नहीं रहा है। वर्ष 1951-52 के आम चुनावों में मतदाताओं की संख्या 17,32,12,343 थी जो 2014 में बढकर 81,45,91,184 हो गई थी। इसके बाद वर्ष 2019 में हुए लोकसभा के चुनावी जनादेश ने एक बार फिर से श्री नरेन्द्र मोदी जी के पक्ष में सरकार बनाने का अवसर प्रदान किया।

चुनावी घोषणा पत्र एवं मतदान व्यवहार

चुनाव में उतरने से पहले सभी राजनीतिक दल अपने चुनावी घोषणा पत्र जारी करते हैं। जिसमें चुनावी घोषणा में सभी नीतियां, कार्यक्रम होते हैं जो चुनाव के बाद वह सभी वादों को पूरा करेगें। सभी पार्टी अपने घोषणा पत्र द्वारा जनता को लुभाने की कोशिश करता है ताकि वोट प्राप्त हो सके। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वह अपनी बातों पर खरा नहीं उतरते। वस्तुत: घोषणा पत्र इटालियन भाषा के 'मैनिफेस्टो' शब्द का हिन्दी रूप है। यह शब्द लैटिन भाषा के 'मैनिफोस्टम' से इटालियन भाषा में आया है। वास्तव में यह राजनीतिक सिद्धान्तों तथा वायदों की सार्वजनिक घोषणा है। प्रत्येक प्रकार की शासन प्रणाली में निर्वाचन या चुनाव की राजनीति का विशेष महत्व होता है और इसमें राजनैतिक दलों की सहभागिता सुनिश्चित होती है। इसी कारण दलीय लोकतंत्र को अमली जामा पहनाने के लिए सभी राजनैतिक दलों द्वारा कुछ अपनी घोषणाऐं, नीतियां, कार्यक्रम व चुनावी वायदे किए जाते हैं जो उनको शासन में भागीदार बनाने में कारगर सिद्ध हो सकते हैं, बशर्ते मतदाताओं द्वारा उनको पसन्द किया जाए।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। लोकतांत्रिक राज्यों में इसे सबसे स्थिर लोकतंत्रों में शुमार किया जाता है। लक्ष्मी चरण सेन व अन्य बनाम ए.के.एम. हसनुज्जमा और अन्य ए.आई.आर 1985, एस.सी 1233 के मामले में उच्चतम न्यायालय के कथानुसार ''भारत तो लोकतंत्र का नखलिस्तान है, समसामयिक इतिहास की सच्चाई''। चुनाव व्यवस्था लोकतान्त्रिक व्यवस्था का प्राण ही प्रत्येक शासन व्यवस्था में चुनाव के महत्व को स्वीकार किया गया है। चुनाव लोकतंत्र व्यवस्था का पहलू है लेकिन यह बात जरूरी है कि चुनाव किस प्रकार होते हैं, क्या वह निश्चित होते हैं और हमारी चुनाव व्यवस्था को संचालन करने में जो अभिकरण अपनाए गए हैं। वह कितनी निष्पक्ष है और जनता वह चुनाव की ईमानदारी में कितना विश्वास जरूरी रखती है।

संविधान के अनुच्छेद 324 से 329 में निर्वाचन तन्त्र की सम्पूर्ण व्यवस्था की गई है। इसमें निर्वाचन का निरीक्षण निर्देशन और नियंत्रण करने के लिए निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। वस्तुत: चुनाव आयोग का मुख्य कार्य राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, लोकसभा, राज्यसभा के सदस्य एवं राज्य विधानसभाओं के सदस्यों का निर्वाचन सम्पन्न कराना है। प्रारंभ निर्वाचन आयोग एक सदस्यीय था जिसमें मुख्य निवार्चन आयुक्त थे। वर्ष 1989 में निर्वाचन आयोग को दो सदस्यीय बना दिया गया। वर्ष 1991 में निवार्चन आयोग को फिर से एक सदस्यीय कर दिया गया। वर्ष 1993 से निर्वाचन आयोग को फिर से तीन सदस्यीय कर दिया गया।

चुनाव आयोग की ताकत

वस्तुत: चुनाव आयोग एक ऐसी प्रशासनिक मशीनरी है जो देश में पंचायती राज संस्थाओं से लेकर राष्ट्रपति के चुनाव तक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसकी ताकत का एहसास निम्नलिखित बातों से होता है—

- धारा 13(C) के अनुसार चुनाव आयोग को अधिकतम सरकारी कर्मचारियों को अपने अधीन लेने का अधिकार है तथा सारे कर्मचारी आयोग के निर्देश मानने को बाध्य हैं। धारा 28(A) के अनुसार आयोग को सरकारी कर्मचारी को अपनी प्रतिनियुक्ति पा लेने का अधिकार है तथा समस्त कर्मचारी आयोग का निर्देश मानने को बाध्य हैं।

- धारा 160 के अनुसार चुनाव आयोग को चुनाव संपन्न करवाने के लिए कोई भी परिसर, वाहन, यान आदि अपने कब्जे में लेने का अधिकार है।

वस्तुत: दल प्रणाली के अभाव में हमारी लोकतन्त्र शासन प्रणाली कार्य नहीं कर सकती। हमारे शासन का रूप वह संसदीय या अध्यक्षात्मक हो क्योंकि किसी भी शासन को चलाने के लिए दल का होना जरूरी है। ये दल हमारे व्यक्तियों के समूह से ही होते हैं। जो विभिन्न समस्याओं के रूप को और उनके समाधान के विकल्प निकालने के लिए एकमत होते हैं तथा अपने सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वैधानिक ढंग से काम करने का निश्चय करते हैं। ये दल विभिन्न कार्य करते हैं—जैसे सार्वजनिक नीतियों का निर्धारण, शासन का संचालन, शासन की आलोचना, चुनावों का संचालन, लोकमत का निर्माण, शासन तथा जनता के बीच मध्यस्थ कार्य, राजनीतिक प्रशिक्षण, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्य, दलीय कार्य आदि।

देश के अब तक के राजनैतिक इतिहास में अब तक ऐसी कोई पार्टी नहीं बनी है, जिसमें टूट न हुई हो। इन पाटियों में टूट के बाद इनके दो या दो से अधिक दल बन चुके हैं। आज हर नेता अपनी पार्टी बनाने के लिए तैयार रहता है। आम चुनाव के दौरान में कुल 72 राजनैतिक दल थे जिनमें 14 राष्ट्रीय और 58 क्षेत्रीय दल थे। चुनाव की संख्या बढती गई है। साल 2004 के आम चुनाव में संख्या 230 हो गई थी जिनमें केवल 6 राष्ट्रीय दल व 224 क्षेत्रीय दल थे।

सारांश

यदि अब तक 17वें लोकसभा चुनावों के जनादेश एवं मतदान व्यवहार का अध्ययन किया जाए तो यह हमारे संसदीय लोकतन्त्र की विडम्बना रही है कि समय-समय पर राजनैतिक दलों ने जनता से झूठे वायदे किए हैं। यही कारण है कि कई बार राजनैतिक उदासीनता के कारण मतदाताओं द्वारा मतदान भी नहीं किया जाता और मतदान का प्रतिशत काफी कम रह जाता है। परिणामस्वरूप अल्पमतों वाला उम्मीदवार भी साधारण से बहुमत से जीतकर सत्ताधारी बन जाता है। जनता की इस उदासीता के कारण कई बार अयोग्य उम्मीदवार भी अपनी राजनैतिक आंकाक्षाओं को पूरा करने में सफल रहते हैं और जनता स्वयं को ठगा सा महसूस करती है। अत: संसदीय लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि मतदाताओं की जागरूकता का स्तर कितना है? इसलिए हर चुनाव के समय सभी राजनीतिक दल अपने चुनावी वायदों के साथ जनता के बीच में जाते है और अपनी-अपनी पार्टी के पक्ष में मतदान की अपील करते है।

संदर्भ

- जितेन्द्र कुमार, ''भारतीय निर्वाचन प्रक्रिया में मतदाताओं का मतदान आचरण'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड, रिसर्च एण्ड डेवेल्पमेंट, वॉल्यूम-3, अंक-2, मार्च 2018।
- अमिता कुमारी, दिल्ली विधानसभा चुनाव 2013 के सन्दर्भ में मतदान व्यवहार का विशलेषणात्मक अध्ययन, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक में प्रस्तुत अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, 2016।
- रामसकल सिंह, भारतीय शासन एवं राजनीति, अर्पण पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2018।
- घनश्याम चौहान, भारतीय राजनीति और सरकार, सुमित एन्टरप्राईजिज, नई दिल्ली, 2005।
- एन. राजा, 'पॉलिटिकल मैनिफेस्टो : रिएलटीज एण्ड एक्सपेटेशन्ज', थर्ड कॉन्सेप्ट, वॉल्यूम-24, नं. 283, सितम्बर-2010।
- एन.डी. पामर, इलैक्शन एण्ड पॉलिटिकल डेवेल्पमेंट, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1976।
- जगबीर कुण्डू एवं ब्रह्मप्रकाश, ''हरियाणा विधानसभा चुनाव-2014 के जनादेश का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'', यूनिवर्सल रिसर्च रिपोर्ट, वॉल्यूम-1, अंक-4, अक्तूबर-दिसम्बर 2014।
- दैनिक भास्कर, रोहतक, 20 अक्तूबर, 2014, पृ. 1.
- दैनिक भास्कर, रोहतक, 24 मई, 2019, पृ. 1.

❑❑

सौदामिनी गुप्ता
पीएच.डी. योग स्कॉलर
सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी, भोपाल, मध्यप्रदेश
डॉ. शशिकांत मणि त्रिपाठी
सहायक प्राध्यापक, योग विभाग
सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी, भोपाल, मध्यप्रदेश

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

श्रीमद्भागवद्गीता में कर्मयोग का स्वरूप

सारांश

मानव जीवन कर्म प्रधान है समस्त योनियों में एक मानव योनि ही है जो अपने विकास के लिए कर्म करता है। परंतु मानव यह कर्म अधिकांशत: प्रकृति के वशीभूत होकर करता है परंतु जब इन्हीं कर्मों को सजगता के साथ किया जाता है तो मुक्ति का पथ प्रशस्त होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म के द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति व मुक्ति बतलायी है जो अपने में विलक्षण है।

अर्जुन के कुरुक्षेत्र के मैदान में असहाय होकर युद्ध से भागने की स्थिति में योगेश्वर श्रीकृष्ण उनको कर्म योग की शिक्षा देते हैं और कहते हैं संसार और उसकी यथार्थता ही कर्मयोगी का कार्यक्षेत्र है। फल के प्रति उदासीन रहकर कर्म के प्रति जागरूक होकर ही मनुष्य क्रमश: मन पर विजय पाता है और परमात्मा से अपना सम्बन्ध सुदृढ़ करता है।

कूट शब्द : कर्म, कर्मयोग, श्रीमद्भागवद्गीता।

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवद्गीता अध्यात्म ज्ञान और जीवन की कला सिखाने वाला विश्व विख्यात अनुपम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के अध्ययन और मनन से व्यक्ति आत्म शांति का अनुभव कर सकता है और अपने जीवन को सुखी बना सकता है। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्ठापूर्वक कर्म करके अपने जीवन को सफल बनाने का उपदेश दिया है। वास्तव में कर्मयोग ही वह योग है जिसके माध्यम से हम अपनी जीवात्मा से जुड़ पाते हैं। कर्मयोग हमारे आत्मज्ञान को जागृत करता है। इसके बाद हम न केवल अपने वर्तमान जीवन के उद्देश्यों को बल्कि जीवन के बाद की अपनी गति का पूर्वाभास प्राप्त कर सकते हैं।इस योग में कर्म के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति की जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गृहस्थ और कर्मठ व्यक्ति के लिए यह योग अधिक उपयुक्त है। हममें से प्रत्येक किसी न किसी कार्य में लगा हुआ है, पर हममें से अधिकांश अपनी शक्तियों का अधिकतर भाग व्यर्थ खो देते हैं; क्योंकि हम कर्म के रहस्य को नहीं जानते। जीवन के लिए, समाज के लिए, देश के लिए, विश्व के लिए कर्म करना आवश्यक है। किन्तु यह भी एक सत्य है कि दु:ख की उत्पत्ति कर्म से ही होती है। सारे दु:ख और कष्ट आसक्ति से उत्पन्न हुआ करते हैं। कोई व्यक्ति कर्म करना चाहता है, वह किसी मनुष्य की भलाई करना चाहता है और इस बात की भी प्रबल सम्भावना है कि उपकृत मनुष्य कृतघ्न निकलेगा और भलाई करने वाले के विरुद्ध कार्य करेगा। इस प्रकार सुकृत्य भी दु:ख देता है। फल यह होता है कि इस प्रकार की घटना मनुष्य को कर्म से दूर भगाती है। यह दु:ख या कष्ट का भय कर्म और शक्ति का बड़ा भाग नष्ट कर देता है।

कर्मयोग का अर्थ

कर्म शब्द 'कृ' धातु से बनता है। 'कृ' धातु में 'मन' प्रत्यय लगने से कर्म शब्द की उत्पत्ति होती है। कर्म का अर्थ है क्रिया, व्यापार, भाग्य आदि। हम कह सकते हैं कि जिस कर्म में कर्ता की क्रिया का फल निहित होता है वही कर्म है।

स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार ''कर्मयोग वस्तुतः निःस्वार्थपरता और सत्कर्म द्वारा मुक्ति लाभ करने की एक विशिष्ट प्रणाली है।''[1]

कर्म की अनिवार्यता

न कर्मणामनारंभनैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
नच सन्न्यासनादेव सिद्धिं समाधिगच्छति॥[2]

अर्थात् मनुष्य न तो कर्मों का आरम्भ किये बिना निष्कर्मता को यानि योगनिष्ठा को प्राप्त होता है और न कर्मों के केवल त्यागमात्र से सिद्धि यानि संख्यानिष्ठा को प्राप्त होता है।

यहाँ भगवान ने कर्मयोग अर्थात् निष्कामता की प्राप्ति के लिए कर्म का आरम्भ करने की अनिवार्यता बताया है क्योंकि मनुष्य के अंदर जो काम करने का वेग होता है उसे त्याग करने के लिए कामना रहित होकर कर्तव्य कर्म करना आवश्यक है।

आचार्य श्रीधर के अनुसार, ''कर्म के अनुष्ठान के बिना नैष्यकर्म या ज्ञान किसी को भी प्राप्त नहीं होता है।''

डॉ. प्रणव पण्ड्या के अनुसार, ''हम किसी भी स्थिति में कर्म न करना चाहें तो भी हमारी अन्तर्निहित वासनाएँ हमें कर्म करने के लिए विवश कर देगी।''[3]

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा जी के अनुसार, ''शारीरिक और मानसिक भूखें ऐसी प्रबल हैं कि वे बलात् मनुष्य को कार्य करने के लिए खींच ले जाती हैं। उससे बचने का न तो कोई उपाय है न कुछ लाभ।''[4]

कर्म की विवशता

कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है तथा कर्म के बिना मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है। कर्म करने की इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥[5]

अर्थात् इस विषय में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता कि मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, क्योंकि सभी मानव प्रकृतिजनित गुणों के कारण कर्म करने के लिए बाध्य होते हैं।

मनुष्य को न चाहते हुए भी कुछ न कुछ कर्म करने होते हैं और ये कर्म ही बन्धन के कारण होते हैं। साधारण अवस्था में किये गये कर्मों में आसक्ति बनी रहती है, जिससे कई प्रकार के संस्कार उत्पन्न होते हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण मनुष्य जीवन-मरण के चक्र में फंसा रहता है। जबकि ये कर्म यदि अनासक्त भाव से किये जाते हैं तो यह मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बन जाते हैं।

कर्म से व्यक्ति बंधन में बंधता है किन्तु गीता ने कार्य में कुशलता को योग कहा है। योग की परिभाषा देते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥[6]

अर्थात समत्वबुद्धि युक्त पुरुष यहां (इस जीवन में) पुण्य और पाप इन दोनों कर्मों को त्याग देता है? इसलिये तुम योग से युक्त हो जाओ। कर्मों में कुशलता योग है।

अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। कर्मयोग साधना में मनुष्य बिना कर्म बंधन में बंधे कर्म करता है तथा वह सांसारिक कर्मों को करते हुए भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

कर्मयोग का गूढ़ रहस्य अर्जुन को बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! शास्त्रों के द्वारा नियत किये गये कर्मों को भी आसक्ति त्यागकर ही करना चाहिए क्योंकि फलासक्ति को त्यागकर किये गये कर्मों में मनुष्य नहीं बंधता। इसीलिए इस प्रकार वे कार्य मुक्तिदायक होते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि फल की इच्छा का त्याग करने पर कर्मों की प्रवृत्ति नहीं रहेगी, जबकि ऐसा नहीं है क्योंकि कर्म तो कर्तव्य की भावना से किये जाते हैं तथा यही कर्मयोग भी सीखाता है।

कर्मयोग की साधना में अभ्यासरत साधक धीरे-धीरे सभी कर्मों को भगवान को अर्पित करने लगता है, और साधक में भक्ति भाव उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में साधक जो भी कर्म करता है वह परमात्मा को अर्पित करते हुए करता है। साधक परमात्मा में अपनी श्रद्धा बनाए रखते हुए उत्साह के साथ कर्म करता है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥[7]

अर्थात् हे अर्जुन! तू जो भी कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दानादि देता है, जो तप करता है, वह सब मुझको अर्पण कर। ईश्वर के प्रति समर्पित कर्म व उसके फल सम्बन्ध को बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा॥[8]

अर्थात् ब्रह्म को अर्पित करके अनासक्ति पूर्वक कर्म करने वाला उसके फल से वैसे ही अलग रहता है जैसे जल में कमल का पत्ता।

कर्मयोग की साधना में रत व्यक्ति में उच्च अवस्था की स्थिति आने पर स्वयं कर्ता की भावना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो भी कर्म किये जा रहे हैं, उन सबको करने वाले ईश्वर ही हैं। इस प्रकार से साधक कर्म करता हुआ भी बंधन से मुक्त रहता है। उसके द्वारा किये गये कर्म से किसी भी प्रकार के संस्कार उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार के कर्म मुक्ति को दिलाने वाले होते हैं।

कर्मयोग की साधना से साधक के लौकिक व पारमार्थिक दोनों पक्षों का उत्थान होता है। कर्मयोग के मार्ग से ही साधक गृहस्थ जीवनयापन करते हुए भी साधना कर सकता है तथा मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

कर्म का स्वरूप

अकर्म की स्थिति से निष्काम कर्म तक पहुँचने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने कई प्रकार के कर्मों की विवेचना की है। वे कहते हैं—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥[9]

अर्थात् तू शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी नहीं होगा।

कर्म मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है—

1. विहित कर्म—विहित कर्म अर्थात अच्छे कर्म, सुकृत कर्म। विहित कर्म के भी चार भेद है—

नित्य कर्म—नित्य कर्म कर्म का अर्थ है, प्रतिदिन किये जाने वाला कर्म जैसे सन्ध्या पूजा, अर्चन, वन्दना इत्यादि।

नैमित्तिक कर्म—जो कर्म किसी प्रयोजन के लिए किये जाते है उदाहरणार्थ, किसी त्योहार या पर्व आ जाने पर अनुष्ठान किसी की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि, जैसे पूत्र के जन्म होने पर जातकर्म, बड़े होने पर यज्ञोपवीत इत्यादि।

काम्य कर्म—ऐसे कर्म जो किसी कामना या किसी प्रयोजन के लिए किये जाते है। जैसे नौकरी प्राप्ति के लिए, पूत्र की प्राप्ति के लिए, स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ, वर्षा को रोकने के लिए, अकाल पड़ने पर वर्षा करने के लिए हवन या अनुष्ठान, पुण्यफल की प्राप्ति की इच्छा के लिए दान इत्यादि ये काम्य कर्म है।

प्रायश्चित कर्म—प्रायश्चित कर्म जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है कि अगर व्यक्ति से कोई अनैतिक काम या पाप हो जाये तो उसके प्रायश्चित के लिए वो जो कर्म करता है उसके प्रायश्चित कर्म कहते है तथा जन्म-जन्मान्तरों के पापों का क्षय करने के लिए तपश्चर्या इत्यादि प्रायश्चित कर्म कहलाते है।

2. निषिद्ध कर्म—निषिद्ध कर्म अर्थात जो कर्म शास्त्र के अनुकूल नहीं है, चोरी, हिंसा, झूठ, व्याभिचार इत्यादि कर्म निषिद्ध कर्म है। हम जो भी कर्म करते है हमारा मन (आत्म, तत्व) उसे करने या न करने के लिए प्रेरित करता है कोई व्यक्ति उस आत्मा की आवाज के अनुसार कर्म करता है और कोई अनसुना करता है। अगर आत्मा की आवाज अर्थात परमेश्वर का भय न करते हुए हम जो कर्म करते है वह निषिद्ध कर्म है।

कर्म के प्रकार

1. श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार कर्म—श्रीमद्भगवद्गीता में तीन प्रकार के कर्म बताये है जो इस प्रकार है—

कर्म—शास्त्र के अनुकूल, वेदों के अनुकूल किये गये कर्म।

अकर्म—अकर्म का अर्थ है कर्म का अभाव यानि तुष्णी अभाव।

विकर्म—अर्थात जो निषिद्ध (पाप) कर्म है वह विकर्म है।

2. योगदर्शन[10] के अनुसार कर्म—महर्षि पतंजलि ने कैवल्यपाद के सातवें सूत्र में कर्म के भेद बताये है। कर्म के चार भेद है—

शुक्लकर्म—जो कर्म श्रेष्ठ है अर्थात वेदों में बताई गई विद्याओं के आधार पर जो कर्म किये जाते है। इस शुक्ल कर्म से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है।

कृष्ण कर्म—जो कर्म पाप कर्म है उन्हे कृष्ण कर्म कहा है। अर्थात शास्त्र विरूद्ध पापकर्मो को कृष्णकर्म कहा गया है। इन कृष्ण कर्मो से दुख तथा नरक की प्राप्ति होती है तथा इन कर्मो के फलों को जन्म जन्मान्तर तक भोगना पड़ता है।

शुक्लकृष्ण कर्म—ऐसे कर्म जो पाप व पुण्य के मिश्रण हो। कहा गया है कि शुक्ल कृष्णकर्म से पुनः मनुष्य को जन्म की प्राप्ति होती है।

अशुक्लकृष्ण कर्म—जो न तो पाप कर्म हो न पुण्य कर्म और न पाप-पुण्य मिश्रित कर्म हो इन सब से भिन्न ये कर्म निष्काम कर्म है क्योंकि ये कर्म किसी भी कामना के नहीं किये जाते है। इन कर्मो को करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण शुद्ध पवित्र तथा दर्पण की भांति स्वच्छ छवि वाला निर्मल बन जाता है। शीघ्र ही ऐसे साधक को वास्तविक तत्व ज्ञान (आत्मा के ज्ञान) की प्राप्ति होती है या अन्त में निश्चित उसे कैवल्य की प्राप्ति होती है।

3. वेदान्त के अनुसार कर्म—वेदान्त दर्शन में कर्म के तीन भेद बताये गये है—

संचित कर्म—संचित कर्म का अर्थ है कि पूर्वजन्म में हमने जो अनेको शरीर धारण किये है उन शरीरों में हमने जो कर्म किये वो संचित कर्म कहलाते है। हमारे जन्म जन्मान्तरों के संस्कार चित्त में संचित पड़े रहते हैं, इन्हीं कर्म-संस्कारों के समूहों को संचित कर्म कहते है।

प्रारब्ध कर्म—प्रारब्ध कर्म ऐसे कर्म है जो संचित कर्मों में अति प्रबल है ये कर्म इतने बलवान होते है कि कर्मों का फल भोगने के लिए अगले जन्म में जाते है। यह निश्चित है कि हमारे सुख या दुख की उत्पत्ति प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही होती है।

क्रियमान कर्म—इन्हें आगामी कर्म के नाम से भी जाना जाता है। आगामी अर्थात आगे किये जाने वाला कर्म, व्यक्ति ने जिन कर्मो का आरम्भ अभी नही किया है वही आगामी कर्म है जो भविष्य में फल प्रदान करते है। आगामी कर्म मनुष्य के अधीन है इनको चाहे तो हम बना सकते है चाहे तो बिगाड़ सकते है।

कर्मयोग उन लोगों के लिए है जो प्रकृति से सक्रिय होते हैं श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग के चार मुख्य नियम वर्णित हैं ताकि आप सभी तनावों से एकदम मुक्त होकर अपने कर्म (कार्य) का हर क्षण आनन्द ले सके।

1. कर्म कर्तव्य समझकर करें,
2. कार्य को बिना आसक्ति से करें,
3. परिणाम की चिंताओ को कभी आने मत दो जो आपके कार्य के दौरान आपके मन को विचलित करती हैं।
4. असफलता और सफलता को समबुद्धि से स्वीकार करें।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि मन का समत्व भाव ही योग है जिसमें मनुष्य सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, संयोग-वियोग को समान भाव से चित्त में ग्रहण करता है। कर्म-फल का त्याग कर धर्मनिरपेक्ष कार्य का सम्पादन भी पूजा के समान हो जाता है। संसार का कोई कार्य ब्रह्म से अलग नहीं है। इसलिए कार्य की प्रकृति कोई भी हो निष्काम कर्म सदा ईश्वर को ही समर्पित हो जाता है। पुनर्जन्म का कारण वासनाओं या अतृप्त कामनाओं का संचय है। कर्मयोगी कर्मफल के चक्कर में ही नहीं पड़ता, अतः वासनाओं का संचय भी नहीं होता। इस प्रकार कर्मयोगी पुनर्जन्म के बन्धन से भी मुक्त हो जाता है।

निष्काम कर्म

कर्मयोग सिखाता है कि कर्म के लिए कर्म करो, आसक्तिरहित होकर कर्म करो। कर्मयोगी इसीलिए कर्म करता है कि कर्म करना उसे अच्छा लगता है और इसके परे उसका कोई हेतु नहीं है। कर्मयोगी कर्म का त्याग नहीं करता वह केवल कर्मफल का त्याग करता है और कर्मजनित दुःखों से मुक्त हो जाता है। उसकी स्थिति इस संसार में एक दाता के समान है और वह कुछ पाने की कभी चिन्ता नहीं करता। वह जानता है कि वह दे रहा है और बदले में कुछ माँगता नहीं और इसीलिए वह दुःख के चंगुल में नहीं पड़ता। वह जानता है कि दुःख का बन्धन 'आसक्ति' की प्रतिक्रिया का ही फल हुआ करता है। वास्तव में कर्मयोग ही वह योग है जिसके माध्यम से हम परमात्मा से जुड़ पाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण यज्ञ कर्म को निष्काम भाव से अर्थात आसक्ति रहित होकर करने को कहते हैं—

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचरः ॥[11]

यहाँ मुक्तसंग से तात्पर्य यह है कि कर्मों से पदार्थों में तथा जिनसे कर्म किये जाते हैं उन सबमें आसक्ति और ममता का त्याग करने से है।

जयदयाल गोयन्दका कहते हैं—''अनासक्त भाव से यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्म मनुष्य को बांधने वाले नहीं होते।''[12]

आसक्ति और स्वार्थ भाव से कर्म करना ही बंधन का कारण है। अतः कर्म को आसक्ति से रहित होकर बिना किसी प्रतिदान या फल की आशा के संसार के कल्याण के हित करना चाहिए। निष्काम अर्थात जिसके साथ कोई कामना न जुडी हो। भगवान श्रीकृष्ण ने इस निष्काम कर्मयोग को श्रीमद्भागवद्गीता के दूसरे अध्याय में इस प्रकार कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥[13]

अर्थात् तेरा कर्म करने में अधिकार है इनके फलो में नहीं। तू कर्म के फल प्रति आसक्त न हो या कर्म न करने के प्रति प्रेरित न हो।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी कहते हैं—काम तो मन लगाकर करो, पुरे उत्साह से करो, पर फल की लालसा में उतावले मत बनो।[14]

निष्कर्ष

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्म सिद्धांत के अंतर्गत पहले मानव की कर्म करने की विवशता बतायी है तथा फिर उसकी अनिवार्यता बताई है। फिर क्रमशः अकर्म से निष्काम कर्म तक पहुँचने का मार्ग बताया है, जिसमें पहले पाप से पुण्य की ओर बढ़ने का निर्देश है, फिर पुण्य कर्मों से यज्ञ अर्थात परमार्थ कर्म करने के लिए बताया है। परमार्थ कर्मों को कर्तव्यभाव से करते रहने पर निष्कामता की अवस्था प्राप्त हो जाती है और फिर कर्म बंधन का कारण नहीं बनता, यही गीता का कर्म सिद्धांत है।

इस प्रकार कर्म में आसक्ति न रखकर कर्तव्यभाव से संसार के कल्याण हित करने से निष्काम होता है जो बंधन का कारण नही होता।

सन्दर्भ

1. कर्मयोग, विवेकानंद स्वामी, साहित्यशिला प्रकाशन, दिल्ली
2. श्रीमद्भगवद्गीता 3/4
3. युगगीता, पंड्या डॉ. प्रणव, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि मथुरा (उत्तर प्रदेश)
4. सांख्यदर्शन एवं योगदर्शन, आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि मथुरा (उत्तर प्रदेश)
5. श्रीमद्भगवद्गीता 3/5
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2/50
7. श्रीमद्भगवद्गीता 9/27
8. श्रीमद्भगवद्गीता 5/10
9. श्रीमद्भगवद्गीता 3/8
10. योगदर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)
11. श्रीमद्भागवद्गीता 3/9
12. गीता तत्व विवेचनी, गोयन्दका जयदयाल, गीताप्रेस गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)
13. श्रीमद्भागवद्गीता 2/47
14. ज्ञानयोग कर्मयोग भक्तियोग, आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि मथुरा(उत्तर प्रदेश)

❑❑

सुमित उपाध्याय
शोध छात्र
महाराजा सुहेलदेव राज्य विश्वविद्यालय
आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

भारतीय सांस्कृतिक यात्रा पर अन्वेषी अज्ञेय

बीजशब्द : सांस्कृतिक पर्यटन, संस्कृति, सांस्कृतिक दृष्टि, यायावर, यात्रा संस्मरण, शब्द-यात्रा।

सार

किसी भी देश की संस्कृति के वाहक होते हैं उसके प्राकृतिक प्रदेश, जंगल, वन, नदियाँ, वृक्ष, उन प्रान्तों की लोकगाथाएं, उन पशुओं के नाम जो हमें या तो उन गाथाओं में मिलते हैं या फिर उन स्थानों मात्र में जहाँ उनका उल्लेख होता है और एक यात्री इन संस्कृतियों, इनके स्मारकों इनकी कहानियों को अपने स्मृतिपटल पर अंकित कर एक युग से दुसरे युग तक उनका संवाहक बन जाता है और फिर जब बात भारत जैसे अद्वितीय, महान राष्ट्र की हो तो यह संस्कृति शब्द अपने सर्वोत्तम अर्थ में प्रकट होती है। जन्म से ही यायावर रहे अज्ञेय ने भारत को पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण स्वतंत्र और सम्पूर्ण यायावरी दृष्टि से देखना चाहा। जीवन के अलग-अलग कालों में यह कार्य पूरा किया। उनके भ्रमण या देशाटन का उद्देश्य विशुद्ध मनोरंजन नहीं था अपितु इसे संस्कृति और उसके अंगों से जोड़कर उन्होंने अपने यात्रा संस्मरण ''अरे यायावर रहेगा याद?'' से एक सांस्कृतिक दृष्टि के विकास की मांग भी की। क्षितिज से पलकें मिलाते अन्वेषी यायावर से दामिनी चमककर उसी दृष्टि के याद रहे जाने का प्रश्न करती है।

''अज्ञेय का जन्म एक खुदाई शिविर में हुआ, 7 मार्च 1911 को कसया (कुशीनगर, देवरिया) में पिताजी पुरातत्व विभाग में थे और खुदाई (चीजों को) खोजने के लिए करते-कराते थे। वह भी एक जगह नहीं, श्रीनगर, नालंदा, पटना, लाहौर, लखनऊ, बड़ोदा, मद्रास, उल्कमंड और न जाने कहाँ-कहाँ अज्ञेय जीवन भर दौड़ते-भागते-खोजते रहे, बचपन से घुट्टी की तरह यही पिए और जिए ही। जिज्ञासा, कौतुहल, अन्वेषण, खोज के लिए यायावरी, आत्मान्वेषण के लिए भ्रमण, कभी देश-कभी परदेस, कभी उत्तर-दक्षिण, कभी पूरब पश्चिम, बिना रुके-बिना थके, विवाद-प्रिय और संवाद धर्मी की तरह।''[1] साहित्य के संवादधर्मी जो सम्प्रेषण को ही साहित्य की सार्थकता कहते था और इसके लिए स्वतंत्रता की चाह मन में रखे हुए, आजादी के मतवालों संग क्रांति का जीवन बिताने वाले अज्ञेय वर्ष 1943 में ब्रिटिश सेना में चले गये। अज्ञेय ने कहा है ''मुझे ऐसा लगा कि भारतीय नवजवान को और विशेष रूप से जो क्रान्तिकारी रहे हैं उन लोगों को भारत की रक्षा की बात कुछ क्रियात्मक रूप से सोचना चाहिए .....अंग्रेजी शासन के पक्ष में न पहले था न तब हुआ। लेकिन भारत की रक्षा के पक्ष में पहले भी था और भारत की किसी भी विदेशी से रक्षा को अलग नही करता था।''[2] वर्ष 1946 तक अज्ञेय सेना में महायुद्ध में रहे। फिर ट्रक के कानबाई संग वापसी हुई। यह वापसी उन्होंने ट्रक चलाकर की। अज्ञेय पूरेभारतीय कला में शिव की वैवाहिक प्रतिमाओं का सामाजिक महत्वभारतीय कला में शिव की वैवाहिक प्रतिमाओं का सामाजिक महत्व भारत वर्ष को एक बार देखना चाहते थे। पूरी दृष्टि से देखना। अरे यायावर रहेगा याद के दुसरे संस्करण की भूमिका में अज्ञेय कहते हैं, ''जब से स्वतंत्र रूप से यात्रा करना संभव हुआ था तभी से आकांक्षा थी कि पूरे देश को पूर्व से पश्चिम तक, दक्षिण से उत्तर तक देखूं।'' पूर्व से पश्चिम तो उनके फौजी कानबाई ने दिखा दिया पर स्वतंत्रता का अन्वेषी इतने से कहाँ मानता,भारतीय कला में शिव की वैवाहिक प्रतिमाओं का सामाजिक महत्वभारतीय कला में शिव की वैवाहिक प्रतिमाओं का सामाजिक महत्व सो आगे लिखते हैं, '''परशुराम से तुरड़म' की यात्रा से पूरब और पश्चिम के कुलाबे तो मिला लिए थे पर उत्तर-दक्खिन के छोर मिलाने की आकांक्षा को और प्रेरणा ही मिली

थी। अंततः वह यात्रा भी हो गयी और फौजी कानबाई के सहारे नहीं, स्वेच्छा से निर्धारित पथ और गति से।''[3] अज्ञेय यायावरी का कारण पैर में चक्र का होना कहते थे। ''अरे यायावर रहेगा याद?'' में नौशेरा से उनके साथ हो लिए एक रुसी कलाकार के बारे में बताते हुए अज्ञेय कहते हैं, ''यह अध्ययन उसे नौशेरा कैसे ले गया, यह प्रश्न व्यर्थ है; उपर्युक्त वर्णन से समझ लेना चाहिए कि उसके भी सिर-पैर में चक्र था।''[4] पर मात्र भ्रमण या देशाटन को ही अज्ञेय यायावर का उद्देश्य या सफलता नहीं कहते, ''भ्रमण या देशाटन केवल दृश्य-परिवर्तन या मनोरंजन न होकर सांस्कृतिक दृष्टि के विकास में भी योग दे, यही उसकी वास्तविक सफलता होती है।''[5] अज्ञेय स्वयं के यायावर रूप को साथ लेकर चलते हैं, और उस रूप से एक सांस्कृतिक दृष्टि की मांग भी करते हैं। ''.....वह जिस राह से गुजरते हैं यदि केवल उसका वृतांत बखानते हैं तो यह एक रेखीय बात होगी और संस्कृति एकरेखीय तो होती नही, बहुरेखीय होती है, बहुविध होती है, समग्र होती है।''[6] और अज्ञेय, यायावर अज्ञेय को इसी समग्र दृष्टि को साथ लेकर चलने को कहते हैं। ''अज्ञेय का यायावर यात्रा-स्थलों की भरपूर जानकारी ही नही देता, उनसे जुड़े मानव के इतिहास और सांस्कृतिक चरित्र पर भी उसकी आँख बराबर रहती है। यायावरी उसके सुदीर्घ आत्म-शिक्षण और आत्म-निर्माण का ही अंग है और वह जब भी किमी दृश्य पर, घटना या उससे जुड़े ऐतिहासिक सांस्कृतिक तथ्य पर टिप्पणी करता है, वह टिप्पणी महज एक सैलानी की तटस्थ टिप्पणी नही होती—कवि-कथाकार और संस्कृति-चिंतक का संश्लिष्ट व्यक्तित्व उस टिप्पणी में बोलता है। एलोरा की गुफाएँ देख चुकने के बाद वह धुँधलके में चट्टान की हर आकस्मिक दरार में भी छेनी की सोद्देश्य कोर देखने लगता है कल्पना प्रसूत मूर्तियाँ उनके मानस पर छा जाती है उससे बातें करने लगती है। वह सहसा देश-काल के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस यात्रावृत्त का समापन औरंगजेब की छाया से 'यायावर' के लिए संवाद से होता है, वह कितना मार्मिक है, यह उसे पूरा पढ़कर ही जाना जा सकता है।''[7] ''अरे यायावर रहेगा याद?'' मात्र एक यात्रावृत्त नहीं है, इसका प्रमाण उसके अध्याओं के नाम स्वयं देते हैं, यथा ''परशुराम से तूरड़म'', ''किरणों की खोज में'', ''देवताओं के अंचल में'', ''मौत की घाटी में'', ''एलुरा'', ''माझुली'', ''बहता पानी निर्मला...'', ''सागर-सेवित, मेघ-मेखलित'', मानो एक बार में ही पूरे भारत के दर्शन हो रहे हों। पर हर अध्याय में मात्र स्थल वर्णन नहीं है, अज्ञेय कुछ देखना चाह रहे हैं, एक विशेष संस्कृति को खोज रहे हैं। ''अज्ञेय के यात्रा-वृत्तांतों में भौगोलिक सूचनाओं के अतिरिक्त संस्कृति, सभ्यता, दर्शन एवं इतिहास की विस्तृत जानकारी मिलती है। इस संदर्भ में प्रगतिशील आलोचक रामविलास शर्मा लिखते हैं कि ''जो काम उनके पिता ने पुरातत्व क्षेत्र में किया - जमीन से शिलालेख, मूर्तियों के निकालने का कार्य - वही काम अज्ञेय अंतिम वर्षों में अपने भारतीय अतीत के विशाल स्मृति प्रदेश में करना चाहते थे, इतिहास की राख-मिट्टी में दबे उन सब मील के पत्थरों को खोदकर बाहर निकालना, जिन पर भारतीय संस्कृति के पड़ाव-चिह्न अंकित थे।'' निश्चित ही अज्ञेय अपने यात्रा वृत्तांतों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग - मिथकों, पौराणिकथाओं, को उत्कीर्णित करते हैं, जो सैकड़ो वर्षों से हमारी वाचिक और साहित्यिक परंपरा में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहे हैं।''[8]

किसी भी देश की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। भाषा, नारी के प्रति उसकी दृष्टि, और काल की गति में हो रहे या होने वाले परिवर्तन की समझ व स्वीकार्यता उस देश के बारे में बताते हैं। अपने निबन्ध ''भारतीयता'' में अज्ञेय भारत की संस्कृति के दो विशेष गुण बताते हैं। पहला है काल के अनंत प्रवाह की भावना ''.....तो हम कह सकते हैं कि भारतीयता का पहला लक्षण या गुण है सनातन की भावना, काल के आदि-हीन अंत-हीन प्रवाह की भावना - और काल केवल वैज्ञानिक दृष्टि से क्षणों की सरणी नहीं, काल हमसे, भारतीय जाति से, सम्बद्ध विशिष्ट और निजी क्षणों की सरणी के रूप में''।[9] निश्चित ही भारतीयता का यही गुण अज्ञेय के यात्रावृत्त में सूत्रपात के रूप में ''टायर'' को स्वीकार कर पाता है, वह चक्रीय है, गतिशील है, ''यह मैं कह रहा हूँ, तो चक्र मात्र के साधारण प्रतिनिधि की हैसियत से नहीं तो व्यक्ति रूप में मैं एक अकिंचन यायावर हूँ, और अपने ही जैसे यायावर 'श्री इन पंक्तियों के लेखक जी' का सहारा - क्योंकि मैं उनकी गाड़ी का एक टायर हूँ...''।[10] चक्रीय गति की सबसे बड़ी विशेषता एक ही बिन्दु पर दुबारा आ पाने की होती है, और काल को शायद इसी लिए रेखीय न कहकर चक्रीय कहा गया है। स्वयं अज्ञेय के ट्रक का टायर जब जोगिगुफा से नद पार कर कूचबिहार पहुँचता है तो उसे कोच राजवंश की वह कथा याद आ जाती है जिसमें कोच राजपुरोहित सार्वभौम भट्टाचार्य की विधवा और बंगाल के स्मार्त आचार्य रघुनन्दन भट्टाचार्य के बीच शास्त्रार्थ स्पर्धा का वर्णन है। राजसभा में विधवा से स्पर्धा को तुच्छ मान स्मर्ताचार्य ब्राह्मणी के घर पहुँचते हैं, और विधवा ब्राह्मणी के स्मित प्रश्नों के सम्मुख निरुत्तरित हो अगले दिन सभा में दिखायी ही नहीं देते। भारत

के दर्शन में बृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद का प्रमुख स्थान है। ''गार्गी का पूरा नाम गार्गी वाचक्नवी बृहदारण्यकोपनिषद (3.6 और 3.8श् में वही मिलता है जहां वह जनक की राजसभा में याज्ञवल्क्य से अध्यात्म संवाद करती है। .....वचक्नु बेशक किसी ऋषि का नाम लगता हो, पर हमें इस नाम के किसी ऋषि का कोई अता-पता पूरे साहित्य में कहीं नहीं मिलता। जाहिर है कि अपने समय की प्रखर वक्ता और वाद-विवाद में अप्रतिम होने के कारण गार्गी का नाम वाचक्नवी प्रसिद्ध हो गया होगा। जैसे कई बार प्रसिद्ध सन्तानें अपने पिता को नाम दे दिया करती हैं, वैसे ही गार्गी वाचक्नवी ने अपने पिता को अपने गुण से नाम दे दिया होगा। इसलिए गार्गी वाचक्नवी का अर्थ हुआ वह गार्गी जिसे संवाद या विवाद में कोई हरा न सके।''[11] भारत की संस्कृति में नारी की अतिसम्मानजनक स्थिति सिद्ध कर अज्ञेय आगे बढ़ जाते हैं। भारतीयता का दूसरा विशेष गुण बताते हुए अज्ञेय कहते हैं, '''भारतीयता' का दूसरा विशेष गुण है स्वीकार की भावना। .....ब्रह्मा के निमिष-पात की हम जब कल्पना करते हैं, तो ब्रह्मा की मानवाकार ही कल्पना करते हैं - अर्थात एक कल्पित -या कल्पनातीत -अतिमानव ब्रह्मा के सामने यथार्थ ऐहिक मानव न-कुछ के बराबर है। अपनी इस नगण्यता से ही स्वीकार की भावना उत्पन्न होती है - दु:ख के प्रति स्वीकार, दैन्य के प्रति स्वीकार, अत्याचार के प्रति स्वीकार - यहाँ तक की दासता के प्रति स्वीकार, वह दासता दैहिक हो या मानसिक।''[12] यायावर अज्ञेय जब एबटाबाद पहुंचते हैं तो पहले तो नरगिस की शोभा में खो जाते हैं फिर एकाएक देखते हैं उपद्रव की छाप। और जैसे सारी प्रकृति ही उस नये परिवर्तन की तैयारी में लगी दिखती है। वही स्वीकार्यता का गुण स्पष्ट सामने होता है। ''यायावर ने तभी अपनी डायरी में लिखा भी था कि 'मेरी कल्पना देखती है, इन नरगिस को हजारों पैर रौंद रहे हैं, बेदर्द और बेरहम पैर- और फूलों की डांठों के टूटने की आवाज वातावरण में नारों के बीच में डूब जाती है .....सिनेमा का प्रतीक- चित्र-सा सामने आता है - बर्फ में झुमते नरगिस, रौंदते हुए पैर, केवल पैर....''[13]

''पात्र भरे तभी उड़ेलना अभी भरने दो.....'' कहने वाले अज्ञेय एक-एक शब्द की यात्रा पूरी करना चाहते थे। उनकी दृष्टि समूची संस्कृति को खोज रही थी, अरे यायावर रहेगा याद? में संग्रहित दो तस्वीरें, 1. लाहौर जो था, 2. लाहौर जो हो गया, का वर्णन देखने लायक है—

''अमृतसर- उत्तर भारत की सबसे बड़ी व्यापारी मंडी, जहाँ अब पहले के मिठबोले तांगेवाले नहीं रहे, और ढीली पगड़ी, ढीले के, ढीले तम्बे और बहुत ही ढीली जबान वाले सिख बस-ड्राईवरों की भरमार हो गयी है; लेकिन जहाँ की खत्रानियाँ पहले जिस सर्राटे से तिल्लई जूतियाँ चटकारतीं चलती थीं उसी से अब नई-नई काट के सैंडल चटकारतीं हैं। जलियाँवाला, दरबारसाहब - ये नाम हैं जिनका इतिहास भी है और गहरे संस्कार भी- लेकिन ये संस्कार घड़ी की कमानी जैसे नहीं जो हर वक्त चलाती रहे, एलार्म की कमानी जैसे हैं जो खास-खास मौकों पर ही शोर मचा दे, ... **परिवर्तित कर अगणित नूतन-दृश्य निरन्तर, अभिनय करते विश्वमंच पर तुम मायाकर!.....**''[14]

यह दृष्टि जो भाषा पर भी रुक जाती है, पकड़ लेती है उस आने वाले परिवर्तन को जिसे समय ने भी अभी अपनी आने वाली चालों में छुपा के रखा है। अज्ञेय भाषा को संस्कृति का प्रमुख अंग मानते थे। अपनी यात्रा के विविध चरणों में किसी भी स्थान विशेष कुंड, झील, घाट के नाम को वह महत्ता से पकड़ते हैं, उस पर उनकी अन्वेषी दृष्टि ठहर जाती है। कैलाश दहिया जी ने अज्ञेय के भाषा चिंतन पर कहा है ''भाषा ही संस्कृति का निर्माण करती है - परंपरा, मूल चेतना को अर्थ देती है। भाषा ही शब्द अर्थ की स्मृति है - इस दृष्टि से भाषा स्मृति की छाया है प्रकाश है। अतीत का बहुत कुछ खींचकर जज्ब कर भाषा हम तक लाती है। अतीत अदृश्य रूप में वर्तमान में प्रवाहित होता रहता है 7 तभी तो भाषा संस्कृति का माध्यम है और सम्प्रेषण भी।''[15]

अन्वेषी अज्ञेय के साथ यायावर अज्ञेय भी है,एक खोज रहा है, दूसरा अंकित कर रहा है, तीसरा टायर बदल रहा है, ''....और ऊपर से अज्ञेय जैसे एक साथ कई विधाओं पर भरोसा करने वाले रचनाकार से केवल यह उम्मीद करना बेमानी होगी कि वह यात्रा-संस्मरण में महज एक ही काम करेंगे। यह भी कोई जरुरी नही है कि वह एक ही होकर यह काम करेंगे। वह अन्य पुरुष का भी सहारा ले सकते हैं। यह अन्य पुरुष उनका अपना ही यायावर स्वरुप है।''[16]

अन्वेषी अज्ञेय जैसे यायावर अज्ञेय को बताते हैं कि देखो ये जो शब्द ब्रह्मपुत्र है इसे लुहिता यहाँ लेकर आयी है - ब्रह्मपुत्र के संदर्भ में शब्द की यह यात्रा देखिये -

''परशुराम से फिर टामेइ घाट पर ब्रह्मपुत्र (जो यहाँ पर लुहित कहलाती है, इसी का संस्कृत्त नाम जो महाभारत में मिलता है लौहित्य है) पार करके चार-पांच मील पैदल जंगल पार करना पड़ता है।''[17]

इन सबके साथ एक कवि अज्ञेय भी है जो जब चिनाब पर जाता है तो उसकी लोक गाथाओं में खो जाता है। भारत के कण-कण में संस्कृतियों की अनेकानेक लोक गाथाएं हैं, ''चनाब के किनारे ही हीर और रांझा, सोहनी और महिवाल का प्यार उपजा, पनपा, फूला और दुर्देव के विवर में झर गया - लेकिन सारे अंचल पर अपनी छाप छोड़ कर .....

पार झनावीं मझीवाले डा डेरा/ सानू वी लै चल पार घड्या
देखन नूं दो नैन तरसदे/ मेल मेरा दिलदार घड्या

'चनाब के पार मेरे महिवाल का डेरा है, मुझे वहां ले चल, घड़े! देखने को नैन तरसते हैं, मुझे दिलदार से मिला दे, ओ घड़े!' (अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद?)''

संक्षेप में कहें तो भाषा, संस्कृति, संस्कार, इतिहास भूगोल कथा, लोक कथा सब कुछ यायावर अपने अन्वेषी को बताता चला, अन्वेषी रुक-रुक कर जो मिला खा कर जैसी बीती रात बिताकर पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण साथ चलता रहा। और 22 सितम्बर, 1947 को माफ्लंग, शिलोंग में अन्वेषी अज्ञेय, यायावर अज्ञेय से अपनी कविता ''दूर्वाचल'' के सहारे वह प्रश्न पूछ ही लिया, जो इस यात्रावृत्त का शीर्षक है -

क्षितिज ने पलक सी खोली,/ तमक कर दामिनी बोली -

'अरे यायावर! रहेगा याद?'

सन्दर्भ

1.6.16. सिंह हितेश कुमार, अज्ञेय होने का अर्थ : दृष्टि का विवेक, कुमार वीरेंद्र, पार्व गिरी का नम, चीजों में, डगर चढ़ती उमंगों-सी, संस्करण : 2020, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

2. इला डालमिया कोइराला, कवि नायक अज्ञेय, साक्षात्कार, प्रथम संस्करण : 2002, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली

3.4.5.10.13.14.17.18. अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद?, तीसरा संस्करण : 2019, राजकमल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली

7. शाह रमेश चन्द्र, अज्ञेय, यात्रावृत्त : निबन्ध : अन्त:प्रक्रियाएं, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 1994 पुनर्मुद्रण : 2000

8. डॉ जे आत्माराम, समीक्षा : अज्ञेय की सांस्कृतिक दृष्टि और 'अरे यायावर रहेगा याद?', https://www.apnimaati.com/2016/08/blog-post_49.html

9.12. कुमार विमल, अज्ञेय गद्य रचना-संचयन, भारतीयता, अज्ञेय, संस्करण : 2015, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

11. https://samanyagyanedu.in/प्राचीन_भारत_की_महान_बिदु

15. दहिया कैलाश, आजकल, पालीवाल कृष्णदत्त, अज्ञेय का भाषा चिंतन, अंक : सितम्बर 2013

19. वाजपेयी अशोक, सन्नाटे का छंद, कविता संचयन, अज्ञेय, दूर्वाचल, द्वितीय संस्करण : 2012, पुनर्मुद्रण 2015, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर

❑❑

सुनील फौगाट
अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जींद (हरियाणा)

दीपक कुमार
शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग
चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जींद (हरियाणा)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

ई-खरीद पोर्टल : कृषि डिजिटलीकरण के लिए हरियाणा सरकार की एक पहल

सार

हरियाणा मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान राज्य है। कृषि और संबद्ध क्षेत्र राज्य की अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पंजाब के बाद खाद्यान्न के लिए केंद्रीय पूल में हरियाणा दूसरा सबसे बड़ा योगदानकर्ता है। अभी भी हरियाणा की लगभग दो तिहाई जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि और संबद्ध क्षेत्र से जुड़ी हुई है। इसलिए, हरियाणा सरकार हमेशा किसानों की आर्थिक स्थिति के उत्थान के लिए नई-नई योजनाएं और कार्यक्रम लेकर आती रही है। ई-खरीद पोर्टल भी किसानों के लिए सरकार की ओर से एक योजना है जिसके माध्यम से वे अपनी फसलों को उचित मूल्य (न्यूनतम समर्थन मूल्य - एमएसपी) पर बेच सकते हैं। वर्तमान अध्ययन में, ई-खरीद पोर्टल की स्थिति का विश्लेषण करने और मेरी फसल मेरा ब्यौरा (एमएफएमबी) पोर्टल को ई-खरीद पोर्टल से जोड़ने की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग का किया गया है जो विभिन्न सरकारी रिपोर्टों, समाचार पत्रों और सरकारी आधिकारिक वेबसाइटों आदि से लिया गया है। परिणामों का विश्लेषण करने के लिए तालिका जैसे वर्णनात्मक तकनीक का उपयोग किया गया है। अध्ययन से यह पता चलता है कि किसानों द्वारा केवल तीन-चार फसलों को ही एमएसपी पर बेचा जाता है और अन्य फसलें निजी एजेंसियों को बेची जाती हैं क्योंकि निजी एजेंसियों द्वारा भुगतान की गई कीमत एमएसपी की तुलना में अधिक होती है। यह सुझाव दिया जाता है कि नीति निर्माताओं को सभी फसलों के लिए एक उचित एमएसपी तय करनी चाहिए और एमएसपी के तहत अधिक फसलों को कवर करना चाहिए ताकि यह किसानों की आय को दोगुना करने में सहायक हो।

परिचय

21वीं सदी की शुरुआत के साथ ही दुनिया भर में कृषि क्षेत्र में तकनीकी प्रगति का प्रवाह देखा गया है जो कृषि क्षेत्र में काफी तकनीकी बदलाव ला रहे हैं। नीति आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, 8-10 प्रतिशत की वार्षिक विकास गति को बनाए रखने के लिए, कृषि को वर्तमान से 4 प्रतिशत या उससे अधिक दर से विकसित होना चाहिए (नेशनल स्ट्रैटेजी फॉर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, जून 2018)। इस प्रकार की प्रगति करने के लिए, डिजिटलीकरण मौलिक रूप से महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्र में डिजिटलीकरण की स्थापना के लिए कम्प्यूटरीकृत स्कूली शिक्षा के साथ नैनो तकनीक को प्राथमिकता देने की आवश्यकता हैं। दुनिया भर में 2050 तक, 50 प्रतिशत अधिक भोजन की आवश्यकता होगी। लेकिन इस मांग को खेती की फसलों के विकास द्वारा दुनिया भर में केवल 12 प्रतिषत भूमि क्षेत्र के साथ परिष्कृत नहीं किया जा सकता है (खाद्य एवं कृषि उत्कृष्टता केंद्र)।

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में कृषि क्षेत्र के तेजी से विकास के लिए कृषि के डिजिटलीकरण की आवश्यकता है। भारत सरकार ने भारतीय नागरिकों को इलेक्ट्रॉनिक रूप से सरकारी योजनाओं के सभी लाभ प्रदान करने के लिए 'डिजिटल इंडिया' नाम से एक अभियान शुरू किया है। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए भारत सरकार ने ऑनलाइन इंफ्रास्ट्रक्चर पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया है। 1 जुलाई, 2015 को प्रधानमंत्री ने आधिकारिक तौर पर 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम का शुभारंभ किया। इस कार्यक्रम के तहत, सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों को हाई स्पीड इंटरनेट कनेक्टिविटी से जोड़ने पर ध्यान केंद्रित किया है। उसके बाद ज्यादातर सरकारी नीतियों और योजनाओं को डिजिटल किया जा रहा है। भारत सरकार स्वयं अपने लोगों को ई-गवर्नेंस प्रदान कर रही है। डिजिटल इंडिया कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए, हरियाणा सरकार ने सूचना और प्रौद्योगिकी (आईटी) और ई-गवर्नेंस परियोजनाओं को बढ़ावा देने पर भी ध्यान केंद्रित किया है। हरियाणा सरकार ने नागरिकों को इलेक्ट्रॉनिक रूप से प्रदान की जाने वाली सरकारी सेवाओं के माध्यम से डिजिटल रूप से कई योजनाएं शुरू की हैं जो समय के साथ-साथ लागत को भी कम करती हैं।

इस तकनीकी युग में सरकार कृषि क्षेत्र के लिए अधिक चिंतित है क्योंकि कृषि क्षेत्र किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के विकास में विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कृषि अभी भी रोजगार का प्राथमिक स्रोत है और भारत के साथ-साथ हरियाणा राज्य में भी सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण योगदान देता है। हरियाणा भी एक कृषि प्रधान राज्य है और हरियाणा की 65 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है जो पूरी तरह से अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है (चौथा कृषि नेतृत्व शिखर सम्मेलन, 2019)। हरियाणा में कृषि के महत्व को देखने के लिए हरियाणा सरकार ने ई-खरीद नाम से एक पहल शुरू की। हरियाणा सरकार किसानों को उनकी फसलों का उचित मूल्य देकर उनकी आय में वृद्धि करके उनका दर्जा बढ़ाने का प्रयास कर रही है। डिजिटल इंडिया बनाने के लिए हरियाणा सरकार द्वारा उठाया गया यह क्रांतिकारी कदम है। हरियाणा सरकार द्वारा कृषि जिंसों की खरीद के लिए ई-खरीद ऑनलाइन ट्रेडिंग पोर्टल के रूप में ई-गवर्नेंस की पहल की गई है। पोर्टल को हरियाणा सरकार द्वारा 2016 में लॉन्च किया गया है।

यह क्रांतिकारी ई-गवर्नेंस पहल हरियाणा सरकार द्वारा 'ई-खरीद' पोर्टल के माध्यम से खाद्यान्न की खरीद प्रक्रिया में सभी स्तरों पर पारदर्शिता लाने के लिए की गई है। यह हरियाणा राज्य के किसानों को उनकी फसलों की वास्तविक समय पर जानकारी और समय पर भुगतान प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाएगा। ई-खरीद पोर्टल हरियाणा राज्य कृषि विपणन बोर्ड (एचएसएएमबी) और खाद्य एवं आपूर्ति विभाग, सरकार की एक संयुक्त पहल है (ekharid.nic.in)। यदि हरियाणा के किसान अपनी फसल को एमएसपी पर बेचना चाहते हैं तो उन्हें पोर्टल पर अपना पंजीकरण करना होता है। हरियाणा सरकार ने राज्य कृषि विपणन बोर्ड को उनकी फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) किसानों को देने की जिम्मेदारी दी है।

ई-खरीद पोर्टल के उद्देश्य क्या हैं?

ई-खरीद पोर्टल का मुख्य उद्देश्य खाद्यान्न की खरीद प्रक्रिया में सभी स्तरों पर पारदर्शिता लाना, व्यापारियों को व्यापार करने में आसान बनाना और किसानों को वास्तविक समय की जानकारी और समय पर भुगतान प्रदान करके उन्हें सशक्त बनाना है।

(क) ई-खरीद के लिए पात्रता मानदंड—कुछ मानदंड हैं जो इस पोर्टल के लिए पात्र हो सकते हैं—

1. सभी लाभार्थी किसान हरियाणा राज्य के निवासी होने चाहिए।
2. 18 वर्ष से अधिक आयु के सभी लोग पोर्टल के तहत पंजीकरण करने के पात्र हैं।
3. किराए पर जमींदार, पट्टेदार या किराएदार सहित किसान इसके पात्र हैं।

(ख) ई-खरीद पोर्टल क्यों?—

- अब सवाल यह उठता है कि ई-खरीद पोर्टल के लिए कौन पात्र हैं और यह क्यों शुरू किया गया है?
- यह किसानों के हितों को बढ़ावा देता है और खरीदारों को सुविधा प्रदान करता है।
- यह एकीकृत बाजारों में प्रक्रियाओं के जीवन को प्रवाहित करके कृषि विपणन में एकरूपता को बढ़ाता है।

- इसने खाद्यान्न की खरीद प्रक्रिया में बिचौलिए की भूमिका को कम कर दिया।
- यह लॉजिस्टिक गुणवत्ता प्रबंधन प्रमाणन और वेयरहाउसिंग के साथ लाभान्वित होता है।
- यह हरियाणा राज्य के किसानों को वास्तविक समय के परिदृश्य के अनुसार काम करने का अधिकार देता है ताकि किसानों को समय पर भुगतान और अधिक लाभ मिल सके।
- चयनित मण्डी (बाजार) के लिए मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं का प्रावधान किया गया है ताकि किसानों को मण्डी आने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।
- सरकारी ई-खरीद पहल कृषि जिंसों की खरीद प्रक्रिया में पारदर्शिता और दक्षता लाने के लिए मौजूदा एपीएमसी मंडियों के राष्ट्रीय कृषि विपणन (एनएएम) और एक अखिल भारतीय इलेक्ट्रॉनिक पोर्टल का पूरक है।

अध्ययन का उद्देश्य

वर्तमान अध्ययन ई-खरीद पोर्टल की स्थिति की जांच करने और मेरी फसल मेरा ब्यौरा (एमएफएमबी) पोर्टल को ई-खरीद पोर्टल से जोड़ने की समीक्षा करने का प्रयास है। हरियाणा में ई-खरीद पोर्टल के संबंध में प्रमुख फसलों को न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) पर बेचा जा सकता है।

साहित्य की समीक्षा

मदास्वामी, एम. (2020) ने अपने अध्ययन में 140 मिलियन से अधिक कृषि परिचालन धारकों को सशक्त बनाने के लिए फार्म विस्तार 4.0 ढांचे की आवश्यकता का वर्णन किया। गांवों में तकनीकों जैसे रोबोटिक्स, सूचना विज्ञान और स्मार्ट खेती आदि के उपयोग के माध्यम से खेती को एक सेवा के रूप में अपनाने के लिए देश। इस फार्म विस्तार 4.0 तकनीकी ढांचे में भारत में लगभग 2.25 लाख डीप एग्री टेक स्टार्टअप के विकास को सुविधाजनक बनाने की क्षमता है। उपाध्याय, एम. (2019) ने अपने अध्ययन में कृषि डिजिटलीकरण से संबंधित चुनौतियों और आशाओं का विश्लेषण किया। अध्ययन में पाया गया कि डिजिटलाइजेशन भविष्य में भारतीय कृषि के परिदृश्य को बदल देगा और किसानों को उच्च आय की गारंटी देगा और संकट को कम करेगा।

बेरिया, ए. (2020) ने अपने अध्ययन में कृषि डिजिटलीकरण की चुनौतियों और दृष्टिकोणों की जांच की। कृषि डिजिटलीकरण से कृषि उत्पादन के साथ-साथ किसानों की आय में वृद्धि हुई है। अध्ययन में पाया गया कि भारत में कृषि डिजिटलीकरण की सफलता के लिए प्रौद्योगिकी की कम लागत, उपयोग में आसान पोर्टेबल हार्डवेयर, प्रति उपयोग किराये के मॉडल, नीति समर्थन और किसान संग्रह की शक्ति का दोहन आवश्यक है। कुम्भर, वी. (2011) ने अपने अध्ययन में एमएसपी/एसएमपी, खेती के तहत क्षेत्र, उत्पादकता के बीच संबंधों का आकलन किया और प्रभाव की जांच भी की। एमएसपी/एसएमपी, खेती के तहत क्षेत्र, चावल, गेहूं, दलहन, कपास और गन्ना के समग्र उत्पादन पर उत्पादकता के बारे में बताया है। अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है और अध्ययन की समयावधि 1980-81 से 2009-10 तक ली गई है। अध्ययन के परिणामों ने संकेत दिया है कि खेती और उत्पादकता के तहत क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है और चावल, दाल, कपास और गन्ने के मामले में एमएसपी/एसएमपी उत्पादन का महत्वपूर्ण भूमिका नहीं थे। हालांकि, एमएसपी, खेती के तहत क्षेत्र और उत्पादकता केवल भारत में गेहूं उत्पादन में महत्वपूर्ण पाए गए।

उपरोक्त अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कृषि विकास के लिए वर्तमान समय में कृषि डिजिटलीकरण की आवश्यकता है। इस संबंध में हरियाणा सरकार द्वारा खरीद प्रणाली को डिजिटल करने की पहल की गई है। इसलिए, यह अध्ययन ई-खरीद पोर्टल पर केंद्रित है जो खाद्यान्न खरीद प्रक्रिया में सभी स्तरों पर पारदर्शिता प्रदान करता है।

कार्यप्रणाली

यह अध्ययन प्रकृति में वर्णनात्मक है और द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। आंकड़े विभिन्न सरकारी रिपोर्टों, समाचार पत्रों और सरकारी आधिकारिक वेबसाइटों आदि से लिया गया है। इस अध्ययन में वर्णनात्मक सांख्यिकी जैसे तालिका का उपयोग किया गया है।

परिणाम और चर्चा

हम हरियाणा सरकार के ई-खरीद पोर्टल की वर्तमान स्थिति के साथ-साथ मेरी फसल मेरा ब्यौरा (एमएफएमबी) पोर्टल को ई-खरीद पोर्टल के साथ जोड़ने और ई-खरीद पोर्टल के संबंध में प्रमुख फसलों के एमएसपी पर चर्चा करेंगे। हरियाणा के किसानों के लिए मंडियों में न्यूनतम समर्थन मूल्य पर अपनी फसल बेचने के लिए ई-खरीद पोर्टल लॉन्च किया गया। हरियाणा की प्रत्येक मंडी में प्रवेश के लिए गेट पास किसानों के लिए परेशानी का सबब है। यह सरकार को एमएसपी पर फसलों को बेचने वाले किसानों की संख्या, फसलों के प्रकार आदि के बारे में समग्र जानकारी एकत्र करने में मदद करता है। यहां, खरीफ सीजन की प्रमुख फसलें जैसे धान, बाजरा, मूंग और मक्का को विष्लेषण के लिए लिया गया है और रबी सीजन की फसलों के लिए गेहूं, सरसों, चना और सूरजमुखी।

तालिका 1 हरियाणा की मंडियों में एमएसपी पर अपनी फसल बेचने और एमएसपी पर खरीदी गई विभिन्न फसलों की मात्रा के लिए किसानों को जारी किए गए गेट पास की स्थिति को दर्शाती है। तालिका से पता चलता है कि धान और बाजरा हरियाणा राज्य में खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें थीं। हरियाणा में धान काफी अधिक क्षेत्र में उगाया जाता है और उसके बाद बाजरे का स्थान आता है।

तालिका 1 : हरियाणा में खरीफ सीजन 2020 के लिए जारी किए गए गेट पास की स्थिति और मंडियों में एमएसपी पर खरीदी गई कुल मात्रा

फसल	गेट पास	वजन (टन में)
धान	684668	5508339.60
बाजरा	300068	786898.44
मक्का	1879	4869.33
मूंग	973	1627.78

स्रोत : https://ekharid.haryana.gov.in

निष्कर्ष और सुझाव

ई-खरीद पोर्टल डिजिटलीकरण की दिशा में हरियाणा सरकार के कदमों में से एक है। यह पोर्टल जारी किए गए गेट पास, खरीदे गए कुल वजन व मात्रा, क्रय एजेंसियों आदि के बारे में जानकारी प्रदान करता है। यह एमएफएमबी पोर्टल से जुड़ा है। एमएफएमबी पोर्टल पर पंजीकृत सभी किसान हरियाणा में एमएसपी पर अपनी फसल बेचने के पात्र हैं। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि किसानों द्वारा केवल तीन-चार फसलों को ही एमएसपी पर बेचा जाता है और अन्य फसलें निजी एजेंसियों को बेची जाती हैं क्योंकि निजी एजेंसियों द्वारा भुगतान की गई कीमत एमएसपी की तुलना में अधिक होती है। यह सुझाव दिया जाता है कि नीति निर्माताओं को सभी फसलों के लिए एक उचित एमएसपी तय करना चाहिए और एमएसपी के तहत अधिक फसलों को कवर करना चाहिए ताकि यह किसानों की आय को दोगुना करने में सहायक हो।

सन्दर्भ

1. Beriya A. (2020). Digital Agriculture: Challenges and Possibilities in India. *ICT India Working Paper 35.1-11.*
2. https://ekharid.haryana.gov.in
3. https://farmer.gov.in
4. https://fasal.haryana.gov.in
5. Kumbhar V. (2011). Impact of MSP on Area under Cultivation and Level of Production: A Study of Selected Crops in India. *SSRN Electronics Journal, 1(6), 35-43.*

   Madaswamy M. (2020). Digitalization of Agriculture in India: Application of IoT; Robotics and Informatics to Establish Farm Extension4.0. *Journal of Informatics and Innovative Technologies, 4(2), 23-32.*
6. Upadhayay M. (2019). Digitalization of Agriculture in India: Challenges and Hopes. *International Journal of Innovative Social Science & Humanities Research, 6(1), 5-11.*

❑❑

डॉ. कविता (सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान)
राजकीय महिला महाविद्यालय, लाखनमाजरा
रोहतक (हरियाणा)
डॉ. वेद प्रकाश (सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान)
पंडित नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय
रोहतक (हरियाणा)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

गाँधीजी का सत्याग्रह : सिद्धान्त एवं व्यवहार

शोध-पत्र सार

राजनीति सिद्धान्त एवं व्यवहार को गाँधीजी की एक अमूल्य देन सत्याग्रह का सिद्धान्त है। यह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक समस्याओं के समाधान का सबसे प्रभावी तरीका है। इसका सार सत्य की शक्ति है। इसका संबंध खुलेपन व न्याय से है। यह विरोधियों पर विजय प्राप्त करने की बजाय विरोधियों के दिल जीतने पर बल देता है। सत्याग्रह का बल सभी प्रकार की क्रूरता व अन्याय को इस तरह मिटा देता है जैसे अंधकार को प्रकाश। गाँधीजी के अवसान के बाद भारत सहित दुनिया भर में समय-समय पर अनेकों बार सत्याग्रह का सफल प्रयोग सामने आया है। सुंदरलाल बहुगुणा, चंडीप्रसाद भट्ट व गौरा देवी का चिपको आंदोलन, सर्वोदयी दंपत्ति कृष्णम्मा व जगन्नाथजी का झींगा मछली पालन के खिलाफ सत्याग्रह आंदोलन, जाम्बिमा के केन्नथ कौण्डा व घाना के नक्रूमा का उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्ष व तिब्बती स्वायत्तता के लिए दलाई लामा के नेतृत्व में किये जा रहे आंदोलनों पर गाँधीजी के सत्याग्रह आंदोलन की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। अत: मानव जाति को विनाश से बचाने का एकमात्र कारगर तरीका सत्याग्रह में निहित है।

मुख्य-शब्द : सत्याग्रह, अहिंसक, शांतिपूर्ण समाधान।

गाँधीजी के युगांतकारी जीवन ने एक ऐसे सत्याग्रह आंदोलन को जन्म दिया जिसने दुनिया भर के लोगों के बीच हिंसक बदलाव लाने की स्थितियाँ पैदा कर देने वाले ताकतवर व उपनिवेशवादी, दमनकारी व रंगभेदी शासनों के सम्मुख अहिंसक व शांत प्रतिरोध को समर्पित सशक्त तरीके से प्रोत्साहित किया। उन्होंने हिंसक व उपनिवेशी, दमनकारी व रंगभेदी शासन की शक्तिशाली ताकत के विरुद्ध शांत प्रतिरोध को समर्पित सत्याग्रह आंदोलन को जन्म दिया, जिसने विश्व में तीव्र परिवर्तनों के लिए परिस्थितियाँ पैदा की।[1] गाँधीजी ने 11 सितंबर 1906 को दक्षिण अफ्रीका के जोहैनेसबर्ग के एंपायर थिएटर में एक जनसभा में उस अध्यादेश का प्रतिरोध करने के लिए सत्याग्रह का आरंभ किया, जिसे दक्षिण अफ्रीका के रंगभेदी शासन ने भारतीय प्रवासियों पर लागू करने का प्रयास किया था। दक्षिण अफ्रीका में यह संघर्ष आठ वर्षों तक चला व प्रबल औपनिवेशिक शक्तियों को अन्ततः झुकना ही पड़ा।[2] सत्याग्रह अपने आप में दो पक्ष 'सत्य' व 'आग्रह' को समाहित करता है अर्थात् अपने अधिकार के प्रति हमारा सत्य आधारित आग्रह ही सत्याग्रह है।[3] गाँधीजी ने सत्याग्रह का अर्थ समझाते हुए लिखा था, ''सत्य में प्रेम निहित है, आग्रह जनक है या कह लीजिए समानार्थी है बल का.... बल जो पैदा होता सत्य और प्रेम या फिर अहिंसा से।''[4] इस सम्बन्ध में उन्होंने आगे लिखा है कि, ''सत्याग्रह विपक्षी को पीड़ा पहुँचा कर नहीं, बल्कि स्वयं को कष्ट दे कर सत्य की स्थापना है, और इसके लिए आत्मनियंत्रण की आवश्यकता होती है, सत्याग्रह का अस्त्र आपसी पहुँच में है।''

गाँधीजी ने सत्याग्रह को जनमत को शिक्षित करने की एक प्रक्रिया माना है। सत्याग्रह सरकार, संस्था या किसी व्यक्ति की अन्यायपूर्ण व गलत नीतियों के अहिंसक प्रतिरोध का तरीका है। यह राष्ट्र या समाज हित में जनता की भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने का भी एक तरीका है। उन्होंने सत्याग्रह को एक अधिकार के साथ-साथ कर्त्तव्य मानते हुए कहा कि यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अन्याय न सहे। सत्याग्रह की स्थिति में प्रतिपक्ष में परिवार का सदस्य, अपने समुदाय का सदस्य या अपनी सरकार इत्यादि कोई भी हो सकता है। यह प्रतिरोध पूरी तरह अहिंसक होगा तथा इसके नियमों का पालन सख्ती से किया जाएगा।[5] सत्याग्रह का उद्देश्य आत्मा को जगाना, दिल को पिघलाना, विरोधी की आँखें खोलना अर्थात् सत्य के दर्शन करवाना है। विरोधी को नष्ट करना, चोट पहुँचाना, नीचा दिखाना या उसे कमजोर कर विजय हासिल करना सत्याग्रह की रणनीति का हिस्सा नहीं है। यह विरोधियों पर विजय प्राप्त करने की बजाय विरोधियों का दिल जीतने पर बल देता है। सत्याग्रह में किसी भी प्रकार की हिंसा, लूटपाट, गाली-गलौच व आगजनी के लिए कोई स्थान नहीं है। दफ्तर, दुकान, मकान, सरकारी गाड़ी व बस जलाना, हाथापाई करना, पुलिस व सेना पर पत्थर फेंकना सत्याग्रह के विरुद्ध है। गाँधीजी का कहना है कि अहिंसात्मक युद्ध की तो पूरी शैली ही भिन्न होती है। युद्ध में साधनों की पवित्रता की बजाय केवल विजय प्राप्ति की ओर ध्यान दिया जाता है, जबकि सत्याग्रह में साध्य व साधन दोनों का पवित्र होना परमावश्यक है।[6]

गाँधीजी का कहना था कि सत्याग्रह जीवन का शाश्वत नियम है। यह आत्मा व सत्य की शक्ति है तथा इसका आधार नैतिक है। सत्य व पवित्रता का भाव इसको बल प्रदान करता है। यह बल इसका दृढ़ नैतिक आधार है। लेकिन इस दृढ़ नैतिक आधार में कम ही लोगों की आस्था होती है। अधिकाँश लोग इसे रणनीति के तौर पर अपनाते हैं। निकम्में व कायर लोग हथियार तो उठा नहीं सकते, इसलिए वे सत्याग्रह की बात करते हैं। आजकल देश में एक मुहावरा सा चल पड़ा है कि लाचारी का नाम महात्मा गाँधी। तो लाचारी का नाम सत्याग्रह है, इस भावना से जो निर्बल की अहिंसा के रूप में इसका प्रयोग करते हैं, वो इसकी नैतिक शक्ति को खो देते हैं तथा नैतिक शक्ति के बिना इसका कोई आधार नहीं है। सत्याग्रह के प्रयोग में वर्तमान में जो बुराइयां आ गयी हैं, उनका कोई भी समझदार व सत्याग्रह के मर्म को समझने वाला आदमी समर्थन नहीं करेगा। इस कारण से यदि गाँधीजी के सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र को ही खारिज कर दिया जाये तो सम्पूर्ण मानव जाति को जो हानि होगी उसका अंदाजा लगाना मुश्किल होगा।[7] गाँधीजी सत्याग्रह की ताकत के बारे में लिखते हैं कि सत्याग्रह का बल सभी प्रकार की क्रूरता व अन्याय को इस तरह मिटा देता है जैसे अंधकार को प्रकाश। अत: मानव जाति के समस्त प्रश्नों के समाधान का एकमात्र मार्ग सत्याग्रह में निहित है।

वर्तमान में जब हम विश्व मानचित्र पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि समूचा विश्व एक आंदोलन के दौर से गुजर रहा है। ये आंदोलन कहीं सामाजिक, कहीं आर्थिक, कहीं राजनीतिक व कहीं धार्मिक रूप में हमारे सामने आते हैं। परन्तु सोचने वाली बात यह है कि ये आंदोलन गाँधीजी के सत्याग्रह की कसौटी पर खरे उतरते हैं या नहीं। यदि देखा जाये तो ये आंदोलन बापू गाँधी के सत्याग्रह की कसौटी पर खरा नहीं उतरते क्योंकि ये तुच्छ निहित स्वार्थों पर आधारित हैं। गाँधीजी ने न केवल हमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहने की बात कही बल्कि आवश्यकता पड़ने पर इसे हासिल करने के लिए भी उद्‌बोधित किया। परन्तु उन्होंने सदैव इस बात का विरोध किया कि हम अपनी नाजायज माँगों के चलते समस्त सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दें। आज आंदोलनों का जो दृश्य हम देखते हैं, वो बापू के सत्याग्रह आंदोलन की धारणा के बिल्कुल विपरीत है।[8] आजकल के सत्याग्रह किसी वर्ग विशेष या निजी स्वार्थ की सिद्धि के लिए किये जाते हैं, जबकि गाँधीजी के सत्याग्रह राष्ट्रीय, व्यापक एवं सार्वजनिक हित के लिए किये जाते थे। गाँधीवादी सत्याग्रह सत्य एवं अहिंसा के नैतिक परिवेश पर आधारित होते थे, जबकि आजकल के सत्याग्रह प्राय: हिंसा, तोड़-फोड़ जैसी हिंसक व राष्ट्रविरोधी गतिविधियों पर आधारित होते हैं। गाँधीवादी सत्याग्रह आंदोलनों का उद्देश्य राष्ट्रीय एवं सार्वजनिक हित साधन था, जबकि आजकल के आंदोलन व्यक्तिगत हित की दृष्टि से किये जाते हैं। गाँधीवादी सत्याग्रह आंदोलन शांत व अहिंसक होते थे, जबकि आजकल के सत्याग्रह आडम्बर व दिखावे से परिपूर्ण होते हैं, जिनमें भद्दे नारेबाजी, पत्थर फेंकने, अश्रु गैसों की बौछार एवं गोलीबारी तक होती है।[9]

आज विश्व में काफी उथल-पुथल मची हुई है तथा अन्यायपूर्ण व अर्थहीन युद्धों का भयंकर परिणाम हमारे सामने है। ऐसे में गाँधीजी के सत्याग्रह सिद्धांत में निहित संदेश का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। यह सत्य है कि वर्तमान शताब्दी में संचार, चिकित्सा, सूचना एवं प्रौद्योगिकी व अन्य क्षेत्रों में हुई प्रगति ने विश्व के विकास के साथ-साथ हमारे सोचने, रहने व काम करने के तरीकों में चमत्कारिक परिवर्तन किया है। कितना अच्छा होता यदि इन आश्चर्यजनक उपलब्धियों के साथ-साथ शांति व सहिष्णुता का माहौल बना रहता। लेकिन बड़े खेद की बात है कि एक बेहतर विश्व के लिए भरपूर अवसरों के होते हुए भी हमने मानव व्यवहार को बदलने में कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। लोभ व लालच का असाध्य कैंसर, निर्दयता, सत्ता की भूख, दूसरों पर अपनी इच्छा लादने, विश्व पर नियंत्रण रखने व उस पर प्रभुत्व जमाने की इच्छा आज भी विश्व के नेताओं में विद्यमान है। वे देशों के बीच विकास व सहयोग, सुरक्षा, स्थायित्व व शांति की शर्तों को थोपना चाहते हैं। अरबों-खरबों अमेरिकी डॉलर जैसी बेशुमार दौलत मानव जाति के विकास की बजाय निरर्थक व विनाशकारी युद्धों में लगाई जा रही है। विश्व के अधिकांश हिस्सों में गरीब व उससे संबद्ध दयनीय सामाजिक परिस्थितियाँ खतरनाक स्तर पर हमारे सामने मौजूद हैं, जो झगड़ों की आग को भड़काने वाली हिंसा, अवसाद व उग्रवाद की जनक हैं। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त आतंकवाद को नफरत व निर्दोष लोगों की निरर्थक हिंसा करने की विचारधारा फैलाने के लिए उपयुक्त स्थान व प्रोत्साहन मिलता है। इन परिस्थितियों में हमें सतत् शांति, सुरक्षा, स्थायित्व, विवादों के शांतिपूर्ण समाधान व गरीबी उन्मूलन जैसे मुद्दों के समाधान हेतु गाँधीजी के सत्याग्रह में निहित संदेश की महत्ती आवश्यकता है।[10]

गाँधीजी के अवसान के बाद भारत सहित दुनिया भर में समय-समय पर अनेकों बार सत्याग्रह का सफल प्रयोग सामने आया है। स्वतंत्र भारत में सबसे पहले विनोबा भावे ने 'भूदान सत्याग्रह' चलाया और वे इसमें सफल भी रहे। इसके तहत उन्होंने भारत भर में लगभग डेढ़ दशक तक पैदल यात्रा करते हुए 45 लाख एकड़ भूमि प्राप्त की तथा भूमिहीनों को किसान बनाया। 1955 में डॉ. राममनोहर लोहिया ने गोवा मुक्ति आंदोलन चलाया जिसके तहत गोवा मुक्त हुआ। सत्तर के दशक में उत्तराखंड में वनों की अंधाधुंध कटाई को रोकने के लिए सुंदरलाल बहुगुणा, चंडीप्रसाद भट्ट व गौरा देवी ने 'चिपको आंदोलन' चलाया। इसके अंतर्गत गाँव की महिलाओं ने पेड़ों पर चिपक कर उनको कटने से रोका तथा सरकार को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। इसी काल में गुजरात व बिहार में छात्र आंदोलन हुए व जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में पूरे देश में शांतिपूर्ण सत्याग्रह हुए। सम्पूर्ण देश में आपातकाल लगा दिया गया तथा हजारों लोगों को जेल में डाल दिया गया। अन्ततः आंदोलन सफल हुआ और 18 महीने बाद लोकतंत्र को पुनः बहाल कर दिया गया। अस्सी के दशक में छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी का 'बोधगया का भूमि आंदोलन', छद्म नागरिकता व आंतरिक उपनिवेशवाद के विरुद्ध असम गण परिषद् का अहिंसक आंदोलन, छत्तीसगढ़ में शंकर गुहा नियोगी के नेतृत्व में मजदूरों का संघर्ष व तमिलनाडु में सर्वोदयी दंपत्ति कृष्णम्मा व जगन्नाथनजी का झींगा मछली पालन के खिलाफ सत्याग्रह आंदोलन पूरे देश में परिचर्चा का विषय बना रहा। नब्बे के दशक में आजादी बचाओ आंदोलन के तहत केंद्र सरकार, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, डब्ल्यू.टी.ओ. व भूमण्डलीकरण की गलत नीतियों के खिलाफ अनेक बार शांतिपूर्ण अहिंसक सत्याग्रह हुए। मेघा पाटेकर ने नर्मदा बांध व सुंदरलाल बहुगुणा ने टिहरी बांध को बनने से रोकने के लिए अनेकों बार सत्याग्रह व उपवास किए।[11]

पिछले दशक में, नंदीग्राम व सिंगुर का आंदोलन तथा उड़ीसा में वेदांता व पास्को जैसी कंपनियों का किसानों व आदिवासियों द्वारा अहिंसक प्रतिकार मीडिया व जनता में चर्चा का विषय बने रहे। मणिपुर में इरोम शर्मिला के नेतृत्व में आस्पा (आर्मडफोर्सेस स्पेशल पावर एक्ट) के खिलाफ आंदोलन चला। स्वतंत्र भारत के इतिहास में अपनी तरह का यह एक अनूठा अहिंसक सत्याग्रह था जिसमें असंख्य महिलाओं ने नग्न होकर इस कानून व सेना की ज्यादतियों का विरोध किया। 'सेज' के लिए किसानों की जमीनों के अधिग्रहण, जी.एम. बीजों व किसानों द्वारा आत्महत्या के विरुद्ध भी अनेकों बार सत्याग्रह हुए। अपने गाँव के पानी को बचाने के लिए प्लाचीमाड़ा (केरल) में ग्राम पंचायत ने सत्याग्रह एवं न्यायिक कानूनों की मदद से पेप्सी कोला को अपना प्लांट बंद करने के लिए मजबूर कर दिया। 2007 व 2012 में 'एकता परिषद्' के बैनर तले हजारों आदिवासियों-दलितों ने दो बार ग्वालियर से दिल्ली पैदल मार्च किया, जो लगभग माओ के 'लॉग मार्च' जैसा ही था। इतनी

विशाल संख्या में आदिवासियों-दलितों का सत्याग्रह देखकर देखने वालों की आँखें फटी की फटी रह गयी थी। अप्रैल 2011 में प्रसिद्ध समाजसेवी व गाँधीवादी श्री अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार के खिलाफ दिल्ली में जंतर-मंतर पर अपने साथियों संग सत्याग्रह किया। इस आंदोलन को व्यापक जनसमर्थन मिला और अंततः सफलता प्राप्त हुई। इस कड़ी में रालेगण सिद्धी, हिवरे बाजार व मेढ़ालेखा जैसे अनेक गाँव हैं जहाँ संघर्ष, सत्याग्रह व रचना साथ-साथ चल रहे हैं।[12]

मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने 1960 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन को लेकर हुए संघर्ष में गाँधीवादी तरीके को ही अपनाया था। अपनी कृति 'स्ट्राइड टुवर्ड्स फ्रीडम' मे किंग ने अहिंसा की जो छह नीतियाँ प्रस्तुत की हैं वो सब गाँधीजी की अहिंसापूर्ण नीतियों से मेल खाती हैं। किंग व उनके साथियों ने गाँधीजी के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए अपने नागरिक अधिकार आंदोलन का समर्थन करने वाली 'शिक्षा-निधि' का नाम 'गाँधी सोसायटी ऑफ ह्यूमन राईट्स' रखा। नेल्सन मंडेला के नेतृत्व में दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद विरोधी आंदोलन में जानबूझकर गाँधीवादी आधार रखने वाली राष्ट्रीय समझौतापरक नीति अपनाई गयी थी। 1989 में चीन के छात्रों द्वारा 'तियान-आन मेन स्क्वायर आंदोलन' व 1990 में कंबोडिया के 'पीस वॉक' के द्वारा सर्वसत्तावादी शासन के खिलाफ चलाया गया आंदोलन भी अहिंसापूर्ण था।[13] 1996 में फिलीपींस का प्रजातांत्रिक आंदोलन पूरी तरह अहिंसापूर्ण था जहाँ लोगों ने गाँधीजी की 'शांति-सेना' की तर्ज पर अपनी एक 'शांति-सेना' संगठित की। शांति-सेना की इस अवधारणा ने पश्चिम में 'वैश्विक अंतर्राष्ट्रीय शांति बल' के लिए प्रेरणा प्रदान की जो 1999 में शांति के लिए हेग की अपील के पश्चात् अस्तित्व में आई।[14] जाम्बिया के केन्नथ कौण्डा एवं घाना के नक्रूमा का उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष, बर्मा में आंग सान सू की द्वारा सैनिक तानाशाही विरोधी आंदोलन, श्रीलंका में सर्वोदय आंदोलन, वियतनाम में तिकन्यात हन्ह, थाईलैंड में सुलक सिवरक्ष व तिब्बती स्वायत्तता के लिए दलाई लामा के नेतृत्व में किये जा रहे आंदोलनों पर गाँधीजी के सत्याग्रह आंदोलन की छाप साफ दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों में किये जा रहे हरित आंदोलन, विस्थापितों के पुनर्वास, नारी सशक्तिकरण, दलितों का उत्थान व श्रमिक आंदोलन इत्यादि के साथ-साथ अनेक मानवाधिकारवादी आंदोलनों पर भी महात्मा गाँधी के सत्याग्रह सिद्धांत का गहरा प्रभाव साफ दृष्टिगोचर होता है।[15]

21वीं सदी में मानव जाति को विनाश से बचाने के लिए विश्व को जिस हथियार की जरूरत है, वह जनसंहार का हथियार नहीं बल्कि गाँधीजी द्वारा अपनाए गए उन मूल्यों व विवेक का हथियार है, जो भविष्य की उम्मीद के रूप में सत्याग्रह में निहित है।[16] अतः जब तक संसार में भेदभाव, अत्याचार, लिंगभेद, सामाजिक अन्याय, साम्प्रदायिक कट्टरता, असहिष्णुता, आतंकवाद, उपभोक्तावाद, विस्थापन, पर्यावरण क्षरण, संसाधनों का विषम वितरण, शोषण व गरीबी रहेगी तब तक इन चुनौतियों से निपटने के लिए सत्याग्रह की जरूरत पड़ती रहेगी।

संदर्भ

1. आनन्द शर्मा (संपादित), गाँधी का पथ शांति, अहिंसा और सशक्तिकरण, एकैडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 51
2. वही, पृ. 61
3. प्रभात कुमार, गाँधी विचार मंथन, न्यू ग्राफिक आर्टस पब्लिकेशन, दिल्ली, 1999, पृ. 130
4. आनन्द शर्मा (संपादित), पूर्वोक्त, पृ. 31
5. कुसुम लता चड्ढा (अनुवादक प्रसून प्रसाद), गाँधी वाचन, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2009, पृ. 150
6. अनुपम मिश्र तथा अन्य (संपादित), 46वां सर्वोदय समाज सम्मेलन स्मारिका, सर्वोदय समाज महादेवभाई भवन, सेवाग्राम वर्धा, 2015, पृ. 104
7. राजीव रंजन गिरि (संपादित), किशन कालजयी (श्रृंखला संपादक), समय से संवाद : 17, गाँधीवाद रहे न रहे, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 100-101

8. प्रभात कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 132
9. जी.पी. नेमा (संपादित व संशोधित), गाँधी का दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2017, पृ. 270
10. आनन्द शर्मा (संपादित), पूर्वोक्त, पृ. 51-53
11. अनुपम मिश्र तथा अन्य (संपादित), पूर्वोक्त, पृ. 101
12. वही, पृ. 101-102
13. कुसुम लता चड्ढा (अनुवादक प्रसून प्रसाद), पूर्वोक्त, पृ. 150-151
14. वही
15. धर्मवीर चन्देल, लोकेश कुमार चन्देल (संपादित), गाँधी दर्शन के विविध आयाम, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2019 पृ. 105-106
16. आनन्द शर्मा (संपादित), पूर्वोक्त, पृ. 56

❑❑

डॉ. प्रीति गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर (चित्रकला विभाग)
एच.वी.एम. पी.जी. कॉलेज रायसी
हरिद्वार, उत्तराखण्ड

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

राजस्थानी लोक चितराम में लोक रामायण एवं कृष्णलीला चित्रण

भक्ति मानव की मानस प्रवृत्ति है। मनुष्य जन्म से ही उस दिव्यशक्ति के प्रति सदैव श्रद्धा और भक्ति से नतमस्तक रहता है। भक्ति की शक्ति अपरम्पार है वह अपरिमित एवं अवर्णित है। भगवान भी अपने भक्त की रक्षा व दुष्टों का संहार हेतु प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करते हैं। इसके लिये उन्हें अनेक लीलायें रचनी पडती हैं जिससे धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं का जन्म होता है जो मनुष्य को प्रतिपल नव चेतना व प्रेरणा देती रहती हैं। इन कथाओं के श्रवण मात्र से ही जीवन धन्य हो जाता है।

राजस्थान तो धार्मिक क्षेत्र रहा है। यहाँ पर कृष्ण भक्ति एक प्रवाह के रूप में प्रवाहित हुई। इसलिये कृष्णलीला की प्रत्येक घटनाओं का श्रवण यहाँ जन-जन द्वारा होता है। केवल कृष्ण ही नहीं अपितु रामायण, महाभारत, शिवाजी आदि कथाएँ भी लोक मुख से श्रवित होती हैं। इन कथाओं को अधिक प्रभावशाली वक्ता बनाते हैं। वक्ता और श्रोता भले ही विद्वान न हों परन्तु उनमें भक्ति भावना प्रखर होनी चाहिये अन्यथा कथा आन्तरिक रूप से प्रभावशाली नहीं हो सकती।

राजस्थान में इन धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं के श्रवण का उद्देश्य धर्मयुद्ध में विजय व कर्तव्य पालन हेतु लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि दुर्गुणों को छोडकर सद्कार्य में लगाना है। इसी भावना के संचार हेतु राजस्थान में धार्मिक कथाओं का चित्रण एक विशेष महत्व रखता है। ये चित्र लघु चित्रों, भित्ति चित्रों, पड चित्रों, कांवड, आदि पर प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते हैं लघु चित्रों में तो एक ही विषय को एक चित्रफलक पर मुख्यत: अंकित किया जाता है परन्तु पड में तो प्रमुखत: भगवत अवतार व गणेश को प्रमुखता देने के पश्चात चित्रण होता है जिसमें कई घटनाएँ एक चित्रफलक पर चित्रित होती हैं। ''काँवड'' को चलता-फिरता मंदिर कहा जाता है क्योंकि इसमें सभी घटनायें धार्मिक होती हैं। इन सब चित्रों की पीछे भगवत कृपा का भाव छिपा रहता है।

राजस्थानी प्रमुख धार्मिक **लोक रामायण** इस प्रकार है—लोक रामायण रामायण प्राचीन काल से आज तक प्रत्येक वर्ग को अतिप्रिय लगने वाली कथा है प्रत्येक घर, प्रत्येक गाँव, प्रत्येक कस्बा, प्रत्येक क्षेत्र में इसकी कथा का श्रवण किया जा सकता है क्योंकि श्रीराम जैसे मर्यादित, सत्यनिष्ठ, आज्ञाकारी, एक पत्नीव्रती, अत्यन्त निर्मल स्वभावी पुरूषों के गुणों व कार्यो को सुनकर कौन उनसे प्रेरणा ग्रहण व शक्ति अनुभव करना नहीं चाहेगा? राजस्थान में यह कथा कण्ठ-2 मे समाहित है व वहाँ पर इस कथा को लेकर पड निर्माण भी होता है, जिसको रामदला की पड कहते है। जिसमें दुष्टों के संहार, वनगमन, दशानन वध, रामराज्य आदि घटनाएँ चित्रित रहती है। जो लोक शैली में बनी होती है। रामायण की कथा को प्राय: सर्वश्रवित व विदित है परन्तु लोक चित्रों में संक्षेप में इस प्रकार है—

असुरता को नष्ट करने हेतु देवताओं की प्रार्थना पर श्रीहरि ने अपने अंशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के यहाँ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में जन्म लिया बडे होने पर भगवान श्रीराम ने विश्वामित्र यज्ञ विघ्न फैलाने वाले ताडका, सुबाहु आदि असुरों का दमन किया और यज्ञ परम्परा को निर्विघ्न चलने दिया। तभी जनकपुरी में सीता का स्वयंवर हो रहा था। रामचन्द्र जी भी स्वयंवर मे गये, स्वयंवर शर्त के अनुसार शिवजी का भारी धनुष तोडना था। परन्तु बडे से बडा योद्धा भी धनुष को हिला नहीं सका तब श्रीराम ने उस धनुष को उठाकर उस पर डोरी चढा दी व उसके दो टुकडे कर दिये। रामचन्द्र

जी का विवाह सीता से सम्पन्न हो गया और लक्ष्मण आदि अन्य भाइयो का विवाह सीता जी की बहनों से ही हो गया। इस विवाह के दृश्य कॉवड में प्राप्त होते है। कॉवड में राम सीता वरमाला लिये है पीछे राजा जनक आशीर्वाद दे रहे है। इसके नीचे चित्र में राम के साथ लक्ष्मण व ऋषि खडे है तथा सीता और उर्मिला खडी है। कॉवड में तो राम की कथाओ को ही चित्रित किया जाता है। मध्य मे राम सीता व लक्ष्मण बने होते है। इसके अतिरिक्त राम विवाह का एक भित्ति चित्र है जो ''चिरावा की छतरी पर बना है। यह चित्र बहुत भव्य हैं जिसमें हाथी, घोडों, ऊँटों पर सवार रामचन्द्र की बारात जनकपुरी जा रही है तथा बीच मे जनकपुरी का प्रवेश द्वार है। जहाँ पर बहुत सारी स्त्रियाँ बारात स्वागत हेतु खडी है। कुछ स्त्रियाँ प्रवेश द्वार की छत व जालियों मे से झांक रही है यह चित्र गोलाई में है तथा मध्य मे आलेखन है। अयोध्या लौटते समय श्रीराम ने परशुराम से भेंट की जिन्होंने 21 बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कर दिया था। भगवान ने उनका गर्व नष्ट कर दिया। इस दृश्य के चित्र में राम-सीता-लक्ष्मण, परशुराम के पास हाथ जोडे बैठे है। नीचे राम-लक्ष्मण-सीता कुछ खाते हुये प्रतीत हो रहे है। ऊपर चित्र में परशुराम तीनों को आशीर्वाद दे रहे है। पृष्ठभूमि में वृक्ष व पर्वत है नदी के द्वारा चित्र को दो भागों में विभाजित किया गया है। बायीं ओर राम-सीता-लक्ष्मण शिलाखण्डो पर खडे है। नदी में मछलियाँ तैर रही है। पृष्ठभूमि में वानर भी चित्रित है। इस चित्र में पशु-पक्षी, वृक्ष, नदी, पहाड, नैसर्गिक शोभा को बिखेर रहे है।

विवाह के पश्चात वे अयोध्या में कुछ दिन ही रूके थे, कि पिता के वचन सत्य करने के लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया और पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके राज्य, लक्ष्मी, मित्र, स्वजनों को छोडकर सीता और लक्ष्मण के साथ वल्कल वस्त्र पहनकर नंगे पैर वन के लिये प्रस्थान किया।

वन में पहुँचकर भगवान ने राक्षसराज रावण की बहन शूर्पणखा को विरूप कर दिया क्योंकि उसकी बुद्धि कलुषित, कामवासना के कारण अशुद्ध थी। उसके पक्षपाती खर-दूषण, त्रिशिरा आदि अनेक राक्षसों का वध कर दिया और वन में अनेक प्रकार की कठिनाइयों से परिपूर्ण पंचवटी में निवास करते रहे। स्वर्ण मृग लाने के लिए राम के जाने के पश्चात लक्ष्मण भी श्रीराम को देखने के लिए जाते है। तब रावण साधु का वेश धारण कर भिक्षा याचना करके सीता जी को उठा कर ले जाता है। सीता हरण के दृश्य को जटायु देख रहा था। उसने दशानन पर अपनी चोंच से प्रहार करने प्रारम्भ कर दिये वह रावण से युद्ध करता रहा पर अन्ततः रावण ने उसके पंख काट दिये। वह पृथ्वी पर गिर पडा। चित्र में चित्रित किया गया है कि जटायु दशानन पर प्रहार कर रहा है और रावण जटायु से तलवार से प्रहार कर रहा है। सीता भयभीत है रावण के शीश पर गधे का सिर भी बनाया गया है क्योंकि रावण की प्रवृत्ति उसे पशु सिद्ध कर रही है। यह चित्र रावण-जटायु युद्ध का है। पृष्ठभूमि हल्की पीली व ऊपर विशाल शिलाखण्ड पर एक वृक्ष है। इस चित्र में अलंकारिक वृक्ष है। चित्र के दो भाग है। बायें भाग समुद्र से घिरी लंका में सीता को अशोक वाटिका में बैठाया हुआ चित्रित किया गया है तथा बाहर की भूमि पर राक्षस पहरा दे रहे है। जटायु के पंख कट जाने पर वह शिथिल शक्तिहीन होकर पृथ्वी पर गिर पडा है। सीता को ढूँढने के लिए भगवान ने सुग्रीव से मित्रता की व उसके भाई बाली को मारकर सुग्रीव को राज्य दिलवाया। कॉवड में दायीं ओर नीचे सुग्रीव-बाली युद्ध व बाली मृत्यु तथा सुग्रीव राज्यभिषेक का चित्रण है। सुग्रीव के राजा बनने के पश्चात श्रीराम हनुमान को सीता का पता लगाने भेजते हैं। हनुमान लंका जाकर सीता जी को रामचन्द्र की अंगूठी देते हैं जिसे रामदला की पड में चित्रित किया गया है। पड में अंगूठी के पास राम लिखा हुआ है।

सीता का पता लगाने पर भगवान श्रीराम की आज्ञा से नल और नील ने पत्थर फेंके जो जल पर तैर रहे थे उन से पुल

बांधा गया। राक्षसों व वानर वीरों में घमासान युद्ध होने लगा। तब भगवान श्रीराम, लक्ष्मण, गन्ध-मादन, अंगद, हनुमान, जामवन्त, सुग्रीव आदि वीर सैनिकों ने असुरों का सामना डटकर किया परन्तु इस युद्ध में लक्ष्मण जी शक्ति लगने के कारण मूर्छित हो गये थे तब हनुमान जी संजीवनी बूटी लाये और लक्ष्मण जी को जीवित किया। बाद में सभी वीर योद्धा मिलकर रावण की सेना को मार डालते हैं।

जब रावण ने देखा कि मेरी सेना का नाश हो गया है तब वह क्रोध में भरकर स्वयं आया। इस भित्ति चित्र में रावण को दशानन के रूप में चित्रित किया गया है। उसकी आकृति अत्यन्त क्रोध युक्त चित्रित की गई है तथा भित्ति पर रावण लिखा हुआ भी है। रावण के शीश पर गधा भी चित्रित है उसकी बीस भुजाएँ व सात धड बनाये गये हैं। प्रत्येक भुजा में तलवार है तथा रावण के आस-पास राक्षस हैं जो युद्ध के लिये तत्पर हैं। रावण अपने पुष्पक विमान पर आरूढ था। उसने युद्ध भूमि में जैसे ही प्रवेश किया भगवान श्रीराम के लिये इन्द्र का सारथि मातलि दिव्य रथ लेकर आया। भगवान उस पर विराजमान हुये। रावण ने अपने तीखे वाणों से उन पर प्रहार किया।

'राम-रावण' के युद्ध का एक बहुत आकर्षक चित्र प्राप्त होता है। इस चित्र में बायें ओर रावण अपने पुष्पक विमान में है दायें ओर भगवान राम है। दोनों एक दूसरे पर वाणों से प्रहार करने की मुद्रा में अंकित हैं नीचे बहुरंगी सेना है जो घोडे, हाथी और पैदल है। वे भी तलवार, तीर से तथा मल्लयुद्ध कर रहे हैं। पृष्ठभूमि में टीले हैं तथा ऊपर नीले आकाश में गोल-गोल कंगूरेदार बादल है। सम्पूर्ण चित्र में युद्ध का भयंकर वातावरण है। बाद में विभीषण द्वारा बताये जाने पर श्रीराम रावण की नाभि में तीर छोडते हैं जिससे उसकी नाभि का अमृत सूख जाता है और वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

अयोध्या आगमन पर श्रीराम का भव्य स्वागत होता है श्रीराम पाते हैं कि उनका अनुज भरत भी श्रीराम की तरह वन में जीवन व्यतीत कर रहा है। वह गौमूत्र में बना जौ का दलिया खाता है, नीचे सोता है, वल्कल वस्त्र पहनता है। भगवान भरत को अयोध्या लेकर आते है। तब श्रीराम का राज्यभिषेक होता है। राज्यभिषेक के भित्ति चित्र में अयोध्या का विशाल राजमहल चित्रित किया गया है राजा के रूप में राम, रामदला की पड में भी चित्रित है। उनके समीप उनके तीन अन्य भाई है। नीचे सेवक हनुमान हैं ये आकृतियाँ सिन्दूरी रंग से बनी हैं क्योंकि सिन्दूरी रंग तेज का प्रतीक होता है।

लोक रामायण में चित्रित चित्र तो राम राज्यभिषेक तक ही प्राप्त होते है। रामदला की पड में भी राम को राज्यभिषेक के पश्चात भाइयों सहित चित्रित किया जाता है परन्तु 'चिरावा' से प्राप्त वाल्मीकि सीता तथा लव-कुश के भित्तिचित्र से कथा का आगे होने का संकेत प्राप्त होता है।

इस कथा का श्रवण करने व कथा पर आधारित चित्र देखने से ही आनन्द, शक्ति व संघर्ष आदि गुणों का संचार मानवचित व मस्तिष्क में होता है।

कृष्णदला की कथा

श्रीकृष्ण पर आधारित कथा राजस्थान के प्रत्येक क्षेत्र, गाँव व बस्ती में प्राय: सुनने को मिल जाती है। इसका प्रमाण तो श्रीकृष्ण कथा पर आधारित चित्र हैं। इन चित्रों में कृष्णदला की पड प्रमुख स्थान रखती है ये पड भी शाहपुरा में जोशी परिवार में देखने को प्राप्त हो जाती हैं। इस पड में गणेश अंकन के बाद दशावतार चित्रण है। नीचे कालियादमन, उसके बाद शेषशायी विष्णु, चीरहरण, माखन-चोरी, रास-लीला, गोवर्धन-धारण आदि के चित्रांकित हैं। यह पड लोकशैली में चित्रित होती है तथा लोक प्रिय चटक रंग जैसे लाल, पीला, हरा नीला व काले रंगों से बनती है। इसके अतिरिक्त कॉवड, भित्ति व लघु चित्र भी बहुतायत से प्राप्त होती है। कृष्णदला की कथा इस प्रकार है कि एक बार पृथ्वी दानवों, दैत्यों के भार से पीडित होकर ब्रह्मा जी के पास गई तब ब्रह्माजी पृथ्वी को लेकर विष्णु की शरण में गये और कंस द्वारा किये जा रहे अत्याचारों का वर्णन किया। विष्णु ने अपना कृष्ण केश देकर कहा कि यह कृष्ण केश देवकी के आठवें गर्भ से जन्म लेकर अवतार रूप में अवतरित होगा और कंस वध करेगा। नारद मुनि ने जाकर कंस को सूचित कर दिया कि देवकी का आठवां पुत्र तुम्हारा वध करेगा इसलिये कंस ने कालभय से देवकी वासुदेव को कारागार में डाल दिया और उसकी संतानों को पैदा होते ही मार डालता परन्तु निश्चित समय पर श्रीकृष्ण ने अर्धरात्रि के समय जन्म लिया। श्रीकृष्ण जन्म का एक चित्र प्राप्त होता है इस चित्र में श्रीकृष्ण चतुर्भुज रूप में देवकी की गोद में बैठे हैं और वासुदेव जी उनके इस रूप की स्तुति कर रहे हैं। श्रीकृष्ण जी अत्यन्त सलोने सांवरे रूप में सुशोभित हो रहे हैं। स्तुति करने के पश्चात वासुदेव जी श्रीकृष्ण को छिपाकर यमुना पार करके गोकुल गये। गोकुल ले जाने का दृश्य कॉवड में चित्रित है। इस चित्र में वासुदेव जी ने कृष्ण को एक टोकरी में रखकर सिर पर रख रखा हैं और शेषनाग ने उन पर अपनी छत्र-छाया लगा रखी है। यह कॉवड लोक कला मंडल उदयपुर में है। गोकुल में जाकर श्रीकृष्ण को छोडकर वासुदेव नन्द की पुत्री लेकर वापस आ गये।

गोकुल में श्रीकृष्ण बढ़ने लगे। वहाँ पर कंस ने श्रीकृष्ण को मारने हेतु कई राक्षस व राक्षसी भेजे। उनमें सर्वप्रथम 'पूतना राक्षसी' को भेजा जो सुन्दर युवती रूप बनाकर अन्य नगर, ग्रामों में घूमती हुई अन्तत: गोकुल में नन्द बाबा के घर पहुँच गई और बालक कृष्ण को उठाकर दूध पिलाने लगी किन्तु कृष्ण दूध के साथ उसका प्राण निकालने लगे। कृष्ण का पूतना के दूध के साथ प्राण निकालने का चित्र उपलब्ध हुआ है। इस चित्र में पूतना जमीन पर तथा हाथ ऊपर किये हुये है व श्रीकृष्ण उसका दूध पी रहे है।

कृष्ण द्वारा प्राण खींचने पर पूतना अत्यधिक छटपटायी किन्तु श्रीकृष्ण ने उसे नहीं छोडा इस तरह 'पूतना का प्राणान्त' हो गया। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान ने शिशुअवस्था से ही चमत्कारपूर्ण कार्य करने प्रारम्भ कर दिये थे।

इसके पश्चात एक दिन शिशु श्रीकृष्ण एक छकडे के नीचे सो रहे थे। थोडी देर में उन्हें भूख लगी और उन्होंने रोना प्रारम्भ कर दिया। रोते-रोते उन्होंने अपना पैर छकडे में मार दिया जिससे उस छकडे पर रखा दूध, दही गिर गया व छकडे के पहिये व धुरे अस्त-व्यस्त हो गये और छकडे पर बैठे देह-रहित हिरण्याक्ष के पुत्र उत्कच की श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श से लोमश ऋषि के शाप से मुक्ति हो गई। इस कथा पर आधारित चित्र में ध्वस्त छकडे हैं व मटके इधर-उधर रखे हैं।

कंस का भेजा हुआ 'तृणावर्त दैत्य' एक बवंडर के रूप में गोकुल आया और श्रीकृष्ण ने उसका गला पकड लिया। तृणावर्त इस अद्भुत शिशु से अपना गला नहीं छुडा सका। अन्त में वह असुर निश्चेष्ट हो गया और बालक श्रीकृष्ण के साथ ब्रज में आ गिरा। इस प्रकार 'तृणावर्त का वध' हो गया।

बाल लीलायें प्रारम्भ होती है। जिसमें ऊखल बंधन, यमलार्जुन उद्धार प्रमुख हैं। एक बार कृष्ण नन्द बाबा आदि ब्रजवासियों के साथ गोकुल से वृन्दावन जाते हैं और वहीं पर जाकर रहने लगते हैं। वहाँ भी गोकुल की तरह कृष्ण की लीलाओं से सारा वृन्दावन आनन्द लेता है। दोनों भाई बलराम और कृष्ण अन्य ग्वाल वालों के साथ बछडें चराने जाते तथा वहाँ पर खेल खेलते। एक दिन बछडे चराते समय एक 'दैत्य वत्सासुर' कृष्ण को मारने के उद्देश्य से बछडे का रूप धारण कर के

बछडों में आ मिला। श्रीकृष्ण ने उसे पहचानकर उसके पैर पकडकर आकाश में घुमा दिया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। वत्सासुर वध के पश्चात श्रीकृष्ण भगवान ने 'वकासुर वध', 'अघासुर वध', 'ब्रह्ममोह का नाश' तथा 'धेनुकासुर उद्धार' किया तथा ग्वालवालों की 'कालिया नाग' के विष से बचाया।

एक बार ब्रजवासी अपने गायों के साथ यमुना तट पर सो गये। आधी रात के समय वहाँ पर आग लग गई। उस आग ने सबको चारों ओर से घेर लिया और उन्हें जलाने लगी। तब सभी लोग श्रीकृष्ण की शरण में आ गये। श्रीकृष्ण उस भंयकर आग को पी गये। इस दृश्य को दर्शाता हुआ चित्र है जिसमें ऊपर अण्डाकार रूप में 'दावाग्नि' प्रज्वलित है और उसमें गाय व गोप खडे है।

श्रीकृष्ण भगवान लीलाओं में रास लीला प्रमुख है। श्रीकृष्ण स्वभावत: ही नटखट थे। गोपियों की 'मटकियाँ फोड' देते थे, उनका 'माखन चुरा' कर खाते थे। यद्यपि उनके स्वयं के घर में मक्खन की कमी नहीं थी परन्तु उन्हें माखन चुराकर खाने में आनन्द प्राप्त होता था। वे गोपियों से हास-परिहास करते रहते थे। हास-परिहास के एक दृश्य में श्रीकृष्ण गोपियों से परिहास कर रहे हैं उन्होंने हाथ में डन्डा ले रखा है तथा वृक्ष के पीछे उनके अन्य साथी हैं जिसमें से एक बाहर झांक रहा है।

हास परिहास के साथ श्रीकृष्ण ने एक बार तो यमुना नदी पर स्नान कर रही 'गोपियों' के वस्त्र चुरा लिये थे और स्वयं कदम्ब के वृक्ष पर चढकर बैठ गये। इस दृश्य को रामदला की पड में चित्रित किया जाता है। इसमें यमुना में निर्वस्त्र गोपियाँ के वस्त्र तथा ऊपर कदम्ब के वृक्ष पर श्रीकृष्ण बांसुरी बजाते हुये चित्रित किये जाते हैं। वृक्ष पर गोपियों के वस्त्र लटके हुये चित्रित किये गये है। यह दृश्य पड में दायीं ओर मध्य में अंकित किया जाता है। कृष्ण भगवान की 'रास लीला' का चित्रकार ने स्वयं के अनुसार बडा मनोहर दृश्य चित्रित किया है।

इसके पश्चात् 'इन्द्र-मान मर्दन' व 'गोवर्धन-धारण' लीला करते हुये श्रीकृष्ण शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढने लगे। कंस ने एक ओर केशि दैत्य को श्रीकृष्ण वध हेतु भेजा तथा दूसरी ओर अक्रूर को कृष्ण व बलराम को मथुरा लाने हेतु भेजा। कंस ने धनुष यज्ञ का आयोजन कर रखा था कि मथुरा बुलाकर कृष्ण को छलपूर्वक कुवलयापीड हाथी, चाणूर तथा मुष्टि पहलवानों से वध करवा दूंगा। दूसरी ओर केशि भयानक घोडे का रूप बनाकर ब्रज में आ गया और इससे भयभीत व व्याकुल गोपियाँ श्रीकृष्ण की शरण में पहुँची, श्रीकृष्ण इसके समीप मारने हेतु गये तो यह मुँह फाडकर श्रीकृष्ण पर टूट पडा। श्रीकृष्ण ने केशि के खुले मुख में हाथ डाल दिया। कृष्ण का हाथ डालते ही 'केशि वध' हो गया। उधर अक्रूर जी नन्द बाबा से श्रीकृष्ण को मथुरा में होने वाले समारोह को देखने ले जाने की प्रार्थना करते है। समारोह की बात सुनकर अनेक गोप-बालक भी तैयार हो गये और मथुरा के लिये प्रस्थान किया।

मथुरा में आकर वे नगर से बाहर रूके तथा नगर देखकर आये। अगले दिन कृष्ण भगवान बलराम सहित नित्यकर्म से निवृत्त होकर रंगभूमि देखने के लिये चल पडे। रंगभूमि के द्वार पर कुवलयापीड हाथी रास्ता रोके खडा था। उसने श्रीकृष्ण के आने पर उन पर आक्रमण कर दिया। उस समय श्रीकृष्ण ने उस हाथी की सूंड पकडकर धरती पर पटक दिया। वहाँ पर कंस की आज्ञा से कई पहलवान खडे थे उनमें चाणूर और मुष्टिक भी थे। उसी समय श्रीकृष्ण चाणूर से व बलराम मुष्टिक

से भिड गये। मल्लयुद्ध में चाणूर व मुष्टिक को दोनों भाइयों ने मुष्टि प्रहार करके धराशायी कर दिया। उसके मर जाने पर तोशल नामक मल्ल श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगा। श्रीकृष्ण ने उसे भी मार दिया। इस अद्भुत पराक्रम से लोग 'धन्य-धन्य' कह उठे और कंस क्रोधित हो उठा उसने दोनों बालकों को नगर से निकालकर गोपों की सम्पत्ति जब्त कर वासुदेव व अग्रसेन को मारने का आदेश दिया। तब श्रीकृष्ण ने उछलकर कंस के सिंहासन पर पहुँच गये तब क्रोधित कंस ढाल तलवार से कृष्ण पर प्रहार करने लगा। कृष्ण ने उसके प्रहार से बचकर उस पर जैसे ही कूदे उसके प्राण निकल गये और 'कंस वध' देखकर देवता व सज्जन अत्यन्त प्रसन्न हो गये।

कंस को मारकर उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाकर श्रीकृष्ण वहीं पर देवकी वासुदेव के साथ रहने लगते हैं। लोक में ये कथाएँ ही प्रचलित है।

लोक कथा में श्रीकृष्ण भगवान की कथा कंस वध तक ही वर्णित व पडों में चित्रित होती है। इस कथा में भी रासलीला जैसे—गोपी चीर हरण, माखनचोर, आदि, बाललीला-कालिया दमन, गाय चराना, असुरों का वध करना इत्यादि कथाओं के अतिरिक्त गोवर्धन धारण, कृष्ण-राधा रास आदि की कथाएँ भी श्रवित व चित्रित होती है। यूँ तो श्रीकृष्ण की लीला व कार्य इतने अधिक अपरिमित, अवर्णीय है कि जिनका वर्णन संभव ही नहीं। यहाँ तो मैंने इन्हें संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है।

सहायक संदर्भ

1. राजस्थानी महिलाओं द्वारा लोक मुख से श्रवित लोक रामायण। इसमें लोक चित्रकारों का भी योगदान रहा।
2. रामदला की पड - श्री दुर्गेश जी जोशी (प्रथम राष्ट्रीय पुरस्कार पड चित्रांकन में प्राप्तकर्ता) शाहपुरा से उपलब्ध इस पड की लम्बाई चौडाई उन्ही के अनुसार 4×8 फीट है।
3. राम सीता विवाह - चिरावा की छतरी, 1825, 270 सेमी शेखावटी।
4. परशुराम सभा 1649, 105×6 इंच। प्राप्त -Art of Artist of Rajasthan – R.K. vashistha, New Delhi, 1995
5. रावण और जटायु युद्ध - आर्ष रामायण, 1651, A.D. 15.5×9 इंच, राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर।
6. श्री दुर्गेश जोशी से प्राप्त रामदला के अनुसार की पड।
7. श्री सत्यनारायण सुथार जी से प्राप्त रामदला की कांवड में चित्रित चित्र।
8. रावण, चिरावा में पोद्दार की छतरी, शेखावटी, लं. 1820, 25×35 सेमी.।
9. लोक रामायण, पोद्दार की छतरी, शेखावटी, लं. 1872, 120×170 सेमी.।
10. भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर, कृष्णदला की कांवड।
11. जवाहर कला केन्द्र, के जयपुर में लगे हस्तशिल्प मेले में बंगाल मूल के चित्रकार श्री प्रदीप मुखर्जी द्वारा बनाया गया भित्ति चित्र।

❑❑

तोसिफ अली (शोधार्थी)
राजकीय कला महाविद्यालय
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. शिव कुमार मिश्रा (शोध निर्देशक)
सह-आचार्य
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

आमेर-जयपुर का जयगढ़ दुर्ग : एक शोधपरक अध्ययन (कलात्मकता एवं मुगल प्रभाव के विशेष संदर्भ में)

सार

अपने अनूठे स्थापत्य तथा अद्भुत शिल्प के कारण प्रसिद्ध जयगढ़ दुर्ग, पर्वतीय दुर्ग की श्रेणी में आता है। कछवाहा वंश के काकिलदेव, राजा मानसिंह, मिर्जाराजा जयसिंह तथा सवाई जयसिंह ने इस दुर्ग में अनेक परिवर्तन तथा विस्तार करके इसे भव्य और सुदृढ़ स्वरूप प्रदान किया। इस किले के भीतर मुगल स्थापत्य शैली की विशेषताएं एवं प्रभाव देखने को मिलता हैं। यहाँ के राजाओं द्वारा मुगल आधिपत्य तथा पारिवारिक संबंधों के कारण इसमें मुगल शैली का समावेश हुआ, जो कि इस किले के कई स्थानों पर परिलक्षित होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में कलात्मकता तथा मुगल प्रभाव के विशेष संदर्भ में जयगढ़ दुर्ग का अध्ययन किया गया है।

स्थिति एवं निर्माता : यह दुर्ग जयपुर से लगभग 15 किलोमीटर एवं आमेर महल से 500 फीट की ऊंचाई पर असमतल अरावली श्रंखला पर स्थित है। यह उत्तर से दक्षिण की ओर तकरीबन 3 किलोमीटर लंबा एवं 1 किलोमीटर चौड़ा है।

इस विशाल किले को किसने बनवाया, इस सन्दर्भ में स्पष्ट प्रामाणिक जानकारी न होने के कारण इस विषय में विद्वानों के अलग-अलग मत है। डॉ. वी.एस. भटनागर द्वारा सवाई जयसिंह नामक ग्रन्थ में जयपुर के संस्थापक सवाई जयसिंह को ही जयगढ़ दुर्ग का निर्माता बताया गया है।[1] डॉ. ए.के. राय ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ जयपुर सिटी में वर्णन किया है कि राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर में जयपुर रियासत के प्राचीन दस्तावेजों में भी उल्लिखित है कि विक्रम संवत 1783 में आमेर-जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा अपने दीवान विद्याधर को जयगढ़ किले में उत्कृष्ट निर्माण कार्य करवाने के उपलक्ष्य में सिरोपाव देकर पुरस्कृत किया था। यह निर्माण कार्य चील्ह का टीला नामक स्थान पर करवाया गया था।

''संवत् 1783 मिती भादवा बदी 5 मुकाम का वहस्य विद्याधर संतोषराम का पंडा ज्यों सवाई जैगढ़ सिताब आछयो बण्यो सो अजरूप महरबानी बखस्या सिरोपाव॥'[2]

पोथीखाने में रखे पुराने दस्तावेजों से यह स्पष्ट है कि यह स्थान प्राचीन समय में चील्ह का टीला कहलाता था। इस मत का समर्थन पंडित गोपाल नारायण बहुरा एवं चंद्रमणि सिंह ने भी किया है। इसी क्रम में सवाई जयसिंह के पक्ष में एक और महत्वपूर्ण तथ्य (साक्ष्य) कवि आत्माराम द्वारा रचित सवाई जयसिंह चरित्र में मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि इस गढ़ का नामकरण सवाई जयसिंह द्वारा जयगढ़ किया गया है तथा कुछ नये भवनों का निर्माण भी करवाया गया था।

पहुंचत भो आमेरि मै, हुकुम भूप जय साहि। महल चील्ह ठौरा बनै, बासर उत्तम चाहि, ॥ 684 ॥
जैगढ ताको नॉड यह। भाषयौ फेरि नरेस। करनी अधिकाई जिनै, बरनी जाति न सेस॥ 684 ॥[3]

ठाकुर हरनाथ सिंह (डूंडलोद ठिकाना) ने अपने ग्रन्थ जयपुर एंड इट्स एन्विरन्स में उल्लेख किया है कि आमेर के राजा मानसिंह ने अपने अभियानों से प्राप्त खजाने की सुरक्षा के लिये इस किले का निर्माण करवाया था। जयपुर रियासत के ब्रिटिश रेजिडेंट लेफ्टिनेंट कर्नल ए.एल. शावर्स ने अपनी पुस्तक नोट्स ऑन जयपुर में उल्लेख किया है कि इस दुर्ग की नींव आमेर के राजा मानसिंह ने 1600 ई. में रखी थी तथा मिर्जाराजा जयसिंह और 18वीं सदी में सवाई जयसिंह ने इसे पूर्ण करवाया।[4]

सिटी पैलेस जयपुर के पोथीखाने तथा कपडद्वारे में 18वीं शताब्दी ईस्वी का इस किले का एक नक्शा उपलब्ध है। डॉ. चंद्रमणि सिंह तथा पंडित गोपाल नारायण बहुरा द्वारा नक्शों के प्रारूप के प्रकाशित कैटलॉग में 163वे. नंबर नक्शे (जयगढ़) से प्रकट होता है कि यह दुर्ग सवाई जयसिंह से पहले भी विद्यमान था जिसका विस्तार एवं परिवर्तन सवाई जयसिंह द्वारा किया गया था।[5]

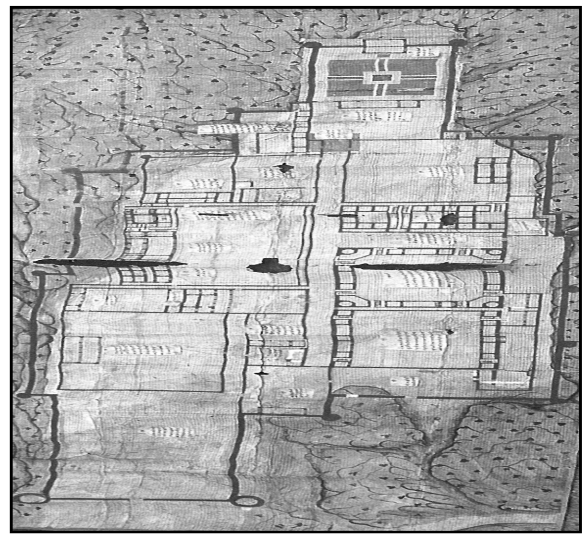

चित्र 1 : जयगढ़ किले का प्राचीन मानचित्र

अधिकतर इतिहासकारों ने जयगढ़ किले का निर्माता मिर्जाराजा जयसिंह को ही माना है जिसमें डॉ. हरिनारायण शर्मा, देवीसिंह मंडावा, जे.एस. गहलोत, डॉ. गोपीनाथ शर्मा आदि प्रमुख हैं। ईश्वर विलास महाकाव्यम के रचयिता कवि कलानिधि देवर्षि श्री कृष्ण भट्ट ने भी उल्लेखित किया है कि—

''मिर्जाराजा महाराजा जयसिंहस्य स्मारका सतसई प्रमृत योयथाग्रंथा सन्ति तथा आमेर राजधान्या राजप्रासादाः तमस्य जयगढ़ दुर्गमः निवेशा अपि तस्य स्मारका सन्ति'' अर्थात् जयगढ़ दुर्ग का निर्माता मिर्जाराजा जयसिंह था।[6]

कपड़द्वारा में संगृहीत एक हस्तलिखित ग्रंथ में भी इसी मत का उल्लेख किया गया है लेकिन किले की स्थापत्य कला को करीब से देखने पर इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि जयगढ़ दुर्ग किसी एक शासक का निर्माण नहीं है।

उपलब्ध प्रमाणों व साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि इस दुर्ग का निर्माण विभिन्न चरणों में हुआ है तथा कछवाहा शासकों से पहले भी यहाँ सुरक्षित किले के रूप में प्रस्थापित होने का प्रमाण मिलता हैं। इस किले के एक परिसर को दूसरे से अलग करने वाली दीवारों में आज भी कई जोड़ देखे जा सकते हैं लेकिन निर्माण शैली और तकनीक के आधार पर ये जोड़ बताते हैं कि किले में नए परिसर के परिवर्तन और जोड़ को विभिन्न अवधियों (काल) में रखा जा सकता है।

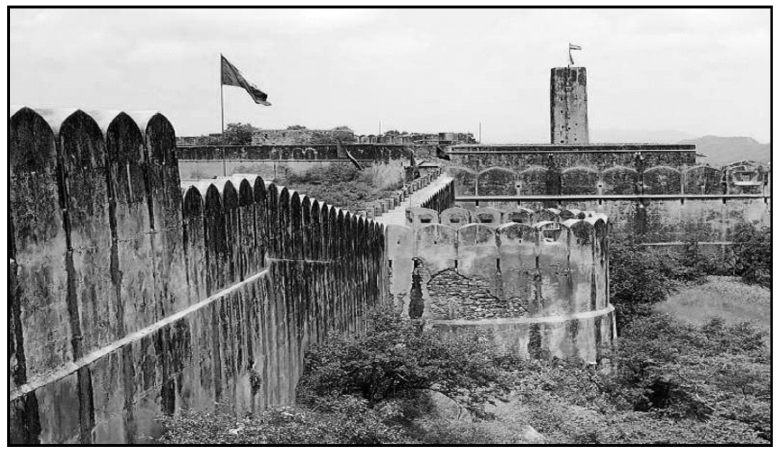

चित्र 2 : जयगढ़ दुर्ग (आमेर)

दुर्ग में स्थित प्रमुख भवन एवं उनकी कलात्मकता : सैन्य दुर्ग की सारी सुविधाओं से युक्त जयगढ़ दुर्ग में प्रवेश के लिए तीन द्वार बने हैं - खेरी द्वार, अवनी द्वार व डूंगर द्वार। प्राचीन समय में दुर्ग में प्रवेश के लिए खेरीद्वार का इस्तेमाल किया जाता था। दूसरा द्वार अवनी द्वार है, आमेर महल से जयगढ़ किले में प्रवेश का यही मार्ग है तथा यह मार्ग दो पर्वत श्रृंखलाओं को आपस में जोड़ता है। जयगढ़ का तीसरा द्वार डूंगर द्वार कहलाता है। वर्तमान में इसी द्वार से दुर्ग में प्रवेश किया जाता है।[7]

तोप ढलाई का कारखाना : जयगढ़ के पूर्वी हिस्से में जाने वाले रास्ते पर सुनियोजित ढंग से तोप बनाने का कारखाना मौजूद है। इसके दो भाग है - पहले भाग में धातु गलाने का कार्य तथा दुसरे भाग में तोप की नाल में छेद किया जाता था। यहाँ पर अनेक तोपों का निर्माण किया गया जिनमें बजरंग बाण, बादली, विशाल जयबाण तोप तथा मचवान आदि प्रमुख है।

जयबाण तोप : जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के काल में 1720 ई. जयबाण नामक विशाल तोप का निर्माण हुआ था[8] जो पहियों पर खड़ी एशिया की सबसे बड़ी तोप मानी जाती हैं। देशी विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र यह तोप जिसकी नाल 20 फीट लंबी तोप का कुल वजन लगभग 50 टन है इस तोप से 11 इंच व्यास के 50 किलोग्राम के गोले दागे जा सकते थे। इसको चलाने के लिए एक बार में 100 किलोग्राम बारूद भरा जाता था।

ऐसा अनुमान है कि इसकी मारक क्षमता लगभग 22 मील है। जनश्रुति के अनुसार इसे केवल एक बार परीक्षण के तौर पर चलाया गया था तब इसका गोला चाकसू में जाकर गिरा था। मिश्रित (विशेष) धातुओ से बनी इस तोप के मुंह पर हाथी, पृष्ठ भाग पर पक्षी युगल तथा बीच में वल्लरियों के चित्र उत्कीर्ण है तोप संयंत्र के पास एक छोटा सा गणेश जी का मंदिर भी है। संभवत: नयी तोप ढालने से पहले गणेश जी की उपासना की जाती थी।

राणावत एवं जलेब चौक : जयगढ़ का सबसे प्राचीन भवन राणावत चौक है। यह तोप बनाने के कारखाने के निकट स्थित है। इसके बीच में स्थित चौक जिसके चारों तरफ छोटे कमरें बने हैं तथा पूर्व में यहां पर दरबार लगा करता था। वर्तमान में यहां प्राचीन वस्तुओं एवं औजारों को देखने के लिये रखा गया है। जलेब चौक के सामने बने दरवाजे से यहां के भवनों में प्रवेश करते हैं। यह आमेर के शासकों की सादगी, शक्ति व संपन्नता के उदाहरण है। सारे कमरे खुले हवादार, लंबे चौड़े बरामदे से युक्त है जो सुरक्षा की दृष्टि से परस्पर जुड़े हैं।

दुर्ग में जलेब चौक नामक एक खुला चौक जिसके दोनों ओर कमरे बने हुए हैं जिन्हें वर्तमान में म्यूजियम का रूप दे दिया गया है। यहां पर पुराने हथियार, बरतन तथा अनेक कलात्मक वस्तुओं का संग्रह है। काल भैरव को दुर्ग का रक्षक माना जाता है, जिसका देवप्रसाद इस चौक के उत्तर पश्चिम भाग में काल भैरव का स्थित है।[9] इसकी स्थापना दुर्ग के साथ ही हुई थी।

जल संग्रहण व्यवस्था : दुर्ग में डूंगर द्वार से प्रवेश करने के बाद एक बड़ा चौक आता है जिसमें पानी के तीन विशाल टांके स्थित है। जयगढ़ दुर्ग में पानी के कुल 5 टांके हैं जिनमें दक्षिण में तीन टांके, चौथा टांका आराम मंदिर के पास तथा पांचवा टांका उत्तर पश्चिमी कोने पर स्थित है। वाष्पीकरण, शैवाल और बैक्टीरिया के प्रसार को रोकने के लिए इन्हें ढंका गया है। इनमें सबसे बड़े टांके की लम्बाई 158 फीट, चौड़ाई 138 फीट तथा गहराई 40 फीट है। यह ऊपर से ढका एवं 81 स्तंभों पर आधरित है। इसकी कुल जल क्षमता लगभग 60 हजार गैलन है। इन टांको के निर्माण से पूर्व दुर्ग में हाथीयों द्वारा सागर झील से हौदो में जल लाकर एक चौकोर टांके में डाल दिया जाता था। वहां से इस पानी को रस्सियों की मदद से किले में ऊपर खींचा जाता था।[10]

सुभट निवास : जलेब चौक की उत्तरी दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार एक आंगन की ओर जाता है जिसमें एक भव्य हॉल है जो कि सुभ्रट निवास कहलाता है। यह महाराजा द्वारा सैनिको से वार्तालाप करने के लिए अठारह स्तंभों से युक्त तीन तरफ से खुला एक हॉल है। यहां पर निर्मित हॉल के अट्ठारह स्तंभ की प्रत्येक मेहराब पर एक पूर्ण खिले हुए फूल के साथ नुकीले मेहराब के साथ परस्पर जुड़े हुए हैं। संपूर्ण भवन की लंबाई एवं चौड़ाई पूरब से पश्चिम में करीब डेढ़ सौ फीट है तथा उत्तर दक्षिण की ओर 108 फीट है।

वर्तमान में इस कक्ष में नौबत नक्कारे रखे हैं जिन्हें संकट के समय बजाया जाता था। इसी कक्ष के बायीं तरफ एक लंबी सुरंग भी है जिसे इस तरह से डिजाइन किया गया था कि अंधेरे में खड़ा हुआ कोई भी व्यक्ति दुश्मन को स्वयं देखे बिना सुरंग में प्रवेश करते हुए देख सकता है। इससे महाराजा को आपातकाल के दौरान भागने में मदद मिली, जबकि वफादार सैनिकों ने सुरंग के अंदर दुश्मन बलों का सामना किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस किले के सभी आंगन इस तरह बनाए गए हैं कि अंदरूनी इमारतों की ओर जाने वाले दरवाजों को बंद करके दुश्मन को आंगन में ही घेर लिया जा सकता है।

खिलबत निवास : सुभट निवास के उत्तर पूर्व में स्थित है जो कि सेनानायकों से गोपनीय बातचीत का स्थान था जहां शासक, सेना के जनरलों, मंत्रियों और अन्य विश्वासपात्रों को राज्य के महत्वपूर्ण और गोपनीय मामलों और युद्ध रणनीति से संबंधित गुप्त मामलों पर चर्चा करने के लिए इकट्ठा किया जाता था। यह 93 फीट लंबा 62 फीट चौड़ा है इसका मुख्य कक्ष 32 फीट चौड़ा है जो ऊंची पीठिका पर बना हुआ है।

लक्ष्मी विलास : खिलबत निवास के बाद एक रास्ता (द्वार) लक्ष्मी विलास की ओर जाता है, जो कि इस किले की सबसे सुन्दर इमारत मानी जाती है। इसका निर्माण मिर्जाराजा जयसिंह ने करवाया था[11] तथा सवाई जयसिंह के शासनकाल के दौरान इसका विस्तार हुआ था। इस महल परिसर में किए गए परिवर्धन के लिए दीवान विद्याधर को 'सिरोपाव' से सम्मानित किया गया था। संपूर्ण भवन प्रांगण पूर्व से पश्चिम 122 फीट तथा उत्तर से दक्षिण की 183 फीट विस्तृत है। यहाँ स्थित भवन की लंबाई 68 फीट एवं चौड़ाई 25 फीट है।

चित्र 3 : लक्ष्मी विलास (जयगढ़ दुर्ग)

मुख्य हॉल का फर्श आराइश कार्य से सुसज्जित है। इसके इजारों पर भी सुन्दर आराइश का काम, फूल पत्तियों के साथ कलात्मक बेलबूटे भी बनें है। इस हॉल में सात नक्काशीदार दरवाजे हैं। उनमें से तीन चंदन की लकड़ी से बने हैं, जिन पर हाथीदांत का उत्कृष्ट काम है। ये दरवाजें चंदन की लकड़ी के 164 टुकड़ों को जोड़कर बनाये गये हैं। यहाँ सबसे पहले एक आयताकार कक्ष स्थित है, जहाँ वर्तमान में राजा महाराजाओं के तैलीय भित्तिचित्र लगाये हुए है। हॉल के सामने की दीवारों को संगमरमर पर जड़े हुए पुष्प डिजाइनों से अलंकृत किया गया है। यह हॉल दोहरे सफेद संगमरमर के सुन्दर नक्काशीदार बारह स्तंभों पर आधारित है तथा सादे पत्थर के मेहराब से जुड़े हुए हैं। इसी हॉल में सामने की ओर एक सुन्दर कक्ष स्थित है, जिसके बीच में मेहराबों से युक्त कलात्मक झरोखा है। इस कक्ष का प्रयोग शयन कक्ष के रूप में किया जाता था। हॉल के दाएं और बाएं दोनों ओर इसके प्रवेश द्वार है।

इसमें हॉल के फर्श को समान रूप से गर्म रखने की एक अनूठी प्रणाली है। भट्टी से जुड़ी फर्श के नीचे लंबी सुरंगें हैं जो भवन के उत्तर-पश्चिम कोने में खुलती हैं। सर्दियों में भट्टी के ईंधन की गर्म हवा को सुरंगों में झोंक दिया जाता था, जो सर्दियों में परिसर के फर्श को गर्म रखता था तथा इसको गर्म रखने के लिए रुई भरे पर्दे भी लगाये जाते थे। गर्मियों में हॉल में हवा के लिए खिड़कियां खोली जाती और पर्दे उठाए जाते थे।

ललित मंदिर : यह दो मंजिला भवन 16वीं शताब्दी की सुन्दर व कलात्मक इमारत है, जिसे मिर्जाराजा जयसिंह ने गर्मियों में रहने के लिए बनवाया था।[12] संपूर्ण भवन 62 फीट चौड़ा तथा 69 फीट लंबा है। ग्रीष्मकाल के दौरान भवन ठंडी

हवा से युक्त होता है। इस परिसर में एक बड़ा केंद्रीय हॉल है तथा ऊपरी मंजिल पर शयन कक्ष, बरामदे और बालकनी इत्यादि हैं। यह भवन सादगीपूर्ण हैं। यहां तापमान पर नियंत्रण रखने के लिये छत को दोहरी बनाया गया है।

इस भवन के नीचे बरामदे में कमल के फूलों से अलंकृत, बलुआ पत्थर से निर्मित आठ दोहरे स्तंभ है। इस कक्ष के दोनों और कलात्मक झरोखे बने हुए हैं। ललित मंदिर के उत्तरी भाग में एक वर्गाकार सुन्दर छतरी बनी हुई है। लाल बलुआ पत्थर के लघु स्तंभों की जाली छत की सीमा पर लगी हुई है। सम्पूर्ण इमारत पारंपरिक राजपूत स्थापत्य शैलियों से सुसज्जित है, जैसे कि आराइश का काम एवं दीवारों पर चूने का काम आदि। सवाई जयसिंह के समय में दीवान विद्याधर की देखरेख में इसका परिष्करण और अलंकरण हुआ।

आराम मंदिर : जयगढ़ किले में सुन्दर उद्यान के दक्षिण में आराम मंदिर नामक भवन स्थित है। इसे 16 वीं शताब्दी में मिर्जाराजा जयसिंह द्वारा बनवाया गया था[13] तथा इसमें अलंकरण के साथ-साथ सजावट का अन्य काम सवाई जयसिंह के समयावधि के दौरान किया गया था। यह 31 फीट चौड़ा तथा 33 फीट लंबा है। इसमें एक मुख्य हॉल है, जो संगमरमर के नक्काशीदार बारह स्तंभों पर आधारित है, जो सादे पत्थर के मेहराब के साथ जुड़े हैं। यहां की मेहराब अन्य इमारतों की तुलना में व्यापक हैं। हॉल की पार्श्व दीवारों एवं फर्श को आराइश के साथ पॉलिश किया गया है यह दीवारें पुष्प अंकन के साथ उत्कृष्ट रूप से सजाई गई है।[14]

चित्र 4 : आराम मंदिर

यहां पर एक खुला हुआ कक्ष है, जिसका प्रयोग ग्रीष्म काल में किया जाता था। इस कक्ष के इजारे आराइश के बने हैं। इस परिसर के ठीक नीचे एक सुंदर उद्यान बना हुआ है। यहाँ एक विशाल वर्गाकार उद्यान है जो पानी के चैनलों द्वारा चार समान कक्षों में विभाजित है। जो आंखों के सामने मुगल चाहर-बाग पद्धति की छवि बनाता है।[15] जिसके केंद्र में एक व्यापक अष्टकोणीय फव्वारा है, जो एक टैंक से जुड़ा है। संपूर्ण उद्यान की लंबाई-चौड़ाई लगभग 171 फीट है। इसके उत्तर पूर्व में अष्टकोणीय छतरियां निर्मित है जो जालियों से बंद है। उद्यान में आवागमन के लिए तीनों तरफ ढलावनुमा रास्ते बने हुए हैं। यहां गर्मी के मौसम में राज परिवार के सदस्य अपना समय बिताते थे। एक सुंदर बगीचे के साथ आराम मंदिर का यह सुखद दृश्य महाराजाओं की रोमानी दुनिया का स्मरण कराता है।

हम्माम (शाही स्नानागार) : लक्ष्मी विलास के उत्तरी दिशा में स्थित द्वार, हम्माम (शाही स्नानघर) की ओर जाता है। इस स्नानागार का मुख्य भाग 19 फीट चौड़ा तथा 21 फीट लंबा है। स्नानघर में संगमरमर का धंसा हुआ बाथ-टब है जो इसके दोनों तरफ दो टैंकों से जुड़ा हुआ है, उन्हें आवश्यकता के अनुसार ठंडे और गर्म पानी की सुविधा प्रदान करता था। सर्दियों में तापमान के अनुसार गरम पानी बाथ टब में आता था। यहां की दीवारों व फर्श पर लगा संगमरमर पत्थर का भव्य उपयोग इसकी सुन्दरता को और बढ़ा रहा है तथा इसी के निकट एक अन्य कक्ष जो 10 फीट चौड़ा तथा 13 फीट लंबा है। जहाँ टब सहित भाप स्नान की सुविधा भी है। यह कक्ष गर्म पानी के टैंक से जुड़ा है तथा इस टैंक की सतह पर 2 फीट की वृत्ताकार कांसे की प्लेट लगी है। यह कक्ष (केवल एक खिड़की खुली है) चारों ओर से बंद रहता है। जिससे भाप स्नान के लिये भाप को एकत्र किया जा सके।

इसके अलावा इसके सर्दियों में इस भवन को गर्म रखने की सुविधा भी यहां थी। यह मध्यकालीन उच्च तकनीकी दक्षता को दर्शाती है, जिससे यह पूरा भवन सर्दियों में भी गर्म रहता था। इसी परिसर में सामने की तरफ एक छोटा चबूतरा बना है, जहां राजाओं के मनोरंजन हेतु संगीतकार मधुर साज बजाते थे। वे इसे सुनकर इसका आनंद लिया करते थे।

दिवा बुर्ज : जयगढ़ किले में एक रक्षात्मक किले की सभी विशेषताएं मौजूद हैं। इसी का एक उदाहरण है यहाँ स्थित सात मंजिल ऊंचा चतुष्कोणीय 'टॉवर ऑफ लैंप्स' (दिवा बुर्ज) है। इसमें लगभग 101 सोपान है तथा छोटी-छोटी खिड़कियां बनी हुई है। जिससे गुजर कर रोशनी इसमें प्रकाश प्रदान करती है। इसका निर्माण दुर्ग की सुरक्षा, निगरानी एवं प्रकाश प्राप्त करने के लिये किया गया था जहां से किसी भी दुश्मन के राजधानी की ओर बढ़ने की स्थिति में पूरे आमेर राज्य की निगरानी रखी जा सकती थी।

अन्य भवन : इसके अतिरिक्त जयगढ़ के किले में अन्य ऐसे भवन व इमारत भी विद्यमान है, जिनकी स्थापत्यगत कलात्मकता अनूठी है। इनमें कुछ इस प्रकार है - आराम मंदिर के निकट स्थित विलास मंदिर राजपरिवार की महिलाओं के आपस में मिलने जुलने का स्थान था। यह भवन सवाई जयसिंह के काल का माना जाता है। इसमें बनी खिड़कियों से आमेर महल का दृश्य दिखाई देता है। इस कक्ष की दीवारों पर आमेर महल की भांति सुराहियों व प्याले का अंकन देखने को मिलता है।

इसी क्रम में ललित एवं विलास मंदिर के बीच भोजनशाला स्थित है। जयगढ़ किले में पंचदेव प्रतिष्ठापित हैं इसे तिलक की तिबारी कहां जाता है। भोजनशाला के करीब कठपुतली भवन स्थित है, जो 17वीं सदी में बनाया गया था। इसके निर्माण का उद्देश्य मनोरंजन था। कठपुतली कक्ष में ऊपर की ओर दो खिड़कियां बनी है जिसके अंदर कठपुतली नृत्य प्रस्तुत करने वाले बैठकर नृत्य पेश करते थे। उसके ठीक सामने ऊपर नीचे दो कक्ष बने हैं। नीचे वाले कक्ष में राज पुरुष तथा ऊपर वाले में राजघराने की स्त्रियों के बैठने की व्यवस्था थी। जयगढ़ किले के दक्षिण पश्चिमी कोने पर विजयगढ़ नामक एक लघु दुर्ग भी स्थापित है।[16]

निष्कर्ष : जयगढ़ किले का निर्माण चूने एवं बलुआ पत्थर से किया गया है। यह विशाल दुर्ग सैन्य सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत मजबूत व सुदृढ़ बनाया गया है। आमेर से जयपुर नगर में नवीन राजधानी स्थापित हो जाने के पश्चात यहां पर सैनिकों को प्रशिक्षण दिया जाने लगा था। इसके निर्माण में युद्ध के दौरान होने वाले सभी सुरक्षात्मक उपायों व इससे संबंधी सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर पारंपरिक हिंदू शैली के शास्त्रीय विधानों के आधार पर किया गया है। बाद के राजाओं द्वारा मुगल आधिपत्य तथा पारिवारिक संबंधों के कारण इसमें मुगल शैली का समावेश हुआ, जो कि इस किले के कई स्थानों पर परिलक्षित होता है।

इस किले के भीतर मुगल स्थापत्य शैली की विशेषताएं एवं प्रभाव देखने को मिलता हैं। जैसे - लक्ष्मी विलास, सुभट एवं खिलबत निवास के घुमावदार स्तंभों पर आधारित खुली संरचना, जलेब चौक का खुलापन जैसी खुली संरचना मुगल भवनों की सामान्य योजना का स्मरण कराती है। इसके साथ बारादरी के सक्रिय रूप 'इवान' तैमूरिद वास्तुकला से मिलते-जुलते हैं। खंगारोत महोदय का यह कथन कि यह किला विशुद्ध रूप से हिंदू शैली पर आधारित है, पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। किले में स्थित लक्ष्मी विलास के उत्तर में शाही-स्नानागार (हम्माम) की ओर जाता है, यह तैमुरिद प्रेरित मुगल संरचना है, जिसे सर्वप्रथम मुगल बादशाह बाबर द्वारा प्रस्तुत किया गया था तथा अकबर को आगरा और फतेहपुर सीकरी की इमारतों में विरासत के रूप में मिली थी। यह हम्माम और केन्द्रीय ताप नियंत्रण व्यवस्था किले में मुगल प्रभाव का एक प्रभावशाली उदाहरण प्रस्तुत करता है।

ललित मंदिर और आराम मंदिर के ठीक नीचे एक सुंदर उद्यान, जिस पर मुगलों द्वारा विरासत में मिली उद्यानों की एक फारसी परंपरा चाहर बाग पद्धति का प्रभाव परिलक्षित होता है। आराइश के साथ पॉलिश किया गया, सफेद संगमरमर के धारीधार (फ्लुटेड) दोहरे स्तम्भ, पुष्प अंकन के साथ दीवारें और मेहराबे आदि वास्तव में मुगल कला का प्रभाव हैं।

इसके अलावा जाली, झरोखा, आराइश का काम, छत और दीवारों पर पुष्प बनावट आदि राजपूत वास्तुकला की बुनियादी विशेषताएं हैं। इन दोनों शैलियों के समन्वय ने सामूहिक रूप से किले परिसर की इमारतों को एक अद्भुत तथा कलात्मक स्वरूप प्रदान किया हैं। अरावली पर्वत श्रंखला के शिखर पर स्थित यह दुर्ग, कई शताब्दियों से प्राकृतिक प्रकोप व आपदाओं के बावजूद आज भी मजबूती के साथ उत्तम स्थिति में खड़ा हुआ है।

सन्दर्भ

1. वी. एस. भटनागर, सवाई जयसिंह, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. 205-208
2. ए. के. रॉय, हिस्ट्री ऑफ दी जयपुर स्टेट, न्यू देहली, 1978, पृ. 242
3. कवि आत्माराम विरचित सवाई जयसिंह चरित : सं. गोपाल नारायण बहुरा, महाराजा सवाई मानसिंह म्यूजियम, जयपुर, पृ. 77
4. एस. एल. शोवर्स, नोट्स ओन जयपुर, 1916, पृ. 54
5. पंडित गोपाल नारायण बहुरा एंड चंद्रमणि सिंह, कैटलॉग ऑफ हिस्टोरिकल डाक्यूमेंट्स इन कपड़द्वारा, पार्ट 2, मैप एंड प्लान, आमेर, पृ. 34
6. कवि कलानिधि, देवर्षि - श्री कृष्णभट्ट विरचितम : ईश्वरविलास महाकाव्यम, राजस्थान पुरातत्वांवेषण मंदिर, जयपुर, पृ. 29
7. शोधार्थी द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर
8. आर. एस. खंगारोत, पी.एस. नाथावत, जयगढ़, दी इनिंवसिबल फोर्ट, जयपुर, पृ. 79
9. शोधार्थी द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर
10. वही.
11. पूर्वोक्त, आर. एस. खंगारोत, पृ. 54
12. जी. एन. बहुरा एंड चंद्रमणि सिंह, कछवाहा ऑफ आंबेर : दी सिटी ऑफ मदर गोडेस, पृ. 77
13. वही.
14. पूर्वोक्त, शोधार्थी द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन के आधार पर
15. वही.
16. वही.

❑❑

प्रवीण कुमार खासा (शोध छात्र)
डॉ. सत्यवीर यादव (पर्यवेक्षक)
भूगोल विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
रोहतक, हरियाणा

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

सोनीपत जिले में लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का आकलन

सार

विकासशील देशों में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति जानने के लिए सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के अध्ययन लोगों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करते हैं और अध्ययन क्षेत्रों में व्याप्त समस्याओं को हल करने के लिए सुझाव देते हैं। वर्तमान अध्ययन जो 10 सितंबर से 25 अक्टूबर 2021 तक किए गए क्षेत्र सर्वेक्षण पर आधारित है, हमें अध्ययन क्षेत्र के लोगों के जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने में सक्षम बनाता है। प्रत्यक्ष अनुभव यह है कि वे अपनी आजीविका कैसे चलाते हैं, आजीविका और घर के अन्य खर्चों के लिए उन्हें किस तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।अध्ययन के विश्लेषण से पता चलता है कि निवासियों के जीवन की सामाजिक-आर्थिक और समग्र गुणवत्ता संतोषजनक नहीं है क्योंकि अध्ययन क्षेत्र के लोग बहुत गरीब हैं जिनकी शैक्षिक स्थिति खराब है, आवास की सुविधा और कम आय है। इसलिए, आय सृजन और शैक्षिक कार्यक्रम शुरू करने की तत्काल आवश्यकता है और सरकारी प्राधिकरण को अध्ययन क्षेत्र के लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार और वृद्धि पर जोर देना चाहिए।

मुख्य शब्द : सामाजिक-आर्थिक स्थिति, क्षेत्र सर्वेक्षण, सोनीपत।

1. परिचय

विकासशील देशों में सामाजिक आर्थिक स्थिति सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है।सामाजिक-आर्थिक अध्ययन विभिन्न समाजों के लोगों के विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। देश की आजादी के बाद से, 75 से अधिक प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जहां गरीबी और बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है। आर्थिक विकास के लिए,सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के परिवर्तन का विश्लेषण आवश्यक है [1]। इसलिए, यह समय की मांग है कि ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करना और ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त समस्याएं को हल करने के लिए सुझाव सामने रखना [2]। सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ एक व्यक्ति या परिवार की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों का संयुक्त माप होती है। सामाजिक आर्थिक स्थिति को आमतौर पर शिक्षा, सामाजिक वर्ग या आय के रूप में विभिन्न तरीकों से संचालित किया गया है। ग्रामीण से शहरी और ग्रामीण से ग्रामीण प्रवास एक वरदान और अभिशाप दोनों बन गया है [3]। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रवास मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त आर्थिक अवसरों की कमी के कारण होता है। वर्तमान समय में, तकनीकी विकास और बढ़ते हुए नगरीकरण ने लोगों की आर्थिक-सामाजिक स्थितियों में बहुत परिवर्तन किये है। सोनीपत जिला हरियाणा प्रदेश का कृषि प्रधान क्षेत्र रहा है। परन्तु सोनीपत जिला के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का हिस्सा होने के कारण यहाँ के लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थितयों में बहुत परिवर्तन हुआ है। इसीलिये इस अध्ययन के निम्न मूल उद्देश्य हैं—

- जनसांख्यिकी विशेषताएँ के बारे में जानने के लिए

- जिले में शैक्षिक विषमताओं को जानने के लिए
- अध्ययन क्षेत्र लोगों की आर्थिक स्थिति और जीवन स्तर जानने के लिए

2. अध्ययन क्षेत्र

सोनीपत भारत के हरियाणा राज्य की एक बड़ी नगरपालिका है। जिला मुख्यालय सोनीपत में स्थित है। अन्य छोटे शहर गोहाना, गनौर, मुंडलाना, खरखोदा और राय हैं। सोनीपत जिले का कुल क्षेत्रफल 2,260 वर्ग किमी है और इसकी जनसंख्या 10,64,000 (2011) है [4]। सोनीपत जिला 28° 48′15″ से 29° 17′10″ उत्तरी अक्षांश और 76° 28′40″ से 77° 12′45″ पूर्वी देशांतर तक घिरा है। [5] सोनीपत की सीमा दिल्ली और उत्तर प्रदेश राज्यों के साथ-साथ रोहतक, जींद और पानीपत जिलों से लगती है। यमुना नदी जिले की पूर्वी सीमा के साथ बहती हैद्य सोनीपत की जलवायु गर्म गर्मी और कड़ाके की सर्दी के साथ शुष्क है। जिले में वार्षिक वर्षा का 75% मानसून अवधि में लिए होता है [5]। यह क्षेत्र भारत-गंगा के मैदानों का एक हिस्सा है और उत्तर से दक्षिण की ओर सामान्य ढलान के साथ समतल भूभाग प्रदर्शित करता है। मैदान की अधिकतम ऊंचाई समुद्र तल से 230 मीटर है। यह क्षेत्र किसी भी प्रमुख स्थलाकृतिक विशेषताओं से रहित है। जिले की मिट्टी मिट्टी गैर लवणीय हैं, क्षारीयता के खतरे को विशिष्ट यूस्टोक्रेप्ट्स के रूप में वर्गीकृत किया गया है [6]। चित्र 1 में सोनीपत जिले का स्थलीय बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

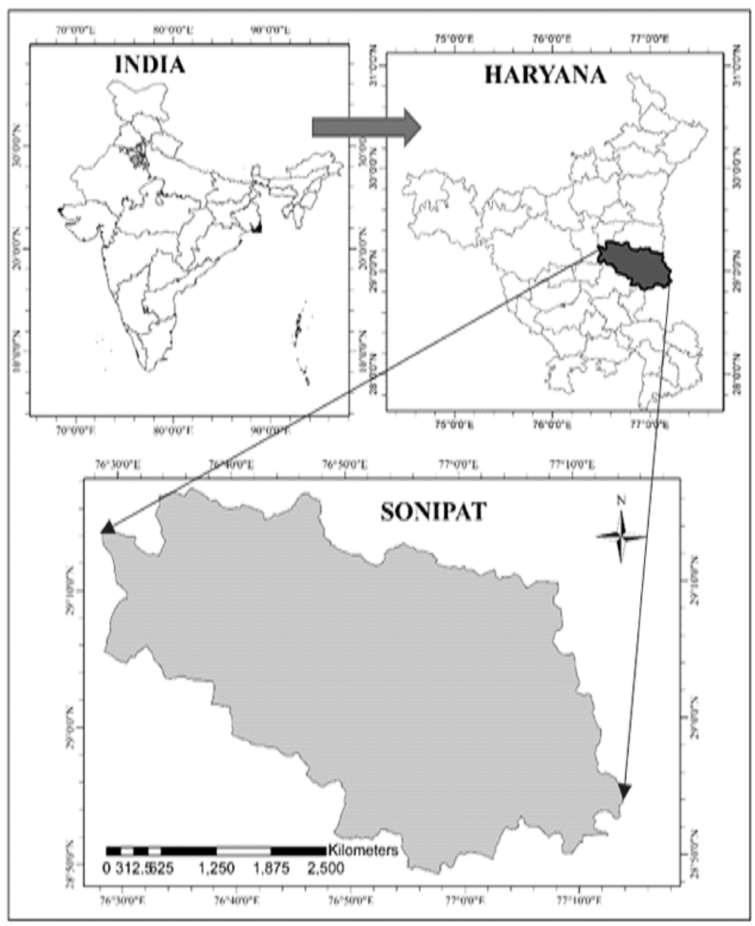

चित्र 1 : अध्ययन क्षेत्र का स्थान मानचित्र

3. आँकड़ा स्त्रोत और कार्यप्रणाली

प्रस्तुत अध्ययन आँकड़ों के प्राथमिक स्त्रोत पर आधारित है। एक घरेलू सर्वेक्षण के माध्यम से 10 सितंबर से 25 अक्टूबर 2021 तक डेटा एकत्र किया गया था। अध्ययन क्षेत्र के सभी घरों का सर्वेक्षण संरचित कार्यक्रम के माध्यम से 100 प्रश्नावली के साथ किया गया था। एकत्र किए गए डेटा जनसांख्यिकी, सामाजिक संरचना, बुनियादी सुविधाओं, कृषि-जलवायु संसाधन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, ग्रामीण संगठनों और लोगों के संस्थानों और विकास के मुद्दों पर हैं। मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों डेटा एकत्र किए गए थे। मात्रात्मक डेटा जनसंख्या, भूमि जोत और साक्षरता दर पर थे। गुणात्मक आंकड़े गांव से प्राप्त पेयजल की गुणवत्ता, सड़क की गुणवत्ता, आवास पैटर्न, स्वच्छता और भोजन की आदत थे। सामाजिक-आर्थिक स्थिति को आकर्षित करने के लिए घरेलू प्रतिक्रिया को वर्गीकृत, सारणीबद्ध और विश्लेषण किया गया था।

4. परिणाम और चर्चा

4.1 जनसांख्यिकीय जानकारी

सर्वेक्षण से, 100 प्रश्नावली की सहायता से कुल 699 व्यक्तियों का डेटा एकत्र किया गया था। अध्ययन क्षेत्र में लगभग 61.8 प्रतिशत व्यक्ति विवाहित हैं और 38.2 प्रतिशत व्यक्ति अविवाहित हैं। 2011 में हरियाणा प्रदेश में लिंगानुपात 879 महिला प्रति 1000 पुरुष था जबकि वर्तमान अध्ययन क्षेत्र का लिंगानुपात सर्वेक्षण के अनुसार प्रति हजार पुरुषों पर 880 महिला था। इससे पता चलता है कि अध्ययन क्षेत्र में महिलाओं की संख्या पिछले वर्षों की तुलना में काफी बेहतर है। जनसांख्यिकी से संबंधित नमूना डेटा की सभी जानकारी तालिका 4.1 और चित्र 4.1 द्वारा दिखाई गई है।

तालिका 4.1 : अध्ययन क्षेत्र की जनसांख्यिकीय जानकारी

	जनसंख्या आंकड़े	**पुरुष**	**महिला**	**कुल**
		356 (51%)	**343 (49%)**	**699**
विवाहित स्थिति	विवाहित (आयु : पुरुष-21 और उससे अधिक, महिला-18 और उससे अधिक)	220 (61.8%)	220 (64.2%)	440 (62.9%)
	अविवाहित	136 (38.2%)	113 (32.9%)	249 (35.6%)
	विधवा	--	10 (2.9%)	10 (1.5%)
शिक्षा की स्थिति	(साक्षर आयु)-7 वर्ष से कम आयु	50	110	160
	प्राथमिक शिक्षा	175	85	260
	माध्यमिक शिक्षा	71	72	143
	वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा	38	48	86
	स्नातक	18	28	46
	स्नातक से ऊपर	04	00	04
आयु वर्ग	7 से नीचे	50	110	160
	8-30	198	155	353
	30 से ऊपर	108	78	186

(स्त्रोत : क्षेत्र सर्वेक्षण)

तालिका 4.1 से पता चलता है कि कुल 699 व्यक्ति हैं जिनमें 51% पुरुष हैं और शेष 49% महिलाएँ हैं। जिसमें 62.9% विवाहित हैं और 35.6% अविवाहित हैं और शेष 1.5% विधवा हैं। ग्रामीणों का शिक्षा स्तर अच्छा नहीं है क्योंकि लगभग 260 व्यक्ति प्राथमिक स्तर तक शिक्षित हैं, 129 व्यक्ति माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा स्तर तक और 50 व्यक्ति स्नातक और स्नातकोत्तर हैं।

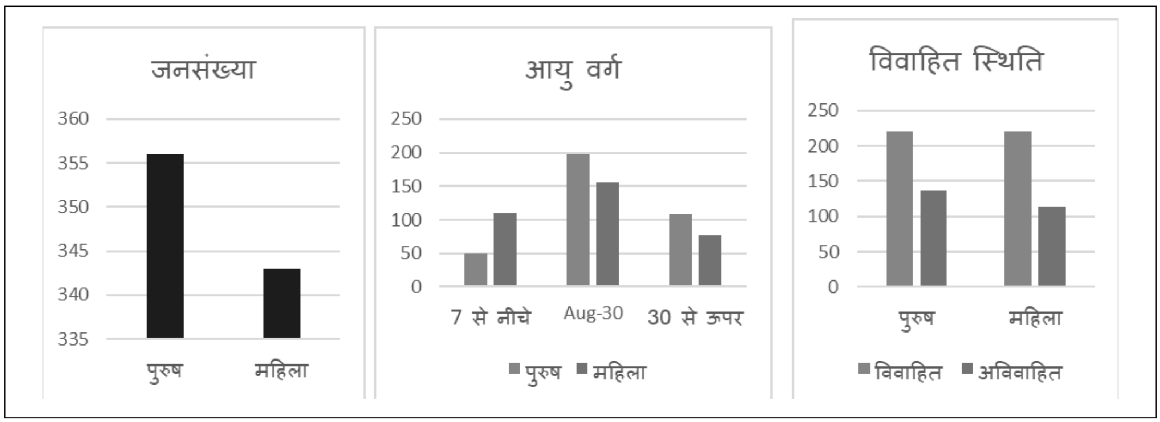

चित्र 4.1 : अध्ययन क्षेत्र की जनसांख्यिकीय जानकारी

4.2 सामाजिक समूह

एक सामाजिक समूह को या अधिक लोगों के रूप में परिभाषित किया गया है जो एक दूसरे के साथ बातचीत करते हैं, समान समान विशेषता और सामूहिक रूप से एकता की भावना रखते हैं। तालिका संख्या 4.2 और चित्र 4.2 अध्ययन क्षेत्र के सामाजिक समूह और उनके घर की संख्या, घर के प्रकार, परिवार के प्रकार और भूमि के आकार के बारे में जातिवार जानकारी प्रदर्शित करते हैं।

तालिका 4.1 : सोनीपत जिले की सामाजिक संरचना की जानकारी

जनसंख्या आंकड़े		परिवार	मकान का प्रकार			भूमि जोत का आकार		
			लकड़ी	सीमेंटेड	मिश्रित	<-3	3-10	>-10
सामाजिक समूह	उच्च जाति	54	3	48	3	19	26	9
	अनुसूचित जाति	09	5	2	2	5	3	1
	पिछड़ी जाति	37	7	28	2	21	9	7
परिवार का प्रकार	संयुक्त	56	जातिवार वार्षिक आय					
				<-2 लाख	2 - 4 लाख	>-4 लाख		
	एकल	44	उच्च जाति	28	16	10		
			अनुसूचित जाति	7	1	1		
			पिछड़ी जाति	23	8	6		
रोजगार की स्थिति	किसान		मजदूर कार्यरत	सरकार	बेरोजगार	निजी सेवाएं		
	398		151	10	90	50		

(स्रोत : क्षेत्र सर्वेक्षण)

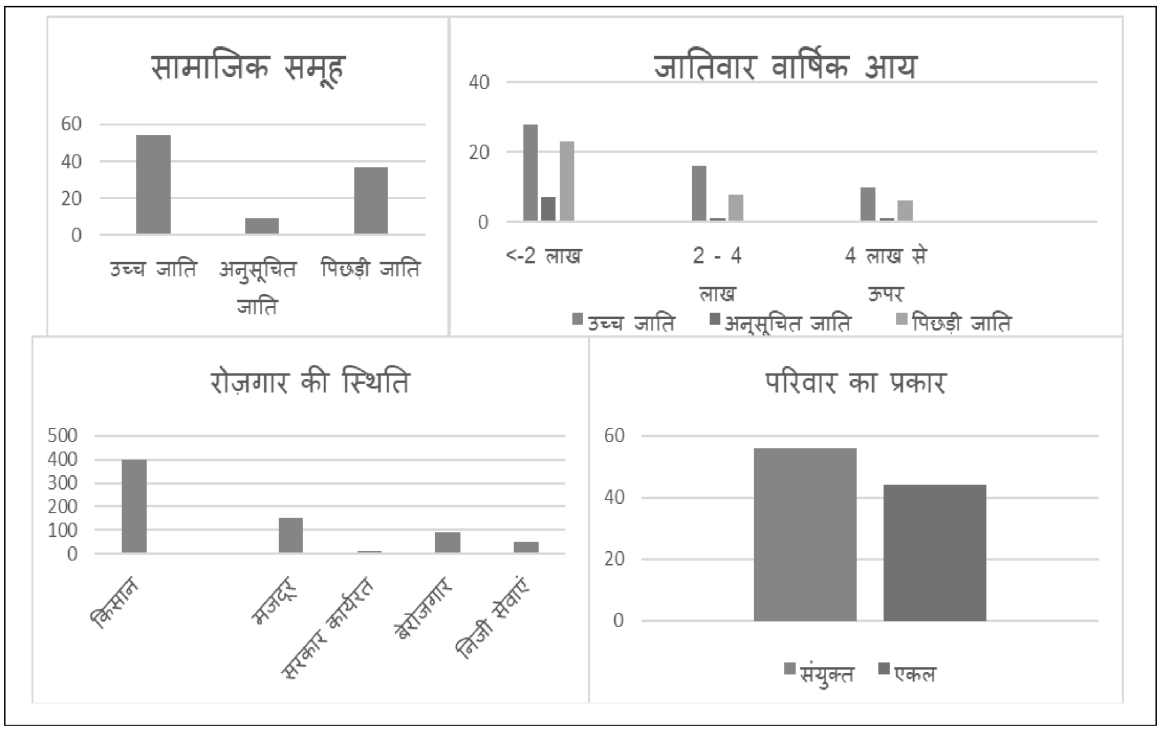

चित्र 4.2 : सोनीपत जिले की सामाजिक संरचना की जानकारी

यह तालिका और आकृति हमें अध्ययन क्षेत्र की सामाजिक संरचना के बारे में बताती है। 55 परिवार उच्च जाति के हैं, 09 परिवार अनुसूचित जाति के हैं और 37 परिवार पिछड़ी जाति के हैं। वर्तमान अध्ययन क्षेत्र में 56 परिवार संयुक्त हैं और 44 परिवार एकल परिवार हैं। अध्ययन क्षेत्र के 45 परिवारों के पास 3 हेक्टेयर से कम, 38 के पास 3–10 हेक्टेयर और 17 के पास 10 हेक्टेयर से अधिक जमीन है। उपरोक्त तालिका के अनुसार 58 परिवारों की वार्षिक आय 2 लाख से कम है, 25 की 2–4 लाख और 17 की 6 लाख से अधिक की आय है। तालिका से ज्ञात हुआ है कि पिछड़े एवं अनुसूचित जाति के अधिकांश परिवारों की वार्षिक आय कम (2 लाख से कम) है, जो उनकी खराब आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। हमारे अध्ययन क्षेत्र में लगभग 398 व्यक्ति कृषि गतिविधियों में शामिल हैं, 151 व्यक्ति मजदूर के रूप में काम कर रहे हैं, 50 व्यक्ति निजी सेवाएं कर रहे हैं, 10 सरकारी कार्यरत हैं। अध्ययन क्षेत्र में लगभग 90 व्यक्ति बेरोजगार हैं।

5. निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन हमें सोनीपत जिले के लोगों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने में सक्षम बनाता है। हमें कई ऐसी बातें पता चलीं जो शायद अध्ययन क्षेत्र का सर्वेक्षण किए बिना संभव नहीं थीं। क्षेत्र सर्वेक्षण के दौरान, मुझे लोगों के जीवन, उनकी जरूरतों और उससे संबंधित विभिन्न गतिशीलता को समझने में मदद मिली। पहला अनुभव यह है कि वे अपनी आजीविका कैसे चलाते हैं, आजीविका और घर के अन्य खर्चों के लिए उन्हें किस तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अध्ययन के विश्लेषण से पता चलता है कि निवासियों के सामाजिक–आर्थिक और समग्र जीवन की गुणवत्ता संतोषजनक नहीं है क्योंकि अध्ययन क्षेत्र के लोग बहुत गरीब हैं जिनकी शैक्षिक स्थिति खराब है, आवास की सुविधा और आय कम है। इसलिए, आय सृजन शुरू करने की तत्काल आवश्यकता है और शैक्षिक कार्यक्रम और सरकारी प्राधिकरण को लोगों के जीवन की गुणवत्ता को सुधारने और बढ़ाने पर जोर देना चाहिए।

संदर्भ

1. वीर, वी., और कुमार, एस. (2018)। हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले के पारशा और बरोर गांवों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का आकलन : एक भौगोलिक विश्लेषण। आकलन, 16(2)।
2. मुस्ताकिम एम, इस्लाम एम। जनसांख्यिकीय और के सामाजिक-आर्थिक लक्षण उदयपुर गांव, मालदा के निवासी जिला, पश्चिम बंगाल। भारतीय धाराएं शोध पत्रिका। 2004;4 : 1-13
3. रटोद जीआर, निंगशेन ए। इंफाल शहर में गरीबी रेखा के परिवार, इंफाल शहर में गरीबी रेखा के नीचे के शहरी सामाजिक-आर्थिक स्थिति का माप, मणिपुर; एक आजीविका अध्ययन। अंतरराष्ट्रीय मार्केटिंग, वित्तीय सेवाओं का जर्नल और प्रबंधन अनुसंधान। 2012;1(12) : 62-69.
4. भारत की जनगणना (2011) : प्राथमिक जनगणना सार, हरियाणा, श्रृंखला 7, तालिकाएँ - A5 - A8, जनगणना संचालन निदेशालय, हरियाणा।
5. कुमार, एस., और सांगवान, आर.एस. (2013)। शहरी विकास, भूमि उपयोग परिवर्तन और सोनीपत शहर में सिटीस्केप पर इसका प्रभाव रिमोट सेंसिंग और जीआईएस तकनीकों का उपयोग, हरियाणा, भारत। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिमोट सेंसिंग एंड जीआईएस, 2, 326-332।
6. भूजल सूचना पुस्तिका, सोनीपत जिला, हरियाणा केंद्रीय भूजल बोर्ड, जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार, उत्तर पश्चिमी क्षेत्र, चंडीगढ़, 2013

❑❑

अमित पाण्डेय (शोध छात्र, विधि)
महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी
नोएडा, उ.प्र.
अँशुल पाण्डेय (शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र)
रविन्द्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी, रायसेन, म.प्र.

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में विधि

शोध सार

लोकतन्त्र में सामाजिक परिवर्तनों की योजना, व्यवस्था एवं प्रबन्ध के लिए हम विधि के औपचारिक माध्यम पर निर्भर हो सकते हैं। वास्तव में सामाजिक परिवर्तन अनेकानेक कारकों का उत्पाद है। सामाजिक कृत्य लोगों की भागीदारी, आर्थिक विकास, सामूहिक व्यवहार, सामाजिक संस्थाओं के प्रयास लोकतान्त्रिक नितियों, राष्ट्रीय लक्ष्य एवं विधिक व्यवस्था की कार्य प्रणाली, सामाजिक परिवर्तनों को प्रारम्भ करती है तथा उन्हें प्रभावी बनाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विधि की भूमिका एकान्तिक नहीं है। इसकी जड़े ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक कारकों तक विस्तृत है। विधि और समाज के समागम को जानने के लिए अन्तविषयक विश्लेषणों से बचा नहीं जा सकता। यह भी समझ लेना आवश्यक है कि विधि राज्य- शक्ति का कोई तटस्थ उपकरण नहीं है फिर भी यह सर्वाधिक वस्तुनिष्ठ है। लोगों की आशाओं से इसका उद्भव नैतिक सरोकारों की इसकी पृष्ठभूमि, न्याय प्रदत्तीकरण के लिए इसका संकल्प तथा लोगों के कल्याण के लिए इसके द्वारा किए जाने वाले सुधार विधि को सामाजिक परिवर्तन का अति आवश्यक कारक बना देते हैं।

प्रस्तावना

भारतवर्ष के सन्दर्भ में भारतीय समाज की विशालता, धर्म, भाषा, जाति, वर्ग, संस्कृति, इतिहास और भूगोल की वैविध्यताओं आधुनिकीकरण की चुनौतियों एवं विरोधाभाषी विकारों के कारण विधि और सामाजिक परिवर्तन को जानना जटिल है। विधि और समाज की उपरोक्त विशालता, वैविध्यता एवं चुनौतियों के कारण संवदेनशील हो गई है जिनका परिवर्तन के प्रबन्धकों को ध्यान में रखना आवश्यक है। विधिक व्यवस्था को नये युग के कल्याणकारी एवं गणतन्त्रात्मक आदर्श एवं मूल्यों के अनुसार सामाजिक परिवर्तनों में सहायक होना चाहिए। विधिक व्यवस्था न केवल परिवर्तनों की निगरानी कर सकती है बल्कि समाज में स्थान दिलाने के लिए उचित दबाव भी डाल सकती है। विधिक व्यवस्था द्वारा इस सन्दर्भ में पुरानी और नयी दोनों प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है।

इसका उद्देश्य है कि हम सब सामाजिक परिवर्तन और विधि की अन्तर्क्रिया को जान सके समझ सके।

विवरण

विधि किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में कार्य करती है। इसका उद्देश्य निम्न है—

1. **सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में विधि:** सर्वविदित है कि आदिमानव ने अपने हितों की रक्षा के लिए समुदायों में रहना प्रारम्भ किया। सामुदायिक जीवन की समस्याओं से निपटने के लिए संभवत: समझौते के माध्यम से राज्य या सम्प्रभु और विधि का जन्म हुआ इसे हम सामाजिक समझौते का सिद्धान्त मान सकते हैं। राज्य के पास विधि नामक सशक्त

एवं प्रभावी उपकरण सौपा गया जिससे समाज में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की जा सके तथा सभी को न्याय मिले। राज्य विधि के माध्यम से समाज में रहने वाले लोगों को संचालित करने लगा। लोगों द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन किया जाए इसकी निगरानी के लिए विधि की व्यवस्था की गई। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि यह सुनिश्चित करना राज्य और राज्य की जिम्मेदारी थी कि लोग अपने कर्तव्य पालन में असफल न हो जायें। स्पष्ट है कि विधि रूपी उपकरण का जन्म समाज में, समाज द्वारा समाज पर नियंत्रण रखने के लिए हुआ, जिसका प्रयोग राज्य या सम्प्रभु शक्ति द्वारा किया जाता था। प्राकृतिक विधि विचारधारा के अनुसार विधि का उद्भव प्राकृतिक रहा है। प्राकृतिक विधि विचारकों ने विधि को उन महान नियमों के रूप में देखा जो या तो दैवीय थे या मानवीय विवेक पर आश्रित प्राकृतिक तौर पर उपजे थे। सिसरों ने कहा कि सच्ची विधि सही विवेक है जो प्रकृति के संगत होती है, सार्वजनिक रूप से लागू होती है अपरिवर्तनशील तथा शाश्वत होती है। वह अपने समादेशों द्वारा कर्तव्य पालन तथा प्रतिबन्धों द्वारा अकृत से दूर रखती है। प्राकृतिक विधि की परिवर्तनशीलता ने मानवीय विधि के समाज के अनुरूप परिवर्तनों को बाधित नहीं किया अपितु विधि के मूल गुणों को भी बनाये रखा। विधि सतत् सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करती है। काण्ट ने मानवीय समुदाय को उद्देश्यों के ऐसे साम्राज्य के रूप में देखा जहां प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता अन्य सभी व्यक्तियों की स्वतन्त्रता के साथ सम्मान पाती है। आधुनिक प्राकृतिक विचारक जान राल्स ने मूल ढाँचे के अन्दर, परिवर्तन को स्वीकार किया है।

उपयोगितावाद विधि की एक अन्य विचारधारा है जो विधि के कार्यों और उद्ददेश्यों पर प्रकाश डालते हैं। बेंथम के अनुसार लोक कल्याण या अच्छाई प्रत्येक विधि निर्माता का उद्देश्य होना चाहिए तथा सामान्य उपयोगिता प्रत्येक कारण का आधार होनी चाहिए उपयोगिता वस्तु का वह गुण है जो बुराई को दूर करता है और अच्छाई उपलब्ध करता है। उपयोगिता से तात्पर्य सार्वाधिक लोगों का सर्वाधिक सुख था। बेंथम के व्यक्तिगत उपयोगितावाद से हटकर इहरिंग ने सामाजिक उपयोगितावाद बल दिया। उनके अनुसार सामाजिक उपयोगितावाद का अधिक ध्यान उद्देश्यों के विरोध को दूर करना होता है। आपसी संबंधों को नियंत्रित करते हुए व्यक्तिगत और समाजिक उद्देश्यों में संतुलन बनाना चाहिए। विधि वह माध्यम है जिसके द्वारा संतुलन स्थापित कर के समाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। प्रत्येक विधिक व्यवस्था का लक्ष्य सामाजिक जीवन की उन शर्तों का संरक्षण करना है जो किसी निश्चित समाज द्वारा निश्चित समय में व्यक्तियों द्वारा आवश्यक समझी गई है[1]। डिगविट के अनुसार विधि का कार्य सामाजिक समेकता का संवर्धन है और इसकी वैधता सामाजिक अव्यस्था का तात्पर्य है कि क्योंकि मानवीय अस्तित्व के लिए सामाजिक अन्तर्निर्भरता एक अपरिहार्य तथ्य है इसलिए सभी संस्थानों और कृत्यों को लोगों के मध्य सहज तथा पूर्ण सहयोग की ओर प्रेरित होना चाहिए। सामाजिक समेकता रूपी विधि का उद्देश्य इतना अधिक श्रेष्ठ व लोगों की अन्तरात्मा से जुड़ा हुआ है कि यह विधि निर्माता की शक्ति को भी सीमित कर सकता है।

20वीं शताब्दी में अमरीकी विधिशास्त्री रास्को पाउण्ड ने विधि के सामाजिक उद्देश्यों और कार्यों पर बल दिया। मनुष्य की इच्छाओं और अपेक्षाओं का विधि द्वारा सर्वेक्षण, चुनाव, मूल्यांकन समेकन और संतुलन किया जाना चाहिए। पाउण्ड ने विरोधी हित के सामाजिक अभियंत्रीकरण का उद्देश्य ऐसी समर्थ सामाजिक संरचना का निर्माण है जो सर्वाधिक आवश्यकताओं की संतुष्टि न्यूनतम तनाव या विरोध के साथ करती है। सामाजिक अभियंत्रीकरण के सिद्धान्त में विधि द्वारा अपनाई जाने वाली एक प्रक्रिया है जिसमें विधि विरोधी हितों में इस प्रकार संतुलन स्थापित करती है कि सर्वाधिक आवश्यकताओं की पूर्ति न्यूनतम विरोध के साथ हो सके। हितों से तात्पर्य उन दावों या आवश्यकताओं से है जिनके लिए यदि समाजों को टिके रहना तो विधि को आवश्य ही कुछ न कुछ करना चाहिए उन्होंने हितों को व्यक्तिगत लोग और समाजिक श्रेणियों में विभक्त किया व्यक्तिगतहित के उदाहरण व्यक्ति स्वतंत्रता आर्थिक अधिकार लोकहित के उदाहरण राज्य तथा विधिक व्यक्तित्व व्यक्तित्वहित को उदाहरण सामान्य सुरक्षा तथा सामान्य नैतिकता आदि है। पाउण्ड के अनुसार विधि एक सामाजिक दृश्य घटना है[2]।

मार्क्स का विचार है कि विधि दमन का उपकरण है। हमें विधि के दुरूपयोग के संबंध में चेतावनी देता है। प्रत्येक के क्षमता और योग्यता के अनुसार तथा प्रत्येक को आवश्यकता के अनुसार, सूक्ति के द्वारा जहाँ संसाधनों के पुनर्वितरण की बात की गई है वहाँ भी विधि की आवश्यकता है। ऐसी सूक्ति के लागू करने में विधि एक सामाजिक प्रयोजनकारी उपरकरण

के रूप में उभरता है। मार्क्स का मत है कि विचार कि यदि उपरोक्त उद्देश्य प्राप्त हो जाए तो विधि की आवश्यकता न रहे, काल्पनिक प्रतीत होता है।

विश्लेषणवादी विचारधारा विधि को सम्प्रभु के आदेश के रूप में देखती है जिसके पीछे शक्ति है। ऐतिहासिक विचारधारा के अनुसार विधि समुदाय के लोगों की चेतना उत्पाद है। यथार्थवादी विचारक विधि का उद्भव न्यायालयों की प्रक्रिया में देखते है। राज्य की शाक्ति का बल, लोगों द्वारा इसकी स्वीकारिता तथा न्यायालय की प्रक्रिया द्वारा समर्थन विधि की ओर प्रभावी उपकरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विधि एक सामाजिक उपकरण है तथा वह सामाजिक परिचालन, सामाजिक संरक्षण, सामाजिक संवर्धन, सामाजिक अभियंत्रण, सामाजिक परिवर्तन आदि अनेकानेक कार्यों को संपादित करती है[3]।

2. विधिक व्यवस्था : विधि एक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करती है। आधुनिक काल में लगभग प्रत्येक देश में विधिक व्यवस्थायें है। सभी विधिक व्यवस्थाओं का मूल ढाँचा लगभग एक सा ही होता है परन्तु सामाजिक विभिन्नताओं और आवश्यकताओं के अनुसार उनका कलेवर बदलता रहता है। जैसे भारत में दहेज तथा सती जैसी प्रथाओं का विधि प्रतिरोध करती है जबकि ऐसे अपराध संसार के अन्य देशों में अस्तित्व नहीं रखते। विधिक व्यवस्थाओं के मूल ढाँचे में समानता पाए जाने का कारण उनके प्रयोजन की एकात्मकता है। भारतीय विधिक व्यवस्था के शीर्ष पर संवैधानिक आदर्श और उद्देश्यों का समर्थन करती है। समाज की परिवर्तित आवश्यकताओं के अनुरूप इन विधियों ने संशोधन होता रहता है तथा नई विधियों का निर्माण भी होता रहता है जैसे हाल ही में बहस चल रही है कि समलैंगिकता को अपराध के रूप में दण्डित नहीं किया जाना चाहिए[4]।

विधि के मुख्यत: तीन स्रोत है विधायन, न्यायिक निर्णय और रूढ़ि जिन के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण रखा जाता है तथा सामाजिक परिवर्तनों के सन्दर्भ में व्यवस्था की जाती है। विधिक व्यवस्था में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार से लोगों की भागीदारी रहती है। इसको तकनीकी भाषा में लोकमत कहते हैं। लोकमत के समर्थन के बिना सामाजिक परिवर्तन में विधि की भूमिका अप्रभावी ही रहती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विधि का उपकरण एक पूरी सुदृढ़ व्यस्था के अंतर्गत कार्य करता है जिसमें संविधान सारभूत और प्रक्रिया विधि, न्यायिक निर्णय, रूढ़ियाँ, लोकामत मानकों का प्रवर्तन, विधायिका, न्यायपालिका, न्यायाधीश, विधायक अधिकारों आदि अपनी महत्वपूर्ण भूमिकायें निभाते हैं।

3. विधि और सामाजिक परिवर्तन की अन्तक्रिया : विधि समाज का उत्पाद है और सामाजिक परिवर्तन का संबंध परस्पर एवं बहुआयामी है। जस्टिस कोका सुब्बाराय के अनुसार विधि और सामाजिक परिवर्तन के मुख्यत: निम्न संबंध संभव है[5]—

(क) सामाजिक परिवर्तन विधि से स्वतन्त्र होता है। यह एक प्रकार से संबंध की अनुपस्थिति है। तात्पर्य यह है की कुछ प्रकार के सामाजिक परिवर्तनों में विधि का योगदान शून्य होता है। किन्तु विधि से पृथक परिवर्तन के प्रारंभिक चरणों में ही दृष्टिगोचर होता है। यदि परिवर्तन को स्थायित्व प्रदान करना है तो बाद के चरणों में विधि का समर्थन आवश्यक हो जाता है।

(ख) **सामाजिक परिवर्तन विधि के विरूद्ध होता है** : समाज में कई बार विधि के विरूद्ध की सामाजिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। यह परिवर्तन इतना अधिक प्रबल होता है कि विधि का पुनर्निमाण आवश्यक हो जाता है। जैसे भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 के प्राविधान के अनुसार समलैगिंकता एक अपराध है। परन्तु भारतीय समाज में भी संसार के अन्य समाजों के समान समलैगिकों की संख्या एवं इस प्रकार के व्यवहार की प्रकृति बढ़ रही है। यह सामाजिक परिवर्तन इतना तीव्र है कि समलैंगिकता को अपराध की कोटि से निकाल

दिया जाए। समलैंगिकता को एक सामान्य व्यवहार मान लिया जाए। इस प्रकार भारतीय दण्ड संहिता की धारा 377 के संशोधन पर विचार विमर्श हो रहा है।

(ग) **विधि सामाजिक परिवर्तन को सुसाध्य बनाती है :** विधि के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन को साधना सरल हो जाता है। विधि की प्रवर्तन कारिता, प्राधिकारिता एवं इसके नियमों के अपालन में दण्ड का भय आदि गुण परिवर्तन की निश्चितता प्रसार एवं दिशा तय करने में सहायक होते हैं। विधिक व्यवस्था ऐसा वातावरण बना देती है कि परिवर्तन संभव हो जाता है[6]।

(घ) **सामाजिक परिवर्तन और विधि मिल कर कार्य करते है :** इस संबंध के अंतर्गत विधि एवं सामाजिक परिवर्तन परस्पर प्रवर्तनीय होते हैं। ये समेकित जोड़े के रूप में कार्य करते हैं। सामाजिक मानकों मे परिवर्तन लाने के लिए दोनों ही मिल जुलकर प्रयास करते हैं। भारत में सामाजिक रूपान्तरण के लिए भारतीय संविधान संकल्पबद्ध है। संविधान इस हेतु राज्य एवं इसके तीनों अंगों अर्थात् व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका को रेखांकित करता है। नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक तत्व सामाजिक परिवर्तन के दिग दर्शन एवं आधारभूत तत्तवों के समान है।

(ङ) **सामाजिक परिवर्तन लाने में विधि की योग्यता एवं समर्थ्य :** विधि में कुछ ऐसे भी लक्षण है जो विधि के परिवर्तन लान की सामर्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। जैसा कि विधि में स्थायित्व और सुरक्षा का अत्यक्षिक आग्रह है। स्थायित्व बनाये रखने के प्रयास में सामाजिक विकास को अनदेखा किया जा सकता है। असुरक्षा का भय विधायक को नये परिवर्तन लाने में हतोत्साहित कर सकता है। लेकिन विधि में कुछ ऐसी विधिक तकनीकों का विकास किया गया है जो विधिक आदर्शों एवं सामाजिक यथार्थता के अन्तर को कम करने में सहयोग दे रही है[7]।

रास्को पाउण्ड के अनुसार विधि को स्थायी होना चाहिए फिर भी यह स्थिर खड़ी नहीं रह सकती। यह विचार दो विरोधी आवश्यकताओं के सुलह और समेकन पर बल देता है। विधि को स्थायी होना आवश्यक है जिससे लोगों को स्थापित नियमों का ज्ञान रहे, उन्हें शान्ति, सुव्यवस्था, सुरक्षा न्याय की प्राप्ति हो सके। विधि में स्थायित्व विधिक व्यवस्था के अस्थित्व में होने का आधार है और एक विधिक संस्कृति को जन्म देता है। दूसरी तरफ समय के अनुसार समाज बदलता है, उसकी आवश्यकतायें बदलती है। सामाजिक विकास के प्रति उत्तर और समस्याओं के निपटारे के लिए विधि को भी नया कलेवर धारण करना पड़ता है। प्राचीन विधि से हम केवल रूपरेखा ग्रहण कर सकते हैं, नवीन परिस्थितियों में नयी परिभाषाओं को गठने का विधि पर भारी दबाव और दायित्व होता है। इसलिए परिवर्तन अवश्यंभावी हो जाता है। व्यक्तिगत और लोकहित भी जो अक्सर विरोधी होते हैं। विधि द्वारा सामाजिक परिवर्तन की समार्थ्य को प्रतिकूलता से प्रभावित करते हैं। विधि का विनियमन दोनों प्रकार के हितों के संतुलन की ओर निर्देशित होता है। परन्तु कभी-कभी स्थिति विकट हो जाती है और विधि को एक हित के ऊपर दूसरों को प्राथमिकता देनी पड़ती है। जैसे आय कराधान की प्रक्रिया विवरणात्मक न्याय की दृष्टि से उचित है परन्तु यह व्यक्तिगत हित के मूल्य पर ही संभव है। यहाँ लोकहित को प्रमाणिकता दी गई है।

शोध-सारांश

इस प्रकार संक्षेप में विशेषण भारत के सन्दर्भ में भारतीय समाज की विशालता, भाषा, जाति, धर्म, वर्ग, संस्कृति, इतिहास एवं भूगोल की वैविध्यताओं, आधुनिकीकरण की चुनौतियों एवं विरोधाभाषी विचारों के कारण, विधि एवं सामाजिक परिवर्तन को समझना जटिल है। विधिशास्त्र की प्रकृति ऐतिहासिक, यथार्थवादी तथा विशेषकर समाजशास्त्री विचारधारा यह स्वीकार करती है कि विधि का कार्य महत्वपूर्ण है। विधि का मुख्य कार्य प्रत्यक्षत: समाज में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना है, परन्तु अप्रत्यक्षत: सामाजिक परिवर्तन भी इसका कार्य है। वर्तमान समय में विधि को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त उदाहरण माना जाता है।

सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं जैसे शैक्षिक, प्रौद्योगिकीय, जनसांख्यिक, वैचारिक, आर्थिक, नीतियाँ राजनीतिक बदलाव, विधि नियमों व संस्थाओं में उत्परिवर्तन, युद्ध, विद्रोह, उपनिवेशवाद, लोक गतिविधियाँ और जन आन्दोलन आदि। विधि एवं सामाजिक न्याय का गहरा संबंध है। समाज कल्याण के लिए होने वाले परिवर्तनों का ही विधि समर्थन करती है।

विधि और सामाजिक परिवर्तन में सहयोगात्मक संबंध है। विस्तृत तौर पर सामाजिक परिवर्तन के तीन सैद्धान्तिक प्रतिमान है—सर्वसम्मत, विरोधमत और एकीकृत तीनों में ही विधि की अलग-अलग प्रकार की भूमिका को स्वीकारा गया है। सर्वसम्मत प्रतिमान की दृष्टि से विधि को समाज में होने वाले परिवर्तनों का सूक्ष्मता से अध्ययन करने के उपरान्त उसका अनुसरण करना चाहिए। विरोधमत प्रतिमान को अनुसार विधि के भूमिका आमूलचूल परिवर्तन को हस्तक्षेप करके प्रवर्तित किए जाने की होनी चाहिए अर्थात् राज्य की विधि के माध्यम से परिवर्तन की दिशा तय करनी चाहिए। एकीकृत प्रतिमान समाज में सहमति विरोध एवं सहसंवाद के द्वारा सामाजिक परिवर्तन की वकालत करता है। इसमें विधि की भूमिका तब प्रारम्भ होती है जब परिवर्तन की आधारभूमि तैयार हो चुकी है।

विधि और सामाजिक परिवर्तन का संबंध परस्पर एवं बहुआयामी है। विधि सामाजिक परिवर्तन को सुसाध्य बनाती है। सामाजिक परिवर्तन और विधि परसपर मिल-जुलकर कार्य करती है।

विधि द्वारा सामाजिक परिवर्तन को अनेक लाभ है तथा इसकी सीमायें भी है। विधि द्वारा सामाजिक परिवर्तन अधिक व्यवस्थित, जागरूक, तार्किक युक्तियुक्त शान्तिपूर्ण एवं सामाजिक संवाद पर आधारित होता है। विधि समुदाय की सामान्य इच्छा को व्यक्त करती है। विधि का नैतिकता की ओर झुका और सहमत लोगों को इसका पालन करने के लिए बाध्य करती है। विधि पालन के पीछे दण्ड तथा शक्ति भी होती है। विधि केवल बाह्य परिवर्तन ला सकती है, आन्तरिक नहीं।

सन्दर्भ

1. संगम लाल पाण्डेय (2020), ''नीतिशास्त्र'', भार्गव प्रकाशन, पृष्ठ 60-92
2. अनिरूद्ध प्रसाद (2018), ''विधिशास्त्र के मूल सिद्धान्त'', ईस्टर्न बुक कंपनी, पृष्ठ 20-45
3. सुभाष सी. कश्यप (2022), ''भारत का संविधान'', पृष्ठ 30-42
4. जय नारायण पाण्डेय (2020), ''भारत का संविधान'', सेंट्रल लॉ एजेंसी, पृष्ठ 90-115
5. श्यामलाल वर्मा (2018), ''लॉ एण्ड सोशल ट्रान्सफार्मेशन'', इंडिया प्रकाशन कंपनी, पृष्ठ 9-35
6. मुखर्जी एवं अग्रवाल (2022), ''सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक परिवर्तन'', एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, पृष्ठ 70-82
7. जे.पी. सिंह (2016), ''सामाजिक परिवर्तन'', पी एच आई पब्लिकेशन, पृष्ठ 79-85

❑❑

राजीव वर्मा (शोधार्थी, राजनीति विज्ञान)
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल यूनिवर्सिटी, हिसार (हरियाणा)
डॉ. तिलक राज आहुजा (शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र)
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल यूनिवर्सिटी, हिसार (हरियाणा)

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

हरियाणा प्रदेश की चुनावी राजनीति के संदर्भ में मतदान व्यवहार का बदलता स्वरूप

सार

सैंकड़ों वर्षों से एक संस्थान के रूप में शासन की विभिन्न शैलियों में लोकतंत्र को सरकार का सर्वोत्तम रूप माना जाता रहा है। इसका अर्थ है कि चुने हुए लोग ही शासन के अधिकारी हैं। लोकतंत्र वास्तव में शासन का वह स्वरूप है जिसमें बहुमत ही तय करता है कि उन पर किसे और कैसे शासन करना है। 1 नवंबर 1966 को भारत के 17वें राज्य के रूप में आस्तित्व में आने के पश्चात से हरियाणा में अभी तक 14 विधानसभा चुनाव संपन्न हो चुके हैं। सन् 1966 की प्रथम विधानसभा से लेकर सन् 2019 की चौदहवीं विधानसभा तक हरियाणा प्रदेश की चुनावी राजनीति ने तथा यहाँ के मतदाताओं ने मतदान व्यवहार के बदलते हुए अनेकों स्वरूप देखे हैं। इन विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन जहाँ एक तरफ आम मतदाता के राजनीतिक ज्ञान में वृद्धि करता है, वहीं पर विभिन्न राजनीतिक दलों, नेताओं व विद्वानों को हरियाणा प्रदेश की चुनावी राजनीति व यहाँ के मतदान व्यवहार को भी समझने में भी अत्यंत सहायक सिद्ध होता है। अत: इस वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य हरियाणा प्रदेश की राजनीति के सन्दर्भ में मतदान व्यवहार के बदलते स्वरूप का अध्ययन करना है।

मूल शब्द : राजनीति, चुनाव, विधानसभा, हरियाणा, मतदान व्यवहार, सत्तारूढ़ पार्टी, लोकतंत्र, विपक्ष, सरकार, शासन, मतदाता।

भूमिका

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता के समय हरियाणा संयुक्त पंजाब प्रांत का ही एक हिस्सा था। हुकुम सिंह समिति की सिफारिश के आधार पर पंजाब पुनर्गठन विधेयक पारित किया गया तथा 1 नवंबर 1966 को हरियाणा का एक अलग राज्य के रूप में जन्म हुआ। उस समय इसमें केवल 7 जिले थे तथा श्री धर्मवीर हरियाणा के प्रथम राज्यपाल व पंडित भगवतदयाल, शर्मा हरियाणा के प्रथम मुख्यमंत्री बने। सन् 1967 के प्रारंभिक विधानसभा चुनावों से लेकर सन् 2019 के चौदहवें विधानसभा चुनावों तक हरियाणा में लोकतंत्र ने एक बहुत लंबा सफर तय किया है। इन प्रथम से लेकर वर्तमान की चौदहवीं विधानसभा चुनावों तक हरियाणा के मतदाताओं के मतदान व्यवहार में व इसके स्वरूप में निरंतर बदलाव आता रहा है। जहाँ कभी मतदाताओं ने किसी लहर पर सवार होकर मतदान किया तो कभी मतदाताओं ने किसी विशेष चुनावी नारे से प्रभावित होकर मतदान किया है। चौधरी बंशीलाल, चौधरी देवीलाल तथा चौधरी भजनलाल ने अपने व्यक्तित्व, अपनी नीतियों तथा अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ से हरियाणा की राजनीति को लालों की राजनीति के रूप में समस्त भारत में एक अलग ही पहचान दी है। हरियाणा की विभिन्न विधानसभा चुनावों में मतदाताओं के मतदान व्यवहार के बदलते हुए स्वरूप का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1967 (प्रथम विधानसभा)—एक नव गठित राज्य के रूप में यह चुनाव हरियाणा के प्रथम विधानसभा चुनाव थे। एक नए राज्य में एक नई राजनीतिक सत्ता को स्थापित करने के लिए आम मतदाता में अत्याधिक उत्साह था। 17 फरवरी 1967 को मतदान हुआ तथा उस समय केवल मुख्य दो दल कांग्रेस और जनसंघ थे तथा कुल 81 में से कांग्रेस ने 48 सीटें हासिल कर बहुमत हासिल किया व श्री भगवतदयाल शर्मा हरियाणा के प्रथम मुख्यमंत्री बने व यहीं से हरियाणा में दल बदल की शुरूवात हो गई। पंडित भगवत दयाल शर्मा अपनी कुर्सी न बचा पाए व मतदाताओं को समझ आ गया कि एक प्रचंड बहुमत के बिना हरियाणा में स्थाई सरकार का निर्माण नहीं हो सकता।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1967 (द्वितीय विधानसभा)—इस विधानसभा में कुल 81 सीटें थी। कुल 66 सीटें सामान्य वर्ग की व 15 सीटें आरक्षित थी। पहली बार मतदाताओं में महिला उम्मीदवारों के रूप में नए नेता चुनने के प्रति भी गजब का उत्साह था। इसी कारण 44.82 प्रतिशत महिलाओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया। इन चुनावों से ही राजनीति दलों में विभाजन की शुरूआत हुई व जोड़-तोड़ कर राव वीरेन्दऊसिंह हरियाणा के मुख्यमंत्री बने व मतदाताओं को अहसास हुआ कि राजनीतिक नेता अपनी मर्जी से कभी भी पलटी भी मार सकते हैं।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1968 (तृतीय विधानसभा 1968-1972)—इस विधानसभा के सदस्यों की संख्या 81 थी। कांग्रेस 48 सीटों के साथ सबसे बड़े दल के रूप में उभरी तथा चौधरी बंशीलाल हरियाणा के मुख्यमंत्री बने। इसी समय हरियाणा में पहली बार जनगणना हुई व हरियाणा देश का पहला राज्य बना जहां हर गांव तक बिजली पहुँची। मतदाता जहां एक ओर विकास व सुशासन के नारों से पहली बार प्रभावित हुए वही उन्होंने राजनीति के दलबदल के रूप में एक घिनौने सच को देखा व इससे सबक लिया।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1972 (चौथी विधानसभा, 1972-1977)—अस्थायी शासन से मुक्त होने के लिए व एक नए जनादेश के लिए मतदाताओं ने बढ-चढ कर मतदान किया। भारत पाकिस्तान के युद्ध ने मतदाताओं के मतदान व्यवहार को प्रभावित किया। पहली बार मतदाताओं पर जातिवाद व क्षेत्रवाद ने अत्याधिक प्रभाव डाला व इसे चौधरी बंशीलाल व देवीलाल के मध्य चौधर की लड़ाई के रूप में देखा गया। कांग्रेस ने 52 सीटें जीत कर बहुमत हासिल किया व फिर श्री बनारसी दास गुप्ता राज्य के मुख्यमंत्री बने।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1977 (पांचवी विधानसभा, 1977-1982)—इस समय हरियाणा की विधानसभा सदस्य संख्या 90 थी। जनता पार्टी ने 90 में से 75 सीटों को जीतकर बहुमत हासिल किया। चौधरी देवीलाल ने प्रारम्भ में मुख्यमंत्री के रूप मे शपथ ली, जिन्हें हरियाणा में ताऊ देवीलाल के नाम से जाना जाता है। एक अनोखे घटना क्रम में चौधरी भजनलाल अपने 40 विधायकों के साथ काग्रेस में शामिल हो गए व हरियाणा के मतदाताओं ने आया राम- गया राम के रूप में राजनीतिक दलबदल को देखा व सबक लिया की राजनीति में कोई भी स्थाई शत्रु या मित्र नही होता है।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1982 (छठी विधानसभा, 1982-1987)—मतदाताओं को रिझाने के लिए मुख्यमंत्री भजनलाल ने कई लोकप्रिय घोषणाएं की। हरियाणा में बंशीलाल और भजनलाल दो अलग अलग गुट थे। जाति के आधार पर मतदाता एकत्रित हो रहे थे तथा पंजाबी समुदाय अपने लिए अलग सीटो की माँग कर रहा था। मतदाता भी क्षेत्र, जाति, भाषा तथा विकास के प्रलोभन आदि मुद्दों पर बंटे हुए थे। चुनाव परिणामों में कांग्रेस ने 90 में से 36 सीटें जीती तथा लोक दल ने 31 सीटें जीती। भजनलाल ने चतुराई के दम पर देवीलाल को हराकर मुख्यमंत्री का पद हासिल किया व मतदाताओ को सीख मिली की नैतिकता नहीं बल्कि सत्ता प्राप्ति ही नेताओं काएक मात्र लक्ष्य होता है।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1987 (सातवीं विधानसभा, 1987-1991)—इन चुनावों में कांग्रेस में गुटबाजी उभर रही थी। आमजन पर चौधरी बंशीलाल की जन-कल्याणकारी नीतियों का अत्याधिक प्रभाव था। हरियाणा का मतदाता चौधर की लड़ाई के रूप में एक बार फिर से चौधरी बंशीलाल व देवीलाल के रूप में दो भागो में बंटा हुआ था। लोकदल पार्टी ने 60 सीटों पर जीत हासिल की व चौधरी देवीलाल मुख्यमंत्री बने व फिर परिवारवाद की लड़ाई में चौधरी ओमप्रकाश चौटाला मुख्यमंत्री बने व उन्होंने 3 बार मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। इन चुनावों में चौधरी के नारे ने मतदाताओं के मतदान व्यवहार को अत्याधिक प्रभावित किया था।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1991 (आठवीं विधानसभा 1991-1996)—यह हरियाणा के पहले विधानसभा चुनाव थे जिसमें मतदाता इलेक्ट्रोनिक मिडिया तथा दलो के घोषणा पत्र में एस वाई एल नहर के विषय से अत्याधिक प्रभावित हुए थे। मतदाता इस बार स्थायी सरकार चुनना चाहते थे अत कांग्रेस को 90 मे सें 51 सीटें मिली व भजनलाल मुख्यमंत्री बने। इन चुनावों में मतदाता विकास, सत्ता की स्थायी समय सीमा तथा क्षेत्रीय चौधरपन के कारको से अत्याधिक प्रभावित थे।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 1996 (नौवी विधानसभा, 1996-1999)—इन चुनावो में मतदाताओं ने पहली बार गठबन्धन की राजनीति के प्रभाव को अपने मतदान व्यवहार पर महसूस किया। जनता पर चौधरी बंशीलाल के विकास व शराब बन्दी के नारों का अत्याधिक प्रभाव था। अत: हरियाणा विकास पार्टी ने सबसे ज्यादा 33 सीटें जीती व भाजपा के सहयोग से अपनीसरकार बनाई। इन चुनावों ने सिद्ध किया की हरियाणा के मतदाताओं के मतदान व्यवहार पर विकास व सुशासन के वादों का अत्याधिक प्रभाव पड़ता है।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2000 (दसवीं विधान सभा 2000-2005)—इन चुनावों में हरियाणा का आम जनमनानस अस्थायी शासन से परेशान हो चुका था तथा अन्य दलो के स्थान पर एक क्षेत्रीय दल को सत्ता देने का मन बना चुका था। अत: इनेलो जैसे क्षेत्रीय दल ने 47 सीटों के साथ बहुमत प्राप्त किया। इसके साथ जाट मतदाता भी अपनी जाति का वर्चस्व बनाए रखने की जिद्द पर अड़ा हुआ था। फलस्वरूप श्री ओमप्रकाश चौटाला एक बार फिर से मुख्यमंत्री के पद पर आसीन हुए ।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2005 (ग्यारहवीं विधानसभा 2005-2009)—हरियाणा का मतदाता इनेलो के कार्यकाल के कुशासन व अत्याधिक केन्द्रीकृत प्रशासन की वजह से अत्याधिक परेशान हो चुका था तथा नए नेताओ को मौका देने के प्रति प्रतिबद्ध था। चौधरी भजनलाल ने मतदाताअें को अत्याधिक प्रभावित किया तथा कांग्रेस के सभी नेता अपने-अपने क्षेत्रो में अत्याधिक मजबूत थे। कांग्रेस के पक्ष मे मतदाताओं को एक समर्थन की लहर महसूस हुई परिणामस्वरूप कांग्रेस ने 67 सीटें जीत कर इतिहास रच दिया। परन्तु कांग्रेस आलाकमान के फैसले के कारण भजनलाल नही बल्कि चौधरी भुपेन्द्र सिंह हुड्डा मुख्यमंत्री के पद को जीतने में सफल रहे।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2009 (बारहवीं विधानसभा 2009-2014)—इन चुनावों में मतदाताओं पर ना तो किसी चुनावी लहर का प्रभाव था और न ही किसी विशेष दल के प्रति उनमें आकर्षण था। केवल एक नारा, रोहतक की चौधर का हवा मेंतैर रहा था। चुनावो के परिणामोंमें कांग्रेस को 40 व इनेलोंको केवल 31 सीटें मिली। इन हालातो मे हजका के विधायको को मिलाकर भूपेन्द्र सिंह हुड्डा एक बार पुन: मुख्यमंत्री बन गए।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2014 (तेरहवीं विधानसभा 2014-2019)—सन् 2014 में सम्पन्न हुए हरियाणा विधानसभा चुनाव अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हरियाणा का मतदाता केन्द्र में कांग्रेस के दस सालों के कुशासन व भ्रष्टाचारी शासन से अत्याधिक परेशान था तथा श्री नरेन्द्र मोदी व भाजपा को उद्धारक के रूप मे देख रहा था। अत: पहली बार भाजपा को 47 सीटों के रूप में बहुमत प्राप्त हुआ तथा जनता न तो जाति व ना ही क्षेत्रवाद आदि से प्रभावित हुई। इस समय आम मतदाता ने तो केवल विकास, राष्ट्रवाद व अच्छे प्रशासन की उम्मीदों से ही मतदानकिया था व श्री मनोहर लाल खट्टर हरियाणा के मुख्यमंत्री बने।

हरियाणा विधानसभा चुनाव 2019 (चौदहवीं विधानसभा 2019 से वर्तमान तक)—विधानसभा चुनाव 2019 के परिणाम अत्यंत ही चौकाने वाले थे। अबकी बार 75 पार का नारा देने वालीभाजपा केवल 40 सीटों तक ही सिमट कर रह गई। इस बार चुनावों में जाट वोटों का ध्रुवीकरण हुआ तथा भाजपा के लगभग सभी जाट नेता हरा दिए गए। इन नतीजों ने मतदाताओं के मतदान व्यवहार के विषय मेंयह सिद्ध कर दिया कि आज का मतदाता इतना जागरुक हो चुका है कि उसने जहां 2019 मे केन्द्र में भाजपा को बहुमत दिया वहीं हरियाणा में भाजपा को केवल 40 सीटों पर सीमटाकर रख दिया व भाजपा को जजपाके सहयोग से सरकार बनानी पड़ी। श्री मनोहरलाल खट्टर पुन: मुख्यमंत्री बने व दुष्यंत चौटाला उप मुख्यमंत्री बने।

सारांश

उपरोक्त समस्त अध्ययन के पश्चात हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि हरियाणा प्रदेश की चुनावी राजनीति के सन्दर्भ मे मतदाताओं का मतदान व्यवहार हर चुनाव के साथ बदलता रहा है। उपरोक्त वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सन 1966 से लेकर सन 2019 के चौदहवें विधानसभा चुनावों तक मतदाताओं के मतदान, व्यवहार को उस समय के नेताओं, मुद्दों, नारों तथा परिस्थितियों आदि ने अत्याधिक प्रभावित किया।वर्तमान समय में जैसे-जैसे सुचना व तकनीकी साधन बढते जा रहे हैं तथा जैसे-जैसे शिक्षा का विकास हुआ है, वैसे-वैसे हरियाणा का मतदाता भी अत्याधिक जागरुक होता जा रहा है। इस अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हरियाणा में आज के मतदाताओं को झूठे वादों आदि से बहलाया नहीं जा सकता है तथा केवल वही दल सत्ता प्राप्ति में सफल सिद्ध होगा जो आम मतदाताओ की इच्छा व जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अपनी नीतियों का निर्माण करेगा।

सन्दर्भ

1. सिंह, डॉ. निशान्त एवं सारस्वत, स्वपनिल, (2003), लोकतन्त्र व चुनाव सुधार, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. सिंह, रामसकल, (2018), भारतीय शासन व राजनीति, बाबा पब्लिकेशन, जयपुर।
3. फड़िया, बी.एल., (2004), इण्डियन गवर्नमेन्ट एंड पॉलिटिक्स, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. जाखड़, रामसिंह, (1996), हरियाणा के राजनीतिक इतिहास की झलक, आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक।
5. चौटाला, दिनेश, (2021), हरियाणा दिग्दर्शन - एक सम्पूर्ण अध्ययन, अरिहंत प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. पंघाल, एन.एस., (2021), म्हारा हरियाणा, के.सी. पब्लिकेशन्स, हिसार।
7. हरियाणा जनमत (1967-2019)
8. हिन्दुस्तान टाइम्स,नई दिल्ली, 22 जनवरी, 1972
9. दैनिक भास्कर, हिसार, 22 अक्टूबर, 2019
10. दैनिक जागरण, हिसार, 22 अक्टूबर, 2019

❑❑

डॉ. अनिल अनिकेत
सहायक आचार्य
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

उर्दू एवं फारसी भाषा का राजस्थानी भाषा पर प्रभाव

राजस्थानी भाषा वैदिक काल से ही एक स्वतन्त्र भाषा रही है। राजस्थानी भाषा की प्राचीनता इसके मूर्धन्य वर्णों से ज्ञात होती है। वैदिक साहित्य पर दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि राजस्थानी भाषा का मूर्धन्य वर्ण 'ळ' ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में अग्रलिखित दोहे के रूप में दृष्टिगोचर होता है—''अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम होतारं रत्नधातमम्।''[1] राजस्थानी भाषा वैदिक संस्कृत भाषा के समानान्तर चलती हुयी राजस्थान बनने तक कई रूपों में ढलकर राजस्थानी कहलाई। राजस्थानी भाषा मध्यकाल में अपने स्वतन्त्र रूप में आई।

राजस्थानी भाषा किसी एक भाषा का नाम नहीं है। यह विभिन्न बोलियों व उपबोलियों का एक समूह है जिसे हम समेकित भाषा कह सकते हैं। इस समूह में विभिन्न बोलियां यथा ढूंढाड़ी, मेवाड़ी, मारवाड़ी, शेखावाटी, हाड़ौती, गोडवाड़ी आदि सम्मिलित हैं। राजस्थानी भाषा भारोपीय परिवार समूह की भाषा है। भारोपीय परिवार की भाषाओं पर अन्य भाषाओं का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। चूंकि मध्यकाल में मुस्लिम शासकों की दरबारी भाषा के रूप में फारसी भाषा प्रयुक्त थी और वहीं अन्य प्रभावों के साथ-साथ हिन्दुस्तानी एवं फारसी भाषा के सम्मिलन से उर्दू भाषा विकसित हुई। अत: इसी प्रकार राजस्थानी भाषा पर उर्दू एवं फारसी भाषा का भी प्रभूत प्रभाव रहा, जो कि स्वाभाविक है।

इस सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मुगलकाल में राजस्थान की विभिन्न रियासतों के राजाओं और मुगल बादशाहों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण राजस्थान में फारसी भाषा का विस्तार हुआ और साथ ही राजस्थानी भाषा के बहुत से शब्द एवं किस्से, कहावतें भी मुगल दरबार तक पहुँचे। मुगल बादशाह अकबर के जमाने से शाही फौजों में राजपूतों के शामिल होने के कारण उनकी बोलियों के बहुत से शब्द उस जमाने में बनने वाली नई भाषा में सम्मिलित होते रहे, और वह भाषा आगे चलकर उर्दू कहलाई। एक तरफ फौजों में राजपूत सैनिक शामिल होते रहे तो वहीं दूसरी तरफ बादशाह के शाही महलों में राजपूत रानियों और उनकी दासियों का भी प्रभाव रहा होगा। लेकिन ऐसे शब्दों का उल्लेख सामान्यत: उर्दू भाषा के इतिहासकारों ने नहीं किया है। केवल इतना ही लिखा जाता रहा कि उर्दू में जिन भारतीय भाषाओं के शब्द सम्मिलित हैं उनमें राजस्थानी भाषा के भी शब्द सम्मिलित हैं। यह एक शोध का विषय है, जिसमें यह तलाश करना होगा कि राजस्थानी भाषा के कौन-कौन से शब्द हैं जो वास्तव में हिन्दी भाषा के शब्द हैं और राजस्थानी में भी बोले जाते हैं। इसी प्रकार, बहुत से ऐसे शब्द है जो राजस्थानी में भी बोले जाते हैं और देश की अन्य भाषाओं में भी प्रचलित हैं। अत: यह देखना रूचिकर होगा कि उनमें शुद्ध राजस्थानी भाषा के शब्द कौन-कौन से हैं? उदाहरणस्वरूप ढोर-डंगर अर्थात् पशु, एक राजस्थानी शब्द है जो कि उर्दू में भी प्रचलित रहा है। इसी प्रकार डूँगर अर्थात् पहाड़, राजस्थानी शब्द है जो अन्य भाषाओं में भी प्रयुक्त होता है व उर्दू में भी प्रयुक्त है। इसी प्रकार रांड शब्द राजस्थानी भाषा में विधवा व वेश्या महिला के लिए प्रयुक्त है तथा उर्दू में विधवा स्त्री के लिए प्रयुक्त है तथा हिन्दी भाषा में गाली (रंडी) के रूप में प्रयुक्त है। इसी प्रकार राजस्थानी भाषा के शब्द ही नहीं अपितु क्रियाएँ भी उर्दू में सम्मिलित हैं, उदाहरणस्वरूप खोसना अर्थात् छीन लेना; ताड़ना अर्थात् भगा देना।

राजस्थानी भाषा के बहुत से शब्द आज उर्दू भाषा में प्रचलित नहीं रहे परन्तु ऐसे बहुत से शब्द तलाशे जा सकते हैं जो आज भी उर्दू में आमतौर पर बोले जाते हैं उदाहरणस्वरूप—पोतड़ा[2] अर्थात वह कपडा जो छोटे बच्चों के पेशाब, पाखाने

के लिए बांधा जाता है। यदि इस शब्द की खोज की जाए तो इसका इतिहास मुगल बादशाह अकबर के जमाने तक पहुंच जाता है। अकबर के जमाने में जो राजकुमारियां और उनकी दासियां शाही महलों तक पहुंची होंगी, उन्होंने पोतड़ा शब्द बोला होगा और शनैः शनैः यह शब्द उर्दू भाषा में सम्मिलित हो गया होगा।

दूसरी ओर, फारसी भाषा के शब्द राजस्थानी भाषा में सम्मिलित होते रहे हैं। राजस्थान के चारणों और भाटों ने जो रासो के नाम से कविताएं सैंकड़ों साल पहले लिखीं थीं जैसे पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो आदि। उनमें भी फारसी भाषा के शब्द सम्मिलित हैं जिनसे यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि राजस्थानी भाषा में अब से हजार वर्ष पूर्व से ही फारसी भाषा के शब्द प्रयुक्त होने लगे थे। यहां विशेष रूप से यह बात उल्लेखनीय है कि फारसी भाषा बोलने वाले सन्त, सूफी और शाही फौजों, लश्करों के सिपाही जब से इस प्रान्त में आने लगे उसी जमाने से फारसी भाषा का प्रभाव राजस्थानी भाषा पर पड़ने लगा था। सूफी-सन्तों ने यहां आकर जो मानवता का पाठ पढ़ाया और एकता का सबक सिखाया उसके लिए ऐसी भाषा से काम लिया होगा जो स्थानीय लोग भी समझ सके। ऐसा इसलिए भी संभव था क्योंकि उनकी स्वयं की भाषा फारसी थी और यहां के स्थानीय लोग फारसी भाषा से अपरिचित थे। अतः ऐसे में सूफी सन्तों ने स्वयं यहां की भाषा सीखी होगी और मिली जुली भाषा में अपनी बात कही होगी और इस प्रकार आहिस्ता-आहिस्ता फारसी भाषा के शब्द राजस्थान में प्रचलन में आ गये होंगे।

फारसी के पश्चात् जब उर्दू भाषा का जमाना आया और उर्दू में फारसी भाषा की शब्दावली का प्रयोग किया जाने लगा तो उर्दू के माध्यम से बहुत से शब्द राजस्थानी भाषा में सम्मिलित हो गए। जो हमें आज भी सरकारी दफ्तरों, अदालतों, कारीगरों, भवनों (मकानों), पोशाक (पहनावा), जेवर (गहने) आदि के नामों में आमतौर पर दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ :

शासकीय शब्दावली—आबकारी महकमा (मद्य विभाग), जंगलात महकमा, तहसील, तहसीलदार, शफाखाना (अस्पताल), दारोगा, कानूनगो, फौजदारी, वकील, गवाह, पेशी, तारीख, अमीन, नकलनवीस, सिपाही, मुकदमा, दावा, अर्जी, हुकुम, मुलजिम, कैद, सजा, माफी, पंचनामा, कातिल, हिरासत आदि ।

कारीगरों के नाम—दुकानदार, कारीगर, बागवान, नगीनासाज, कागजी, नीलगर आदि।

गहने—बाजूबन्द (बाजू में पहनने वाला), गुलुबन्द (गले में पहनने वाला), पायजेब, जेवर आदि।

वाद्य यन्त्र—शहनाई, तबला, डफ (होली पर बजाया जाने वाला), मिजराब (सितार बजाने के लिए हाथ में पहना जाने वाला)।

व्यक्तिगत नाम—इकबाल नारायण, बख्तावरसिंह, बहादुरमल, जवाहरलाल, हुकमचन्द, खूबचन्द, रोशनलाल, रामबक्श, सुल्तानसिंह, सरदारसिंह, शेरसिंह, शमशेरसिंह, शादीराम, साहबसिंह, जालिमसिंह, गुलाबसिंह, हिम्मतसिंह आदि।

अन्य—दुकान, शादी, गुलाब, हिम्मत, सरदार, बाजार, साहब, सवार, मेज आदि।

फारसी भाषा के अनेकों शब्द राजस्थानी भाषा में सम्मिलित होकर इस तरह घुलमिल गए हैं कि आज वो राजस्थानी भाषा के ही शब्द समझे जाने लगे हैं। उनमें कुछ ऐसे शब्द हैं जो अपने मूल रूप में शामिल हैं तथा कुछ शब्दों का रूप व उच्चारण बदल गया है। कुछ पर राजस्थानी भाषा का असर पड़ा अर्थात् उनकी बोली बदल गई और कुछ ऐसे शब्द हैं जो फारसी और राजस्थानी भाषा से मिलकर बने हैं अर्थात् फारसी भाषा के शब्द के साथ हिन्दी अथवा राजस्थानी भाषा के शब्द सम्मिलित करके मिलाजुला शब्द बनाया गया जैसे इकबाल नारायण, साहब सिंह, खासा कोठी, जलमहल।

फारसी भाषा का शब्द 'साहब' राजस्थानी भाषा में बड़ा प्रचलित है। 'साहब' को राजस्थानी बोलचाल की भाषा में मात्र 'सा' के रूप में उच्चारित किया जाने लगा है। अपने बुजुर्गों के लिए या रिश्तों को सम्मान के साथ पुकारने के लिए 'साहब' के स्थान पर 'सा' प्रयुक्त किया जाता है जैसे बाबा सा, काका सा, मामा सा आदि । यही 'सा' शब्द राजस्थानी के शब्दों के साथ मिलाकर भी बोला जाता है जैसे आगन्तुकों का स्वागत करते हुए कहा जाता है कि 'पधारो सा'; भोजन प्रारम्भ करने का निवेदन करने के लिए 'आरोगो सा'; बैठने के लिए निवेदन हेतु कहा जाता है कि 'बिराजो सा'।

उपरोक्त के सन्दर्भ में शोध की महत्ती आवश्यकता है तभी भाषा के सम्बन्ध में ज्ञात किया जा सकता है कि कौन-कौन से शब्द शुद्ध रूप से उसी भाषा के हैं तथा कौन-कौन से शब्द इत्यादि अन्य भाषाओं से आयातित हैं अथवा सम्मिश्रण से बने हैं।

सन्दर्भ

1. हम अग्नि की उपासना करते हैं जो यज्ञ (श्रेष्ठ कर्म) के पुरोहित (आगे बढ़ाने वाला), देवता (अनुदान देने वाला) और याचक की रत्नों से विभूषित करने वाले हैं—ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, प्रथम सूक्त, श्रीराम शर्मा (सं.), संस्कृत संस्थान, बरेली, 1962
2. मेनारिया, मोतीलाल, राजस्थानी भाषा और साहित्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014, पृ. 23
3. माली, बी.एल., राजस्थानी भाषा और व्याकरण, राजस्थानी भाषा बाल साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, 1990, पृ. 46
4. मोहम्मद, सद्दीक, संक्षिप्त राजस्थानी-हिन्दी शब्दकोश, उपसमिति राजस्थानी शब्दकोश, चौपासनी, जोधपुर, 2002, पृ. 256
5. वही, पृ. 219
6. वही, पृ. 396
7. वही, पृ. 100
8. वही, पृ. 234
9. वही, पृ. 306

❑❑

डॉ. दीपाली शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी
सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय
ब्यावर

ATISHAY KALIT
Vol. 9, Pt. B
Sr. 16, 2022
ISSN : 2277-419X

स्त्री विमर्श के आईने में रांगेय राघव

शोध सार

डॉ. रांगेय राघव के कथा साहित्य में नारी मन के सूक्ष्म पहलुओं की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। एक ओर वे भारतीय नारी के प्रति होने वाले परम्परागत अत्याचारों का विरोध करते है। तो दूसरी ओर भारतीय नारी को नवीन परिस्थितियों में शिक्षा, अर्थाजन आदि द्वारा प्राप्त आत्मविश्वास के साँचे में ढला हुआ अंकित कर प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। कथा साहित्य में अंकित नारी पात्र व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा निर्मित होने से प्रामाणिक हो कर पाठकों की चेतना को जागृत करते हैं। इन्होंने अपने कथा साहित्य में एक ओर नारी की दयनीय स्थित पर प्रकाश डालते हुए यथार्थवादी रूप उद्घाटित किया है वहीं सचेतन नारी का आदर्श रूप भी स्थापित किया है। रांगेय जी की विशिष्टता इसी संदर्भ में है कि इनके नारी पात्र अनुभवजन्य हैं। इनका वर्णन रांगेय जी ने परिस्थितियों की विक्षुब्धता से पीड़ित होकर किया है, यही कारण है कि रांगेय जी के साहित्य में नारी चेतना का उद्घोष सुनाई देता है।

शोध पत्र

व्यक्ति स्वातन्त्र्य और समानता के आधुनिक युग में पुरुष के पैरों की जूती मानी जाने वाली स्त्री पुरानी बेड़ियों को तोड़कर, शिक्षा प्राप्त कर नई स्वतंत्र चेतना एवं दृष्टिकोण के साथ रांगेय राघव के साहित्य में अवतरित होती है। रांगेय राघव के कथा साहित्य में नारी मन के अनेक सूक्ष्म पहलुओं, भाव-भंगिमाओं, संवेदनाओं, जीवनगत अनुभूतियों, उसकी पीड़ा, घुटन आदि की सशक्त अभिव्यंजना हुई है। उन्होंने नारी की व्यक्तिगत, परिवेशगत, मानसिक एवं सामाजिक समस्याओं को व्यापक अभिव्यक्ति देकर युग-युग से उपेक्षित नारी के अस्तित्व का मौलिक अन्वेषण किया है।

नारी पात्र उनके सम्पूर्ण साहित्य में सशक्त रहे हैं। लेखक की अपनी संवेदना, आधुनिक युग की नारी चेतना का संयुक्त अवलम्ब पाकर, अधिकांश कहानियों एवं उपन्यासों में एक न एक नारी पात्र सशक्त रूप में अंकित हुआ है। इन नारी पात्रों में जहाँ लेखक ने भारतीय नारी के परम्परागत गुणों को प्रदर्शित किया है, वहीं नारी पीड़ा और आधुनिक अधिकार चेतना को किसी न किसी रूप में उभारा है।

उनके कथा साहित्य में एक और 'लवंग', 'उषा' (घरौंदा उपन्यास) के रूप में ऐसी आधुनिक नारियों का चित्रण हुआ है जिनकी स्वतंत्रता स्वच्छंदता की सीमा को पार करती हुई उच्छृंखलता में बदलती जा रही है तथा जो समाजगत भारतीय जीवन आदर्शों व मूल्यों के प्रति कोरा आक्रोश रखती हैं। भारतीय अभिजात्य वर्ग के ऐसे शिक्षित नारी समुदाय के पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण तथा मूल्यविहीन, आस्थाविहीन, जीवन दृष्टि का रांगेय जी ने पर्दाफाश किया है। वहीं दूसरी और 'सविता' (नारी का विक्षोभ-कहानी), 'विमला' (ममता की मजबूरी-कहानी), कान्ता (काका-उपन्यास), नादानी वैश्या (घरौंदा-उपन्यास), प्यारी (कब तक पुकारूँ-उपन्यास) जैसे प्रगतिशील नारी पात्रों के प्रति रांगेय जी का दृष्टिकोण उदार व व्यापक है। वैश्या को भी वह उसकी परिस्थिति, विवशता, निर्धनता आदि के संदर्भ में देखने का साहस रखते हैं।

रांगेय राघव का साहित्यिक कृतित्व जीवनगत व्यक्तिगत अनुभवों का परिणाम होने से यर्थाथपरक है। समाज के विभिन्न वर्गों तथा व्यक्तियों के जीवन से जुड़ाव उनके साहित्य की गहराई को और बढ़ा देता है, अत: यहाँ उथलापन व कृत्रिमता नहीं है। नारी जीवन में यथार्थ स्थिति पर विचार करते हुए लेखक 'छोटी सी बात' (उपन्यास) में कह उठते हैं—''क्या है स्त्री का जीवन? एक विषम हाहाकार! संतों के युग में माया थी, छायाग्रहिणी थी, दरबारों में विलास की पुतली, धर्म में माता और आधुनिकता में एक सिरे पर वेश्या, दूसरे पर आवरण में छिपी हुई घुटन, और दोनों सिरे जलते हुए, गलती हुई.....मिटती हुई।''[1]

'यशोधरा जीत गई' उपन्यास में 'यशोधरा' के चुनौतीपूर्ण तर्क पुरूष के मिथ्या अहंकार का भाण्डाफोड़ करने के साथ नारीत्व की गरिमा भी सशक्ति से स्थापित करते हैं। पत्नी रूप में वह समान अधिकारों की माँग करती है—''वे मेरे पति थे, मैं उनकी दया नहीं समान अधिकारों को चाहती हूँ।'' रांगेय जी ने नारी स्वाभिमान, उसके अस्तित्व आदि प्रश्नों पर विचार कर उसके विडम्बनापूर्ण जीवन को चित्रित किया है। पुरूष जाति को जन्म देने वाली स्त्री पुरूष के लिए हेय व त्याज्य किस रूप में हो सकती है?[2]—''जो जन्म देती है, वह नीची है। फिर पुरूष ही क्यों ऊँचा है? क्योंकि वह भोगी होने का अहंकार रखता है.....पुरूष सृजन की महानता और गरिमा का अनुभव नहीं करता।''[3] पुरूष की पूर्णता को चुनौती देती 'यशोधरा' कहती है—''पुरूष कितनी भी पूर्णता प्राप्त कर ले, किन्तु जब उसकी सत्ता का प्रश्न उठता है, तब उसे देह धारण करने के लिए, नारी के गर्भ में ही आना पड़ता है।''[4] 'घरौंदा' की 'नादानी' वेश्या—जो विधवा होने पर गुण्डों द्वारा भ्रष्ट किये जाने पर वेश्या जीवन अपनाए है—के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण राघव जी के यहाँ मुखरित होती है। वे 'नादानी' के कथन के माध्यम से आक्रोश व्यक्ति करते हुए कहते हैं—''तुम नदी में नहाते हो, मगर तुम गंदे नही होते, उलटे बहने वाली नदी गंदी हो जाती है क्या न्याय है तुम्हारा?''[5]

विधवा समस्या का साहसिक समाधान राघव जी ने 'काका' में प्रस्तुत किया है। बाल विधवा 'कान्ता' सामाजिक व्यवस्था एवं आरोपित परम्परित रूढ़ियों का विरोध करते हुए, 'राम धुन' के विवाह प्रस्ताव को स्वीकार कर कहती है—''भले ही यह पाप हो, पर यही अच्छा है। मेरे वेश्या बनने से, या चेली बनने से, यह पवित्र है। स्त्री हूँ, स्त्री जैसा जीवन क्यों न बिताऊँ? अगर धर्म इसे नहीं मानता तो धर्म गलत है।''[6] पुरूष द्वारा, स्त्री को दासी रूप में मानने व स्वीकारने की भावना का विरोध करते हुए 'नीलूफर' (मुर्दों का टीला उपन्यास) में कहती है—''पुरूष स्त्री का स्वामी होना चाहता है, अपने धन और अधिकार से स्त्री को खरीद लेना चाहता है जैसे हम कोई पशुमात्र हों।''[7]

रांगेय जी के नारी पात्र अपने अधिकारों, आत्मसम्मान तथा अस्तित्व के प्रति विशेष जाग्रत हैं। आधुनिक जीवन की जटिलताओं, तनावों तथा पीड़ा आदि के परिणामस्वरूप एक मनुष्य के रूप में उसकी अपनी समस्याएँ, कुण्ठाएँ, दु:ख तथा पीड़ा आदि हैं पर इन सब के बीच टूटते जीवन मूल्यों एवं बिखरती नैतिकताओं के धुएँ से वह अपने आत्मसम्मान तथा अस्तित्व को बचाए रखने के लिए प्रयासरत है।

देवताओं को अर्पित की जाने वाली देवदासियों की मन:स्थिति व धर्म के नाम पर उनके स्त्रीत्व और मातृत्व को जबरन छीन लिये जाने को 'देवदासी' कहानी में उजागर किया गया है। सम्पूर्ण हिन्दी कहानी साहित्य में नायक के वर्चस्व को चुनौती देने के साथ सम्पूर्ण समाज को चुनौती देने वाली 'गदल' के समान अन्य कोई नारी पात्र इतने सशक्त रूप में साहित्य में नहीं उभर कर आता। 'गदल' हिन्दी कहानी साहित्य का अविस्मरणीय पात्र है, 'गदल' के चरित्र का ठोस रोमांटिक ठहराव स्त्रीत्व और पौरूषत्व का अद्‌भुत सम्मिलन, 'गदल' के चरित्र की विशिष्टता को उजागर करता है। 'गदल का अपने देवर 'डोडी' से अदृश्य मूक लगाव है, पति 'गुन्ना के साथ तीस वर्षों के वैवाहिक जीवन के उपरांत, पति की मृत्यु और 'डोडी' के पत्नी-बच्चों की मृत्यु हो जाने पर वह विधवा के स्थान पर विवाहिता के रूप में 'डोडी' के साथ जीवन बिताना चाहती है। पर 'डोडी' द्वारा समाज से संकोच को जानकर वह विद्रोह कर 'मौनी' के यहाँ बैठ जाती है। कहती है—''गदल' तो मालिक बनकर रहती है समझी! बांदी बनकर नहीं। चाकरी करूँगी तो मरद की, नहीं तो विधना मेरे ठेंगे पर।''[8] 'नारी का विक्षोभ' की शिक्षित, तर्कशील नायिका पति के अत्याचारों के कारण पतिगृह को छोड़कर इलाहाबाद आकर शिक्षिका का जीवन व्यतीत करने लगती है। वह कहती है—''पति ही स्त्री का सबकुछ है? किन्तु वह पति पुरूष होता है। सीता जिस राम के पीछे चली थी वह पुरूषार्थी था। जो व्यक्ति अपनी रूढ़ियों में जकड़े हांफ रहा है, वह मेरे जीवन का आदर्श नहीं हो सकता।''[9] पुरूष की वासना की शिकार

स्त्री को, अवैध संतान होने के कारण अस्पताल में भर्ती नहीं किया जाता तब लेखक कह उठते हैं—''उसकी लाज इतनी है कि उसकी दरिद्रता पशुता मात्र न रह जाये। कम से कम उसे मनुष्यत्व का एक अधिकार मिले कि उसे जनने के लिए एक बंद घर प्राप्त हो।''[10] 'कुछ नहीं' कहानी में समाज द्वारा बलात्कार की शिकार लड़की के प्रति सहानुभूति के स्थान पर उसे लज्जित किया जाता है बलात्कारी को कोई कुछ नहीं कहता तब लड़की का पति कहता है—''हमारा पाप-पुण्य रखने का नैतिक ज्ञान इतना कलुषित और संकुचित हो गया कि एक स्त्री-पुरूष यौन संबंध पर ही धर्म की दीवार खड़ी करते हैं।''[11]

चिरकाल से पीड़ित, संघर्षशील नारी जीवन की समस्याओं ने लेखक को झकझोर दिया है, वे स्वयं स्त्री की परम्परित मानसिकता को भी उसके कष्टों के लिए जिम्मेदार मानते है—''परमात्मा ने स्त्री को जननी बनाया है, पर इसलिए नहीं कि वह सदैव अपने को इसी काम में खोए रखे।'' .....''स्त्री इतनी समर्थ क्यों नही बन जाती कि वह अपना पेट स्वयं भर सके, अबला क्यों बनी रहती है वह? स्त्री में क्या सामर्थ्य नहीं है? .....क्यों बनती है वह दासी? वीरता से सामना क्यों नही करती जीवन की सच्चाइयों का।'' एक अन्य जगह वे कहते हैं—''उसका दासत्व पुरूष को हटाये नहीं हटेगा, वह तो तब हटेगा, जब नारी बोझ बनने से इंकार कर देगी।''[12] रांगेय जी नारी को मुक्ति की राह पर उन्नति की और स्वच्छन्दतापूर्वक बढ़ने को संदेश देते हुए कहते हैं—''न तुम संन्यासिनी बनो ताकि यौन जीवन से विरक्ति दिखा कर लोगों को प्रभावित कर सको। न तुम वेश्या बनो कि उसी के बल पर जिओ। प्रेम के नाम पर जो विवाह नामक गुलामी तुमने इसलिए मंजूर की थी कि घर बैठे मौज उड़ाओ, ...कुछ सम्मानित जीवन बिताओ।.....आजादी की भीख मत माँगों उसे स्वयं लो।''[13]

रांगेय जी ने अपने कथा साहित्य में एक और नारी की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए यथार्थवादी रूप उद्घाटित किया है; वहीं सचेतन नारी का आदर्श रूप स्थापित करने का प्रयास भी किया है। रांगेय जी की विशिष्टता इस रूप में दृष्टिगोचर होती है कि उन्होंने अपने साहित्य में नारी का चित्रण यांत्रिक रूप से न कर, अनुभवजन्य आधार पर, संवेदना-सहानुभूति से प्रेरित होकर तथा तत्कालीन परिस्थितियों की विक्षुब्धता से किया है। यही कारण है कि रांगेय जी के साहित्य में नारी व्यक्तित्व के विविध रूप तथा नारी चेतना का स्पष्टत: उद्घोष क्रमश: दिखाई एवं सुनाई देता है।

संन्दर्भ

1. छोटी सी बात (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1959, पृ. 106
2. यशोधरा जीत गई (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1954, पृ. 95
3. यशोधरा जीत गई (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1954, पृ. 95
4. यशोधरा जीत गई (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1954, पृ. 95
5. घरौंदा (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1985, पृ. 190-191
6. काका (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1953, पृ.1 74
7. मुर्दों का टीला (उप.) ग्रन्थावली भाग-2, संपा. सुलोचना राघव, संस्करण-1982, पृ. 346
8. गदल (कहानी)—रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-2, संपा. अशोक शास्त्री, संस्करण-1997, पृ. 267
9. नारी का विक्षोभ (कहानी)—रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-1, संपा. अशोक शास्त्री संस्करण-1996, पृ. 90
10. नारी की लाज (कहानी)—रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-1, संपा. अशोक शास्त्री संस्करण-1996, पृ. 103
11. कुछ नहीं (कहानी)—रांगेय राघव की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-1, संपा. अशोक शास्त्री संस्करण-1996, पृ. 260
12. राह न रुकी (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1958, पृ. 64
13. कल्पना (उप.) रांगेय राघव, संस्करण-1961, पृ. 126

❑❑